ओ३म्

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं
'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

चतुर्थो भागः

(पञ्चमाध्यायात्मकः)

R
490
102.8

सुदर्शनदेव आचार्यः

R
410
सूक्ति-प

ओ३म्

पाणिनीय अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं
'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

चतुर्थो भागः

(पञ्चमाध्यायात्मकः)

R
४१०
१०२.४

सुदर्शनदेव आचार्यः

R
८९०
७०२.४

113919

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

Stock Verification-2024

R
810
702.8

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

वर्ग संख्या......... आगत संख्या 113919

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

Stock Verification-2024

Stock Verification-2024

ओ३म्
तस्मै पाणिनये नमः

पाणिनीय
अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

(अष्टाध्यायी का सरल संस्कृत भाष्य एवं
'आर्यभाषा' नामक हिन्दी टीका)

113919

चतुर्थो भागः

(पञ्चमाध्यायात्मकः)

113919

प्रवचनकारः

डॉ० सुदर्शनदेव आचार्यः
एम.ए., पी-एच.डी. (एच.ई.एस.)

संस्कृत सेवा संस्थान
७७६/३४, हरिसिंह कालोनी
रोहतक-१२४००१ (हरयाणा)

प्रकाशक :-
ब्रह्मर्षि स्वामी विरजानन्द आर्ष धर्मार्थ न्यास
गुरुकुल झज्जर,
जिला झज्जर (हरयाणा)
दूरभाष : ०१२५१ -५२०४४
५३३३२

मूल्य : १०० रुपये

R
४१०
१०२.८

प्रथम वार : २०००

पौष २०५५ वि०
स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस
(२३ दिसम्बर १९९८ ई०)

मुद्रक :-
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य प्रिंटिंग प्रेस,
गोहाना मार्ग, रोहतक-१२४००१
दूरभाष : ०१२६२-४६८७४, ५७७७४, ५६८३३

ओ३म्

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

अनुभूमिका

पाणिनीय अष्टाध्यायी में भारतवर्ष सम्बन्धी कुछ ग्राम एवं नगरों के नाम उपलब्ध होते हैं। जनपद की भौगोलिक ईकाई के अन्तर्गत मनुष्यों के रहने के स्थान नगर एवं ग्राम कहलाते थे। उनमें छोटे स्थानों को 'घोष' और खेड़ों को 'खेट' कहा जाता था। उनका पाठकों के लाभार्थ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

(१) **अरिष्टपुर** :- (६।२।२००) बौद्ध साहित्य के अनुसार यह शिबि जनपद का नगर था।

(२) **आसन्दीवत्** :- (८।२।१२/४।२।८६) यह जनमेजय पारीक्षित की राजधानी का नाम था। काशिका के अनुसार यह अहिस्थल था जो कि कुरुक्षेत्र के पास विद्यमान था।

(३) **ऐषुकारि** :- (४।२।५४) उत्तराध्ययन-सूत्र के अनुसार कुरु जनपद में इषुकार नामक समृद्ध, सुन्दर और स्फीत नगर था। जैसे हांसी का पुराना नाम 'आसिका' था वैसे हिसार का प्राचीन नाम 'ऐषुकारि' ज्ञात होता है।

(४) **कत्रि** :- (४।२।९५) सम्भव है यह वह स्थान है जिसे कालान्तर में अलमोड़े का कत्यूर (कत्रिपुर) कहते हैं।

(५) **कपिस्थल** :- (८।२।९१) यह हरयाणा प्रान्त का वर्तमान जिला कैथल है।

(६) **कापिशी** :- (४।२।९९) यह कापिशायन प्रान्त की राजधानी थी। काबुल के उत्तरपूर्व और हिन्दुकुश के दक्षिण में आधुनिक बेग्राम' प्राचीन 'कापिशी' है। जो कि घोरबन्द और पंजशीर नदियों के संगम पर स्थित थी। बाल्हीक से बामियां होकर कपिश प्रान्त (कोहिस्थान-काफिरिस्तान) में घुसनेवाले मार्ग पर कापिशी नगरी व्यापार और संस्कृति का केन्द्र थी। यह हरी दाख की उत्पत्ति का स्थान था। यहां बनी हुई 'कापिशायन' नामक विशेष प्रकार की सुरा भारतवर्ष में आती थी।

(७) **कास्तीर** :- (६।१।१५५) इस पतञ्जलि मुनि ने वाहीक (पंजाब) ग्राम कहा है।

(८) **कूचवार** :- (४।३।९४) यह चीनी तुर्किस्तान उत्तरी तरिम उपत्यका का नाम था, जिसका अर्वाचीन नाम 'कूचा' है। चीनी भाषा में इसे आजकल 'कूची' कहते हैं।

(९) **गौडपुर** :- (६।२।२००) यह पुण्ड्र बंगाल का प्राचीन नाम था।

(१०) **चिहणकन्थ** :- (६।२।१२५) यह उशीनर देश का नगर था।

(११) **तक्षशिला** :- (४।३।९३) यह पूर्वी-गन्धार की प्रसिद्ध राजधानी थी। यह सिन्धु और विपाशा (व्यास) के बीच के सब नगरों में बड़ी और समृद्ध थी। पाटलिपुत्र, मथुरा और शाकल को पुष्कलावती, कापिशी और बाल्हीक (बल्ख) से मिलानेवाली उत्तरपथ (जी०टी० रोड़) नामक राजमार्ग पर तक्षशिला मुख्य व्यापार-नगरी थी।

(१२) **तूदी** :- (४।३।९४) इसकी पहचान अनिश्चित है।

(१३) **नड्वल** :- (४।२।८८) यह मारवाड़ का 'नाडौल' नगर प्रतीत होता है।

(१४) **पलदी** :- (४।२।११०) इसकी पहचान अज्ञात है।

(१५) **फलकपुर** :- (४।२।१०१) यह सम्भवतः वर्तमान फिल्लौर (जालन्धर) है।

(१६) **मार्देयपुर** :- (४।२।१०१) यह सम्भवतः मंडावर (बिजनौर) है जो कि अत्यन्त प्राचीन स्थान है।

(१७) **रोणी** :- (४।२।७८) यह सम्भवतः रोड़ी (हिसार) है जो कि शैरीषक (सिरसा) के पास है।

(१८) **वरणा** :- (४।२।८२) वरणा नामक वृक्ष के समीप बसे होने के कारण इस बस्ती का नाम 'वरणा' पड़ा था। 'बरणा' उस दुर्ग का नाम था जो कि आश्वकायनों के राज्य में सिन्धु और स्वात नदियों के मध्य में सबसे सुदृढ रक्षा-स्थान था। यूनानी लेखकों ने इसका नाम 'एओरनस' दिया है जहां अस्सकोनोई=आश्वकायनों और सिकन्दर का युद्ध हुआ था।

(१९) **वर्मती** :- (४।३।९०) हो सकता है यह 'बीमरान' का पुराना नाम हो, जहां से कि खरोष्टी लेख प्राप्त हुआ है। अथवा-यह 'बामियां' हो जो कि बाल्हीक (बल्ख) और कपिशा के बीच में बहुत बड़ा केन्द्र था। यहां से आनेवाले घोड़ों को 'वार्मतिय' कहा गया है।

(२०) **वार्णव** :- (४।२।७७) वर्णु नदी के समीप स्थित नगर की संख्या 'वार्णव' थी। इसकी पहचान आधुनिक 'बन्नू' से की गई है।

(२१) **शर्करा** :- (४।२।८३) यह सिन्धु नद के किनारे 'सक्खर' नामक प्रसिद्ध स्थान है।

(२२) **शलातुर** :- (४।३।९४) यह पाणिनिमुनि का जन्मस्थान है जो कि सिन्धु-कुम्भा नदियों के संगम के कोने में ओहिन्द से चार मील पश्चिम में था। यह स्थान इस समय 'लहुर' कहलाता है।

(२३) **शिखावल** :- (४।२।८९) काशिका के अनुसार यह एक नगर था जो कि सम्भवत: सोन नदी पर स्थित 'सिहावल' नगर (रीवा रियासत) हो।

(२४) **संकल** :- (४।२।७५) यह आधुनिक सांगलावाला टीला (जि० झंग) है। यह कठ क्षत्रियों का केन्द्र था।

(२५) **सांकाश्य** :- (४।२।८०) फर्रुखाबाद जिले में ईक्षुमती (वर्तमान-ईखन) नदी के किनारे वर्तमान 'संकिसा' है जहां कि अशोककालीन स्तम्भ के चिह्न मिले हैं। सांकाश्य आदि गण में 'काम्पिल्य' नाम भी आया है जो कि फर्रुखाबाद जिले की कासगंज तहसील में वर्तमान 'कम्पिल' है।

(२६) **सौवास्तव** :- (४।२।७७) यह सुवास्तु वा स्वात नदी की घाटी का एक प्रधान नगर था।

(२७) **हस्तिनापुर** :- (४।२।१०२) यह वर्तमान हस्तिनापुर (मेरठ) है।

यह उपरिलिखित विवरण डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखित 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' नामक ग्रन्थ पर आधारित है। पाठक अधिक जानकारी के लिये उस ग्रन्थ का अध्ययन करें।

११-१२-१९९८

—सुदर्शनदेव आचार्य

सम्मति

पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य द्वारा **'अष्टाध्यायी-प्रवचनम्'** नामक अष्टाध्यायी पर प्रथमावृत्ति रूप व्याख्या अति उत्तम है। अब तक प्रकाशित सभी प्रथमावृत्तियों में यह श्रेष्ठतम है। इसकी विशेषताएं निम्न प्रकार से हैं–

१. इसकी भाषा अतिसरल तथा सुबोध है।

२. मन्दमति छात्र भी सूत्र के भाव को सहजभाव से समझ लेता है।

३. सिद्धियों को समझने के लिये अन्य सूत्र वा परिशिष्ट देखने की कोई आवश्यकता नहीं है। सिद्धि के विषय में उसी सूत्र पर स्पष्टीकरण किया गया है।

४. सिद्धियों के जाल से छुट्टी किन्तु उदाहरणों की सिद्धि में सम्बन्धित सूत्र का प्रयोजन अच्छे प्रकार से समझाया गया है।

५. सूत्र, पदच्छेद-विभक्ति, समास, अनुवृत्ति, अन्वय, अर्थ और उदाहरण को अलग-अलग पैरों में छापने से छात्रों को सूत्र समझने में देरी नहीं लगती है।

६. संस्कृत तथा आर्यभाषा (हिन्दी) दोनों भाषायें होने से इस ग्रन्थ की उपयोगिता और बढ़गई है।

७. मुद्रण कम्प्यूटर-कृत होने से छपाई बहुत ही साफ है।

८. महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा सत्यार्थप्रकाश में प्रतिपादित शैली के अनुसार होना इस ग्रन्थ की सबसे अलग विशेषता है।

९. जनपद, नदी, वन, पर्वत, नगर, ग्राम और माप-तोल आदि का भी यथास्थान विवरण प्रस्तुत किया गया है।

इत्यादि अनेक विशेषताओं से युक्त इस ग्रन्थ के लिखने के लिए पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य का और छपवाने हेतु समस्त प्रबन्ध करने के लिए पूज्य स्वामी ओमानन्दजी सरस्वती का कोटिशः धन्यवाद है। आप दोनों महानुभावों की पूर्ण स्वस्थता तथा दीर्घायु की कामना परमेश्वर से करता हूं, जिससे यह महान् कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो।

आपसे विशेष प्रार्थना यह है कि इसी प्रकार से महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित शैली पर आधारित अष्टाध्यायी सूत्रों पर द्वितीयावृत्ति भी लिखी जाये तो बड़ी कृपा होगी तथा संसार का बड़ा उपकार होगा।

–आचार्य भद्रकाम वर्णी

५-१२-९८ आर्यसमाज आर्यनगर, पहाड़गंज, नई दिल्ली–५५

चतुर्थभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः

प्राक्क्रीतीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. छ-अधिकारः १
२. यत् १
३. यत्-विकल्पः ३

हितार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. यथाविहितं प्रत्ययः ४
२. यत् ५
३. थ्यन् ७
४. खः ७
५. णः+ढञ् ९
६. खञ् १०
७. छः १०
८. ढञ् ११
९. ञ्यः १२
१०. अञ् १३

✓अस्य-अस्मिन्स्यादित्यर्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. यथाविहितं प्रत्ययः १४
२. ढञ् १५

प्राग्वतीयठञ्प्रत्ययप्रकरणम्

१. ठञ्-अधिकारः १६

आ-अर्हीयठक्प्रत्ययप्रकरणम्

१. ठक्-अधिकारः १७
२. ठक् १८
३. ठन्+यत् १९
४. कन् २०
५. कनो वा इडागमः २१
६. ड्वुन २२
७. टिठन् २३
८. अञ्-विकल्पः २३
९. अण् २४
१०. प्रत्ययस्य लुक् २५
११. प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः २६
१२. खः ३१
१३. ईकन् ३१
१४. यत् ३२
१५. यत्-विकल्पः ३४

क्रीतार्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः

निमित्तार्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः ३६
२. यत् ३८
३. छः+यत् ३९
४. अण्+अञ् ३९

ईश्वरार्थप्रत्ययविधिः

१. अण्+अञ् ४०

विदितार्थप्रत्ययविधिः

१ अण्+अञ् ४१
२ ठञ् ४२

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

वापार्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः ४३
२. ष्ठन् ४३

अस्मिन् दीयते-अर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः ४४
२. ठन् ४५
३. यत्+ठन् ४६

हरति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः ४७
२. ठन्+कन् ४८

सम्भवति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः ५०
२. ख-विकल्पः ५१
३. ष्ठन्+खः+ठञ् ५२
४. लुक्, ठञ्, खः+ष्ठन् ५३

अस्य-अर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः ५५
२ निपातनम् ५८
३. अञ् (छान्दसः) ६२
४. डण् ६३

अर्हति-अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठक्) ६४
२. यत्+ठक् ६५
३. यः ६६
४. यत् ६७
५. घन्+यत् ६८
६. छः+यत् ६९
७. घः+खञ् ७०

वर्तयति-अर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ७१

आपन्नार्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ७२

गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ७३
२. ष्कन् ७४
३. णः ७५

व्याहृत-गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ७५
अथ काल-अधिकारः ७६

निवृत्तार्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ७७

अधीष्टाद्यर्थचतुष्टयप्रकरणम्

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ७७
२. यत्+खञ् ७८
३. यप् ७९
४. ण्यत्+यप्+ठञ् ८०
५. ठन्+ण्यत् ८१

निर्वृत्ताद्यर्थपञ्चकम्

१. खः ८१
२. ख-विकल्पः ८२
३. ख-विकल्पो लुक् च ८५
४. प्रत्ययस्य नित्यं लुक् ८७
५. निपातनम् ८८
६. छः ८९
७. खः+छः ९०

परिजय्याद्यर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ९१

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ९२

दक्षिणार्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ९३

दीयते/कार्यम्-अर्थप्रत्ययविधिः

१. भववत् प्रत्ययः ९४
२. अण् ९५
३. णः+यत् ९६

सम्पादि-अर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ९८
२. यत् ९९

प्रभवति-अर्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) ९९
२. यत्+ठञ् १००
३. उकञ् १०१

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) १०२
२. अण् १०२
३. घस् (छान्दसः) १०३
४. यत् १०४
५. ठञ् १०४
६. यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्) १०५
७. अण् १०६
८. छः १०७
९. निपातनम् (ठञ्) १०८

तुल्यार्थप्रत्ययविधिः

१. वतिः १११

इवार्थप्रत्ययविधिः

१. वतिः ११२

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

अर्हार्थप्रत्ययविधिः

१. वतिः ११२

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

१. वतिः ११३

भावार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. त्वः+तल् ११४
२. त्वतल्प्रत्ययाधिकारः ११५
३. भावार्थप्रत्ययप्रतिषेधः ११६
४. इमनिच्-विकल्पः ११७
५. ष्यञ्+इमनिच्+त्वः+तल् ११८

भाव-कर्मार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. ष्यञ् ११९
२. यत् (नलोपः) १२०
३. यः १२१
४. ठक् १२२
५. यक् १२२
६. अञ् १२४
७. अण् १२६
८. वुञ् १२७
९. छः १३१
१०. त्वः १३२

पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

भवनार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. खञ् १३४
२. ढक् १३५
३. यत् १३५
४. यत्-विकल्पः १३६

कृतार्थप्रत्ययविधिः

१. खः+खञ् १३७

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

दर्शनार्थप्रत्ययविधिः

१. खः १३९

व्याप्नोति-अर्थप्रत्ययविधिः

१. खः १४०

प्राप्नोति-अर्थप्रत्ययविधिः

१. खः १४१

बद्धाद्यर्थप्रत्ययविधिः

१. खः १४१

अनुभवति-अर्थप्रत्ययविधिः

१. खः १४३

गामि-अर्थप्रत्ययविधिः

१. खः १४४

विजयते-अर्थप्रत्ययविधिः

१. खः १४५
२. खः (निपातम्) १४६

अलङ्गामि-अर्थप्रत्ययविधिः

१. खः १४८
२. यत्+खः १४८
३. छः+यत्+खः १४९

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

१. खञ् १५०

एकाहागमार्थप्रत्ययविधिः

१. खञ् १५१
२. खञ् (निपातनम्) १५२

जीवति-अर्थप्रत्ययविधिः

१. खञ् १५३
२. खञ् (निपातनम्) १५४

पाकमूलार्थप्रत्ययविधिः

१. कुणप्-जाहच् १५५
२. तिः १५६

वित्तार्थप्रत्ययविधिः

१. चुञ्चुप्+चणप् १५७

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

१. ना+नाञ् १५८
२. शालच्+शङ्कटच् १५८
३. कटच् १५९
४. कुटारच् १६०
५. टीटच्+नाटच्+भ्रटच् १६०
६. बिडच्+बिरीसच् १६१
७. इनच्+पिटच् १६२
८. त्यकन् १६३

घटार्थप्रत्ययविधिः

१. अठच् १६४

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

१. इतच् १६५
२. द्वयसच्+दघ्नच्+मात्रच् १६६
३. अण्+द्वयसच्+दघ्नच्+मात्रच् १६७
४. वतुप् १६८
५. वतुप् (घः) १६९
६. डतिः+वतुप् १७०
७. तयप् १७१
८. अयच्-आदेशविकल्पः १७२
९. नित्यमयजादेशः १७३

अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः

१. डः १७४

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

१. मयट् १७६

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

पूरणार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. डट् १७७
२. डट् (मट्) १७८
३. डट् (थट्) १७९
४. डट् (थुक्) १८०
५. डट् (तिथुक्) १८०
६. डट् (इथुक्) १८१
७. तीयः १८२
८. तीयः (सम्प्रसारणम्) १८२
९. डट् (वा तमट्) १८३
१०. डट् (नित्यं तमट्) १८४

मत्वर्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. छः १८६
२. छस्य लुक् १८७
३. अण् १८८
४. वुन् १८९

कुशलार्थप्रत्ययविधिः

१. वुन् १९०
२. कन् १९१

कामार्थप्रत्ययविधिः

१. कन् १९२

प्रसितार्थप्रत्ययविधिः

१. कन् १९२
२. ठक् १९३

परिजातार्थप्रत्ययविधिः

१. कन् १९४

हारि-अर्थप्रत्ययविधिः

१. कन् १९५

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

अचिरापहृतार्थप्रत्ययविधिः

१. कन् १९५
२. कन् (निपातनम्) १९६

कारि-अर्थप्रत्ययविधिः

१. कन् १९७
२. कन् (निपातनम्) १९८

अन्विच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

१. कन् १९९
२. ठक्+ठञ् २००

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

१. कन् (पूरणप्रत्ययस्य वा लुक्) २०१

एषाम् (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

१. कन् २०३

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

१. कन् २०३
२. कन् (निपातनम्) २०४

भव-जनितार्थप्रत्ययविधिः

१. कन् २०५

अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः

१. कन् २०६
२. अञ् २०७
छन्दोऽधीतेऽर्थे निपातनम् २०७

अनेन (तृतीया) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. इनिः+ठन् २०८
२. इनिः २०९
३. इनिः (निपातनम्) २११
४. इनिः २१३
निपातनम् (क्षेत्रियच्) २१४
निपातनम् (इन्द्रियम्) २१४

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

अस्य (षष्ठी) अस्मिन् (सप्तमी)

अर्थप्रत्ययविधिः

१. मतुप् २१६
२. लच्-विकल्पः २१७
३. लच् २२०
४. इलच्+लच्+मतुप् २२१
५. शः+नः+इलच् २२२
६. णः २२३
७. विनिः+इनिः २२४
८. अण् २२५
९. लुप्+इलच्+अण्+मतुप् २२७
१०. उरच् २२८
११. रः २२९
१२. मः २३०
१३. वः+इनिः+ठन्+मतुप् २३१
१४. वः २३२
१५. इरन्+इरच् २३३
१६. वलच् २३४
१७. निपातनम् (मतुबर्थे) २३५
१८. इनिः+ठन्+मतुप् २३७
१९. इलच्+इनिः+ठन्+मतुप् २४०
२०. नित्यं ठञ् २४१
२१. ठञ् २४२
२२. यप् २४२
२३. विनिः २४३
२४. बहुलं विनिः (छान्दसः) २४४
२५. युस् २४५
२६. ग्मिनिः २४६
२७. आलच्+आटच् २४७
२८. निपातनम् (स्वामिन्) २४८
२९. अच् २४८
३०. इनिः २४९
३१. इनिः (कुक्) २५०
३२. इनिः २५१
३३. मतुप्-विकल्पः २५६
३४. इनिः २५७
३५. बादयः सप्तप्रत्ययाः २५८
३६. भः २५९
३७. युस् २६०

पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः

विभक्तिसंज्ञाप्रकरणम्

१. विभक्ति-अधिकारः २६१
२. प्रत्ययविधानाधिकारः २६१
३. इश्-आदेशः २६२
४. एत-इदादेशौ २६३
५. अन्-आदेशः २६४
६. स-आदेशः २६४
७. तसिल् २६५
८. तसिल्-आदेशः २६६
९. तसिल् २६७
१०. त्रल् २६७
११. हः २६८
१२. अत् २६९
१३. ह-विकल्पः (छान्दसः) २६९
१४. तसिलादयः २७०
१५. दा २७१
१६. र्हिल् २७२
१७. निपातनम् (अधुना) २७३

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः
१८. दानीम् २७४
१९. दा+दानीम् २७४
२०. दा+र्हिल् २७५
२१. र्हिल् २७६
२२. निपातनम् (सद्य आदयः) २७७
२३. थाल् २७९
२४. थमुः २८०
२५. था २८१

स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

१. अस्तातिः २८२
२. अतसुच् २८३
३. अस्ताति-लुक् २८५
४. अतसुच्-विकल्पः २८७
५. निपातनम् २८८
६. आतिः २९२
७. एनप्-विकल्पः २९३
८. आच् २९५
९. आहि+आच् २९६
१०. असिः २९८
११. पुरादय आदेशाः ३००
१२. अवादेश-विकल्पः ३०१

विधार्थ-अधिकरणविचालविशिष्टार्थ-प्रत्ययप्रकरणम्

१. धाः ३०२
२. ध्यमुञादेश-विकल्पः ३०३
३. एधाच्-आदेशः ३०५

याप्यविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

१. पाशप् ३०६

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

भागविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

१. अन् ३०७
२. ञः+अन् ३०८
३. कन्+लुक्+अन्+ञः ३०९

असहायविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

१. आकिनिच्+कन्+लुक् ३१०

भूतपूर्वार्थप्रत्ययविधिः

१. चरट् ३१२
२. रूप्यः+चरट् ३१२

अतिशायनविशिष्टार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. तमप्+इष्ठन् ३१२
२. तमप् ३१३
३. तरप्+ईयसुन् ३१४
४. इष्ठन्+ईयसुन् ३१६
५. श्र-आदेशः ३१७
६. ज्य-आदेशः ३१८
७. नेद-साधावादेशौ ३२०
८. कन्-आदेशविकल्पः ३२१
९. प्रत्यय-लुक् ३२२

प्रशंसाविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

१. रूपप् ३२३

ईषदसमाप्तिविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

१. कल्पप्+देश्यः+देशीयर् ३२४
२. बहुच् ३२५

प्रकारविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

१. जातीयर् ३२६

प्रागिवीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. क-अधिकारः ३२७
२. अकच्-अधिकारः ३२७

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

३. अकच् ३२९

अज्ञातविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (कः/अकच्) ३३२
२. ठच्-विकल्पः ३३४
३. घन्+इलच् ३३५
४. अडच्+वुच् ३३५
५. कन् ३३७
६. लोपविधिः ३३८

अल्पार्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (कः/अकच्) ३४०

ह्रस्वार्थप्रत्ययविधिः

१. यथाविहितं प्रत्ययः (कः/अकच्) ३४१
२. कन् ३४२
३. रः ३४२
४. डुपच् ३४३
५. ष्टरच् ३४४

तनुत्वार्थप्रत्ययविधिः

१. ष्टरच् ३४४

निर्धारणार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. डतरच् ३४५
२. डतमच् ३४६
३. डतरच्+डतमच् ३४७

इवार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१. कन् ३४८
२. प्रत्ययस्य लुप् ३५०
३. ढञ् ३५३
४. ढः ३५३
५. यत् ३५४
६. यत् (निपातनम्) ३५५
७. छः ३५५
८. अण् ३५७
९. ठक् ३५८
१०. ठच्-विकल्पः ३५९
११. ईकक् ३५९
१२. थाल् ३६०

तद्राजसंज्ञकप्रत्ययप्रकरणम्

१. ञ्यः ३६१
२. ञ्यट् ३६३
३. टेण्यण् ३६५
४. छः ३६५
५. अण्+अञ् ३६७
६. यञ् ३६८
७. तद्राजसंज्ञा ३६९

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

वीप्सार्थप्रत्ययविधिः

१. वुन् ३७१

प्रकारार्थप्रत्ययविधिः

१. कन् ३७३
२. कन्-प्रतिषेधः ३७४
३. कन् ३७५

✓ स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

१. खः ३७५
२. ख-विकल्पः ३७७
३. छः ३७८
४. छ-विकल्पः ३७८
५. आमु ३७९
६. अमु+आमु (छन्दसि) ३८१
७. ठक् ३८२

सं०	विषयाः	पृष्ठाङ्काः
८.	अञ्	३८२
९.	अण्	३८३
१०.	कृत्वसुच्	३८४
११.	सुच्	३८५
१२.	धा	३८७
१३.	मयट्	३८८
१४.	समूहवत् प्रत्ययाः+मयट्	३८८
१५.	ञ्यः	३८९
१६.	यत्	३९०
१७.	ञ्यः	३९१
१८.	तल्	३९२
१९.	कः	३९२
२०.	कन्	३९२
२१.	ठक्	३९५
२२.	अण्	३९७
२३.	तिकन्	३९९
२४.	सः+स्नः	३९९
२५.	तिल्+तातिल्	४००
२६.	शस्	४०१
२७.	तसिः	४०२

अभूततद्भावार्थप्रत्ययप्रकरणम्

१.	च्विः	४०८
२.	च्विः (अन्त्यलोपः)	४०९
३.	साति-विकल्पः	४११

अधीनार्थप्रत्ययविधिः

१.	सातिः	४१३
२.	त्राः+सातिः	४१४

सामान्यार्थप्रत्ययविधिः

१.	त्राः	४१५
२.	डाच्	४१६

कर्षणार्थप्रत्ययविधिः

१.	डाच्	४१७

यापनार्थप्रत्ययविधिः

१.	डाच्	४१९

अतिव्यथनार्थप्रत्ययविधिः

१.	डाच्	४१९

निष्कोषणार्थप्रत्ययविधिः

१.	डाच्	४२०

आनुलोम्यार्थप्रत्ययविधिः

१.	डाच्	४२१

प्रातिलोम्यार्थप्रत्ययविधिः

१.	डाच्	४२२

पाकार्थप्रत्ययविधिः

१.	डाच्	४२२

अशपार्थप्रत्ययविधिः

१.	डाच्	४२३

परिवापणार्थप्रत्ययविधिः

१.	डाच्	४२४

समासान्तप्रत्ययादेशप्रकरणम्

१.	अधिकारः	४२४
२.	समासान्तप्रत्ययप्रतिषेधः	४२६
३.	समासान्तप्रत्ययविकल्पः	४२९
४.	डच्	४३०
५.	अः	४३१
६.	अच्	४३३
७.	अच् (निपातनम्)	४३४
८.	अच्	४३७
९.	अच् (निपातनम्)	४४१

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

१०. अच् ४४२

(क) तत्पुरुषसमासः

१. अच् ४४३
२. अह्न-आदेशः ४४६
३. अह्न-आदेशप्रतिषेधः ४४७
४. टच् ४४९
५. टच्-विकल्पः ४६१

(ख) समाहारद्वन्द्वसमासः

१. टच् ४६३

(ग) अव्ययीभावसमासः

१. टच् ४६४

(घ) बहुव्रीहिसमासः

१. षच् ४६९
२. षः ४७१
३. अप् ४७२
४. अच् ४७४
५. अच् (निपातनम्) ४७५
६. अच्-विकल्पः ४७६
७. असिच् ४७७
८. असिच् (निपातनम्) ४७८

सं० विषयाः पृष्ठाङ्काः

९. अनिच् ४७९
१०. अनिच् (निपातनम्) ४८०
११. इच् ४८२
१२. ज्ञु-आदेशः ४८४
१३. ज्ञु-आदेशविकल्पः ४८४
१४. अनङ्-आदेशः ४८५
१५. अनङ्-आदेशविकल्पः ४८६
१६. निङ्-आदेशः ४८७
१७. इकार-आदेशः ४८८
१८. लोपादेशः ४९०
१९. दतृ-आदेशः ४९२
२०. दतृ-आदेशविकल्पः ४९४
२१. लोपादेशः ४९६
२२. लोपादेशः (निपातनम्) ४९७
२३. लोपादेशः ४९८
२४. लोपादेशः-विकल्पः ४९८
२५. निपातनम् ४९९
२६. कप् ५००
२७. कप्-विकल्पः ५०३
२८. कप्-प्रतिषेधः ५०४

इति चतुर्थभागस्य प्रतिपादितविषयाणां सूचीपत्रम्।

पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः

प्राक्क्रीतीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्

छ-अधिकारः-

(१) प्राक् क्रीताच्छः ।१।

प०वि०-प्राक् १ ।१ क्रीतात् ५ ।१ छः १ ।१ ।

अन्वयः-क्रीतात् प्राक् छः ।

अर्थः- **'तेन क्रीतम्'** (५ ।१ ।३७) इति वक्ष्यति । तस्मात् क्रीत-शब्दात् प्राक् छः प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम् । वक्ष्यति **'तस्मै हितम्'** (५ ।१ ।५) इति । वत्सेभ्यो हितः-वत्सीयो गोधुक् । करभेभ्यो हितः-करभीय उष्ट्रः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्रीतात्)* ***'तेन क्रीतम्'*** *(५ ।१ ।३७) इस सूत्र में जो 'क्रीत' शब्द पढ़ा है उससे (प्राक्) पहले-पहले (छः) छ प्रत्यय होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे-* ***'तस्मै हितम्'*** *(५ ।१ ।५)। वत्स=बछड़ों के लिये हितकारी-वत्सीय गोधुक् (गौ का दोग्धा)। करभ=ऊंट के बच्चों के लिये हितकारी-करभीय उष्ट्र (ऊंट)।*

सिद्धि-वत्सीयः। *वत्स+भ्यस्+छ। वत्स्+ईय। वत्सीय+सु। वत्सीयः।*

यहां चतुर्थी-समर्थ 'वत्स' शब्द से 'हित' अर्थ में ***'तस्मै हितम्'*** *(५ ।१ ।५) से 'छ' प्रत्यय है।* ***'आयनेय०'*** *(७ ।१ ।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और* ***'यस्येति च'*** *(६ ।४ ।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-करभीयः।*

यत्-

(२) उगवादिभ्यो यत् ।२।

प०वि०-उ-गवादिभ्यः ५ ।३ यत् १ ।१ ।

स०-गौरादिर्येषां ते गवादयः, उश्च गवादयश्च ते उगवादयः, तेभ्यः-उगवादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्राक्, क्रीताद् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-उ-गवादिभ्यः प्राक् क्रीताद् यत् ।

अर्थः-उ-वर्णान्तेभ्यो गवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्-क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(उ-वर्णान्तः)** शङ्कवे हितम्-शङ्कव्यं दारु। पिचव्यः कार्पासः। कमण्डलव्या मृत्तिका। **(गवादिः)** गवे हितम्-गव्यम्। हविष्यम्।

गो। हविस्। बर्हिस्। खट। अष्टका। युग। मेधा। स्रक्।। नाभि नभं च।। शुनः संप्रसारणं वा च दीर्घत्वं तत्सन्नियोगेन चान्तोदात्तत्वम्। शुन्यम्। शून्यम्। ऊधसोऽनङ् च।। ऊधन्यः कूपः। उदर। स्वर। स्खद्। अक्षर। विष। स्कन्द। अध्वा। इति गवादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उ-गवादिभ्यः) उ-वर्णान्त और गो-आदि प्रातिपदिकों से (प्राक् क्रीतात्) पूर्व-क्रीतीय अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(उवर्णान्त) शङ्कु (खूंटा) के लिये हितकारी-शङ्कव्य दारु (लकड़ी)। पिचु (रूई) के लिये हितकारी-पिचव्य कार्पास (कपास)। कमण्डलु=जलपात्र के लिये हितकारी-कमण्डलव्या मृत्तिका (मिट्टी)। (गवादि) गौ के लिये हितकारी-गव्य। हविः के लिये हितकारी-हविष्य।

*सिद्धि-**शङ्कव्यम्**। शङ्कु+ङे+यत्। शङ्को+य। शङ्कव्य+सु। शङ्कव्यम्।*

यहां चतुर्थी-समर्थ, उकारान्त 'शङ्कु' शब्द से प्राक्-क्रीतीय हित-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। यह 'छ' प्रत्यय का अपवाद है। 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण और 'वान्तो यि प्रत्यये' (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही-पिचव्यः आदि।

यत्-

(३) कम्बलाच्च संज्ञायाम्।३।

प०वि०-कम्बलात् ५।१ च अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-प्राक्, क्रीतात्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कम्बलात् प्राक् क्रीताद् यत् संज्ञायाम्।

अर्थः-कम्बल-शब्दात् प्रातिपदिकाच्च प्राक्-क्रीतीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-कम्बलाय हितम्-कम्बल्यमूर्णापलशतम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(कम्बलात्) कम्बल प्रातिपदिक से (च) भी (प्राक् क्रीतात्) पूर्व-क्रीतीय अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।

उदा०-कम्बल के लिये हितकारी-कम्बल्य ऊर्णा पलशत (सौ पल=५ सेर ऊन)।

सिद्धि-कम्बल्यम् । कम्बल+ङे+यत्। कम्बल्+य। कम्बल्य+सु। कम्बल्यम्।

यहां चतुर्थी-समर्थ 'कम्बल' शब्द से प्राक्-क्रीतीय हित-अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६ ।४ ।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। यह 'छ' प्रत्यय का अपवाद है।

विशेषः कम्बल-उस समय पण्य कम्बल नाम से एक विशेष माप का बाजार में चालू कम्बल बनता था (५ ।२ ।४२)। उसमें जितनी ऊन लगती थी उसके लिये 'कम्बल्य' शब्द चालू था। पाणिनि ने कम्बल्य को तोल-विशेष का वाचक संज्ञा-शब्द कहा है (५ ।१ ।३)। काशिका में लिखा है कि सौ पल अर्थात् ५ सेर ऊन की संज्ञा कम्बल्य थी। पल=४ तोले। १०० पल=४०० तोले {५ सेर} (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १३६)।

यत्-विकल्पः–

(४) विभाषा हविरपूपादिभ्यः ।४ ।

प०वि०-विभाषा १ ।१ हविः-अपूपादिभ्यः ५ ।३ ।

स०-अपूप आदिर्येषां तेऽपूपादयः, हविश्च अपूपादयश्च ते हविरपूपादयः, तेभ्यः-हविरपूपादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-प्राक् क्रीतात्, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-हविरपूपादिभ्यः प्राक् क्रीताद् विभाषा यत्।

अर्थः-हविर्विशेषवाचिभ्योऽपूपादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः प्राक्-क्रीतीयेष्वर्थेषु विकल्पेन यत् प्रत्ययो भवति, पक्षे च छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(हविः) आमिक्षायै हितम्-आमिक्ष्यं दधि (यत्)। आमिक्षीयं दधि (छः)। पुराडाशाय हिताः-पुरोडाश्यास्तण्डुलाः (यत्)। पुरोडाशीयास्तण्डुलाः (छः)। (अपूपादिः) अपूपेभ्यो हितम्-अपूप्यम् (यत्) अपूपीयम् (छः)। तण्डुलेभ्यो हितम्-तण्डुल्यम् (यत्)। तण्डुलीयम् (छः)। इत्यादिकम्।

अपूप। तण्डुल। अभ्यूष। अभ्योष। पृथुक। अभ्येष। अर्गल। मुसल। सूप। कटक। वर्णविष्टक। किण्व।। अन्नविकारेभ्यश्च। पूप। स्थूणा। पीप। अश्व। पत्र। कट। अयःस्थूण। ओदन। अवोष। प्रदीप। इत्यपूपादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(हविरपूपादिभ्यः) हवि-विशेषवाची और अपूप-आदि प्रातिपदिकों से (प्राक्-क्रीतात्) प्राक्-क्रीतीय अर्थों में (विभाषा) विकल्प से (यत्) यत् प्रत्यय होता है और पक्ष में छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-(हवि) आमिक्षा (दूध का छेलड़ा) के लिये हितकारी-आमिक्ष्य दही (यत्)। आमिक्षीय दही (छ)। पुरोडाश के लिये हितकारी-पुरोडाश्य तण्डुल=चावल (यत्)। पुरोडाशीय तण्डुल=चावल (छ)। (अपूपादि) अपूप (पूड़े) के लिये हितकारी-अपूप्य (यत्)। अपूपीय (छ)। तण्डुल के लिये हितकारी-तण्डुल्य (यत्)। तण्डुलीय (छ) इत्यादि।

सिद्धि-(१) ***आमिक्ष्यम्।*** *आमिक्षा+ङे+यत्। आमिक्ष्+य। आमिक्ष्य+सु। आमिक्ष्यम्।*

यहां चतुर्थी-समर्थ, हविर्विशेषवाची 'आमिक्षा' शब्द से प्राक्-क्रीतीय हित-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-अपूप्यम्, तण्डुल्यम्।

(२) ***आमिक्षीयम्।*** *यहां 'आमिक्षा' शब्द से विकल्प पक्ष में 'छ' प्रत्यय है और 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-अपूपीयम्, तण्डुलीयम्।*

विशेषः *पुरोडाश-चावल के आटे की बनी हुई टिकिया जो कपाल में पकाई जाती थी। यज्ञ में इसके टुकड़े काटकर और मन्त्र पढ़कर देवताओं के उद्देश्य से इसकी आहुति दी जाती थी (शब्दार्थ कौस्तुभ)।*

हितार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तस्मै हितम्।५।

प०वि०-तस्मै ४।१ हितम् १।१।

अनु०-प्राक्, क्रीतात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै प्रातिपदिकाद् हितं यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-वत्सेभ्यो हितः-वत्सीयो गोधुक्। पटव्यम्। गव्यम्। हविष्यम्। अपूप्यम्। अपूपीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ प्रातिपदिक से (हितम्) हित अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-वत्स=बछड़ों के लिये हितकारी-वत्सीय गोधुक् (गौ का दोग्धा)। पटु=चतुर के लिए हितकारी-पटव्य। गौ के लिये हितकारी-गव्य। हवि के लिये-हविष्य। अपूपों के लिये हितकारी-अपूप्य (यत्)। अपूपीय (छ)।

सिद्धि-वत्सीय *आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

यत्-

(२) शरीरावयवाद् यत्।६।

प०वि०-शरीर-अवयवात् ५।१ यत् १।१।

स०-शरीरम्=प्राणिकायः। शरीरस्यावयवम्-शरीरावयवम्, तस्मात्-शरीरावयवात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तस्मै, हितम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै शरीरावयवाद् हितं यत्।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाच्छरीरावयववाचिनः प्रातिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दन्तेभ्यो हितम्-दन्त्यम् औषधम्। कण्ठ्यम् औषधम्। ओष्ठ्यम् औषधम्। नाभ्यम् आसनम्। नस्यम् औषधम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (शरीरावयवात्) शरीर-अवयववाची प्रातिपदिक से (हितम्) हित=उपकारक अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दन्तों के लिये हितकारी-दन्त्य औषध। कण्ठ के लिये हितकारी-कण्ठ्य औषध। ओष्ठों के लिये हितकारी-ओष्ठ्य औषध। नाभि के लिये हितकारी-नाभ्य आसन। नसों (नासिका) के लिये हितकारी-नस्य औषध।

सिद्धि-दन्त्यम्। *दन्त+भ्यस्+यत्। दन्त्+य। दन्त्य+सु। दन्त्यम्।*

यहां चतुर्थी-समर्थ, शरीर-अवयववाची 'दन्त' शब्द से हित-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-कण्ठ्यः आदि। यह 'छ' प्रत्यय का अपवाद है।

यत्–

(३) खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणश्च ।७।

प०वि०-खल-यव-माष-तिल-वृष-ब्रह्मणः ५ ।१ च अव्ययपदम् ।

स०-खलश्च माषश्च तिलश्च वृषश्च ब्रह्मा च एतेषां समाहारः खलवयमाषतिलवृषब्रह्म, तस्मात्-खलयवमाषतिलवृषब्रह्मणः ।

अनु०-तस्मै, हितम्, यत् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तस्मै खल०ब्रह्मणश्च हितं यत् ।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थेभ्यः खलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च हितमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-**(खलः)** खलाय हितम्-खल्यं स्थानम् । **(यवः)** यवाय हितम्-यव्यं क्षेत्रम् । **(माषः)** माषाय हितम्-माष्यं क्षेत्रम् । **(तिलः)** तिलाय हितम्-तिल्यं क्षेत्रम् । **(वृषः)** वृषाय हितम्-वृष्यं शस्यम् । **(ब्रह्मा)** ब्रह्मणे हितम्-ब्रह्मण्यम् अध्ययनम् ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (खल०ब्रह्मणः) खल, यव, माष, तिल, वृष, ब्रह्मन् प्रातिपदिकों से (च) भी (हितम्) हित अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है ।*

*उदा०-**(खल)** खलिहान के लिये हितकारी-खल्य स्थानविशेष । **(यव)** जौ के लिये हितकारी-यव्य (क्षेत्र) । **(माष)** उड़द के लिये हितकारी-माष्य (क्षेत्र) । **(तिल)** तिल के लिये हितकारी-तिल्य (क्षेत्र) । **(वृष)** बैल के लिये हितकारी-वृष्य शस्य (खेती) । **(ब्रह्मा)** ब्राह्मण=विद्वान् के लिये हितकारी-ब्रह्मण्य वेदाध्ययन ।*

*सिद्धि-(१) **खल्यम्** । खल+ङे+यत् । खल्+य । खल्य+सु । खल्यम् ।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'खल' शब्द से हित-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है । 'यस्येति च' (६ ।४ ।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है । ऐसे ही-**यव्यम्, माष्यम्, तिल्यम्** ।*

*(२) **वृष्यम्** । यहां अकारान्त 'वृष' शब्द से 'यत्' प्रत्यय है । यहां अकारान्त 'वृष' शब्द का ग्रहण किया जाता है, नकारान्त 'वृषन्' शब्द का नहीं । वहां वाक्य ही होता है-**वृष्णे हितम्** ।*

(३) ब्रह्मण्यम्। ब्रह्मन्+ङे+यत्। ब्रह्मण्+य। ब्रह्मण्य+सु। ब्रह्मण्यम्।

यहां नकारान्त 'ब्रह्मन्' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है। 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से प्राप्त अकार का लोप ***'न संयोगाद् वमन्तात्'*** *(६।४।१३७) के प्रतिषेध से नहीं होता है और* ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से प्राप्त टि-लोप* ***'ये चाभावकर्मणोः'*** *(६।४।१६८) के प्रतिषेध से नहीं होता है।*

थ्यन्-

(४) अजाविभ्यां थ्यन्।८।

प०वि०-अज-अविभ्याम् ५।२ थ्यन् १।१।

स०-अजश्च अविश्च तौ अजावी, ताभ्याम्-अजाविभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै अजाविभ्यां हितं थ्यन्।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्याम् अजाविभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हितमित्यस्मिन्नर्थे थ्यन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अजः) अजाय हिता-अजथ्या यूथिः। (अविः) अवये हिता-अविथ्या यूथिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (अजाविभ्याम्) अज और अवि प्रातिपदिकों से (हितम्) हित अर्थ में (थ्यन्) थ्यन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अज) बकरे के लिये हितकारी-अजथ्या यूथि (जुही नामक पौधा)। (अवि) मेष (भेड़) के लिये हितकारी-अविथ्या यूथि।

सिद्धि-अजथ्या। अज+ङे+थ्यन्। अज+थ्य। अजथ्य+टाप्। अजथ्या+सु। अजथ्या।

यहां चतुर्थी-समर्थ 'अज' शब्द से हित-अर्थ में इस सूत्र से 'थ्यन्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। प्रत्यय के नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-अजथ्या। ऐसे ही-अविथ्या।

खः-

(५) आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् खः।९।

प०वि०-आत्मन्-विश्वजन-भोगोत्तरपदात् ५।१ खः १।१।

स०-भोग उत्तरपदं यस्य तत्-भोगोत्तरपदम्, आत्मा च विश्वजनश्च भोगोत्तरपदं च एतेषां समाहारः आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदम्, तस्मात्-आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदाद् हितं खः।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्याम् आत्मन्विश्वजनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भोगोत्तरपदाच्च प्रतिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(आत्मा)** आत्मने हितम्-आत्मनीनं शुभकर्म। **(विश्वजनः)** विश्वजनाय हितम्-विश्वजनीनं परोपकरणम्। **(भोगोत्तरपदम्)** मातुर्भोग इति मातृभोगः। मातृभोगाय हितः-मातृभोगीणः पुत्रः। पितुर्भोग इति पितृभोगः। पितृभोगाय हितः-पितृभोगीणः पुत्रः। भोगः=शरीरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (आत्मन्विश्वजनभोगोत्तरपदात्) आत्मन्, विश्वजन और भोग-उत्तरपदवाले प्रातिपदिक से (हितम्) हित अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(आत्मा) आत्मा के लिये **हितकारी**-आत्मनीन शुभकर्म। (विश्वजन) विश्वजन के लिये हितकारी-विश्वजनीन परोपकार। **(भोगोत्तरपद)** मातृभोग=माता के शरीर के लिये हितकारी-मातृभोगीण पुत्र। माता की सेवा **करनेवाला** पुत्र। पितृभोग=पिता के शरीर के लिये हितकारी-पितृभोगीण पुत्र। पिता की सेवा करनेवाला पुत्र।*

सिद्धि-(१) आत्मनीनम्। *आत्मन्+ङे+ख। आत्मन्+ईन। आत्मनीन+सु। आत्मनीनम्।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'आत्मन्' शब्द से हित अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। यहां **'आत्माध्वानौ खे'** (६।४।१६९) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से 'आत्मन्' के टि-भाग का लोप नहीं होता है। सूत्रपाठ में नकारान्त 'आत्मन्' शब्द का निर्देश उत्तरपद-सम्बन्ध की निवृत्ति के लिये है। अर्थात् 'आत्मन्' इस प्रकृति से ही ख-प्रत्यय होता है।*

*(२) **विश्वजनीनः।** यहां 'विश्वजन' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है। **विश्वे च ते जना इति विश्वजनाः (कर्मधारयः)।** यहां कर्मधारयवान् 'विश्वजन' शब्द से 'ख' प्रत्यय*

अभीष्ट है। ***विश्वस्य जन इति विश्वजनः सर्वसाधारणो वेश्यादिः। विश्वो जनोऽस्येति-विश्वजनः स एव वेश्यादिः।*** *इस षष्ठीतत्पुरुष और बहुव्रीहि समास वाले 'विश्वजन' शब्द से 'ख' प्रत्यय अभीष्ट नहीं है। यहां उत्सर्ग 'छ' प्रत्यय होता है-* ***विश्वजनीय।***

(३) ***मातृभोगीणः।*** *यहां 'मातृभोग' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है। वा०-* ***'ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्'*** *(८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-***पितृभोगीणः।**

णः+ढञ्-

(६) सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ।१०।

प०वि०-सर्व-पुरुषाभ्याम् ५।२ ण-ढञौ १।२।

स०-सर्वश्च पुरुषश्च तौ सर्वपुरुषौ, ताभ्याम्-सर्वपुरुषाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। णश्च ढञ् च तौ णढञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै सर्वपुरुषाभ्यां हितं णढञौ।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्यां सर्वपुरुषाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हितमित्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं ण-ढञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(सर्वः) सर्वस्मै हितम्-सार्वं ब्रह्म। **(पुरुषः)** पुरुषाय हितम्-पौरुषेयं ब्रह्म।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (सर्व-पुरुषाभ्याम्) सर्व और पुरुष प्रातिपदिकों से (हितम्) हित अर्थ में यथसंख्य (णढञौ) ण और ढञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-***(सर्व)** *सबके लिये हितकारी-सार्व ब्रह्म।* **(पुरुष)** *पुरुषमात्र के लिये हितकारी-पौरुषेय ब्रह्म (वेद)।*

सिद्धि-(१) ***सार्वम्।*** *सर्व+ङे+ण। सार्व्+अ। सार्व+सु। सार्वम्।*

यहां चतुर्थी-समर्थ 'सर्व' शब्द से हित अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) ***पौरुषेयम्।*** *पुरुष+ङे+ढञ्। पौरुष्+एय। पौरुषेय+सु। पौरुषेयम्।*

यहां चतुर्थी-समर्थ 'पुरुष' शब्द से हित अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। ***'आयनेय०'*** *(७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

खञ्–

(७) माणवचरकाभ्यां खञ्।११।

प०वि०–माणव-चरकाभ्याम् ५।२ खञ् १।१।

स०–माणवश्च चरकश्च तौ माणवचरकौ, ताभ्याम्–माणवचरकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्मै माणवचरकाभ्यां हितं खञ्।

अर्थः–तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्यां माणवचरकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हितमित्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(माणवः)** माणवाय हितम्–माणवीनं दुग्धम्। **(चरकः)** चरकाय हितम्–चारकीणं यानम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (माणवचरकाभ्याम्) माणव और चरक प्रातिपदिकों से (हितम्) हित अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(माणव) बालक छात्र के लिये हितकारी-माणवीन दुग्ध। (चरक) घूमनेवाले छात्र के लिये हितकारी-चारकीण यान।

सिद्धि-माणवीनम्। माणव+ङे+ख। माणव्+ईन। माणवीन+सु। माणवीनम्।

यहां चतुर्थी-समर्थ 'माणव' शब्द से हित अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। ऐसे ही-चारकीणम्।

विशेषः *पाणिनि-काल में तीन प्रकार के छात्र थे। छोटे बालक माणव और उपनयन-संस्कार के पश्चात् अन्तेवासी कहाते थे। विद्या-अध्ययन के लिये चरणों (वैदिक-विद्यापीठ) में घूमनेवाले चरक कहाते थे।*

छः–

(८) तदर्थं विकृतेः प्रकृतौ।१२।

प०वि०–तदर्थम् १।१ विकृतेः ५।१ प्रकृतौ ७।१।

स०–तस्मै इदम्–तदर्थम् (चतुर्थीतत्पुरुषः)।

अनु०–तस्मै, हितमिति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्मै विकृतेर्हितं यथाविहितं छः, तदर्थायां प्रकृतौ।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाद् विकृतिवाचिनः प्रातिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, तदर्थायां प्रकृतावभिधेयाम्।

उदा०-अङ्गारेभ्यो हितानि-अङ्गारीयाणि काष्ठानि। प्रकाराय हिताः-प्राकारीया इष्टकाः। शङ्कवे हितम्-शङ्कव्यं दारु। पिचवे हितः-पिचव्यः कार्पासः, इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (विकृतेः) विकृतिवाची प्रातिपदिक से (हितम्) हित अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (तदर्थं प्रकृतौ) यदि वहां **तदर्थ=उस** विकृति के लिये प्रकृति=उपादान कारण अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-अङ्गारों के लिये हितकारी-अङ्गारीय काष्ठ (लकड़ियां)। प्राकार= चहारदीवारी के लिये हितकारी-प्राकारीय इष्टका (ईटें)। शङ्कु=खूंटे के लिये हितकारी-शङ्कव्य दारु (लकड़ी)। पिचु=रूई के लिये हितकारी-पिचव्य कार्पास (कपास) इत्यादि।

सिद्धि-अङ्गारीयम्। अङ्गार+ङे+छ। अङ्गार्+ईय। अङ्गारीय+सु। अङ्गारीयम्।

यहां चतुर्थी-समर्थ 'अङ्गार' शब्द से यथाविहित '**प्राक् क्रीताच्छः**' (५।१।१) से हित-अर्थ में प्राक्-क्रीतीय 'छ' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**प्राकारीया इष्टकाः**।

(२) **शङ्कव्यम्**। शङ्कु+ङे+यत्। शङ्को+य। शङ्कव्य+सु। शङ्कव्यम्।

यहां चतुर्थी-समर्थ उकारान्त 'शङ्कु' शब्द से '**उगवादिभ्यो यत्**' (५।१।२) से यथाविहित 'यत्' प्रत्यय है। '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६) से अंग को गुण और '**वान्तो यि प्रत्यये**' (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही-**पिचव्यः**।

विशेषः किसी द्रव्य के उपादान-कारण को प्रकृति कहते हैं उस उपादान कारण का अवस्थान्तर विकृति कहाता है। जैसे अङ्गारों की प्रकृति काष्ठ हैं और काष्ठों की विकृति अङ्गार हैं। ऐसे ही सर्वत्र समझ लेवें।

ढञ्-

(६) छदिरुपधिबलेर्ढञ्।१३।

प०वि०-छदिः-उपधि-बलेः ५।१ ढञ् १।१।

स०-छदिश्च उपधिश्च बलिश्च एतेषां समाहारः-छदिरुपधिबलि, तस्मात्-छदिरुपधिबलेः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्मै, हितम्, तदर्थम्, विकृतेः, प्रकृताविति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै विकृतेश्छदिरुपधिबलेर्हितं ढञ्।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थेभ्यो विकृतिवाचिभ्यश्छदिरुपधिबलिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो हितमित्यस्मिन्नर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति, तदर्थायां प्रकृतावभिधेयायाम्।

उदा०-**(छदिः)** छदिषे हितानि छादिषेयाणि तृणानि। **(उपधिः)** उपधीयते इत्युपधिः-रथाङ्गम्। उपधिरेव-औपधेयं दारु। उपधि-शब्दात् स्वार्थे ढञ् प्रत्ययो भवति। **(बलिः)** बलिभ्यो हिताः-बालेयास्तण्डुलाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (विकृतेः) विकृतिवाची (छदिरुपधिबलेः) छदिष्, उपधि, बलि प्रातिपदिकों से (हितम्) हित-अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है (तदर्थं प्रकृतौ) यदि वहां तदर्थ=उस विकृति के लिये प्रकृति=उपादान कारण अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(छदि) घर की छत के लिये हितकारी-छादिषेय तृण। (उपधिः) उपधि (रथ का पहिया) ही-औपधेय। यहां स्वार्थ में 'ढञ्' प्रत्यय होता है, हित अर्थ में नहीं। (बलिः) बलि=(देवता का खाद्यपदार्थ) के लिये हितकारी-बालेय तण्डुल (चावल)।

सिद्धि-छादिषेयम्। छदिष्+ङे+ढञ्। छादिष्+एय। छादिषेय+सु। छादिषेयम्।

*यहां चतुर्थी-समर्थ, विकृतिवाची 'छदिष्' शब्द से तत्सम्बन्धी प्रकृति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**औपधेयम्, बालेयम्।***

ञ्यः-

(१०) ऋषभोपानहोर्ञ्यः।१४।

प०वि०-ऋषभ-उपानहोः. ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ञ्यः १।१।

स०-ऋषभश्च उपानच्च ते ऋषभोपानहौ, तयोः-ऋषभोपानहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्मै, हितम्, तदर्थम्, विकृतेः, प्रकृताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै विकृतिभ्याम् ऋषभोपानद्भ्यां हितहं ञ्यः, तदर्थे प्रकृतौ।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाभ्यां विकृतिवाचिभ्याम् ऋषभोपानद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हितमित्यस्मिन्नर्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति, तदर्थायां प्रकृतावभिधेयायाम्।

उदा०-(ऋषभः) ऋषभाय हितः-आर्षभ्यो वत्सः। **(उपानत्)** उपानहे हितः-औपानह्यो मुञ्जः। औपानह्यं चर्म।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (विकृतेः) विकृतिवाची (ऋषभोपानहोः) ऋषभ और उपानत् प्रातिपदिकों से (हितम्) हित-अर्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है (तदर्थ प्रकृतौ) यदि वहां तत्सम्बन्धी प्रकृति अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(ऋषभ)** सांड के लिये हितकारी-वत्स (बछड़ा)। वह बछड़ा जो सांड अच्छा बन सकता है। **(उपानत्)** जूता के लिये हितकारी-औपनह्य मुञ्ज (मूंज)। उपानत्=जूता के लिये हितकारी-औपानह्य चर्म (चमड़ा)। वह चमड़ा जिसका जूता अच्छा बन सकता है।*

सिद्धि-आर्षभ्यः। *ऋषभ+ङे+ञ्य। आर्षभ्+य। आर्षभ्य+सु। आर्षभ्यः।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ, विकृतिवाची 'ऋषभ' शब्द से हित-अर्थ में तथा तत्सम्बन्धी प्रकृति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औपानह्यम्।***

अञ्-

(११) चर्मणोऽञ्।१५।

प०वि०-चर्मणः ६।१ अञ् १।१।

अनु०-तस्मै, हितम्, तदर्थम्, विकृतेः, प्रकृताविति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै चर्मणो हितम् अञ् तदर्थं प्रकृतौ।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाद् चर्मणो विकृतिवाचिनः प्रातिपदिकाद् हितमित्यस्मिन्नर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, तदर्थायां प्रकृतावभिधेयायाम्।

उदा०-वर्ध्राय हितम्-वार्ध्रं चर्म। वरत्राय हितम्-वारत्रं चर्म।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (चर्मणः) चर्म-सम्बन्धी (विकृतेः) विकृतिवाची प्रातिपदिक से (हितम्) हित अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (तदर्थ प्रकृतौ) यदि वहां तत्सम्बन्धी प्रकृति अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-वर्ध्र=चमड़े की रस्सी के लिये हितकारी-वार्ध्र चर्म (चमड़ा)। वह चमड़ा जिसकी रस्सी अच्छी बनती है। वरत्र=गाड़ी में बांधने की मोटी रस्सी के लिये हितकारी-वारत्र चर्म।

सिद्धि-वार्ध्रम्। वर्ध्र+ङे+अञ्। वार्ध्र+अ। वार्ध्र+सु। वार्ध्रम्।

यहां चतुर्थी-समर्थ, चर्म सम्बन्धी विकृतिवाची 'वर्ध्र' शब्द से हित अर्थ में तथा तत्सम्बन्धी प्रकृति अभिधेय में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-वारत्रम्।

अस्य-अस्मिन्-स्यादित्यर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तदस्य तदस्मिन् स्यादिति।१६।

प०वि०-तत् १।१ अस्य ६।१ तत् १।१ अस्मिन् ७।१ स्यात् क्रियापदम्, इति अव्ययपदम्।

अन्वयः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् अस्य, अस्मिन् यथाविहितं प्रत्ययः स्याद् इति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं स्याच्चेत् तद् भवति, इति करणो विवक्षार्थः।

उदा०-**(षष्ठ्यर्थे)** प्राकार आसामिष्टकानां स्यात्-प्राकारीया इष्टकाः। प्रासादोऽस्य दारुणः स्यात्-प्रासादीयं दारु। **(सप्तम्यर्थे)** प्राकारोऽस्मिन् देशे स्यात्-प्राकारीयो देशः। प्रासादोऽस्यां भूमौ स्यात्-प्रासादीया भूमिः।

स्यादित्यत्र **'सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे'** (३।३।१५४) इति सम्भावनायां लिङ् प्रत्ययः। इष्टकानां बहुत्वेन तत् सम्भाव्यते-प्राकार आसामिष्टकानां स्यादिति। देशस्य च गुणवत्त्वेन तत् सम्भाव्यते-प्रासादोऽस्मिन् देशे स्यादिति। इतिकरणो विवक्षार्थ इत्युक्तम्, तेनात्र न भवति-प्रासादो देवदत्तस्य स्यादिति। सूत्रे द्विस्तत्पाठः समर्थविभक्तेर्न्याय-व्यवस्थार्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में तथा (अस्मिन्) सप्तमीविभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (स्यात्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह स्यात्=सम्भावित हो, बन सके। यहां इतिकरण विवक्षा के लिये है।*

उदा०-(षष्ठी-अर्थ) प्राकार=परकोटा (चहारदीवारी) इन इष्टकाओं की बन सकता है ये-प्राकारीय इष्टका। प्रासाद=महल इस दारु=लकड़ी का बन सकता है यह-प्रासादीय दारु। (सप्तमी) प्राकार इस देश में बन सकता है यह-प्राकारीय देश। प्रासाद इस भूमि पर बन सकता है यह-प्रासादीया भूमि।

*'स्यात्' यहां **'सम्भावनेऽलमिति चेत् सिद्धाप्रयोगे'** (३।३।१५४) से सम्भावन-अर्थ में लिङ् प्रत्यय है। इष्टकाओं की अधिकता से यह सम्भावना की जाती है कि इन इष्टकाओं का प्राकार बन सकता है। देश की गुणवत्ता से यह सम्भावना की जाती है कि इस भूमि पर प्रासाद बन सकता है। 'इतिकरण' विवक्षा के लिये है। जहां विवक्षा होती है वहीं यह प्रत्ययविधि होती है। इससे यहां प्रत्यय नहीं होता है-**प्रासादो देवदत्तस्य स्यात्।** सूत्र में दो बार 'तत्' शब्द का पाठ समर्थ-विभक्ति की न्यायव्यवस्था के लिये किया गया है।*

*सिद्धि-**प्राकारीयाः।** प्राकार+सु+छ। प्राकार्+ईय्। प्राकारीय+टाप्। प्राकारीया+जस्। प्राकारीयाः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, सम्भावनवाची प्राकार प्रातिपदिक से षष्ठीविभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्राक्-क्रीतीय 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही- **'प्रासादीयं दारु'** आदि।*

ढञ्-

(२) परिखाया ढञ्।१७।

प०वि०-परिखायाः ५।१ ढञ् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्मिन्, स्यात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् परिखाया अस्य, अस्मिन् ढञ् स्यात्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् परिखा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे ढञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं स्याच्चेत् तद् भवति।

उदा०-परिखाऽस्यां भूमौ स्यात्-पारिखेयी भूमिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (परिखायाः) परिखा प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति तथा (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है (स्यात्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह स्यात्=सम्भावित हो, बन सके।*

उदा०-परिखा=खाई इस भूमि पर बन सकती है यह-पारिखेयी भूमि।

सिद्धि-पारिखेयी। *परिखा+सु+ढञ्। पारिख्+एय। पारिखेय+ङीप्। पारिखेयी+सु। पारिखेयी।*

यहां प्रथमा-समर्थ, सम्भावनवाची 'परिखा' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।

इति प्राक्क्रीतीयच्छयत्प्रत्ययाधिकारः।

प्राग्वतीयठञ्प्रत्ययप्रकरणम्

ठञ्-अधिकारः-

(१) प्राग्वतेष्ठञ्।१८।

प०वि०-प्राक् १।१ वतेः ५।१ ठञ् १।१।

अन्वयः-वतेः प्राक् ठञ्।

अर्थः-**'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः'** (५।१।११५) इति वक्ष्यति। तस्माद् वति-शब्दात् प्राक् ढञ् प्रत्ययो भवतीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति **'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति'** (५।१।७२) इति। पारायणं वर्तयति-पारायणिकः। तौरायणिकः। चान्द्रायणिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वतेः) 'तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः' (५।१।११५) इस सूत्र में जो 'वति' शब्द पढ़ा है उससे (प्राक्) पहले-पहले (ठञ्) प्रत्यय होता है। यह अधिकार सूत्र है। जैसे मुनिवर पाणिनि कहेंगे-**'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति'** (५।१।७२)। जो पारायण का वर्तन=अध्ययन करता है वह-पारायणिक। जो तुरायण का वर्तन करता है वह-तौरायणिक। जो चान्द्रायण का वर्तन करता है वह-चान्द्रायणिक।*

सिद्धि-पारायणिकः। *परायण+अम्+ठञ्। पारायण+इक। पारायणिक+सु। पारायणिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'पारायण' शब्द से इस सूत्र से प्राग्वतीय ठञ् प्रत्यय के अधिकार में 'पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति' (५।१।७२) से वर्तयति-अर्थ में 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में इक् आदेश, पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**तौरायणिकः**, **चान्द्रायणिकः**।*

आ-अर्हीयठक्प्रत्ययप्रकरणम्

ठक्-अधिकारः–

(१) आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाणाट्ठक्।१६।

प०वि०-आ अव्ययपदम्, अर्हात् ५।१ अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात् ५।१ ठक् १।१।

स०-गोपुच्छं च संख्या च परिमाणं च एतेषां समाहारो गोपुच्छसंख्यापरिमाणम्, न गोपुच्छसंख्यापरिमाणम्-अगोपुच्छसंख्यापरिमाणम्, तस्मात्-अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-आ-अर्हाट्ठक्, अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात्।

अर्थः- **'तदर्हति'** (५।१।६३) इति वक्ष्यति। आ तस्माद् अर्ह-शब्दाट्ठक् प्रत्ययो भवति, गोपुच्छसंख्यापरिमाणानि वर्जयित्वा। अयं ठञधिकारमध्ये तस्यापवादष्ठगधिकारो विधीयते। वक्ष्यति- **'तेन क्रीतम्'** (५।१।३७) इति। निष्केण क्रीतम्-नैष्किकम्। पणेन क्रीतम्-पाणिकम्।

गोपुच्छसंख्यापरिमाणानां प्रतिषेधात् तेभ्यः **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) इति ठञधिकाराट्ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-गोपुच्छेन क्रीतम्-गौपुच्छिकम्। **(संख्या)** षष्ट्या क्रीतम्-षाष्टिकम्। **(परिमाणम्)** प्रस्थेन क्रीतम्-प्रास्थिकम्। कुडवेन क्रीतम्-कौडविकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अर्हात्) 'तदर्हति' (५।१।६३) इस सूत्र (आ) तक (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है (अगोपुच्छसंख्यापरिमाणात्) गोपुच्छ, संख्यावाची और परिमाणवाची शब्दों को छोड़कर। यहां ठञ्-अधिकार के बीच में यह उसका अपवाद ठक्-अधिकार है। मुनिवर पाणिनि कहेंगे- **'तेन क्रीतम्'** (५।१।३७)। निष्क (३२० रत्ती का सोने का*

सिक्का) से खरीदा हुआ-नैष्किक। पण (३२ रत्ती का चांदी का सिक्का) से खरीदा हुआ-पाणिक।

गोपुच्छ, संख्यावाची और परिमाणवाची शब्दों से 'ठक्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से उनसे '**प्राग्वतेष्ठञ्**' (५।१।१८) का अधिकार होने से 'ठञ्' प्रत्यय होता है। (गोपुच्छ) गोपुच्छ=गौ से खरीदा हुआ-गौपुच्छिक। यहां गोपुच्छ शब्द गौ का ही वाचक है, गौ की पूंछ का नहीं, क्योंकि गौ को जब किसी को दिया जाता है तब उसकी पूंछ को पकड़ाकर दिया जाता है। (संख्या) षष्टि=साठ से खरीदा हुआ-षाष्टिक। (परिमाण) प्रस्थ (१ आढक=ढाई सेर) से खरीदा हुआ-प्रास्थिक। पण (३२ तोला चांदी का सिक्का) से खरीदा हुआ-पाणिक। कुडव (१ प्रस्थ=२५६ तोला) से खरीदा हुआ-कौडविक।

सिद्धि-नैष्किकम्। निष्क+टा+ठक्। नैष्क्+इक। नैष्किक+सु। नैष्किकम्।

यहां तृतीया-समर्थ 'निष्क' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। '**किति च**' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और '**यस्येति च**' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पाणिकम्।**

विशेषः भेद की गणना करना संख्या कहाती हैं, जैसे एक, दो, तीन आदि। गुरुत्व को मांपना उन्मान (तोलना) कहाता है जैसे पल आदि। सर्वतोमान को परिमाण कहते हैं जैसे-प्रस्थ आदि। आयाम (लम्बाई) को मांपना प्रमाण कहाता है जैसे वितस्ति (१२ अंगुल १ बिलांत) आदि।

ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः।
आयामस्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः।।

ठक्–

(२) असमासे निष्कादिभ्यः।२०।

प०वि०-असमासे ७।१ निष्कादिभ्यः ५।३।

स०-न समासः-असमासः, तस्मिन्-असमासे (नञ्तत्पुरुषः)। निष्क आदिर्येषां ते निष्कादयः, तेभ्यः-निष्कादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-आ-अर्हात्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं समर्थविभक्तिभ्योऽसमासे निष्कादिभ्य आ-अर्हाट्ठक्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थेभ्यः समासे वर्तमानेभ्यो निष्कादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आ-अर्हीयिष्वर्थेषु ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-निष्केण क्रीतम्-नैष्किकम्। पाणिकम्, पादिकम्, माषिकम्, इत्यादिम्।

निष्क। पण। पाद। माष। वाह। द्रोण। षष्टि। इति निष्कादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (असमासे) असमास में वर्तमान (निष्कादिभ्यः) निष्क-आदि प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय-अर्थों में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-निष्क से क्रीत=खरीदा हुआ-नैष्किक। पण से क्रीत-पाणिक। पाद से क्रीत-पादिक। माष से क्रीत-मासिक इत्यादि।

सिद्धि-नैष्किक आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

विशेषः *निष्क आदि के तोल का विवरण निम्नलिखित है-*

(१) निष्क=३२० रत्ती का सोने का सिक्का।
(२) पण=३२ रत्ती का चांदी का सिक्का।
(३) पाद=८ रत्ती का चांदी का सिक्का।
(४) माष=२ रत्ती का चांदी का सिक्का।
(५) वाह=१० कुम्भ (५० मण)।
(६) द्रोण=१ खारी (४ मण)।
(७) षष्टि=मानविशेष।

ठन्+यत्-

(३) शताच्च ठन्यतावशते।२१।

प०वि०-शतात् ५।१ च अव्ययपदम्, ठन्-यतौ १।२ अशते ७।१।

स०-ठन् च यच्च तौ ठन्यतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न शतम्-अशतम्, तस्मिन्-अशते (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाच्छताद् आ-अर्हाट्ठन्यतावशते।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थात् शत-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयिष्वर्थेषु ठन्-यतौ प्रत्ययौ भवतोऽशतेऽभिधेये।

उदा०-(ठन्) शतेन क्रीतम्-शतिकम्। (यत्) शतेन क्रीतम्-शत्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (शतात्) शत प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (ठन्यतौ) ठन् और यत् प्रत्यय होते हैं (अशते) यदि वहां शत-परिमाण अर्थ अभिधेय न हो।*

उदा०-(ठन्) शत=सौ कार्षापण से क्रीत=खरीदा हुआ-शतिक। (यत्) शत कार्षापण से क्रीत=शत्य, वस्त्र आदि।

सिद्धि-(१) शतिकम्। शत+टा+ठन्। शत्+ठक। शतिक+सु। शतिकम्।

यहां तृतीया-समर्थ, 'शत' शब्द से तथा अशत अभिधेय में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) शत्यम्। शत+टा+यत्। शत्+य। शत्य+सु। शत्यम्।

यहां 'शत' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है।

यहां 'अशते' शब्द से शत-अर्थ का प्रतिषेध किया गया है। जहां शत अर्थ अभिधेय होता है वहां ***'तदस्य परिमाणम्'*** *(५।१।५७) से 'कन्' प्रत्यय होता है-* ***शतं परिमाणस्य-शतकं निदानम्।*** *शत=सौ अध्याय परिमाणवाला-शतक निदान (ग्रन्थविशेष)।*

कन्-

(४) संख्याया अतिशदन्तायाः कन्।२२।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ अतिशन्तायाः ५।१ कन् १।१।

स०-तिश्च शच्च तौ तिशतौ, तिशतावन्ते यस्या सा तिशदन्ता, न शदन्ता-अतिशदन्ताः, तस्याः-अतिशदन्तायाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वबहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-आ-अर्हाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अतिशदन्तात् संख्यावाचिन आ-अर्हात् कन्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अतिशदन्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चभिः क्रीतः-पञ्चकः पटः। बहुकः। गणकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अतिशदन्तयाः) ति-अन्त और शत्-अन्त से रहित (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पंच कार्षापणों से क्रीत=खरीदा हुआ-पञ्चक पट (कपड़ा)। बहु=बहुत कार्षापणों से क्रीत=खरीदा हुआ-बहुक पट। गण=ढेर कार्षापणों से क्रीत-गणक पट।

सिद्धि-पञ्चकः। पञ्च+भिस्+कन्। पञ्च+क। पञ्चक+सु। पञ्चकः।

यहां तृतीया-समर्थ, ति-अन्त तथा शत्-अन्त से रहित, संख्यावाची 'पञ्च' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-बहुकः, गणकः।

ति-अन्त और शत्-अन्त संख्यावाची शब्द का इसलिये प्रतिषेध किया है कि यहां 'कन्' प्रत्यय न हो-(ति-अन्तः) साप्ततिकः पटः। (शत्-अन्त) चत्वारिंशत्कः पटः। यहां औत्सर्गिक 'ठक्' प्रत्यय होता है।

113919

कनो वा इडागमः-

R
810
902.k

(५) वतोरिड् वा।२३।

प०वि०-वतोः ५।१ इट् १।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-आ-अर्हात्, संख्यायाः, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् वतोः संख्यावाचिन आ-अर्हात् कन् वा इट्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् वतु-अन्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु कन् प्रत्ययो भवति विकल्पेन च तस्येडागमो भवति।

पुस्तकालय

उदा०-तावता क्रीतः-तावतिकः पटः (इट्)। तावत्कः पटः (इट् न)। यावतिकः पटः (इट्)। यावत्कः पटः (इट् न)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (वतोः) वतु-प्रत्ययान्त (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (कन्) कन् प्रत्यय होता है और उसे (वा) विकल्प से (इट्) इट् आगम होता है।*

उदा०-तावत्=उतने कार्षापण से क्रीत-तावतिक पट (इट्-आगम)। तावत्=उतने कार्षाण से क्रीत तावत्क पट (इट्-आगम नहीं)।

सिद्धि-(१) तावतिकः। तावत्+टा+कन्। तावत्+इट्+क। तावत्+इ+क। तावतिक+सु। तावतिकः।

*यहां तृतीया-समर्थ, वतु-प्रत्ययान्त, संख्यावाची 'तावत्' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय और उसे इट् आगम है। ऐसे ही-**यावतिकः**।*

(२) तावत्क: । यहां 'तावत्' शब्द से पूर्ववत् 'कन्' प्रत्यय है और उसे विकल्प पक्ष में इट् आगम है। ऐसे ही-यावत्क: ।

*'तावत्' शब्द में 'तत्' शब्द से **'यत्तदेतेभ्य: परिमाणे वतुप्'** (५ ।२ ।३९) से वतुप् प्रत्यय है। **'दृग्दृशवतुषु'** (६ ।३ ।८९) से 'तत्' को आत्व होता है। 'तावत्' शब्द की **'बहुगणवतुडति संख्या'** (१ ।१ ।२३) से संख्या संज्ञा है। ऐसे ही-यत् शब्द से यावत् ।*

ड्वुन्–

(६) विंशतित्रिंशद्भ्यां ड्वुन्नसंज्ञायाम् ।२४।

प०वि०-विंशति-त्रिंशद्भ्याम् ५ ।२ ड्वुन् १ ।१ असंज्ञायाम् ७ ।१ ।

स०-विंशतिश्च त्रिंशच्च तौ विंशतित्रिंशतौ, ताभ्याम्-विंशतित्रिंशद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:) । न संज्ञा-असंज्ञा, तस्याम्-असंज्ञायाम् (नञ्तत्पुरुष:) ।

अनु०-आ-अर्हात्, संख्याया इति चानुवर्तते ।

अन्वय:-यथायोगं विभक्तिसमर्थाभ्यां संख्यावाचिभ्यां विंशतित्रिंशद्भ्याम् आ-अर्हाद् ड्वुन् असंज्ञायाम् ।

अर्थ:-यथायोगं विभक्तिसमर्थाभ्यां संख्यावाचिभ्यां विंशतित्रिंशद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु ड्वुन् प्रत्ययो भवति, असंज्ञायां गम्यमानायाम् ।

उदा०-**(विंशति:)** विंशत्या क्रीत:-विंशक: पट: । **(त्रिंशत्)** त्रिंशता क्रीत:-त्रिंशक: पट: ।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (संख्याया:) संख्यावाची (विंशति-त्रिंशद्भ्याम्) विंशति और त्रिंशत् प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (ड्वुन्) ड्वुन् प्रत्यय होता है (असंज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति न हो।*

उदा०-(विंशति) विंशति=बीस कार्षापणों से क्रीत-विंशक पट। (त्रिंशत) त्रिंशत्=तीस कार्षापणों से क्रीत-त्रिंशक पट।

*सिद्धि-(१) विंशक: । विंशति+टा+ड्वुन् । विंश०+**वु** । विंश्+अक । विंशक+सु । विंशक: ।*

*यहां तृतीया-समर्थ, संख्यावाची 'विंशति' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में, असंज्ञा अभिधेय में इस सूत्र से 'ड्वुन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'डित्' होने से **'ति विंशतेर्डिति'** (६ ।४ ।१४२) से विंशति के 'ति' का लोप होता है। **'युवोरनाकौ'** (७ ।१ ।१) से 'वु' के*

स्थान में 'अक' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(२) त्रिंशकः। यहां 'त्रिंशत्' शब्द से पूर्ववत् 'ड्वुन्' प्रत्यय और प्रत्यय के डित् होने से वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से त्रिंशत् के टि-भाग (अत्) का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

टिठन्–

(७) कंसाट्टिठन्।२५।

प०वि०-कंसात् ५।१ टिठन् १।१।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थात् कंसाद् आ-अर्हाद् टिठन्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थात् कंस-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयिष्वर्थेषु टिठन् प्रत्ययो भवति। कंसशब्दस्य परिमाणवाचित्वादयं ढञोऽपवादः।

उदा०-कंसेन क्रीतः-कंसिकः। स्त्री चेत्-कंसिकी शाटिका।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (कंसात्) कंस प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (टिठन्) टिठन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कंस (पांच सेर) से क्रीत-कंसिकः पट। कंस से क्रीत=कंसिकी शाटिका (साड़ी)।

सिद्धि-कंसिकः। कंस+टा+टिठन्। कंस्+इक। कंसिक+सु। कंसिकः।

*यहां तृतीया-समर्थ, परिमाणवाची 'कंस' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'टिठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। 'टिठन्' प्रत्यय में इकार उच्चारणार्थ है। प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**कंसिकी।***

विशेषः *कंस-चरक के अनुसार 'कंस' आठ प्रस्थ या दो आढक के बराबर था। वह अर्थशास्त्र की तालिका के अनुसार पांच सेर और चरक की तालिका के अनुसार ६ $\frac{२}{५}$ सेर के बराबर हुआ (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४५)।*

अञ्-विकल्पः–

(८) शूर्पादञन्यतरस्याम्।२६।

प०वि०-शूर्पात् ५।१ अञ् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाच्छूर्पाद् आ-अर्हाद् अन्यतरस्याम् अञ्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाच्छूर्पशब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु विकल्पेनाऽञ् प्रत्ययो भवति। पक्षे चौत्सर्गिकष्ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शूर्पेण क्रीतम्-शौर्पं घृतम् (अञ्)। शौर्पिकं घृतम् (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (शूर्पात्) शूर्प प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है और विकल्प पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शूर्प (दो द्रोण अन्न) से क्रीत-शौर्प घृत (अञ्)। शौर्पिक घृत (ठञ्)।

सिद्धि-(१) शौर्पम्। शूर्प+टा+अञ्। शौर्प्+अ। शौर्प+सु। शौर्पम्।

यहां तृतीया-समर्थ, परिमाणवाची 'शूर्प' शब्द से आ-आर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) शौर्पिकम्। यहां परिमाणवाची 'शूर्प' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५ ।१ ।१८) से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'आर्हादगोपुच्छसंख्यापरिमाट्ठक्' (५ ।१ ।१९) से आ-अर्हीय अर्थों में परिमाणवाची प्रातिपदिक से 'ठञ्' प्रत्यय का प्रतिषेध-विधान से 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५ ।१ ।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *शूर्प चरक में दो द्रोण का शूर्प माना है, जिसे कुम्भ भी कहते थे। उनकी तालिका के अनुसार शूर्प=४०९६ तोला=१ मण ११ सेर १६ तोला (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४५)।*

अण्–

(६) शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण् ।२७।

प०वि०-शतमान-विंशतिक-सहस्र-वसनात् ५ ।१ अण् १ ।१।

स०-शतमानं च विंशतिं च सहस्रं च वसनं च एतेषां समाहारः शतमानविंशतिकसहस्रवसनम्, तस्मात्-शतमानविंशतिकसहस्रवसनात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थेभ्यः शतमान०वसनेभ्य आ-अर्हाद् अण्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थेभ्यः शतमान-विंशतिक-सहस्र-वसनेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आ-अर्हीयिष्वर्थेषु अण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(शतमानम्)** शतमानेन क्रीतम्-शातमानं शतम्। **(विंशतिकम्)** विंशतिकेन क्रीतम्-वैंशतिकम्। **(सहस्रम्)** सहस्रेण क्रीतम्-साहस्रम्। **(वसनम्)** वसनेन क्रीतम्-वासनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (शतमान०वसनात्) शतमान, विंशतिक, सहस्र, वसन प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(शतमान)** शतमान (सौ रत्ती का सोने का सिक्का) से क्रीत-शातमान शत (कार्षापण)। **(विंशतिक)** विशतिक (२० माष के सिक्का) से क्रीत-वैंशतिक। **(सहस्र)** सहस्र कार्षापणों से क्रीत-साहस्र। **(वसन)** वसन=एक शाटक (धोती) से क्रीत-वासन।*

सिद्धि-शातमानम्। शतमान+टा+अण्। शातमान्+अ। शातमान+सु। शातमानम्।

यहां 'शतमान' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-वैशतिकः आदि।

विशेषः *शतमान-सौ रत्तीवाले चांदी के वास्तविक सिक्के तक्षशिला की खुदाई में प्राप्त हुये हैं। उनकी पहचान शतमान सिक्के से करना युक्ति-संगत और प्रमाण-सामग्री के अनुकूल है। मुद्रायें शलका-आकृति की हैं और उनका तोल १७७.३ ग्रेन या ठीक सौ रत्ती के लगभग है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २५५)।*

विंशतिक-यह एक प्रकार का कार्षापण सिक्का था जिसके २० भाग होते थे। इस प्रकार के दो तरह के कार्षापण थे। एक १६ माष का और दूसरा २० माष का होता था। बीस भाग होने के कारण उसका नाम विंशतिक पड़ा था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २६३) माष=२ तोला चांदी का सिक्का और ५ तोला तांबे का सिक्का।

प्रत्ययस्य लुक्-

(१०) अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्।२८।

प०वि०-अध्यर्ध-पूर्वात् ५।१ द्विगोः ५।१ लुक् १।१ असंज्ञायाम् ७।१।

स०-अध्यारूढम् अर्धमस्मिन्निति-अध्यर्धम्। अध्यर्धं पूर्वं यस्मिँस्तत्-अध्यर्धपूर्वम्, तस्मात्-अध्यर्धपूर्वात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-आ-अर्हात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च आ-अर्हात् प्रत्ययस्य लुगसंज्ञायाम्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाच्च प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु विहितस्य लुग् भवति, असंज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-(**अध्यर्धपूर्वम्**) अध्यर्धकंसेन क्रीतम्-अध्यर्धकंसम्। अध्यर्धशूर्पम्। (**द्विगुः**) द्विकंसेन क्रीतम्-द्विकंसम्। त्रिकंसम्। द्विशूर्पम्। त्रिशूर्पम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध शब्द पूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (लुक्) विहित प्रत्यय का लोप होता है (असंज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति न हो।*

उदा०-(अध्यर्धपूर्व) अध्यर्धकंस=डेढ़ कंस परिमाण से क्रीत-अध्यर्ध कंस। अध्यर्धशूर्प=डेढ़ शूर्प परिमाण से क्रीत-अध्यर्ध शूर्प। (द्विगु) द्विकंस=दो कंस परिमाण से क्रीत-द्विकंस। त्रिकंस=तीन कंस परिमाण से क्रीत-त्रिकंस। द्विशूर्प=दो शूर्प परिमाण से क्रीत-द्विशूर्प। त्रिशूर्प=तीन शूर्प परिमाण से क्रीत-त्रिशूर्प।

*सिद्धि-(१) **अध्यर्धकंसम्**। अध्यर्धकंस+टा+टिठन्। अध्यर्धकंस+० अध्यर्धकंस+सु। अध्यर्धकंसम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, 'अध्यर्धकंस' शब्द से '**कंसाट्टिठन्**' (५।१।२५) से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में 'टिठन्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उस प्रत्यय का लुक् होता है। यहां 'कंस' शब्द से तदन्तविधि से टिठन् प्रत्यय होता है।*

*(२) **अध्यर्धशूर्पम्**। यहां 'अध्यर्धशूर्प' शब्द से पूर्ववत् '**शूर्पादञन्यतरस्याम्**' (५।१।२६) से अञ् तथा विकल्प पक्ष में 'ठञ्' प्रत्यय होता है। इस सूत्र से उनका लुक् होता है।*

*(३) **द्विकंसम्**। यहां द्विगुसंज्ञक 'द्विकंस' शब्द से पूर्ववत् 'टिठन्' प्रत्यय और उससे उसका लुक् होता है। ऐसे ही-**त्रिकंसम्**।*

*(४) **द्विशूर्पम्**। यहां द्विगुसंज्ञक -द्विशूर्प' शब्द से पूर्ववत् 'अञ्' और 'ठञ्' प्रत्यय अैर इस सूत्र से उनका लुक् होता है। ऐसे ही-**त्रिशूर्पम्**।*

प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः-

(११) विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्।२६।

प०वि०-विभाषा १।१ कार्षापण-सहस्राभ्याम् ५।२।

स०-कार्षापणं च सहस्रं च ते कार्षापणसहस्रे, ताभ्याम्-कार्षापणसहस्राभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोः, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाभ्यां अध्यर्धपूर्वाभ्यां द्विगुभ्यां च कार्षापणसहस्राभ्याम् आ-अर्हात् यथाविहितं प्रत्ययस्य विभाषा लुक्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाभ्याम् अध्यर्धपूर्वाभ्यां द्विगुसंज्ञकाभ्यां च कार्षापणसहस्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां आ-अर्हीयेष्वर्थेषु यथाविहितम् प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०-**(अध्यर्धपूर्वम्)** अध्यर्धकार्षापणेन क्रीतम्-अध्यर्धकार्षापणम् (लुक्)। अध्यर्धकार्षापणिकम् (ठञ्)। **(द्विगुः)** द्विकार्षापणेन क्रीतम्-द्विकार्षापणम् (लुक्)। द्विकार्षापणिकम् (ठञ्)।। **(अध्यर्धपूर्वम्)** अध्यर्धसहस्रेण क्रीतम्-अध्यर्धसहस्रम् (लुक्)। अध्यर्धसाहस्रम् (अण्)। **(द्विगुः)** द्विसहस्रेण क्रीतम्-द्विसहस्रम् (लुक्)। द्विसाहस्रम् (अण्)।

आर्यभाषाः अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध पूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (कार्षापणसहस्राभ्याम्) कार्षापण और सहस्र प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में विहित प्रत्यय का (विभाषा) विकल्प से (लुक्) लोप होता है।

उदा०-(अध्यर्धपूर्व) अध्यर्धकार्षापण=डेढ कार्षापण से क्रीत-अध्यर्धकार्षापण (लुक्)। अध्यर्धकार्षापणिक (ठञ्)। (द्विगुः) द्विकार्षापण=दो कार्षापणों से क्रीत-द्विकार्षापण (लुक्)। द्विकार्षापणिक (ठञ्)।। (अध्यर्धपूर्व) अध्यर्धसहस्र=डेढ हज़ार कार्षापणों से क्रीत-अध्यर्धसहस्र (लुक्)। अध्यर्धसाहस्रम् (अण्)। (द्विगु) द्विसहस्र=दो हजार कार्षापणों से क्रीत-द्विसहस्र (लुक्)। द्विसाहस्र (अण्)।

सिद्धि-(१) **अध्यर्धकार्षापणम्।** अध्यर्धकार्षापण+टा+ठञ्। अध्यर्धकार्षापण+०। अध्यर्धकार्षापण+सु। अध्यर्धकार्षापणम्।

यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक, कार्षापण शब्द से आ-अर्हीय क्रीत अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित प्राग्वतीय 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् होता है। ऐसे ही-**द्विकार्षापणम्।**

(२) **अध्यर्धकार्षापणिकम्।** यहां 'अध्यर्धकार्षापण' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। विकल्प पक्ष में उसका लुक् नहीं होता है। **'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च'** (७।३।१५)

से पर्जन्यवत् उत्तरपदवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्विकार्षापणिकम्।**

(३) **अध्यर्धसहस्रम्।** यहां 'अध्यर्धसहस्र' शब्द से **'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्'** (५।१।२७) से 'अण्' प्रत्यय है और उसका इस सूत्र से लुक् होता है। ऐसे ही-**द्विसहस्रम्।**

(४) **अध्यर्धसाहस्रम्।** यहां 'अध्यर्धसहस्र' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है और उसका विकल्प पक्ष में लुक् नहीं होता है अतः पूर्ववत् उत्तरपद की वृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्विसाहस्रम्।**

विशेषः (१) **कार्षापण**-प्राचीन भारतवर्ष का सबसे मशहूर सिक्का चांदी का कार्षापण था। इसे ही मनुस्मृति में (८।१३५, १३६) में धरण और राजत पुराण (चांदी का पुराण) भी कहा गया है। पाणिनि ने इन सिक्कों को आहत (५।२।१२०) कहा है। ये सिक्के बुद्ध से भी पुराने हैं और भारतवर्ष में ओर से छोर तक पाये जाते हैं। अब तक लगभग पचास सहस्र से भी अधिक चांदी के कार्षापण मिल चुके हैं। मनुस्मृति के अनुसार चांदी के कार्षापण या पुराण का वजन ३२ रत्ती था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २५६)।

(२) **चांदी के कार्षापण का तोल**-कार्षापण के विषय में शास्त्रीय तोल तो लिखित मिलता है किन्तु कार्षापण के उपलब्ध नमूने से भी तोल का ज्ञान होता है। मनुजी महाराज ने निम्नलिखित श्लोकों में स्पष्ट लिख दिया है-

पलं सुवर्णाश्चत्वारः पलानि धरणं दश।
द्वे कृष्णले समधृते विज्ञेयो रौप्यमाषकः।।
ते षोडश स्याद् धरणं पुराणश्चैव राजतः।
कार्षापणस्तु विज्ञेयस्ताम्रिकः कार्षिकः पणः।।
धरणानि दश ज्ञेयः शतमानस्तु राजतः।
चतुः सौवर्णिको निष्को विज्ञेयस्तु प्रमाणतः।।

अर्थ-चार सुवर्ण का एक पल, दश पल का एक धरण होता है। दो कृष्णल का एक राजत (चांदी का) माषा होता है। सोलह रौप्य माषों का एक धरण होता है (धरण को पुराण भी कहा जाता है। सोलह माषा ताम्बा को ताम्रिक तथा कार्षापणिक कहते हैं। दश धरण का एक राजत (चांदी का) शतमान होता है। चार सुवर्ण का एक निष्क होता है।

कौटिल्य का धरण और मनु का धरण (कार्षापण) एक ही प्रतीत होते हैं। यही सिद्ध होता है कि ३२ रत्ती का धरण वा कार्षापण होता था (स्वामी ओमानन्द सरस्वती कृत-हरयाणा के प्राचीन लक्षण-स्थान पृ० १७)।

प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः–

(१२) द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्।३०।

प०वि०–द्वि-त्रिपूर्वात् ५।१ निष्कात् ५।१।

स०–द्विश्च त्रिश्च एतेषां समाहारो द्वित्रि, द्वित्रि पूर्वं यस्मिँस्तद् द्वित्रिपूर्वम्, तस्मात्-द्वित्रिपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०–आ-अर्हात्, द्विगोः, लुक्, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् द्विगोर्द्वित्रिपूर्वान्निष्काद् आ-अर्हाद् यथाविहितं प्रत्ययस्य विभाषा लुक्।

अर्थः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् द्विगुसंज्ञकाद् द्वित्रिपूर्वाद् निष्कशब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयस्य यथाविहितं प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०–(**द्विपूर्वम्**) द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतम्-द्विनिष्कम् (लुक्)। द्विनैष्किकम् (ठञ्)। (**त्रिपूर्वम्**) त्रिभिर्निष्कैः क्रीतम्-त्रिनिष्कम् (लुक्)। त्रिनैष्किकम् (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग-विभक्ति-समर्थ (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (द्वित्रिपूर्वात्) द्वि-पूर्वक और त्रि-पूर्वक (निष्कात्) निष्क प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में यथाविहित प्रत्यय का (विभाषा) विकल्प से (लुक्) लोप होता है।*

उदा०-(द्विपूर्व) द्विनिष्क=दो निष्कों से क्रीत-द्विनिष्क (लुक्)। द्विनैष्किक (ठञ्)। (त्रिपूर्व) त्रिनिष्क=तीन निष्कों से क्रीत-त्रिनिष्क (लुक्)। त्रिनैष्किक (ठञ्)।

सिद्धि-(१) **द्विनिष्कम्।** *द्विनिष्क+टा+ठञ्। द्विनिष्क+०। द्विनिष्क+सु। द्विनिष्कम्।*

यहां तृतीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्विनिष्क' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत अर्थ में '**प्राग्वतेष्ठञ्**' *(५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसका लुक् हो जाता है। ऐसे ही-*त्रिनिष्कम्।

(२) **द्विनैष्किकम्।** *यहां 'द्विनिष्क' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। उसका विकल्प पक्ष में लुक् नहीं होता है। अतः* 'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च' *(७।३।१५) से अंग को उत्तरपदवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-***त्रिनैष्किकम्।**

विशेषः प्राचीनकाल में निष्क ३२० रत्ती का एक सुवर्ण का सिक्का था।

प्रत्ययस्य लुक्-विकल्पः–

(१३) बिस्ताच्च।३१।

प०वि०-बिस्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-आ-अर्हात्, द्विगोः, लुक्, विभाषा, द्वित्रिपूर्वात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् द्वित्रिपूर्वाद् द्विगोर्बिस्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययस्य विभाषा लुक्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् द्वित्रिपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाद् बिस्तशब्दात् प्रातिपदिकाच्च यथाविहितं प्रत्ययस्य विकल्पेन लुग् भवति।

उदा०-**(द्विपूर्वम्)** द्विबिस्तेन क्रीतम्-द्विबिस्तम् (लुक्)। द्विबैस्तिकम् (ठञ्)। **(त्रिपूर्वम्)** त्रिबिस्तेन क्रीतम्-त्रिबिस्तम् (लुक्)। त्रिबैस्तिकम् (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (द्वित्रिपूर्वात्) द्वि-त्रि पूर्ववाले (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (बिस्तात्) बिस्त प्रातिपदिक से (च) भी यथाविहित प्रत्यय का (विभाषा) विकलप से (लुक्) लोप होता है।*

उदा०-(द्विपूर्व) द्विबिस्त=दो बिस्तों से क्रीत-द्विबिस्त (लुक्)। द्विबैस्तिक (ठञ्)। (त्रिपूर्व) त्रिबिस्त=तीन बिस्तों से क्रीत-त्रिबिस्त (लुक्)। त्रिबैस्तिक (ठञ्)।

*सिद्धि-(१) **द्विबिस्तम्।** द्विबिस्त+टा+ठञ्। द्विबिस्त+०। द्विबिस्त+सु। द्विबिस्तम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, द्वि-पूर्वक, द्विगुसंज्ञक 'द्विबिस्त' शब्द से आ-आर्हीय क्रीत अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से 'ठञ्' प्रत्यय होता है और इस सूत्र से उसका लुक् होता है। ऐसे ही-**त्रिबिस्तम्।***

*(२) **द्विबैस्तिकम्।** यहां 'द्विबिस्त' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। **'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च'** (७।३।१५) से उत्तरपद-वृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। यहां विकल्प पक्ष में 'ठञ्' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही-**त्रिबैस्तिकम्।***

विशेषः *बिस्त-अमरकोष में 'बिस्त' को कर्ष या अक्ष का पर्याय कहा है, जो स्वर्ण तोलने के काम में आता था। चरक में कर्ष, सुवर्ण और अक्ष पर्याय है। अत एव 'बिस्त' सुवर्ण का ही पर्याय ज्ञात होता है, जो तोल में ८० अस्सी रत्ती होता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४३)।*

खः–

(१४) विंशतिकात् खः।३२।

प०वि०-विंशतिकात् ५।१ खः १।१।

अनु०-आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोरिति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च विंशतिकाद् आ-अर्हात् खः।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाच्च विंशतिक-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**अध्यर्धपूर्वम्**) अध्यर्धविंशतिकेन क्रीतम्-अध्यर्धविंशतिकीनम्। (**द्विगुः**) द्विविंशतिकेन क्रीतम्-द्विविंशतिकीनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्धपूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (विंशतिकात्)* ***विंशतिक प्रातिपदिक*** *से (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अध्यर्धपूर्वक) अध्यर्धविंशतिक=डेढ विंशतिक से क्रीत-अध्यर्धविंशतिकीन। (द्विगु) द्विविंशतिक=दो विंशतिकों से क्रीत-द्विविंशतिकीन। त्रिविंशतिक=तीन विंशतिकों से क्रीत-त्रिविंशतिकीन।

सिद्धि-अध्यर्धविंशतिकीनम्। अध्यर्धविंशतिक+टा+ख। अध्यर्धविंशतिक्+इन्। अध्यर्धविंशतिकीन+सु। अध्यर्धविंशतिकीनम्।

यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक 'अध्यर्धविंशतिक' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-द्विविंशतिकीनम्, त्रिविंशतिकीनम्।

'विंशतिक' शब्द का अर्थ 'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्' (५।१।२७) के प्रवचन में देख लेवें।

ईकन्–

(१५) खार्या ईकन्।३३।

प०वि०-खार्याः ५।१ ईकन् १।१।

अनु०-आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च खार्या आ-अर्हाद् ईकन्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाच्च खारी-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-आर्हीयेष्वर्थेषु ईकन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अध्यर्धपूर्वम्)** अध्यर्धखारिणा क्रीतम्-अध्यर्धखारीकम्। **(द्विगुः)** द्विखारिणा क्रीतम्-द्विखारीकम्। त्रिखारीकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध पूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (खार्याः) खारी प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (ईकन्) ईकन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अध्यर्धपूर्वक) अध्यर्धखारीक=डेढ खारी से क्रीत-अध्यर्धखारीक। (द्विगु) द्विखारि=दो खारियों से क्रीत-द्विखारीक। त्रिखारि=तीन खारियों से क्रीत-त्रिखारीक।

सिद्धि-अध्यर्धखारीकम्। *अध्यर्धखारि+टा+ईकन्। अध्यर्धखार्+ईक। अध्यर्धखारीक+सु। अध्यर्धखारीकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक, 'अध्यर्धखारि' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'ख्' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और पूर्ववत् अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्विखारीकम्, त्रिखारीकम्।***

*यहां 'द्विखारि' आदि शब्दों में **'खार्याः प्राचाम्'** (५।४।१०१) से प्राच्य-आचार्यों के मत में समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है-**अध्यर्धखारम्, द्विखारम्, त्रिखारम्।** पाणिनिमुनि के मत में-**अध्यर्धखारि, द्विखारि, त्रिखारि** प्रयोग बनते हैं। द्विगुसमास में **'स नपुंसकम्'** (२।४।१७) से नपुंसकता और **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से ह्रस्व होता है।*

विशेषः *खारी-कौटिल्य के अनुसार सोलह द्रोण की एक खारी मानी जाती थी। उस हिसाब से उसकी तोल चार मन के बराबर हुई। पतञ्जलि ने भी खारी को द्रोण से बड़ी माना है-**अधिको द्रोणः खार्याम्'** महाभाष्य {५।२।७३} (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४५)।*

यत्-

(१६) पणपादमाषशताद् यत्।३४।

प०वि०-पण-पाद-माष-शतात् ५।१ यत्।

स०-पणश्च पादश्च माषश्च शतं च एतेषां समाहारः पणपादमाषशतम्, तस्मात्-पणपादमाषशतात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च पणपादमाषशताद् आ-अर्हाद् यत्।

अर्थः-यथायोगं विभक्तिसमर्थेभ्योऽध्यर्धपूर्वेभ्यो द्विगुसंज्ञकेभ्यश्च पणपादमाषशतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य आ-अर्हीयेष्वर्थेषु यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पणः)** अध्यर्धपूर्वः-अध्यर्धपणेन क्रीतम्-अध्यर्धपण्यम्। द्विगुः-द्विपणेन क्रीतम्-द्विपण्यम्। त्रिपण्यम्। **(पादः)** अध्यर्धपूर्वः-अध्यर्धपादेन क्रीतम्-अध्यर्धपाद्यम्। द्विगुः-द्विपादेन क्रीतम्-द्विपाद्यम्। त्रिपाद्यम्। **(माषः)** अध्यर्धपूर्वः-अध्यर्धमाषेण क्रीतम्-अध्यर्धमाष्यम्। द्विगुः-द्विमाषेण क्रीतम्-द्विमाष्यम्। त्रिमाष्यम्। **(शतम्)** अध्यर्धपूर्वम्-अध्यर्धशतेन क्रीतम्-अध्यर्धशत्यम्। द्विगुः-द्विशतेन क्रीतम्-द्विशत्यम्। त्रिशत्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध पूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (पणपादमाषशतात्) पण, पाद, माष, शत प्रातिपदिकों से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(पण) अध्यर्धपण=डेढ पण से क्रीत-खरीदा हुआ-अध्यर्धपण्य। द्विपण=दो पणों से क्रीत-द्विपण्य। त्रिपण=तीन पणों से क्रीत-त्रिपण्य। (पाद) अध्यर्धपाद=डेढ पाद से क्रीत-अध्यर्धपाद्य। द्विपाद=दो पादों से क्रीत-द्विपाद्य। त्रिपाद=तीन पादों से क्रीत-त्रिपाद्य। (माष) अध्यर्धमाष=डेढ माष से क्रीत-अध्यर्धमाष्य। द्विमाष=दो माषों से क्रीत-द्विमाष्य। त्रिमाष=तीन माषों से क्रीत-त्रिमाष्य। (शत) अध्यर्धशत=डेढ सौ कार्षापणों से क्रीत-अध्यर्धशत्य। द्विशत=दो सौ कार्षापणों से क्रीत-द्विशत्य। त्रिशत=तीन सौ कार्षापणों से क्रीत-त्रिशत्य।

*सिद्धि-**अध्यर्धपण्यम्।** अध्यर्धपण+टा+यत्। अध्यर्धपण्+य। अध्यर्धपण्य+सु। अध्यर्धपण्यम्।*

यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक 'अध्यर्धपण' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *मुद्राओं का नामकरण-वैदिक युग में तोल के आधार पर मुद्राओं (सिक्का) का नामकरण किया गया। निष्क तो स्वर्ण-मुद्रा का नाम था किन्तु 'शतमान' नाम तोल के आधार पर (सौ रत्ती से) ही निश्चित किया गया। उसके चौथाई भाग को पाद (चौथा भाग) कहा गया। प्राचीन नाम कार्षापण भी तोल के नियम से रखा गया। कर्ष बीज-रत्ती (चिरमठी) का नाम था अतः कर्ष द्वारा तोले जानेवाले सिक्के को (कर्ष+पण) कार्षापण कहा गया। ये ३२ रत्ती चांदी के होते थे। अर्धपण १६ रत्ती का, पाद ८ रत्ती*

का होता था। एक माष तोल २ रत्ती, द्विमाष ४ रत्ती का त्रिमाष ६ रत्ती का होता था। अर्धकाकिणी १/४ रत्ती, काकिणी १/२ रत्ती की और अघमर्षि १ रत्ती का होता था (स्वामी ओमानन्द सरस्वती कृत-हरयाणा के प्राचीन लक्षण-स्थान पृ० १७)।

इस उपरिलिखित प्रमाण के अनुसार सूत्रोक्त मुद्राओं का तोल-विवरण निम्नलिखित है–

मुद्रा का नाम	*एक मुद्रा (चांदी)*	*अध्यर्ध मुद्रा*	*द्वि-मुद्रा*	*त्रि-मुद्रा*
पण (कार्षापण)	*३२ रत्ती*	*४८ रत्ती*	*६४ रत्ती*	*९६ रत्ती*
पद	*८ रत्ती*	*१२ रत्ती*	*१६ रत्ती*	*२४ रत्ती*
माष	*२ रत्ती*	*३ रत्ती*	*४ रत्ती*	*१२ रत्ती*
शत (कार्षापण)	*३२०० रत्ती*	*४८०० रत्ती*	*६४०० रत्ती*	*९६०० रत्ती*

रक्तिका (रत्ती) चिरमठी। कार्षापण सोना, चांदी, ताम्बा तीनों धातुओं का होता था। यहां रजत (चांदी) का तोल बतलाया गया है।

यत्-विकल्पः–

(१७) शाणाद् वा।३५।

प०वि०–शाणात् ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०–आ-अर्हात्, अध्यर्धपूर्वात्, द्विगोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोश्च शाणाद् आ-अर्हाद् वा यत्।

अर्थः–यथायोगं विभक्तिसमर्थाद् अध्यर्धपूर्वाद् द्विगुसंज्ञकाच्च शाण-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आ-अर्हीयेष्वर्थेषु विकल्पेन यत् प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति, तस्य च लुग् भवति।

उदा०–**(अध्यर्धपूर्वम्)** अध्यर्धशाणेन क्रीतम्–अध्यर्धशाण्यम् (यत्)। अध्यर्धशाणम् (ठञ्-लुक्)। **(द्विगुः)** द्विशाणेन क्रीतम्–द्विशाण्यम् (यत्)। दिशाणम् (ठञ्-लुक्)। त्रिशाणेन क्रीतम्–त्रिशाण्यम् (यत्)। त्रिशाणम् (ठञ्-लुक्)।

आर्यभाषाः *अर्थ–यथायोग विभक्ति-समर्थ (अध्यर्धपूर्वात्) अध्यर्ध पूर्ववाले और (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (शाणात्) शाण प्रातिपदिक से (आ-अर्हात्) आ-अर्हीय अर्थों में (वा) विकलप से (यत्) यत् प्रत्यय होता है और उसका लुक् होता है।*

उदा०-(अध्यर्धपूर्व) अध्यर्धशाण=डेढ शाण से क्रीत=खरीदा हुआ-अध्यर्धशाण्य (यत्)। अध्यर्धशाण (ठञ्-लुक्)। (द्विगु) द्विशाण=दो शाणों से क्रीत-द्विशाण्य (यत्)। द्विशाण (ठञ्+लुक्)। त्रिशाण=तीन शाणों से क्रीत-त्रिशाण्य (यत्)। त्रिशाण (ठञ्-लुक्)।

सिद्धि-(१) **अध्यर्धशाण्यम्।** अध्यर्धशाण+टा+यत्। अध्यर्धशाण्+य। अध्यर्धशाण्य+सु। अध्यर्धशाण्यम्।

यहां तृतीया-समर्थ, अध्यर्धपूर्वक 'अध्यर्धशाण' शब्द से आ-अर्हीय क्रीत-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्विशाण्यम्, त्रिशाण्यम्।**

(२) **अध्यर्धशाणम्।** अध्यर्धशाण+टा+ठञ्। अध्यर्धशाण+०। अध्यर्धशाण+सु। अध्यर्धशाणम्।

यहां तृतीया-समर्थ 'अध्यर्धशाण' शब्द से विकल्प पक्ष में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है किन्तु **'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्'** (५।१।२८) से उसका लुक् हो जाता है। ऐसे ही-**द्विशाणम्, त्रिशाणम्।**

विशेषः (१) शाण-चरक में सुवर्ण (सिक्का) का चौथाई भाग शाण कहा गया है। इससे शाण की तोल २० रत्ती के बराबर हुई (कल्पस्थान १२।२९)। शाणार्ध=उसका आधा=दस रत्ती के बराबर ओषधि की स्वल्पमात्रा तोलने में काम आता था। महाभारत में शाण को शतमान का आठवां भाग कहा गया है (आरण्यक पर्व १३४।१४)। जिससे उसकी पुरानी तोल १२।। रत्ती ठहरती है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४३)।

इस उपरिलिखित प्रमाण के अनुसार सूत्रोक्त शाण-मुद्रा का तोल-विवरण निम्नलिखित है-

मुद्रा का नाम	एक मुद्रा (सुवर्ण)	अध्यर्ध मुद्रा	द्वि-मुद्रा	त्रि-मुद्रा
शाण	२० रत्ती	३० रत्ती	४० रत्ती	६० रत्ती (चरकानुसारी)
शाण	१२।। रत्ती	१८।। रत्ती	२५ रत्ती	३७।। रत्ती (महाभारतानुसारी)

मुद्राओं का तोल समय-समय पर घटता-बढ़ता रहता है।

(२) काशिकाकार पं० जयादित्य ने **'द्वित्रिपूर्वादण् च'** (५।१।३६) इस वार्तिक सूत्र की पाणिनीय सूत्र मानकर व्याख्या की है किन्तु यह महाभाष्य के अनुसार वार्तिक-सूत्र है अतः इसका यहां प्रवचन नहीं किया जाता है।

।। इति प्राक्क्रीतीयच्छाधिकारः ।।

क्रीतार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तेन क्रीतम्।३६।

प०वि०-तेन ३।१ क्रीतम् १।१।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् क्रीतमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-सप्तत्या क्रीतम्-साप्ततिकम्। आशीतिकम्। नैष्किकम्। पाणिकम्। पादिकम्। माषिकम्। शत्यम्। शतिकम्। द्विकम्। त्रिकम्।

ये ठञादयस्त्रयोदश प्रत्ययाः प्रोक्तास्तेषामितः प्रभृति समर्थविभक्तयः प्रत्ययार्थाश्चोपदिश्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (क्रीतम्) क्रीत=खरीदा हुआ अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-सप्तति=सत्तर कार्षापणों से क्रीत=खरीदा हुआ-साप्ततिक। अशीति=अस्सी कार्षापणों से क्रीत-आशीतिक। निष्क=सुवर्ण मुद्रा-विशेष से क्रीत-नैष्किक। पण=कार्षापण से क्रीत-पाणिक। पाद=कार्षापण के चतुर्थ भाग से क्रीत-पादिक। माष=कार्षापण के सोलहवें भाग से क्रीत-माषिक। शत=सौ कार्षापणों से क्रीत-शत्य अथवा शतिक। द्वि=दो कार्षापणों से क्रीत-द्विक। त्रि=तीन कार्षापणों से क्रीत-त्रिक।

जो 'ठञ्' आदि १३ प्रत्यय पहले कहे गये हैं यहां से उनकी समर्थ-विभक्ति तथा प्रत्ययार्थों का उपदेश किया जाता है।

सिद्धि-(१) ***साप्ततिकम्।*** *यहां तृतीया-समर्थ 'सप्तति' शब्द से क्रीत अर्थ में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः यहां* ***'प्राग्वतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(२) ***पाणिकम्।*** *यहां 'पण' शब्द से* ***'असमासे निष्कादिभ्यः'*** *(५।१।२०) से 'ठक्' प्रत्यय है। ऐसे ही-***पादिकम्, माषिकम्।***

(३) ***शत्यम्।*** *यहां 'शत' शब्द से* ***'शताच्च ठन्यतावशते'*** *(५।१।२१) से यत् प्रत्यय है।*

(४) ***शतिकम्।*** *यहां 'शत' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है।*

(५) ***द्विकम्।*** *यहां संख्यावाची 'द्वि' शब्द से* ***'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्'*** *(५।१।२२) से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-***त्रिकम्।***

निमित्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तस्य निमित्तं संयोगोत्पातौ।३७।

प०वि०-तस्य ६।१ निमित्तम् १।१ संयोग-उत्पातौ १।२।

स०-संयोगश्च उत्पातश्च तौ-संयोगोत्पातौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् निमित्तं यथाविहितं प्रत्ययः संयोगोत्पातौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् निमित्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यन्निमित्तं संयोग उत्पातो वा स भवति।

उदा०-(संयोगः) शतस्य निमित्तं धनपतिना संयोगः-शत्यः। शतिकः। साहस्रः। (उत्पातः) शतस्य निमित्तमुत्पातः=शत्यः। शतिकः। साहस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (निमित्तम्) निमित्त अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (संयोगोत्पात्तौ) जो निमित्त-अर्थ है यदि वह संयोग वा उत्पात हो।*

*उदा०-(संयोग) शत=सौ कार्षापणों के निमित्त धनपति (सेठ) के साथ **संयोग** होना-शत्य अथवा शतिक। सहस्र=हजार कार्षापणों के निमित्त धनपति के **साथ संयोग** होना-साहस्र। (उत्पातः) शत=सौ कार्षापणों का निमित्त उत्पात=यादृच्छिक **(अनायास)** प्राप्त होना-शत्य अथवा शतिक। सहस्र=हजार कार्षापणों का निमित्त **उत्पात=यादृच्छिक** (अनायास) प्राप्त होना-साहस्र।*

*सिद्धि-(१) शत्यः। शत+ङस्+यत्। शत्+य। शत्य+सु। **शत्यः**।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'शत' शब्द से निमित्त (संयोग-उत्पात) **अर्थ** में इस सूत्र से यथाविहित प्रत्यय का विधान किया गया है अतः यहां **'शताच्च ठन्यतावशते'** (५।१।२१) से यथाविहित 'यत्' प्रत्यय है।*

*(२) शतिकः। यहां 'शत' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय **है**।*

*(३) साहस्रः। यहां 'सहस्र' शब्द से **'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्'** (५।१।२७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *'संयोगो नाम स भवति-इदं कृत्वेदमवाप्यत **इति**। उत्पातो नाम स भवति-यादृच्छिको भेदो वा छेदो वा पद्मं वा पर्णं वा' (महाभाष्य ५।१।३७)। 'जहां यह करके यह प्राप्त किया जाता है' उसे संयोग कहते हैं। यादृच्छिक (स्वाभाविक) भेदन, छेदन, कमल वा पत्ता आदि की प्राप्ति के समान जो यादृच्छिक शत आदि प्राप्ति का निमित्त होता है, उसे उत्पात कहते हैं।*

यत्–

(२) गोद्व्यचोऽसंख्यापरिमाणाश्वादेर्यत् ।३८।

प०वि०–गो-द्व्यचः ५ ।१ असंख्या-परिमाण-अश्वादेः ५ ।१ यत् १ ।१।

स०–द्वावचौ यस्मिँस्तत्-द्व्यच्। गौश्च द्व्यच् च एतयोः समाहारो गोद्व्यच्, तस्मात्-गोद्व्यचः (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)। अश्व आदिर्येषां तेऽश्वादयः। संख्या च परिमाणं च अश्वादयश्च एतेषां समाहारः संख्यापरिमाणाश्वादि, न संख्यापरिमाणाश्वादि-असंख्यापरिमाणाश्वादिः, तस्मात्-असंख्यापरिमाणाश्वादेः (बहुव्रीहिसमाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–तस्य, निमित्तम्, संयोगोत्पातौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य असंख्यापरिमाणाश्वादेर्गोर्द्व्यचो निमित्तं यत्, संयोगोत्पातौ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्या-परिमाण-अश्वादिवर्जिताद् गो-शब्दाद् द्व्यचश्च प्रातिपदिकाद् निमित्तमित्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यन्निमित्तं संयोग उत्पातो वा स भवति।

उदा०–**(गौः)** गोर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा-गव्यः। **(द्व्यच्)** धनस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा-धन्यम्। स्वर्ग्यम्। यशस्यम्। आयुष्यम्।

अश्व। अश्मन्। गण। ऊर्णा। उमा। वसु। वर्ष। भङ्ग। इत्यश्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोद्व्यचः) गौ शब्द और द्वि-अच् वाले प्रातिपदिक से (निमित्तम्) निमित्त अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (संयोगोत्पातौ) जो निमित्त है यदि वह संयोग वा उत्पात हो। अस्वाभाविक निमित्त संयोग और स्वाभाविक निमित्त उत्पात कहाता है।*

उदा०-(गौ) गौ का निमित्त (संयोग-उत्पात)-गव्य। (द्वि-अच्) धन का निमित्त-धन्य। स्वर्ग का निमित्त-स्वर्ग्य। यश का निमित्त-यशस्य। आयुष् का निमित्त-आयुष्य।

सिद्धि-गव्यम्। *गो+ङस्+यत्। गो+य। गव्+य। गव्य+सु। गव्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'गो' शब्द से निमित्त (संयोग-उत्पात) अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। ऐसे ही-स्वर्ग्यम् आदि।*

छः+यत्–

(३) पुत्राच्छ च।३६।

प०वि०–पुत्रात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०–तस्य, निमित्तम्, संयोगोत्पातौ, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पुत्राद् निमित्तं छो यच्च, संयोगोत्पातौ।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पुत्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् निमित्तमित्यस्मिन्नर्थे छो यच्च प्रत्ययो भवति, यन्निमित्तं संयोग उत्पातो वा भवति।

उदा०–पुत्रस्य निमित्तं संयोग उत्पातो वा पुत्रीयम् (छः)। पुत्र्यम् (यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पुत्रात्) पुत्र प्रातिपदिक से (निमित्तम्) निमित्त अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं (संयोगोत्पातौ) जो निमित्त है यदि वह संयोग वा उत्पात हो।*

उदा०-पुत्र का निमित्त (संयोग-उत्पात)-पुत्रीय (छ)। पुत्र्य (यत्)।

सिद्धि-(१) पुत्रीयम्। पुत्र+ङस्+छ। पुत्र्+ईय। पुत्रीय+सु। पुत्रीयम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'पुत्र' शब्द से निमित्त अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

(२) पुत्र्यम्। यहां 'पुत्र' शब्द से पूर्ववत् इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

अण्+अञ्–

(४) सर्वभूमिपृथिवीभ्यामणञौ।४०।

प०वि०–सर्वभूमि-पृथिवीभ्याम् ५।२ अण्-अञौ १।२।

स०–सर्वा चेयं भूमिरिति सर्वभूमिः। सर्वभूमिश्च पृथिवी च ते सर्वभूमिपृथिव्यौ, ताभ्याम्-सर्वभूमिपृथिवीभ्याम् (कर्मधारयगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अण् च अञ् च तौ-अणञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, निमित्तम्, संयोगोत्पातौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सर्वभूमिपृथिवीभ्यां निमित्तम् अणञौ, संयोगोत्पातौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां निमित्तमित्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यम् अणञौ प्रत्ययौ भवतः, यन्निमित्तं संयोग उत्पातो वा भवति।

उदा०-(**सर्वभूमिः**) सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा-सार्वभौमः (अण्)। (**पृथिवी**) पृथिव्या निमित्तं संयोग उत्पातो वा-पार्थिवः (अञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्) सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिकों से (निमित्तम्) निमित्त अर्थ में (अणञौ) यथासंख्य अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं (संगोगात्पातौ) जो निमित्त है यदि वह संयोग वा उत्पात हो।*

उदा०-(सर्वभूमि) सर्वभूमि का निमित्त (संयोग-उत्पात)-सार्वभौम (अण्)। (पृथिवी) पृथिवी का निमित्त (संयोग-उत्पात)-पार्थिव।

सिद्धि-(१) सार्वभौमः। सर्वभूमि+ङस्+अण्। सार्वभौम्+अ। सार्वभौम+सु। सार्वभौमः।

*यहां षष्ठी-समर्थ 'सर्वभूमि' शब्द से निमित्त (संयोग-उत्पात) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। 'सर्वभूमि' शब्द का अनुशतिक-आदि गण में पाठ होने से **'अनुशतिकादीनां च'** (७।३।२०) से उभयपद-वृद्धि होती है। पूर्ववत् अंग के इकार का लोप होता है।*

*(२) **पार्थिवः**। यहां 'पृथिवी' शब्द से पूर्ववत् इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के ईकार का लोप होता है।*

ईश्वरार्थप्रत्ययविधिः

अण्+अञ्-

(१) तस्येश्वरः।४१।

प०वि०-तस्य ६।१ ईश्वरः १।१।

अनु०-सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्, अणञौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सर्वभूमिपृथिवीभ्याम् ईश्वरोऽणञौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् ईश्वर इत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(**सर्वभूमिः**) सर्वभूमेरीश्वरः-सार्वभौमः (अण्)। (**पृथिवी**) पृथिव्या ईश्वरः-पार्थिवः (अञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्) सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिकों से (ईश्वरः) ईश्वर=राजा अर्थ में यथासंख्य में (अणञौ) अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(सर्वभूमि) सर्वभूमि का ईश्वर=राजा-सार्वभौम (अण्)। (पृथिवी) पृथिवी का ईश्वर=राजा-पार्थिव (अञ्)।

*सिद्धि-(१) **सार्वभौमः।** सर्वभूमि+ङस्+अण्। सार्वभौम्+अ। सार्वभौम+सु। सार्वभौमः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'सर्वभूमि' शब्द से ईश्वर अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **पार्थिवः।** यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथिवी' शब्द से ईश्वर अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *'तस्य' की अनुवृत्ति विद्यमान होने पर पुनः 'तस्य' पद का पाठ 'निमित्त' अर्थ की अनुवृत्ति की निवृत्ति के लिये किया गया है अन्यथा संयोग-उत्पात के समान ईश्वर अर्थ भी निमित्त अर्थ का विशेषण बन जाता।*

विदितार्थप्रत्ययविधिः

अण्+अञ्–

(१) तत्र विदित इति च।४२।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम्, विदितः १।१ इति अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्।

अनु०-सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्, अणञौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र सर्वभूमिपृथिवीभ्यां विदित इति चाणञौ।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां सर्वभूमिपृथिवीभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विदित इति चेत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(सर्वभूमिः) सर्वभूमौ विदितः-सार्वभौमः (अण्)। **(पृथिवी)** पृथिव्यां विदितः-पार्थिवः (अञ्)। विदितः=ज्ञातः, प्रकाशित इत्यर्थः। इतिकरणो विवक्षार्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (सर्वभूमिपृथिवीभ्याम्) सर्वभूमि और पृथिवी प्रातिपदिकों से (विदितः) प्रसिद्ध (इति) इस अर्थ में (च) भी यथासंख्य (अणञौ) अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(सर्वभूमि) सर्वभूमि पर जो विदित (प्रसिद्ध) है वह-सार्वभौम (अण्)।(पृथिवी) पृथिवी पर जो विदित है वह-पार्थिव (अञ्)।

*सिद्धि-(१) **सार्वभौम:।** यहां षष्ठी-समर्थ 'सर्वभूमि' शब्द से विदित अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **पार्थिव:।** यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथिवी' शब्द से विदित अर्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ठञ्-

(२) लोकसर्वलोकाट्ठञ्।४३।

प०वि०-लोक-सर्वलोकात् ५।१ ठञ् १।१।

स०-लोकश्च सर्वलोकाश्च एतयो: समाहारो लोकसर्वलोकम्, तस्मात्-लोकसर्वलोकात् (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-तत्र, विदित इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तत्र लोकसर्वलोकाद् विदितष्ठञ्।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां लोकसर्वलोकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां विदित इत्यस्मिन्नर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(लोक:)** लोके विदित:-लौकिक:। **(सर्वलोक:)** सर्वलोकेषु विदित:-सार्वलौकिक:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (लोकसर्वलोकात्) लोक और सर्वलोक प्रातिपदिकों से (विदित:) प्रसिद्ध अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(लोक)** लोक में जो विदित है वह-लौकिक। **(सर्वलोक)** सब लोकों में जो विदित है वह-सार्वलौकिक।*

*सिद्धि-(१) **लौकिक:।** लोक+ङि+ठञ्। लौक्+इक। लौकिक+सु। लौकिक:।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'लोक' शब्द से विदित अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **सार्वलौकिक:।** सर्वलोक+सुप्+ठञ्। सार्वलौक्+इक। सार्वलौकिक+सु। सार्वलौकिक:।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'सर्वलोक' शब्द से विदित अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। 'अनुशतिकादीनां च' (७।३।२०) से अंग को उभयपदवृद्धि होती है।

वापार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तस्य वापः।४४।

प०वि०-तस्य ६।१ वापः १।१।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् वापो यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् वाप इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति। उप्यतेऽस्मिन्निति वापः क्षेत्रमुच्यते। अत्र 'हलश्च' (३।३।१२१) इत्यधिकरणे कारके घञ् प्रत्ययः।

उदा०-प्रस्थस्य वापः-प्रास्थिकं क्षेत्रम्। द्रौणिकं क्षेत्रम्। खारीकं क्षेत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (वापः) बुवाई-क्षेत्र अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रस्थ बीज इसमें बोया जाता है यह-प्रास्थिक क्षेत्र। द्रोण बीज इसमें बोया जाता है यह-द्रौणिक क्षेत्र। खारी बीज इसमें बोया जाता है यह-खारिक क्षेत्र।

विशेषः *प्रस्थ=५० तोले (१० छटांक)। द्रोण=८०० तोले (१० सेर)। खारी=१६० सेर (४ मण)। ४ प्रस्थ का एक आढक, ४ आढक का एक द्रोण और १६ द्रोण की एक खारी होती है।*

ष्ठन्–

(२) पात्रात् ष्ठन्।४५।

प०वि०-पात्रात् ५।१ ष्ठन् १।१।

अनु०-तस्य, वाप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पात्राद् वापः ष्ठन्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् पात्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् वाप इत्यस्मिन्नर्थे ष्ठन् प्रत्ययो भवति। पात्रशब्दोऽत्र परिमाणवाची वर्तते।

उदा०-पात्रस्य वापः-पात्रिकं क्षेत्रम्। पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पात्रात्) पात्र प्रातिपदिक से (वापः) बुवाई-क्षेत्र अर्थ में (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होता है। पात्र शब्द यहां परिमाण-वाचक है।*

उदा०-पात्र का वाप-पात्रिक क्षेत्र (खेत)। पात्र का वाप-पात्रिकी क्षेत्रभक्ति (क्यारी)।

सिद्धि-पात्रिकम्। *पात्र+ङस्+ष्ठन्। पात्र्+इक। पात्रिक+सु। पात्रिकम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पात्र' शब्द से वाप-अर्थ में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से ***'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'*** *(६ ।१ ।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-***पात्रिकम्।** *प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'षिद्गौरादिभ्यश्च'*** *(४ ।१ ।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है-***पात्रिकी क्षेत्रभक्तिः।** *पात्र=आढक (४ प्रस्थ का कटोरा=ढईया)*

अस्मिन् दीयते-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तदस्मिन् वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते।४६।

प०वि०-तत् १ ।१ अस्मिन् ७ ।१ वृद्धि-आय-लाभ-शुल्क-उपदाः १ ।३ दीयते क्रियापदम्।

स०-वृद्धिश्च आयश्च लाभश्च शुल्कश्च उपदा च ता वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्मिन् यथाविहितं प्रत्ययो वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं वृद्ध्यादिकं चेत् तद् दीयते।

(१) यदधमर्णेन उत्तमार्णाय मूलधनातिरिक्तं देयं तत्-वृद्धिः। (२) ग्रामादिषु स्वामिग्राह्यो भागः-आयः। (३) पटादीनामुपादानमूलादतिरिक्तं द्रव्यम्-लाभः। (४) रक्षानिर्देशो राजभागः-शुल्कः। (५) उत्कोचः-उपदा।

उदा०-पञ्च अस्मिन् वृद्धिर्वाऽऽयो वा लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते-पञ्चकः। सप्तकः। शत्यः। शतिकः। साहस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते) जो प्रथमासमर्थ है यदि वह वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा रूप में दिया जाता हो।*

(१) जो कर्जदार के द्वारा साहूकार को मूलधन के अतिरिक्त राशि दी जाती है वह ***'वृद्धि'*** *कहाती है। (२) ग्राम आदि में ग्रामाधिपति के द्वारा ग्राह्य भाग* ***'आय'*** *कहाता है।*

*(३) पट आदि के उपादानमूल (सूत आदि की लागत) से अतिरिक्त द्रव्य की प्राप्ति **'लाभ'** कहाता है। (४) रक्षा की दृष्टि से निश्चित किया गया राजभाग 'शुल्क' कहाता है। (५) उत्कोच=घूस, रिश्वत को 'उपदा' कहते हैं।*

उदा०-पञ्च=पांच कार्षापण इस व्यवहार में वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क वा उपदा रूप में दिये जाते हैं यह-पञ्चक। सप्त=सात कार्षापण इस व्यवहार में वृद्धि आदि रूप में दिये जाते हैं यह-सप्तक। शत=सौ कार्षापण इस व्यवहार में वृद्धि आदि रूप में दिये जाते हैं यह-शत्य अथवा शतिक। सहस्र=हजार कार्षापण इस व्यवहार में वृद्धि आदि रूप में दिये जाते हैं यह-साहस्र।

*सिद्धि-(१) **पञ्चकः।** यहां प्रथमा-समर्थ 'पञ्च' शब्द से अस्मिन् अर्थ में तथा **'वृद्धि-आदिकं दीयते'** अभिधेय में **'संख्याया अतिशदन्तयाः कन्'** (५।१।२२) से यथाविहित 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सप्तकः।***

*(२) **शत्यः/शतिकः।** यहां 'शत' शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में **'शताच्च ठन्यतावशते'** (५।१।२१) से क्रमशः यथाविहित यत् और ठन् प्रत्यय हैं।*

*(३) **साहस्रः।** यहां 'सहस्र' शब्द से पूर्वोक्त अर्थ में **'शतमानविंशतिक-सहस्रवसनादण्'** (५।१।२७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है।*

***विशेषः** सूत्रपाठ में 'वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः' पद बहुवचनान्त है और 'दीयते' पद एकवचनान्त है। यहां वृद्धि आदि प्रत्येक एकवचनान्त रूप पद के साथ अन्वय के लिये 'दीयते' पद एकवचनान्त रूप में पढ़ा गया है।*

ठन्-

(२) पूरणार्धाट्ठन्।४७।

प०वि०-पूरण-अर्धात् ५।१ ठन् १।१।

स०-पूर्यति येनार्थेन स पूरणः। पूरणश्च अर्धं च एतयोः समाहारः पूरणार्धम्, तस्मात्-पूरणार्धात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्मिन्, वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदाः, दीयते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पूरणार्धाद् अस्मिन् ठन्, वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् पूरणवाचिनः शब्दाद् अर्धशब्दात् प्रातिपदिकाच्चास्मिन्नित्यर्थे ठन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं वृद्ध्यादिकं चेत् तद् दीयते।

उदा०-(**पूरण:**) द्वितीयमस्मिन् वृद्धिर्वाऽऽयो वा लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते-द्वितीयिक:। तृतीयिक:। पञ्चमिक:। सप्तमिक:। (**अर्धम्**) अर्धमस्मिन् वृद्धिर्वाऽऽयो वा लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते-अर्धिक:। अर्धशब्दो रूपकार्धस्य रूढिर्वर्तति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पूरणार्धात्) पूरण-प्रत्ययान्त और अर्ध प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-अर्थ में (ठन्) ठन् प्रत्यय होता है (वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा रूप में दिया जाता हो।*

उदा०-(पूरण) द्वितीय=दूसरा इस व्यवहार में वृद्धि, आय, लाभ, शुल्क और उपदा दिया जाता है यह-द्वितीयिक। तृतीय=तीसरा इस व्यवहार में वृद्धि-आदि दिया जाता है यह-तृतीयिक। पञ्चम=पांचवां इसमें वृद्धि आदि दिया जाता है यह-पञ्चमिक। सप्तम=सातवां इसमें वृद्धि-आदि दिया जाता है यह-सप्तमिक। (**अर्धम्**) *अर्ध=आधा कार्षापण (आधे रुपये) इस व्यवहार में वृद्धि-आदि दिया जाता है यह-अर्धिक। अर्ध-शब्द आधा रुपया अर्थ में रूढ है।*

सिद्धि-(१) ***द्वितीयिक:।*** *द्वि+ओस्+तीय। द्वि+तीय। द्वितीय+सु+ठन्। द्वितीय्+इक। द्वितीयिक+सु। द्वितीयिक:।*

यहां प्रथम 'द्वि' शब्द से पूरण-अर्थ में **द्वेस्तीय:'** *(५।२।५४) से तीय प्रत्यय है। तत्पश्चात् पूरण-प्रत्ययान्त 'द्वितीय' शब्द से अस्मिन्-अर्थ में तथा* **'वृद्ध्यादिकं दीयते'** *अभिधेय में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-***तृतीयिक:।**

(२) ***पञ्चमिक:।*** *यहां प्रथम 'पञ्चन्' शब्द से पूरण अर्थ में* **'नान्तादसंख्यादेर्मट्'** *(५।२।४९) से 'डट्' प्रत्यय और उसे मट्-आगम होने पर 'पञ्चम' शब्द सिद्ध होता है। तत्पश्चात् पूरण-प्रत्ययान्त 'पञ्चम' शब्द से अस्मिन्-अर्थ में तथा* **'वृद्ध्यादिकं दीयते'** *अभिधेय में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-***साप्तमिक:।**

(३) ***अर्धिक:।*** *यहां रूपक-अर्ध अर्थ में रूढ 'अर्ध' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है।*

यत्+ठन्-

(३) भागाद् यच्च।४८।

प०वि०-भागात् ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्मिन्, वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा:, दीयते, ठन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् भागाद् अस्मिन् यत् ठँश्च, वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् भाग-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे यत् ठँश्च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं वृद्ध्यायलाभशुल्कोपदा दीयते चेत् तद् भवति।

उदा०-भागोऽस्मिन् वृद्धिर्वाऽऽयो लाभो वा शुल्को वा उपदा वा दीयते-भाग्यं शतम् (यत्)। भागिकं शतम् (ठन्)। भाग्या विंशतिः (यत्)। भागिका विंशतिः (ठन्)। भागशब्दोऽपि रूपकार्धस्य वाचको वर्तते।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (भागात्) भाग प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-अर्थ में (यत्) यत् (च) और (ठन्) ठन् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-भाग (आधा कार्षापण) इस व्यवहार में वृद्धि आदि रूप में दिया जाता है यह-भाग्य शत कार्षापण (यत्)। भागिक शत कार्षापण अर्थात् शत (सौ) कार्षापण के आधे पचास कार्षापण वृद्धि आदि रूप में दिये जाते हैं वह व्यवहार-भाग्य अथवा भागिक कहाता है। ऐसे ही-भाग्या अथवा भागिका विंशति (बीस कार्षापण)। भाग शब्द रूपक-अर्ध (आधे रुपये) का वाचक है।

सिद्धि-(१) __भाग्यम्__। भाग+सु+यत्। भाग्+य। भाग्य+सु। भाग्यम्।

यहां प्रथमा-समर्थ 'भाग' शब्द से अस्मिन् अर्थ में तथा __'वृद्ध्यादिकं दीयते'__ अभिधेय में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में __'अजाद्यतष्टाप्'__ (४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है-__भाग्या विंशतिः__।

(२) __भागिकम्__। भाग+सु+ठन्। भाग्+इक। भागिक+सु। भागिकम्।

यहां 'भाग' शब्द से पूर्ववत् इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में पूर्ववत् टाप् प्रत्यय होता है-__भागिका विंशतिः__।

हरति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) तद्धरतिवहत्यावहति भाराद् वंशादिभ्यः।४६।

प०वि०-तत् २।१ हरति क्रियापदम्, वहति क्रियापदम्, आवहति क्रियापदम्, भारात् ५।१, वंशादिभ्यः ५।३।

स०-वंश आदिर्येषां ते वंशादयः, तेभ्यः-वंशादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-तद् वंशादिभ्यो भाराद् हरति, वहति, आवहति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् हरति, वहति, आवहति इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-वंशभारं हरति, वहति, आवहति वा-वांशभारिकः। कौटजभारिकः। बाल्वजभारिकः, इत्यादिकम्।

हरति=देशान्तरं प्रापयति चोरयति वा। वहति=उत्क्षिप्य धारयति। आवहति=आनयति।

वंश। कुटज। बल्वज। मूल। अक्ष। स्थूणा। अश्मन्। अश्व। इक्षु। खट्वा। इति वंशादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (वंशादिभ्यः) वंश-आदि शब्दों से परे विद्यमान (भारात्) भार प्रातिपदिक से (हरति) ले जाता है/चुराता है (वहति) उठाता है (आवहति) लाता है अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-वंशभार (बांस का गट्ठा) को जो हरण करता है, उठाता है अथवा लाता है वह-वांशभारिक। कुटजभार (कुटज=ओषधीवृक्ष का गट्ठा) को जो हरण करता है, उठाता है अथवा लाता है वह-कौटजभारिक। बल्वजभार (घासविशेष का गट्ठा) को जो हरण करता है, उठाता है अथवा लाता है वह-बाल्वजभारिक।

सिद्धि-वांशभारिकः। *वंशभार+अम्+ठञ्। वांशभार्+इक। वांशभारिक+सु। वांशभारिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'वंशभार' शब्द से हरति-आदि अर्थों में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौटजभारिकः, बाल्वजभारिकः** आदि।*

ठन्+कन्-

(२) वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ।५०।

प०वि०-वस्न-द्रव्याभ्याम् ५।२ ठन्-कनौ १।२।

स०-वस्नं च द्रव्यं च ते वस्नद्रव्ये, ताभ्याम्-वस्नद्रव्याभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ठन् च कन् च तौ-ठन्कनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, हरति, वहति, आवहति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वस्नद्रव्याभ्यां हरति, वहति, आवहति ठन्कनौ।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां वस्नद्रव्याभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां हरति, वहति, आवहति इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं ठन्कनौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(वस्नम्)** वस्नं हरति, वहति, आवहति वा-वस्निको वणिक् (ठन्)। **(द्रव्यम्)** द्रव्यं हरति, वहति, आवहति वा-द्रव्यको वणिक् (कन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (वस्नद्रव्याभ्याम्) वस्न और द्रव्य प्रातिपदिकों से (हरति, वहति, आवहति) हरण करता है, उठाता है और लाता है अर्थों में यथासंख्य (ठन्कनौ) ठन् और कन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-वस्न=मूल्य (पूंजी) को जो हरण करता है, उठाता है वा लाता है वह-वस्निक व्यापारी। द्रव्य=माल को जो हरण करता है, उठाता है=ढोता है वा लाता है वह-द्रव्यक व्यापारी।

सिद्धि-(१) **वस्निकः।** *वस्न+अम्+ठन्। वस्न्+इक। वस्निक+सु। वस्निकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'वस्न' शब्द से हरति-आदि अर्थों में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है।

(२) **द्रव्यकः।** *द्रव्य+अम्+कन्। द्रव्य+क। द्रव्यक+सु। द्रव्यकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'द्रव्य' शब्द से हरति-आदि अर्थों में 'कन्' प्रत्यय है।

विशेषः *"एक व्यापारी काशी से तक्षशिला तक जाकर अपना माल बेचने के लिये घर से निकलता है। जब वह काशी से चला तो काशी के व्यापारियों की भाषा में वह-'हरति=देशान्तरं प्रापयति' वह माल लादकर चलता है, इस अर्थ में 'द्रव्यक' कहलाता था। मार्ग में वह मथुरा पहुंचा तो मथुरा के व्यापारी उसे वहति-अर्थ में 'द्रव्यक' कहते थे अर्थात् जो उनके नगर से होता हुआ माल ले जा रहा है। वही वणिक् जब अपने गन्तव्य स्थान तक्षशिला में पहुंचता है तब वहां के व्यापारी उसे आवहति-अर्थ में 'द्रव्यक' कहते थे अर्थात् वह हमारे नगर में माल लेकर आ रहा है। इस प्रकार वह माल बेचकर पूंजी कमाता हुआ चलता था।*

तक्षशिला में बिक्री समाप्त करके वह अपनी पूंजी लेकर काशी की ओर लौटता था तब वह 'वस्निक' कहलाने लगता था। तक्षशिला के व्यापारी हरति-अर्थ में उसे 'वस्निक' कहते थे अर्थात् वह बिक्री से मिली हुई आय जिसमें पूंजी और लाभ दोनों शामिल थे, ले जा रहा है (यहां भी हरति=देशान्तरं प्रापयति)। मार्ग में मथुरा के व्यापारी उसे वहति-अर्थ में 'वस्निक' कहते थे अर्थात् वह बिक्री का द्रव्य लेकर उनके नगर से जा रहा

है। जब वह काशी पहुंचने को होता तब वहां के लोग उसके लिये आवहति-अर्थ में 'वस्निक' शब्द का प्रयोग करते थे अर्थात् वह बिक्री की रोकड़ ला रहा है" (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २३३)।

सम्भवति-आद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) सम्भवत्यवहरति पचति।५१।

प०वि०-सम्भवति क्रियापदम्, अवहरति क्रियापदम्, पचति क्रियापदम्।

अनु०-तद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकात् सम्भवति, अवहरति, पचति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् सम्भवति, अवहरति, पचति इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रस्थं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-प्रास्थिकः। कौडविकः। खारीकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (सम्भवति) धारण कर सकता है (अवहरति) कम धारण करता है (पचति) पकाता है अर्थों में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रस्थ (१० छटांक) को जो धारण कर सकता है, उससे कम को धारण कर सकता है वा पकाता है वह-प्रास्थिक पात्र। कुडव (१६ तोला) को जो धारण कर सकता है, उससे कम को धारण कर सकता है वा उसे पकाता है वह-कौडविक। खारी (४ मण) को धारण कर सकता है, उससे कम को धारण करता है वा पकाता है वह-खारीक, कडाहा आदि।

सिद्धि-(१) प्रास्थिकः। प्रस्थ+अम्+ठञ्। प्रास्थ्+क। प्रास्थिक+सु। प्रास्थिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'प्रस्थ' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-कौडविकः।

*(२) **खारीकः।** यहां द्वितीया-समर्थ 'खारी' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में **'खार्या ईकन्'** (५।१।३३) से 'ईकन्' प्रत्यय है।*

ख-विकल्पः–

(२) आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम् ।५२।

प०वि०-आढक-आचित-पात्रात् ५।१ खः १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम् ।

स०-आढकं च आचितं च पात्रं च एतेषां समाहारः आढकाचितपात्रम्, तस्मात्-आढकाचितपात्रात् (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०-तत्, सम्भवति, अवहरति, पचति इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तद् आढकाचितपात्रात् सम्भवति, अवहरति, पचत्यन्यतरस्यां खः ।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्य आढकाचितपात्रेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सम्भवति, अवहरति, पचति इत्येतेष्वर्थेषु विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति ।

उदा०-**(आढकम्)** आढकं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-आढकीना स्थाली (खः) । आढकिकी स्थाली (ठञ्) । **(आचितम्)** आचितं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-आचितीना स्थाली (खः) । आचितिकी स्थाली (ठञ्) । **(पात्रम्)** पात्रं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-पात्रीणा स्थाली (खः) । पात्रिकी स्थाली (ठञ्) ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (आढकाचितपात्रात्) आढक, आचित, पात्र प्रातिपदिकों से (सम्भवति) धारण कर सकता है (अवहरति) कम धारण कर सकता है (पचति) पकाता है अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में औत्सर्गिक ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(आढक)** आढक=ढाई सेर को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है, उसे पकाती है-वह आढकीना स्थाली (पतीली) (ख)। आढकिकी स्थाली (ठञ्)। **(आचित)** आचित=२५ मण को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है वा उसे पकाती है वह-आचितीना स्थाली (ख)। आचितिकी स्थाली (ठञ्)। **(पात्र)** पात्र ढाई सेर को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है वा उसे पकाती है वह-पात्रीणा स्थाली (ख)। पात्रिकी स्थाली (ठञ्)।*

सिद्धि-(१) आढकीना। आढक+अम्+ख। आढक्+ईन। आढकीन+टाप्। आढकीना+सु। आढकीना।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'आढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा (स्थाली) में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**आचितीना, पात्रीणा।***

*(२) **आढकिकी।** आढक+अम्+ठञ्। आढक्+इक। आढकिक+ङीप्। आढकिकी+सु। आढकिकी।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'आढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में विकल्प पक्ष में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा (स्थाली) में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**आचितिकी, पात्रिकी।***

ष्ठन्+खः+ठञ्–

(३) द्विगोः ष्ठँश्च।५३।

प०वि०–द्विगोः ५।१ ष्ठन् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तत्, सम्भवति, अवहरति, पचति, आढकाचितपात्रात्, खः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् द्विगोराढकाचितपात्रात् सम्भवति, अवहरति, पचति ष्ठन् अन्यतरस्यां खश्च।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यो द्विगुसंज्ञकेभ्य आढकाचितपात्रेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सम्भवति, अवहरति, पचति इत्येतेष्वर्थेषु ष्ठन् विकल्पेन च खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(आढकम्)** द्व्याढकं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-द्व्यादकिकी (ष्ठन्)। द्व्याढकीना (खः)। द्व्याढकी कटाही (ठन्-लुक्)। **(आचितम्)** द्व्याचितं सम्भवति, अवहरति पचति वा-द्व्याचितिकी (ष्ठन्)। द्व्याचितीना (खः)। द्व्याचिता महाकटाही (ठञ्-लुक्)। **(पात्रम्)** द्विपात्रं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-कटाही। द्विपात्रिकी (ष्ठन्)। द्विपात्रीणा (खः)। द्विपात्रा कटाही (ठञ्-लुक्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (आढकाचितपात्रात्) आढक, आचित, पात्र प्रातिपदिकों से (सम्भवति) धारण कर सकता है (अवहरति) कम धारण कर सकता है (पचति) पकाता है अर्थों में (ष्ठन्) ष्ठन् (च) और (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में **औत्सर्गिक ठञ्** प्रत्यय होता है।*

उदा०-(आढक) द्वि-आढक (पांच सेर) को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है, उसे पकाती है वह-द्व्याढकिकी (ष्ठन्)। द्व्याढकीना (ख)। द्व्याढकी कढाही (ठञ्-लुक्)। **(आचित)** द्वि-आचित (५० मण) को जो धारण कर सकती है, उससे कम को धारण करती है, उसे पकाती है वह-द्व्याचितिकी (ष्ठन्)। द्व्याचितीना (ख)। द्व्याचिता (ठञ्-लुक्) बहुत बड़ी कढाही। **(पात्र)** द्विपात्र=(५ सेर) को धारण कर सकती है, उससे कम को धारण कर सकती है, उसे पकाती है वह-द्विपात्रिकी (ष्ठन्)। द्विपात्रीणा (ख)। द्विपात्रा (ठञ्-लुक्) कढाही।

सिद्धि-(१) **द्व्याढकिकी**। द्व्याढक+अम्+ष्ठन्। द्व्याढक्+इक। द्व्याढकिक+ङीप्। द्व्याढकिकी+सु। द्व्याढकिकी।

यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्व्याढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में इस सूत्र से 'ष्ठन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा (कढाही) में ङीष् प्रत्यय होता है। प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९७) से आद्युदात्त स्वर होता है-**द्व्याढकिकी**। ऐसे ही-**द्व्याचितिकी, द्विपात्रिकी**।

(२) **द्व्याढकीना**। द्व्याढक+अम्+ख। द्व्याढक्+ईन। द्व्याढकीन+टाप्। द्व्याढकीना+सु। द्व्याढकीना।

यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्व्याढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में (कटाही) **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**द्व्याचितीना, द्विपात्रीणा**।

(३) **द्व्याढकी**। द्व्याढक+अम्+ठञ्। द्व्याढक+०। द्व्याढक+ङीप्। द्व्याढकी+सु। द्व्याढकी।

यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्व्याढक' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में विकल्प पक्ष में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है। **'अध्यर्धपूर्वाद् द्विगोर्लुगसंज्ञायाम्'** (५।१।२८) से उसका लुक् हो जाता है। स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में **'द्विगोः'** (४।१।२१) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**द्विपात्री**।

(४) **द्व्याचिता**। यहां 'द्व्याचित' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय का लुक् हो जाने पर **'अपरिमाणबिस्ताचितकम्बल्येभ्यो न तद्धितलुकि'** (४।१।२२) से ङीप् प्रत्यय का प्रतिषेध हो जाता है। अतः **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय होता है।

लुक्, ठञ्, खः, ष्ठन्-

(४) कुलिजाल्लुक्खौ च।५४।

प०वि०-कुलिजात् ५।१ लुक्-खौ १।२।

स०-लुक् च खश्च तौ लुक्खौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, सम्भवति, अवहरति, पचति, अन्यतरस्याम्, द्विगोः, ष्ठन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् द्विगोः कुलिजात् सम्भवति, अवहरति, पचति अन्यतरस्यां लुक्खौ ष्ठँश्च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् द्विगुसंज्ञकात् कुलिज-शब्दात् प्रतिपदिकात् सम्भवति, अवहरति, पचति इत्येतेष्वर्थेषु विकल्पेन प्रत्ययस्य लुक्, खः, ष्ठँश्च प्रत्ययो भवति। पक्षे च ठञ् प्रत्ययो भवति तस्यैव च वा लुग् भवति।

उदा०-कुलिजं सम्भवति, अवहरति, पचति वा-द्विकुलिजी (ठञ्-लुक्)। द्वैकुलिजिकी (ठञ्)। द्विकुलिजीना (खः)। द्विकुलिजिकी कटाही (ष्ठन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (कुलिजात्) कुलिज प्रातिपदिक से (सम्भवति) धारण कर सकता है (अवहरति) कम धारण कर सकता है (पचति) पकाता है अर्थों में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लुक्खौ) औत्सर्गिक ठञ्-प्रत्यय का लुक्, ठञ्-प्रत्यय, ख (च) और (ष्ठन्) ष्ठन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-द्विकुलिज=दो कुलिजों को जो धारण कर सकती है, उससे कम धारण कर सकती है, उसे पकाती है वह-कुलिजा (ठञ्-लुक्)। द्वैकुलिजिकी (ठञ्)। द्विकुलिजीना (ख)। द्विकुलिजिकी कटाही (ष्ठन्)।

सिद्धि-(१) द्विकुलिजी। द्विकुलिज+अम्+ठञ्। द्विकुलिज+०। द्विकुलिज+ङीप्। द्विकुलिजी+सु। द्विकुलिजी।

*यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्विकुलिज' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय और इस सूत्र से उसका लुक् होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में **'द्विगोः'** (४।१।२१) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

*(२) **द्वैकुलिजिकी**। यहां द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक 'द्विकुलिज' शब्द से सम्भवति-आदि अर्थों में पूर्ववत् औत्सर्गिक 'ठञ्' प्रत्यय है और उसका विकल्प पक्ष में लुक् नहीं होता है। **'परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणकुलिजानाम्'** (७।३।१७) इस सूत्रपाठ से उत्तरपद 'कुलिज' शब्द को वृद्धि नहीं होती है। स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

*(३) **द्विकुलिजीना**। यहां 'द्विकुलिज' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

(४) द्विकुलिजिकी। यहां 'द्विकुलिज' शब्द से पूर्ववत् 'ष्ठन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा (कटाही) में 'ङीष्' प्रत्यय होता है।

विशेषः (१) पाणिनि ने 'प्रस्थ' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। कौटिल्य के समय वह बहुत चालू शब्द था। साढ़े बारह पल या ५० तोले या ढाई पाव की तोल 'प्रस्थ' कहलाती थी। अनुमान है कि पाणिनि ने उसी के लिये 'कुलिज' शब्द का प्रयोग किया है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २४४)।

(२) संस्कृत भाषा का 'कुलि' शब्द 'हाथ' का वाचक है (शब्दार्थकौस्तुभ) उससे उत्पन्न परिमाण 'कुलिज' कहलाता है। अतः 'कुलिज' शब्द का अर्थ अञ्जलि (आंजळा) है।

अस्य-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) सोऽस्यांशवस्नभृतयः।५५।

प०वि०-सः १।१ अस्य ६।१ अंश-वस्न-भृतयः १।३।

स०-अंशश्च वस्नं च भृतिश्च ता अंशवस्नभृतयः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-स प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययः, अंशवस्नभृतयः।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अंशवस्नभृतयश्चेत् ता भवन्ति। अंशः=भागः। वस्नम्=मूल्यम्। भृतिः=वेतनम्।

उदा०-पञ्च अंशो वस्नं भृतिर्वाऽस्य-पञ्चकः। सप्तकः। साहस्रः।

आर्यभाषाः अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (अंशवस्नभृतयः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अंश=भाग, वस्न=मूल्य (लागत) और भृति=वेतन हो।

उदा०-पञ्च=पांच कार्षापण अंश (भाग) है इसका यह-पञ्चक व्यापार। पञ्च=पांच कार्षापण वस्न (लागत मूल्य) है इसका यह-पञ्चक पट (कपड़ा)। पञ्च=पांच कार्षापण भृति=वेतन है इसका यह-पञ्चक कर्मचारी। सप्त=सात कार्षापण अंश, वस्न वा भृति है इसकी यह-सप्तक। सहस्र=हजार कार्षापण अंश, वस्न वा भृति है इसकी यह-साहस्र।

उदा०-(१) पञ्चकः। पञ्चन्+जस्+कन्। पञ्च+क। पञ्चक+सु। पञ्चकः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'पञ्चन्' शब्द से अस्य-अर्थ में तथा अंश-आदि अभिधेय में 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' (५।१।२२) से यथाविहित कन् प्रत्यय है। 'नलोपः

प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'पञ्चन्' के नकार का लोप होता है। ऐसे ही-सप्तकः।

(२) साहस्रः। यहां प्रथमा-समर्थ 'सहस्र' शब्द से अस्य-अर्थ में तथा अंश-आदि अभिधेय में 'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्' (५।१।२७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है।

यथाविहितं प्रत्ययः–

(२) तदस्य परिमाणम्।५६।

प०वि०-तत् १।१ अस्य ६।१ परिमाणम् १।१।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं प्रत्ययः, परिमाणम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं परिमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-प्रस्थः परिमाणमस्य-प्रास्थिको राशिः। खारीकः। शत्यः। शतिकः। साहस्रः। द्रौणिकः। कौडविकः। वर्षशतं परिमाणमस्य-वार्षशतिकः। वार्षसहस्रिकः। षष्टिर्जीवितं परिमाणमस्य-षाष्टिकः। साप्ततिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (परिमाणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह परिमाण हो।*

उदा०-प्रस्थ (१० छटांक) परिमाण है इसका यह-प्रास्थिक राशि। खारी (४ मण) परिमाण है इसका यह-खारीक राशि। शत=सौ कार्षापण परिमाण है इसका यह-शत्य अथवा शतिक राशि। सहस्र=हजार कार्षापण परिमाण है इसका यह-साहस्र राशि। कुडव (ढाई छटांक) परिमाण है इसका यह-कौडविक। वर्ष शत=(सौ वर्ष) परिमाण है इसका यह वार्षशतिक यज्ञ। वर्ष सहस्र (हजार वर्ष) परिमाण है इसका यह-वार्षसहस्रिक। वंशपरम्परित महायज्ञ। षष्टि (साठ वर्ष) जीवन है इसका यह-षाष्टिक पुरुष। सप्तति (सत्तर वर्ष) जीवन है इसका यह-साप्ततिक पुरुष।

सिद्धि-(१) प्रास्थिकः। *प्रस्थ+सु+ठञ्। प्रास्थ्+इक। प्रास्थिक+सु। प्रास्थिकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'प्रस्थ' शब्द से अस्य-अर्थ में तथा परिमाण अभिधेय में ***'प्राग्वतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**द्रौणिकः, कौडविकः, वार्षशतिकः** आदि।*

(२) खारीकः। *यहां 'खारी' शब्द से* ***'खार्या ईकन्'*** *(५।१।३३) से यथाविहित 'ईकन्' प्रत्यय है।*

(३) शत्यः/शतिकः। यहां 'शत' शब्द से 'शताच्च ठन्यतावशते' (५।१।२१) से यथाविहित क्रमशः यत् और 'ठन्' प्रत्यय हैं।

(४) साहस्रः। यहां 'सहस्र' शब्द 'शतमानविंशतिकसहस्रवसनादण्' (५।१।२७) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है।

यथाविहितं प्रत्ययः—

(३) संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु।५७।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ संज्ञा-सङ्घ-सूत्र-अध्ययनेषु ७।३।

स०-संज्ञा च सङ्घश्च सूत्रं च अध्ययनं च तानि संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनानि, तेषु-संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, परिमाणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् संख्याया अस्य यथाविहितं प्रत्ययः, परिमाणम्, संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं परिमाणं चेत्, यच्चास्येति षष्ठीनिर्दिष्टं संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनानि चेत् तद् भवति, तत्र संज्ञायां स्वार्थे प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-**(संज्ञा)** त्रय एव त्रिकाः शालङ्कायनाः पञ्च एव पञ्चकाः शकुनयः। **(सङ्घ)** पञ्च परिमाणमस्य-पञ्चकः सङ्घः। अष्टकः। सङ्घः=प्राणिसमूहः। **(सूत्रम्)** अष्टावध्यायाः परिमाणमस्य सूत्रस्य-अष्टकं पाणिनीयम्। दशकं वैयाघ्रपदीयम्। त्रिकं काशकृत्स्नम्। **(अध्ययनम्)** पञ्चावृत्तयः परिमाणमस्याध्ययनस्य-पञ्चकमध्ययनम्। सप्तकम्। अष्टकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (परिमाणम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह परिमाण हो (संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु) और जो षष्ठी-अर्थ है यदि वह संज्ञा, संघ, सूत्र, अध्ययन हो। उनमें संज्ञा अर्थ में स्वार्थ में प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(संज्ञा)** तीन ही-त्रिक शालङ्कायन। पांच ही-पञ्चक शकुनि (पक्षी)। **(संघ)** पांच है परिमाण इसका यह-पञ्चक संघ (प्राणिसमूह)। सात है परिमाण इसका*

यह-सप्तक संघ। आठ है परिमाण इसका यह-अष्टक संघ। **(सूत्र)** *आठ अध्याय है परिमाण इस सूत्र का यह-अष्टक पाणिनीय। दश अध्याय है परिमाण इस सूत्र का यह-दशक वैयाघ्रपदीय। आचार्य व्याघ्रपात् द्वारा रचित दश-अध्यायात्मक व्याकरणशास्त्र। आचार्य व्याघ्रपात् पाणिनि मुनि से प्राचीन हैं। तीन अध्याय है परिमाण इसका यह-त्रिक काशकृत्स्न। आचार्य काशकृत्स्न द्वारा रचित तीन अध्याय आत्मक व्याकरणशास्त्र। आचार्य काशकृत्स्न पाणिनि मुनि से प्राचीन हैं।* **(अध्ययन)** *पांच आवृत्तियां परिमाण है इस अध्ययन (पाठ) की यह-पञ्चक अध्ययन। सात आवृत्तियां परिमाण है इस अध्ययन की यह-सप्तक अध्ययन। आठ आवृत्तियां परिमाण है इस अध्ययन की यह-अष्टक अध्ययन।*

सिद्धि-त्रिकाः। त्रि+जस्+कन्। त्रि+क। त्रिक+जस्। त्रिकाः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'त्रि' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ अभिधेय में 'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्' (५।१।२२) से यथाविहित 'कन्' प्रत्यय है। यहां संज्ञा-अभिधेय में स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है, परिमाण अर्थ में नहीं। 'त्रिक' यह शालङ्कायन लोगों की संज्ञा है। ऐसे ही पञ्चकाः 'आदि।

निपातनम्–

(४) पङ्क्तिविंशतित्रिंशच्चत्वारिंशत्पञ्चाशत्षष्टि-सप्तत्यशीतिनवतिशतम्।५८।

प०वि०-पङ्क्ति-विंशति-त्रिंशत्-चत्वारिंशत्-पञ्चाशत्-षष्टि-सप्तति-अशीति-नवति-शतम् १।१।

स०-पङ्क्तिश्च विंशतिश्च त्रिंशच्च चत्वारिंशच्च पञ्चाशच्च षष्टिश्च सप्ततिश्च अशीतिश्च नवतिश्च शतं च एतेषां समाहारः-पङ्क्ति०शतम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, परिमाणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तदस्य परिमाणं पङ्क्ति०शतम्।

अर्थः-'तदस्य परिमाणम्' इत्यस्मिन् विषये पङ्क्ति-आदयः शब्दा निपात्यन्ते। यदत्र सूत्रेणानुपपन्नं तत्सर्वं निपातनात् सिद्धं वेदितव्यम्।

उदाहरणम्–

(१) **पङ्क्तिः**-पञ्च परिमाणमस्य-पङ्क्तिश्छन्दः। अत्र पञ्च-शब्दस्य टिलोपः, तिः प्रत्ययश्च निपात्यते।

(२) **विंशति**-द्वौ दशतौ परिमाणमस्य सङ्घस्य-विंशतिः। अत्र द्वयोर्दशतोर्विन्-आदेशः शतिच् प्रत्ययश्च निपात्यते।

(३) **त्रिंशत्**-त्रयो दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-त्रिंशत्। अत्र त्रयाणां दशतां त्रिन्-आदेशः शत्-प्रत्ययश्च निपात्यते।

(४) **चत्वारिंशत्**-चत्वारो दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-चत्वारिंशत्। अत्र चतुर्णां दशतां चत्वारिन्-आदेशः शत्-प्रत्ययश्च निपात्यते।

(५) **पञ्चाशत्**-पञ्च दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-पञ्चाशत्। अत्र पञ्चानां दशतां पञ्च-आदेशः शत्-प्रत्ययश्च निपात्यते।

(६) **षष्टिः**- षड् दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-षष्टिः। अत्र षण्णां दशतां षड्-आदेशः, तिः प्रत्ययः, अपदत्वं च निपात्यते।

(७) **सप्ततिः**-सप्त दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-सप्ततिः। अत्र सप्तानां दशतां सप्त-आदेशः, तिः प्रत्ययश्च निपात्यते।

(८) **अशीतिः**-अष्टौ दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-अशीतिः। अत्र अष्टानां दशतामशी-आदेशः, तिः प्रत्ययश्च निपात्यते।

(९) **नवतिः**-नव दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-नवतिः। अत्र नवानां दशतां नव-आदेशः, तिः प्रत्ययश्च निपात्यते।

(१०) **शतम्**-दश दशतः परिमाणमस्य सङ्घस्य-शतम्। अत्र दशानां दशतां श-आदेशः, तः प्रत्ययश्च निपात्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्, अस्य, परिमाणम्) 'वह है परिमाण इसका' इस विषय में (पङ्क्ति०शतम्) पङ्क्ति, विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति, शत शब्द निपातित किये जाते हैं। यहां जो सूत्र से असिद्ध है वह निपातन से सिद्ध किया जाता है।*

*उदा०-**(पङ्क्ति)** पांच है परिमाण इसका यह-पङ्क्ति छन्द। **(विंशति)** दो दशक है परिमाण इसका यह-विंशति। **(त्रिंशत्)** तीन दशक है परिमाण इसका यह-त्रिंशत्। **(चत्वारिंशत्)** चार दशक है परिमाण इसका यह-चत्वारिंशत्। **(पञ्चाशत्)** पांच दशक है परिमाण इसका यह-पञ्चाशत्। **(षष्टिः)** छः दशक परिमाण है इसका यह-षष्टि। **(सप्ततिः)** सात दशक है परिमाण इसका यह-सप्तति। **(अशीतिः)** आठ दशक परिमाण*

है इसका यह-अशीति। (**नवतिः**) नौ दशक परिमाण है इसका यह-नवति। (**शतम्**) दश दशक परिमाण है इसका यह-शत।

सिद्धि-(१) **पङ्क्तिः**। पञ्च+जस्+ति। पञ्च्+ति। पङ्क्+ति। पङ्क्ति+सु। पङ्क्तिः।

यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'पञ्चन्' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय, और 'पञ्चन्' शब्द के टि-भाग (अन्) का लोप निपातित है। **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से 'पञ्चन्' शब्द की पद संज्ञा होती है। **'चोः कुः'** (८।२।३०) से पद के 'च्' को क्, **'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः'** (८।४।५७) से अनुस्वार को परसवर्ण 'ङ्' होता है। पङ्क्ति=छन्द। यह छन्द पांच चरणों का होता है। इसके एक चरण में ८ अक्षर होते हैं। इसमें कुल ५×८=४० अक्षर होते हैं।

(२) **विंशतिः**। द्विदशत्+जस्+शतिच्। विन्+शति। वि ं+शति। विंशति+सु। विंशतिः।

यहां द्विदशत् (दो दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'शतिच्' प्रत्यय और द्विदश के स्थान में विन्-आदेश निपातित होता है। यहां निपातन से **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से प्राप्त पदसंज्ञा का अभाव होकर **'नश्चापदान्तस्य झलि'** (८।३।२४) से 'न्' को अनुस्वार आदेश होता है।

(३) **त्रिंशत्**। त्रिदशत्+जस्+शत्। त्रिन्+शत्। त्रि ं+शत्। त्रिंशत्+सु। त्रिंशत्।

यहां त्रिदशत् (तीन दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से शत् प्रत्यय निपातित है।

(४) **चत्वारिंशत्**। चतुर्दशत्+जस्+शत्। चत्वारिन्+शत्। चत्वारिंशत्+सु। चत्वारिंशत्।

यहां चतुर्दशत् (चार दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से शत् प्रत्यय निपातित है।

(५) **पञ्चाशत्**। पञ्चदशत्+जस्+शत्। पञ्चा+शत्। पञ्चाशत्+सु। पञ्चाशत्।

यहां 'पञ्चदशत्' (पांच दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'शत्' प्रत्यय और 'पञ्चन्' के स्थान में 'पञ्चा' आदेश निपातित है।

(६) **षष्टिः**। षड्दशत्+जस्+ति। षष्+ति। षष्टि+सु। षष्टिः।

यहां 'षड्दशत्' (छः दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'शत्' प्रत्यय और 'षड्दशत्' के स्थान में 'षष्' आदेश निपातित है। **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से प्राप्त पद संज्ञा निपातन से नहीं होती है। पद संज्ञा न होने से **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से प्राप्त 'षष्' के 'ष्' को जश् 'ड्' नहीं होता है। **'ष्टुना ष्टुः'** (८।४।४१) टुत्व होता है।

(७) सप्ततिः। सप्तदशत्+जस्+ति। सप्त+ति। सप्तति+सु। सप्ततिः।

यहां सप्तदशत् (सात दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय निपातित है।

(८) अशीतिः। अष्टदशत्+जस्+ति। अशी+ति। अशीति+सु। अशीतिः।

यहां अष्टदशत् (आठ दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय और 'अष्टदशत्' के स्थान में 'अशी' आदेश निपातित है।

(९) नवतिः। नवदशत्+जस्+ति। नव+ति। नवति+सु। नवतिः।

यहां नवदशत् (नौ दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय और 'नवदशत्' के स्थान में 'नव' आदेश निपातित है।

(१०) शतम्। दशदशत्+जस्+त। श+त। शत+सु। शतम्।

यहां दशदशत् (दश दशत्=दहाई के जोड़े) शब्द से इस सूत्र से 'त' प्रत्यय और 'दशदशत्' के स्थान में 'श' आदेश निपातित है।

निपातनम्–

(५) पञ्चद्दशतौ वर्गे वा।५६।

प०वि०-पञ्चत्-दशतौ १।२ वर्गे ७।१ वा अव्ययपदम्।

स०-पञ्चच्च दशच्च तौ पञ्चद्दशतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, परिमाणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तदस्य परिमाणं पञ्चद्दशतौ वा वर्गे।

अर्थः-'तदस्य परिमाणम्' इत्यस्मिन् विषये पञ्चद्दशतौ शब्दौ विकल्पेन निपात्येते वर्गेऽभिधेये।

उदा०-(**पञ्चत्**) पञ्च परिमाणमस्य-पञ्चद् वर्गः। पञ्चको वर्गः। (**दशत्**) दश परिमाणमस्य-दशद् वर्गः। दशको वर्गः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तदस्य परिमाणम्) 'वह है परिमाण इसका' इस विषय में (पञ्चद्दशतौ) पञ्चत्, दशत् शब्द (वा) विकल्प से निपातन किये जाते हैं (वर्गे) यदि वहां वर्ग=समुदाय अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(पञ्चत्) पांच है परिमाण इस वर्ग का यह-पञ्चत् वर्ग, पञ्चक वर्ग। (दशत्) दश है परिमाण इस वर्ग का यह-दशत् वर्ग, दशक वर्ग।

सिद्धि-(१) पञ्चत्। पञ्चत्+जस्+डति। पञ्च्+अत्। पञ्चत्+सु। पञ्चत्।

यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची, 'पञ्चन्' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में इस सूत्र से 'डति' प्रत्यय निपातित है। प्रत्यय के डित् होने से वा०- ***'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'*** *(६।४।१४३) से 'पञ्चन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही 'दश' शब्द से दशत्।*

(२) ***पञ्चकः।*** *पञ्चन्+जस्+कन्। पञ्च+क। पञ्चक+सु। पञ्चकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'पञ्चन्' शब्द से षष्ठी-समर्थ के अर्थ में विकल्प पक्ष में ***'संख्याया अतिशदन्तायाः कन्'*** *(५।१।२२) से 'कन्' प्रत्यय है।* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से अंग के नकार का लोप होता है। ऐसे ही 'दश' शब्द से-दशकः।*

अञ् (छान्दसः)-

(६) सप्तनोऽञ् छन्दसि।६०।

प०वि०-सप्तनः ५।१ अञ् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-तत्, अस्य, परिमाणम्, वर्गे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत् सप्तनोऽस्याऽञ् परिमाणम्।

अर्थः-छन्दसि विषये तद् इति प्रथमासमर्थात् सप्तन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, वर्गेऽभिधेये।

उदा०-सप्त परिमाणमस्य वर्गस्य-साप्तो वर्गः। **'सप्त साप्तान्यसृजन्'** (तु०तै०सं० ५।४।७।५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सप्तनः) सप्तन् प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (वर्गे) यदि वहां वर्ग अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-सप्त परिमाण है इस वर्ग का यह-साप्त वर्ग। ***'सप्त साप्तान्यसृजन्'*** *(तु०तै०सं० ५।४।७।५)।*

सिद्धि-साप्तः। सप्त+जस्+अञ्। साप्त्+अ। साप्त्+सु। साप्तः।

यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'सप्तन्' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में तथा वर्ग अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप और* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

डण्–

(७) त्रिंशच्चत्वारिंशतोर्ब्राह्मणे संज्ञायां डण्।६१।

प०वि०–त्रिंशत्–चत्वारिंशतोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ब्राह्मणे ७।१ संज्ञायाम् ७।१ डण् १।१।

स०–त्रिंशच्च चत्वारिंशच्च तौ त्रिंशच्चत्वारिंशतौ, ताभ्याम्–त्रिंशच्चत्वारिशद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, अस्य, परिमाणम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् त्रिंशच्चत्वारिंशद्भ्याम् अस्य डण्, संज्ञायाम्, ब्राह्मणे।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां त्रिंशच्चत्वारिंशद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे डण् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्, ब्राह्मणे चार्थेऽभिधेये। अत्र 'ब्राह्मणे' इति अभिधेयसप्तमी, न विषयसप्तमी।

उदा०–**(त्रिंशत्)** त्रिंशद् अध्यायाः परिमाणमेषां ब्राह्मणानाम्–त्रैंशानि ब्राह्मणानि। **(चत्वारिंशत्)** चत्वारिंशद् अध्यायाः परिमाणमेषां ब्राह्मणानाम् चात्वारिंशानि ब्राह्मणानि। एतानि कानिचिदेव ब्राह्मणान्युच्यन्ते न सर्वाणि।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तत्) प्रथमा-समर्थ (त्रिंशच्चत्वारिंशतोः) त्रिंशत्, चत्वारिंशत् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (डण्) डण् प्रत्यय है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो और (ब्राह्मणे) वहां ब्राह्मण-ग्रन्थ अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०–(त्रिंशत्) तीस अध्याय परिमाण है इन ब्राह्मण-ग्रन्थों के ये–त्रैंश ब्राह्मण ग्रन्थ। (चत्वारिंशत्) चालीस अध्याय परिमाण है इन ब्राह्मण-ग्रन्थों का ये–चात्वारिंश ब्राह्मण ग्रन्थ।

सिद्धि–त्रैंशानि। *त्रिंशत्+जस्+डण्। त्रिंश्+अ। त्रिंश+जस्। त्रिंश+नुम्+शि। त्रिंश+न्+इ। त्रिंशानि।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'त्रिशत्' शब्द से षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में, संज्ञा-अर्थ की प्रतीति में तथा ब्राह्मण-ग्रन्थ अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से डण् प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०–**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से 'त्रिंशत्' के टि-भाग (अत्) का लोप होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही–'चात्वारिंशत्' शब्द से चात्वारिंशानि।*

विशेषः *पाणिनि ने तीस अध्यायों के ब्राह्मण-ग्रन्थ को त्रैंश और चालीस अध्यायवाले ब्राह्मण-ग्रन्थ को चात्वारिंश कहा है। कोषीतकी ब्राह्मण में ३० और ऐतरेय ब्राह्मण में ४० अध्याय हैं। पाणिनि का तात्पर्य इन दोनों (ब्राह्मण-ग्रन्थों) से था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३२२)।*

अर्हति-अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) तदर्हति।६२।

प०वि०-तत् २।१ अर्हति क्रियापदम्।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अर्हति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०- श्वेतच्छत्रमर्हति-श्वैतच्छत्रिकः। वस्त्रयुगममर्हति-वास्त्रयुग्मिकः। शत्यः। शतिकः। साहस्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अर्हति) 'कर सकता है' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-श्वेतच्छत्र को जो धारण कर सकता है वह-श्वैतच्छत्रिक। वस्त्रयुग्म (वस्त्र का जोड़ा-धोती, कुर्ता) को जो धारण कर सकता है वह-वास्त्रयुग्मिक। शत कार्षापण जो प्राप्त कर सकता है वह-शत्य/शतिक। सहस्र कार्षापण जो प्राप्त कर सकता है वह-साहस्र।

सिद्धि-(१) श्वैतच्छत्रिकः। श्वेतच्छत्र+अम्+ठक्। श्वेतच्छत्र्+इक। श्वैतच्छत्रिक।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'श्वेतच्छत्र' शब्द से अर्हति अर्थ में **'आर्हादगोपुच्छ०'** (५।१।१९) से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही 'वस्त्रयुग्म' शब्द से-**वास्त्रयुग्मिकः।***

*(२) **शत्यः/शतिकः।** यहां द्वितीया-समर्थ 'शत' शब्द से अर्हति-अर्थ में **'शताच्च ठन्यतावशते'** (५।१।२१) से यथाविहित 'यत्' और 'ठन्' प्रत्यय हैं।*

*(३) **साहस्रः।** यहां द्वितीया-समर्थ 'सहस्र' शब्द से अर्हति-अर्थ में **'शतमानविंशति सहस्रवसनादण्'** (५।१।२८) से यथाविहित 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

यथाविहितं प्रत्ययः (ठक्)–

(२) छेदादिभ्यो नित्यम्।६३।

प०वि०–छेद-आदिभ्यः ५।३ नित्यम् १।१।

स०–छेद आदिर्येषां ते छेदादयः, तेभ्यः-छेदादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अर्हति इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् छेदादिभ्यो नित्यम् अर्हति यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यश्छेदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो नित्यम् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति।

उदा०–छेदं नित्यमर्हति-छैदिकः। भेदं नित्यमर्हति-भैदिक इत्यादिकम्।

छेद। भेद। द्रोह। दोह। वर्त्त। कर्ष। सम्प्रयोग। विप्रयोग। प्रेषण। सम्प्रश्न। विप्रकर्ष।। विराग विरङ्गं च।। वैरङ्गिकः। इति छेदादयः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (छेदादिभ्यः) छेद-आदि प्रातिपदिकों से (नित्यम्) सदा (अर्हति) 'कर सकता है' अर्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-छेद को जो नित्य कर सकता है वह-छैदिक। भेद को जो नित्य कर सकता है वह-भैदिक इत्यादि।

***सिद्धि-छैदिकः।** छेद+अम्+ठक्। छैद्+इक। छैदिक+सु। छैदिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'छेद' शब्द से नित्यमर्हति-अर्थ में 'आर्हादगोपुच्छ०' (५।१।१९) से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**भैदिकः**।*

यत्+ठक्–

(३) शीर्षच्छेदाद् यच्च।६४।

प०वि०–शीर्षच्छेदात् ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–तत्, अर्हति, नित्यम्, ठक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् शीर्षच्छेदाद् नित्यम् अर्हति यत् ठक् च।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थात् शीर्षच्छेदात् प्रातिपदिकाद् नित्यमर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं यत् ठक् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(यत्) शीर्षच्छेदं नित्यमर्हति-शीर्षच्छेद्यः शूरः। (ठक्) शैर्षच्छेदिकः शूरः। प्रत्ययसन्नियोगेन शिरसः शीषदिशो निपात्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (शीर्षच्छेदात्) शीर्षच्छेद प्रातिपदिक से (नित्यम्) सदा (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में (यत्) यत् (च) और (ठक्) यथाविहित ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(यत्) शीर्षच्छेद (शिर काटना) को जो नित्य कर सकता है वह-शीर्षच्छेद्य शूर। (ठक्) शैर्षच्छेदिक शूर।

सिद्धि-(१) शीर्षच्छेद्यः। शीर्षच्छेद+अम्+यत्। शीर्षच्छेद्+य। शीर्षच्छेद्य+सु। शीर्षच्छेद्यः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'शीर्षच्छेद्' शब्द से नित्यमर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय-सम्बन्ध से 'शिरस्' के स्थान में शीर्ष-आदेश निपातित है।*

*(२) शैर्षच्छेदिकः। यहां द्वितीया-समर्थ 'शीर्षच्छेद' शब्द से नित्यमर्हति अर्थ में **'आर्हादगोपुच्छ०'** (५।१।१९) से यथाविहित 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में **इक्** आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

यः-

(४) दण्डादिभ्यो यः।६५।

प०वि०-दण्ड-आदिभ्यः ५।३ यः १।१।

स०-दण्ड आदिर्येषां ते दण्डादयः, तेभ्यः-दण्डादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अर्हति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् दण्डादिभ्योऽर्हति यः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यो दण्डादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-दण्डमर्हति-दण्ड्यः। मुसलमर्हति-मुसल्यः, इत्यादिकम्।

दण्ड। मुसल। मधुपर्क। कशा। अर्ध। मेधा। मेघ। युग। उदक। वध। गुहा। भाग। इभ। इति दण्डादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (दण्डादिभ्यः) दण्ड आदि प्रातिपदिकों से (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है।*

*उदा०-दण्ड को जो धारण कर सकता है वह-दण्ड्य। मुसल (मूसळ) को जो धारण कर सकता है **वह-मुसल्य इत्यादि**।*

सिद्धि-दण्ड्यः। दण्ड+अम्+य। दण्ड्+य। दण्ड्य+सु। दण्ड्यः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'दण्ड' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'मुसल' शब्द से-मुसल्यः।

विशेषः *किन्हीं वैयाकरणों के मत में यह 'दण्डादिभ्यः' इतना ही सूत्र है, वे 'यत्' प्रत्यय की अनुवृत्ति मानते हैं। "दण्डादिभ्यः' इत्येतावत् सूत्रम्, अनन्तरश्च यत् प्रत्ययो विधीयते" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः।*

यत्-

(५) छन्दसि च।६६।

प०वि०-छन्दसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अर्हति, यत् इति चानुवर्तति, न यः।

अन्वयः-छन्दसि तत् प्रातिपदिकाच्चार्हति यत्।

अर्थः-छन्दसि विषये तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकमात्राच्च अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उदक्या वृत्तयः। यूप्यः पलाशः। गर्त्यो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में द्वितीया समर्थ प्रातिपदिकमात्र से (च) भी (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**उदक्या वृत्तयः।** उदक (जल) को प्राप्त करने योग्य वृत्तियां। **यूप्यः पलाशः।** वह पलाश (ढाक) जिसका यूप बन सकता है। **गर्त्यो देशः।** वह देश जहां गर्त (गड्ढा) बन सकता है।*

सिद्धि-उदक्याः। उदक+अम्+यत्। उदक्+य। उदक्य+टाप्। उदक्या+जस्। उदक्याः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'उदक' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**यूप्यः, गर्त्यः।***

घन्+यत्-

(६) पात्राद् घँश्च।६७।

प०वि०-पात्रात् ५।१ घन् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अर्हति, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पात्राद् अर्हति घन् यच्च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् पात्रशब्दात् प्रातिपदिकाद् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे घन् यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(घन्)** पात्रमर्हति-पात्रियः शुद्धपुरुषः। **(यत्)** पात्र्यः शुद्धपुरुषः। पात्रशब्द आढकपर्यायोऽपि वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पात्रात्) पात्र प्रातिपदिक से (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में (घन्) घन् (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(घन्) पात्र को जो भोजन के लिये प्राप्त कर सकता है वह-पात्रिय शुद्ध पुरुष। (यत्) पात्र्य शुद्ध पुरुष। पात्र शब्द आढक (चार सेर) का भी पर्यायवाची भी है।

सिद्धि-(१) पात्रियः। पात्र+अम्+घन्। पात्र्+इय। पात्रिय+सु। पात्रियः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'पात्र' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) पात्र्यः। यहां पूर्वोक्त 'पात्र' शब्द से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है।

छः+यत्-

(७) कडङ्करदक्षिणाच्छ च।६८।

प०वि०-कडङ्करदक्षिणात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-कडङ्करश्च दक्षिणा च एतयोः समाहारः कडङ्करदक्षिणम्, तस्मात्-कडङ्करदक्षिणात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अर्हति, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कडङ्करदक्षिणाभ्याम् अर्हति छो यच्च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां कडङ्करदक्षिणाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे छो यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(छः)** कडङ्करमर्हति-कडङ्करीयो गौः। **(यत्)** कडङ्कर्यो गौः। **(छः)** दक्षिणामर्हति-दक्षिणीयो भिक्षुः। **(यत्)** दक्षिण्यो ब्राह्मणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (कडङ्करदक्षिणात्) कडङ्कर, दक्षिणा प्रातिपदिकों से (अर्हति) प्राप्त कर सकता है, अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(छ) कडङ्कर=जवार आदि की बढ़िया कुट्टी (सानी) को जो प्राप्त करने योग्य है वह-कडङ्करीय गौ (बैल)। (यत्) कडङ्कर्य गौ (बैल)। कडङ्कर्य का अपभ्रंश लोक में 'डांगर' शब्द प्रसिद्ध है। (छः) दक्षिणा को जो प्राप्त करने योग्य है वह-दक्षिणीय भिक्षु। (यत्) दक्षिण्य ब्राह्मण (विद्वान्)।

सिद्धि-(१) कडङ्करीयः। कडङ्कर+अम्+छः। कडङ्कर्+ईय। कडङ्करीय+सु। कडङ्करीयः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'कडङ्कर' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है। ऐसे ही 'दक्षिणा' शब्द से-दक्षिणीयः।

(२) कडङ्कर्यः। यहां द्वितीया-समर्थ 'कडङ्कर' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'दक्षिणा' शब्द से-दक्षिण्यः।

विशेषः 'कडङ्करदक्षिणात्' यहां 'अल्पाच्तरम्' (२।२।३४) से द्वन्द्वसमास में 'दक्षिणा' शब्द का पूर्वनिपात होना चाहिये किन्तु लक्षण-व्यभिचार होने से यहां छ और यत् प्रत्यय की यथासंख्यविधि नहीं होती है।

छः+यत्-

(८) स्थालीबिलात्।६६।

वि०-स्थालीबिलात् ५।१।

स०-स्थाल्या बिलम् इति स्थालीबिलम्, तस्मात्-स्थालीबिलात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तत्, अर्हति, यत्, छः, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् स्थालीबिलाद् अर्हति छो यच्च।

अर्थः-तद् इति द्वितीया-समर्थात् स्थालीबिलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे छो यच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(छः) स्थालीबिलमर्हन्ति-स्थालीबिलीयास्तण्डुलाः। **(यत्)** स्थालीबिल्यास्तण्डुलाः। पाकयोग्या इत्यर्थः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (स्थालीबिलात्) स्थालीबिल प्रातिपदिक से (अर्हति) प्राप्त कर सकता है, अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्) यत् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(छ) स्थालीबिल=पतीली के मुख को जो प्राप्त कर सकते हैं वे-स्थालीबिलीय तण्डुल (चावल)। (यत्) स्थालीबिल्य तण्डुल (चावल)। भोजन के लिये पकाने योग्य चावल।

***सिद्धि-(१) स्थालीबिलीयाः।** स्थालीबिल+अम्+छ। स्थालीबिल्+ईय्। स्थालीबिलीय+जस्। स्थालीबिलीयाः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'स्थालीबिल' शब्द से अर्हति अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश होता है।*

***(२) स्थालीबिल्याः।** यहां द्वितीया-समर्थ 'स्थालीबिल' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (७।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

घः+खञ्-

(६) यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ।७०।

प०वि०-यज्ञ-ऋत्विग्भ्याम् ५।२ घ-खञौ १।१।

स०-यज्ञश्च ऋत्विक् च तौ यज्ञर्त्विजौ, ताभ्याम्-यज्ञर्त्विग्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। घश्च खञ् च तौ घखञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अर्हति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् यज्ञर्त्विग्भ्याम् अर्हति घखञौ।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाभ्यां यज्ञर्त्विग्भ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अर्हतीत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं घखञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(यज्ञः) यज्ञमर्हति-यज्ञियो ब्राह्मणः (घः)। यज्ञकर्मानुष्ठातुमर्हतीत्यर्थः। **(ऋत्विक्)** ऋत्विजमर्हति-आर्त्विजीनो ब्राह्मणः। ऋत्विग् भवितुमर्हतीत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (यज्ञर्त्विग्भ्याम्) यज्ञ, ऋत्विक् प्रातिपदिकों से (अर्हति) कर सकता है, अर्थ में यथासंख्य (घखञौ) घ और खञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(यज्ञ)** यज्ञ-कर्म का जो अनुष्ठान कर सकता है वह-यज्ञिय ब्राह्मण=विद्वान् (घ)। **(ऋत्विक्)** जो ऋत्विक् बन सकता है वह-आर्त्विजीन ब्राह्मण=विद्वान् (खञ्)।*

***सिद्धि-(१) यज्ञियः।** यज्ञ+अम्+घ। यज्ञ्+इय। यज्ञिय+सु। यज्ञियः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'यज्ञ' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'घ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है।*

(२) आर्त्विजीनः। ऋत्विज्+अम्+खञ्। आर्त्विज्+ईन। आर्त्विजीन+सु। आर्त्विजीनः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'ऋत्विज्' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

विशेषः *ऋत्विजों का लक्षण-अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिक मतवाले, वेदवित्-एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करें। जो एक हो तो उसका पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और तीन हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और अध्यक्ष और चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा {नाम होते हैं} (महर्षि दयानन्दकृत संस्कारविधि सामान्यप्रकरणम्)।*

।। इति आ-अर्हीयठक्प्रत्ययप्रकरणम्।।

वर्तयति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)-

(१) पारायणतुरायणचान्द्रायणं वर्तयति।७१।

प०वि०-पारायण-तुरायण-चान्द्रायणम् २।१ वर्तयति क्रियापदम्।

स०-पारायणं च तुरायणं च चान्द्रायणं च एतेषां समाहारः पारायणतुरायणचान्द्रायणम्, तत्-पारायणतुरायणचान्द्रायणम्।

अनु०-तत्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पारायणतुरायणचान्द्रायणेभ्यो वर्तयति यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः पारायणतुरायणचान्द्रायणेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वर्तयतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पारायणम्)** पारायणं वर्तयति=अधीते-पारायणिकश्छात्रः। **(तुरायणम्)** तुरायणं वर्तयति=निष्पादयति-तौरायणिको यजमानः। **(चान्द्रायणम्)** चान्द्रायणं वर्तयति=निष्पादयति चान्द्रायणिकस्तपस्वी।

आर्यभाषा *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पारायणतुरायणचान्द्रायणम्) पारायण, तुरायण, चान्द्रायण प्रातिपदिकों से (वर्तयति) पढ़ता है/सिद्ध करता है, अर्थ में* ***(ठञ्)*** *यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(**पारायण**) जो आदि से लेकर अन्त तक निरन्तर वेद का अध्ययन करता है वह-पारायणिक छात्र (शिष्य)। (**तुरायण**) जो संवत्सर-साध्य हविर्यज्ञ-विशेष का अनुष्ठान करता है वह-तौरायणिक यजमान। (**चान्द्रायण**) जो चान्द्रायण नामक तपोविशेष का अनुष्ठान करता है वह-चान्द्रायणिक तपस्वी।

सिद्धि-पारायणिकः। पारायण+अम्+ठञ्। पारायण्+इक। पारायणिक+सु। पारायणिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'पारायण' शब्द से वर्तयति-अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**तौरायणिकः, चान्द्रायणिकः।**

विशेषः (१) **पारायण**-वैदिक शाखा-ग्रन्थ या छन्दों को कण्ठस्थ करने की प्रथा थी। कण्ठाग्र करनेवाले विद्वान् श्रोत्रिय कहलाते थे। संहितापाठ (निर्भुज), पादपाठ (प्रतृण्ण), क्रमपाठ आदि कई प्रकार से वैदिक मन्त्रों का सस्वर पाठ करना वैदिक 'पारायण' कहलाता था। नियमानुसार पारायण करनेवाला पारायणिक होता था। श्रावणी या भाद्रपद पूर्णिमा को उपाकर्म करने के बाद साढ़े चार महीने तक वेद का पारायण किया जाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २८७)।

(२) **तुरायण**-तुरायण इष्टि करनेवाला यजमान तौरायणिक कहलाता था। पौर्णमास इष्टि के आधार पर ही फेर-फार करके तुरायण किया जाता था। शांखायन ब्राह्मण में इसे स्वर्गकाम व्यक्ति का यज्ञ कहा है (स एव स्वर्गकामस्य यज्ञः ४।११, आरण्यक पर्व १३।२१)। कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार (२४।७।१-८) तुरायण सत्र वैशाख शुक्ल या चैत्र शुक्ल पंचमी को आरम्भ करके एक वर्ष तक चलता था (संवत्सरं यजते)। इसे द्वादशाह की विकृति मानते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३६२)।

(३) **चान्द्रायण**-चन्द्रमा की तिथियों पर आधारित एक मास तक चलनेवाला व्रत।

आपन्नार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) संशयमापन्नः ।७२।

प०वि०-संशयम् २।१ आपन्नः १।१।

अनु०-तत्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् संशयाद् आपन्नो यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् संशय-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आपन्न इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-संशयमापन्नः=प्राप्तः सांशयिकः स्थाणुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (संशयम्) संशय प्रातिपदिक से (आपन्नः) प्राप्त हुआ, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-संशय को आपन्न=प्राप्त हुआ-सांशयिक स्थाणु (ठूंठ), कि यह पुरुष है अथवा स्थाणु है।

सिद्धि-सांशयिकः। संशय+अम्+ठञ्। सांशय्+इक। सांशयिक+सु। सांशयिकः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'संशय' शब्द से आपन्न (प्राप्त) अर्थ में ***'प्राग्वतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *(१) गोतम मुनि ने न्यायशास्त्र में संशय का यह लक्षण किया है-* ***'समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः'*** *(१।२३) अर्थात्-समान और अनेक धर्मों की उपपत्ति=उपलब्धि होने से, परस्पर विरुद्ध सिद्धान्त के ज्ञान से, उपलब्धि और अनुपलब्धि की अव्यवस्था से जो विशेष की अपेक्षावाला अनिश्चयात्मक जो ज्ञान है वह 'संशय' कहाता है।*

(२) ***'यद्यपि द्वे अपि कर्तृकर्मणी संशयमापन्ने, तथापि यद्विषयकः संशयस्तत्रैव प्रत्ययो भवति, न कर्तरि पुरुषेऽनभिधानात्'*** *(इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः)। अर्थात् यद्यपि कर्ता और कर्म दोनों ही संशयभाव को प्राप्त हैं एक संशय का कर्ता है और संशय कर्म है किन्तु जो संशय का विषय है उस स्थाणु में ही प्रत्ययविधि होती है, कर्ता पुरुष में नहीं क्योंकि ऐसा कोई प्रयोग दिखाई नहीं देता है।*

गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)-

(१) योजनं गच्छति।७३।

प०वि०-योजनम् २।१ गच्छति क्रियापदम्।

अनु०-तत्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् योजनाद् गच्छति ठञ्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् योजनशब्दात् प्रातिपदिकाद् गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-योजनं गच्छति-यौजनिको धावनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (योजनम्) योजन प्रातिपदिक से (गच्छति) जाता है, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो योजन (चार कोस) जाता है वह-यौजनिक धावन (दौड़नेवाला)।

*सिद्धि-**यौजनिकः।** योजन+अम्+ठञ्। यौजन्+इक। यौजनिक+सु। यौजनिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'योजन' शब्द से गच्छति-अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *एक योजन, दो योजन, पांच योजन, दस योजन इत्यादि भिन्न-भिन्न दूरियों तक दोड़नेवाले धावन उन-उन नामों से प्रसिद्ध होते थे। पाणिनि ने एक योजन दौड़नेवाले धावन को यौजनिक कहा है। कात्यायन ने सौ योजन तक जानेवाले धावन के लिये 'यौजनशतिक' इस विशेष शब्द का उल्लेख किया है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४०२)।*

ष्कन्–

(२) पथः ष्कन्।७४।

प०वि०-पथः ५।१ ष्कन् १।१।

अनु०-तद् गच्छति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पथो गच्छति ष्कन्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे ष्कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पन्थानं गच्छति-पथिकः। स्त्री चेत्-पथिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पथः) पथिन् प्रातिपदिक से (गच्छति) जाता है=तय करता है, अर्थ में (ष्कन्) ष्कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पन्था=मार्ग को जो तय करता है वह-पथिक। यदि स्त्री हो तो-पथिकी।

*सिद्धि-**पथिकः।** पथिन्+अम्+ष्कन्। पथि+क। पथिक+सु। पथिकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'पथिन्' शब्द से गच्छति-अर्थ में इस सूत्र से 'ष्कन्' प्रत्यय है। **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से अंग के नकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है-**पथिकी।** प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।४।९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**पथिकः।***

णः–

(३) पन्थो ण नित्यम्।७५।

प०वि०-पन्थः १।१ ण १।१ (सु-लुक्) नित्यम् १।१।

अनु०-तत्, गच्छति, पथ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पथो नित्यं गच्छति णः, पन्थः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् नित्यं गच्छतीत्यस्मिन्नर्थे णः प्रत्ययः भवति, पथः स्थाने च पन्थ आदेशो भवति।

उदा०-पन्थानं नित्यं गच्छति-पान्थः। पान्थो भिक्षां याचते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (पथः) पथिन् प्रातिपदिक से (नित्यम्) प्रतिदिन (गच्छति) जाता है, अर्थ में (णः) ण प्रत्यय होता है और (पन्थः) पथिन् शब्द के स्थान में 'पन्थ' आदेश होता है।*

उदा०-जो पन्था=मार्ग को नित्य=प्रतिदिन तय करता है वह-पान्थ। पान्थ=नित्य यात्री साधु भिक्षा मांगता है।

सिद्धि-पान्थः। पथिन्+अम्+ण। पन्थ+अ। पान्थ्+अ। पान्थ+सु। पान्थः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'पथिन्' शब्द से नित्यं गच्छति-अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय और 'पथिन्' के स्थान में 'पन्थ' आदेश है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। जो नित्य यात्रा नहीं करता वह 'पथिक' कहाता है।

आहृत-गच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(४) उत्तरपथेनाहृतं च।७६।

प०वि०-उत्तरपथेन ३।१ आहृतम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ठञ्, गच्छति इति चानुवर्तते। अत्र 'उत्तरपथेन' इति तृतीया-निर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-तृतीयासमर्थाद् उत्तरपथाद् आहृतं गच्छति च यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तृतीयासमर्थाद् उत्तरपथ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् आहृतं गच्छति चेत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-उत्तरपथेनाऽऽहृतम्-औत्तरपथिकं द्रव्यम्। उत्तरपथेन गच्छति-औत्तरपथिको वणिक्।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (उत्तरपथेन) उत्तरपथ प्रातिपदिक से (आहृतम्) आया हुआ (च) और (गच्छति) जाता है, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-उत्तरपथ से आया हुआ-औत्तरपथिक द्रव्य (माळ)। जो उत्तरपथ से जाता है वह-औत्तरपथिक वणिक् (व्यापारी)।

सिद्धि-औत्तरपथिकम्। *उत्तरपथ+टा+ठञ्। औत्तरपथ्+इक। औत्तरपथक+सु। औत्तरपथिकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'उत्तरपथ' शब्द से आहृत-अर्थ में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही गच्छति अर्थ में-**औत्तरपथिकः।***

विशेषः *उत्तरपथ-उत्तर भारत में यातायात और व्यापार की महाधमनी गन्धार से पाटलिपुत्र तक चली गई है, अशोक, शेरशाह, अकबर आदि के समय में भी जो बराबर चालू रही उसी महामार्ग (राहे-आजम) का प्राचीन नाम 'उत्तरपथ' था। मेगस्थने आदि यूयानी लेखकों ने इसे "NORTHENROUT" कहा है, जो उत्तर-पथ का ठीक अनुवाद है। पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २३६)। वर्तमान-जी.टी. रोड।*

अथ काल-अधिकारः

(१) कालात्।७७।

वि०-कालात् ५।१।

अर्थः-'कालात्' इत्यधिकारोऽयम्, यदित ऊर्ध्वं वक्ष्यामः 'कालात्' इति तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति- **'तेन निर्वृत्तम्'** (५।१।७८) इति। मासेन निर्वत्तम्-मासिकम्। आर्धमासिकम्। सांवत्सरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ- 'कालात्' यह अधिकार सूत्र है। जो इससे आगे कहेंगे वह कालात्=कालविशेषवाची शब्द से जानना चाहिये। जैसे पाणिनि मुनि कहेंगे- **'तेन निर्वृत्तम्'** (५।१।७८)। एक मास में बनाया हुआ-मासिक। अर्धमास (१५ दिन) में बनाया हुआ-आर्धमासिक। संवत्सर (वर्ष) में बनाया हुआ-सांवत्सरिक।*

सिद्धि- *मासिक आदि पदों की सिद्धि आगे यथास्थान लिखी जायेगी।*

निर्वृत्तार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) तेन निर्वृत्तम्।७८।

प०वि०-तेन ३।१ निर्वृत्तम् १।१।

अनु०-ठञ्, कालात्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन कालाद् निर्वत्तं यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तमित्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अह्ना निर्वृत्तम्-आह्निकम्। आर्धमासिकम्। सांवत्सरिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम्) बनाया गया, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अहः=एक दिन में बनाया-आह्निक द्वार। अर्धमास=१५ दिन में बनाया गया-आर्धमासिक घर। संवत्सर=एक वर्ष में बनाया गया-सांवत्सरिक भवन।

सिद्धि-आह्निकम्। अहन्+टा+ठञ्। अहन्+इक। आह्निक+सु। आह्निकम्।

*यहां तृतीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'अहन्' शब्द से निर्वृत्त-अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से अंग के अकार का लोप होता है किन्तु 'अह्नष्टखोरेव' (६।४।१४५) के नियम से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-**आर्धमासिकम्, सांवत्सरिकम्।** यहां 'अपवर्गे तृतीया' (२।३।६) से तृतीया-विभक्ति होती है।*

अधीष्टाद्यर्थचतुष्टयप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) तमधीष्टो भृतो भूतो भावी।७९।

प०वि०-तम् २।१ अधीष्टः १।१ भृतः १।१ भूतः १।१ भावी १।१।

अनु०-ठञ्, कालात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तम् कालाद् अधीष्टो भृतो भूतो भावी यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी इत्येतेष्वर्थेषु यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति। अधीष्टः=सत्कृत्य व्यापारितः। भृतः=वेतनेन क्रीतः। भूतः=स्वसत्तया व्याप्तकालः। भावी=स्वसत्तया व्याप्तानागतकालः।

उदा०-**(अधीष्टः)** मासमधीष्टः-मासिकोऽध्यापकः। **(भृतः)** मासं भृतः-मासिकः कर्मकरः। **(भूतः)** मासं भूतः-मासिको व्याधिः। **(भावी)** मासं भावी मासिक उत्सवः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (अधीष्टो भृतो भूतो भावी) अधीष्ट=सत्कारपूर्वक व्यवहार किया गया, भृत=वेतन से खरीदा गया, भूत=अपनी सत्ता से व्याप्त किया गया भूतकाल, भावी=अपनी सत्ता से व्याप्त आगामी काल इन चार अर्थों में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अधीष्ट)** एक मास तक सत्कारपूर्वक अध्यापन कार्य में लगाया गया-मासिक अध्यापक। **(भृत)** एक मास तक वेतन से खरीदा गया-मासिक कर्मकर (नौकर)। **(भूत)** एक मास तक व्याप्त रही-मासिक व्याधि (शारीर रोग)। **(भावी)** एक मास तक व्याप्त रहनेवाला-मासिक उत्सव (जलसा)।*

*सिद्धि-**मासिकः।** मास+अम्+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन चार अर्थों में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग के पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। यहां 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' (२।३।५) से द्वितीया-विभक्ति होती है।

यत्+खञ्-

(२) मासाद् वयसि यत्खञौ।८०

प०वि०-मासात् ५।१ वयसि ७।१ यत्-खञौ १।२।

स०-यच्च खञ् च तौ यत्खञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ठञ्, कालात्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी इति चानुवतति।

अन्वयः-तम् कालाद् मासाद् अधीष्टो भृतो भूतो भावी यत्खञौ, वयसि।

अर्थः-तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनो मासशब्दात् प्रातिपदिकाद् अधीष्टो भृतो भूतो भावी इत्येतेष्वर्थेषु यत्खञौ प्रत्ययौ

भवतो वयस्यभिधेये। अत्र वयसोऽर्थबलेनाधीष्टादिष्वर्थेषु भूत इत्येवार्थोऽभिसम्बध्यते।

उदा०-मासं भूतः-मास्यो बालः (यत्)। मासीनो बालः (खञ्)।

आर्यभाषा अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (मासात्) मास प्रातिपदिक से (अधीष्टो भृतो भूतो भावी) अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन चार अर्थों में (यत्खञौ) यत् और खञ् प्रत्यय होते हैं (वयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-जो एक मास का भूत=हो चुका है वह-मास्य बालक (यत्)। मासीन बालक (खञ्)। यहां अधीष्ट आदि चार अर्थों की अनुवृत्ति में वयः=आयु के अर्थबल से केवल भूत-अर्थ का ही सम्बन्ध है, अन्यों का नहीं।

*सिद्धि-(१) **मास्यः।** मास+अम्+यत्। मास्+य। मास्य+सु। मास्यः।*

यहां द्वितीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से भूत अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **मासीनः।** यहां पूर्वोक्त 'मास' शब्द से भूत-अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। आयु अर्थ से अन्यत्र-'मासिकम्' होता है।*

यप्-

(३) द्विगोर्यप्।८१।

प०वि०-द्विगोः ५।१ यप् १।१।

अनु०-कालात्, तम्, भूत, मासात्, वयसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कालात् तम् द्विगोर्मासाद् भूतो यप् वयसि।

अर्थः-तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनो द्विगुसंज्ञकाद् मासान्तात् प्रातिपदिकाद् भूत इत्यस्मिन्नर्थे यप् प्रत्ययो भवति, वयस्यभिधेये। अत्र वयसोऽर्थबलेनाधीष्टादिष्वर्थेषु भूत इत्येवार्थोऽभिसम्बध्यते।

उदा०-द्वौ मासौ भूतः-द्विमास्यः। त्रिमास्यः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (मासात्) मासान्त प्रातिपदिक से (भूतः) हो चुका, अर्थ में (यप्) यप् प्रत्यय होता है (वयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-जो दो मास का हो चुका है वह-**द्विमास्य**। जो तीन मास का हो चुका है वह-**त्रिमास्य**।*

सिद्धि-द्विमास्यः। द्विमास+अम्+यप्। द्विमास्+य। द्विमास्य+सु। द्विमास्यः।

यहां द्वितीया-समर्थ, कालविशेषवाची, द्विगुसंज्ञक, मासान्त 'द्विमास' शब्द से भूत-अर्थ में तथा वयः=आयु अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यप् प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के पित् होने से 'इगन्तकालकपालभगालशरावेषु द्विगौ' (६।२।२९) से पूर्वपद-प्रकृति स्वर होता है-द्विमास्यः। ऐसे ही-त्रिमास्यः।

ण्यत्+यप्+ठञ्-

(४) षण्मासाण्ण्यच्च।८२।

प०वि०-षण्मासात् ५।१ ण्यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-कालात्, तम्, भूतः, यप्, ठञ्, वयसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तम् कालात् षण्मासाद् भूतो ण्यत्, यप्, ठञ् च, वयसि।

अर्थः-तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः षण्मास-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भूत इत्यस्मिन्नर्थे ण्यत्, यप्, ठञ् च प्रत्यया भवन्ति, वयस्यभिधेये।

उदा०-(ण्यत्) षण् मासान् भूतः-षाण्मास्यः। **(यत्)** षण्मास्यः। **(ठक्)** षाण्मासिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (षण्मासात्) षण्मास प्रातिपदिक से (भूतः) हो चुका, अर्थ में (ण्यत्) ण्यत् (यप्) यप् (च) और (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होते हैं (वयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-**(ण्यत्)** जो षण्मास=छः मास का हो चुका है वह-षाण्मास्य। **(यप्)** षण्मास्य। (ठञ्) षाण्मासिक।*

*सिद्धि-(१) **षाण्मास्यः।** षण्मास+शस्+ण्यत्। षाण्मास्+य। षाण्मास्य+सु। षाण्मास्यः।*

यहां द्वितीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'षण्मास' शब्द से भूत-अर्थ में इस सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **षण्मास्यः।** यहां पूर्वोक्त 'षण्मास' शब्द से भूत-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **षाण्मासिकः।** यहां पूर्वोक्त 'षण्मास' शब्द से भूत-अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय भी अभीष्ट है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

ठन्+ण्यत्–

(५) अवयसि ठँश्च।८३।

प०वि०-अवयसि ७।१ ठन् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-न वय इति अवयः, तस्मिन्-अवयसि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कालात्, तम्, भूतः, षण्मासात्, ण्यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तम् कालात् षण्मासाद् भूतष्ठन् ण्यच्च, अवयसि।

अर्थः-तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः षण्मास-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भूत इत्यस्मिन्नर्थे ठन् ण्यच्च प्रत्ययो भवति, अवयस्यभिधेये।

उदा०-षण् मासान् भूतः-षण्मासिको रोगः (ठन्)। षाण्मास्यो रोगः (ण्यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (षण्मासात्) षण्मास प्रातिपदिक से (भूतः) हो चुका, अर्थ में (ठन्) ठन् (च) और (ण्यत्) ण्यत् प्रत्यय होते हैं (अवयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ अभिधेय न हो।*

उदा०-षण्मास=छः मास जिसको हो चुके हैं वह-षण्मासिक रोग (ठन्)। षाण्मास्य रोग (ण्यत्)।

*सिद्धि-(१) **षण्मासिकः**। षण्मास+शस्+ठन्। षण्मास्+इक। षण्मासिक+सु। षण्मासिकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'षण्मास' शब्द से भूत-अर्थ में तथा अवयः (आयु से भिन्न) अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है।

*(२) **षाण्मास्यः**। षण्मास+शस्+ण्यत्। षाण्मास्+य। षाण्मास्य+सु। षाण्मास्यः।*

यहां पूर्वोक्त 'षण्मास' शब्द से भूत-अर्थ में तथा अवयः अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से ण्यत् प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

निर्वृत्ताद्यर्थपञ्चकम्

खः–

(१) समायाः खः।८४।

प०वि०-समायाः ५।१ खः १।१।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन, तम् कालात् समाया निर्वृत्तम्, अधीष्टो भृतो भूतो भावी खः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात्, तम् इति च द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः समा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम्, अधीष्टो भृतो भूतो भावी इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**निर्वृत्तम्**) समया निर्वृत्तम्-समीनं भवनम्। (**अधीष्टः**) समामधीष्टः-समीनोऽध्यापकः। (**भृतः**) समां भृतः-समीनः कर्मकरः। (**भूत**) समां भूतः-समीनो व्याधिः। (**भावी**) समां भावी-समीनो यज्ञः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (समायाः) समा प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम्, अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन पांच अर्थों में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-*(**निर्वृत्त**) समा=एक वर्ष में बनाया गया-समीन भवन। (**अधीष्ट**) समा=एक वर्ष तक सत्कार पूर्वक अध्यापन कार्य में लगाया गया-समीन अध्यापक। (**भृत**) समा=एक वर्ष तक वेतन से खरीदा गया-समीन कर्मकर। (**भूत**) समा=एक वर्ष तक व्याप्त रही-समीन व्याधि। (**भावी**) समा=एक वर्ष तक व्याप्त रहनेवाला-समीन यज्ञ।*

सिद्धि-समीनः। *समा+टा/अम्+ख। सम्+ईन। समीन+सु। समीनम्।*

यहां तृतीया-समर्थ/द्वितीया-समर्थ कालविशेषवाची 'समा' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।

विशेषः *यहां निर्वृत्त-अर्थ में तृतीया-समर्थ विभक्ति और अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन चार अर्थों में द्वितीया-समर्थ विभक्ति होती है। शेष प्रकरण में भी ऐसा ही समझें।*

ख-विकल्पः-

(२) द्विगोर्वा।८५।

प०वि०-द्विगोः ५।१ वा अव्ययपदम्।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भावी, समायाः, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन, तम् कालाद् द्विगोः समाया निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा खः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् तम् इति च द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनो द्विगुसंज्ञकात् समा-शब्दान्तात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**निर्वृत्तम्**) द्वाभ्यां समाभ्यां निर्वृत्तम्-द्विसमीनं भवनम् (खः)। द्वैसमिकम् (ठञ्)। (**अधीष्टः**) द्वे समे अधीष्टः-द्विसमीनोऽध्यापकः (खः)। द्वैसमिकोऽध्यापकः (ठञ्)। (**भृतः**) द्वे समे भृतः-द्विसमीनः कर्मकरः (खः)। द्वैसमिकः कर्मकरः (ठञ्)। (**भूतः**) द्वे समे भूतः-द्विसमीनो व्याधिः (खः)। द्वैसमिको व्याधिः (ठञ्)। (**भावी**) द्वे समे भावी-द्विसमीनो यज्ञः (खः)। द्वैसामिको यज्ञः (ठञ्)। इत्थम्-त्रिसमीनम्। त्रैसमिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (समायाः) समान्त प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम्, अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन पांच अर्थों में (वा) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(निर्वृत्त) द्विसम=दो वर्ष में बनाया गया-द्विसमीन भवन (ख)। द्वैसमिक भवन (ठञ्)। (अधीष्ट) द्विसम=दो वर्ष तक सत्कार पूर्वक अध्यापन कार्य में लगाया गया-द्विसमीन अध्यापक (ख)। द्वैसमिक अध्यापक (ठञ्)। (भृत) द्विसम-दो वर्ष तक वेतन से खरीदा गया-द्विसमीन कर्मकर (ख)। द्वैसमिक कर्मकर (ठञ्)। (भूत) द्विसम=दो वर्ष तक व्याप्त रही-द्विसमीन व्याधि (ख)। द्वैसमिक व्याधि (ठञ्)। (भावी) द्विसम=दो वर्ष तक होनेवाला-द्विसमीन यज्ञ (ख)। द्वैसमिक यज्ञ (ठञ्)। ऐसे ही-**त्रिसमीन, त्रैसमिक।***

*सिद्धि-(१) **द्विसमीनम्**। द्विसम+टा/अम्+ख। द्विसम्+ईन। द्विसमीन+सु। द्विसमीनम्।*

यहां तृतीया/द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची, समान्त 'द्विसम' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

*(२) **द्वैसमिकम्**। यहां पूर्वोक्त 'द्विसम' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में विकल्प पक्ष में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**त्रिसमीनम्, त्रैसमिकम्।***

ख-विकल्पः–

(३) रात्र्यहःसंवत्सराच्च।८६।

प०वि०–रात्रि-अहः-संवत्सरात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०–रात्रिश्च अहश्च संरत्सरश्च एतेषां समाहारो रात्र्यहःसंवत्सरम्, तस्मात्–रात्र्यहःसंवत्सरात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी, खः, द्विगोः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन, तम्, द्विगोः कालाद् रात्र्यहःसंवत्सराच्च निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा खः।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थेभ्यः, तम् इति च द्वितीयासमर्थेभ्यो द्विगुसंज्ञकेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः रात्र्यहःसंवत्सरान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(१) **रात्रिः**–द्वाभ्यां रात्रिभ्यां निर्वृत्तम्–द्विरात्रीणं द्वारम् (खः)। द्वैरात्रिकं द्वारम् (ठञ्)। द्वे रात्री अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा–द्विरात्रीणः (खः)। द्वैरात्रिकः (ठञ्)।

(२) **अहः**–द्वाभ्यामहर्भ्यां निर्वृत्तम्–द्व्यहीनं द्वारम् (खः)। द्वैयह्निकं द्वारम् (ठञ्)। द्वे अहनी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा–द्व्यहीनः (खः)। द्वैयह्निकः।

(३) **संवत्सरः**–द्वाभ्यां संवत्सराभ्यां निर्वृत्तम्–द्विसंवत्सरीणं भवनम् (खः)। द्विसांवत्सरिकं भवनम् (ठञ्)। द्वौ संवत्सरौ अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा–द्विसंवत्सरीणः (खः) द्विसांवत्सरिकः (ठञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (कालात्) कालविशेषवाची (रात्र्यहःसंवत्सरात्) रात्र्यन्त, अहरन्त, संवत्सरान्त प्रातिपदिकों से (च) भी (वा) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(१) रात्रि-दो रात में बनाया गया-द्विरात्रीण द्वार (ख)। द्वै रात्रिक द्वार (ठञ्)। दो रात तक अधीष्ट, भृत, भूत, भावी-द्विरात्रीण अध्यापक आदि (ख)। द्वैरात्रिक अध्यापक आदि (ठञ्)।

(२) अहः-दो दिन में बनाया गया-द्व्यहीन द्वार (ख)। द्वैयह्निक द्वार (ठञ्)। दो दिन तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-द्व्यहीन अध्यापक आदि (ख)। द्वैयह्निक अध्यापक आदि (ठञ्)।

(२) संवत्सर-दो संवत्सर (वर्ष) में बनाया गया-द्विसंवत्सरीण भवन (ख)। द्विसांवत्सरिक भवन (ठञ्)। दो संवत्सर तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-द्विसंवत्सरीण अध्यापक आदि (ख)। द्विसांवत्सरिक अध्यापक आदि (ठञ्)।

सिद्धि-(१) द्विरात्रीणम्। द्विरात्र+टा/अम्+ख। अम्+ख। द्विरात्+ईन्। द्विरात्रीण+सु। द्विरात्रीणम्।

यहां तृतीया/द्वितीया-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची, रात्र्यन्त 'त्रिरात्र' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। ऐसे ही-**द्व्यहीनम्, द्विसंवत्सरीणम्।**

(२) द्वैयह्निकम्। द्व्ययन्+टा/अम्+ठञ्। द्वैयहन्+इक। द्वैयह्निक+सु। द्वैयह्निकम्।

यहां तृतीया/द्वितीया विभक्ति-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची अहरन्त 'द्व्यहन्' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में विकल्प पक्ष में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। **'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्'** (७।३।३) से अंग को ऐच्-आगम और वृद्धि का प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-**द्विरात्रिकम्।**

(३) द्विसांवत्सरिकम्। यहां पूर्वोक्त 'द्विसंवत्सर' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में विकल्प पक्ष में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से 'ठञ्' प्रत्यय है। **'संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च'** (७।३।१५) से उत्तरपद-वृद्धि होती है।

ऐसे ही-**त्रिरात्रीणम्, त्रैरात्रिकम्। त्र्यहीणम्, त्रैयह्निकम्। त्रिसंवत्सरीणम्, त्रिसांवत्सरिकम्।**

ख-विकल्पो लुक् च–

(४) वर्षाल्लुक् च।८७।

प०वि०-वर्षात् ५।१ लुक् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी, खः, द्विगोः, वा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन, तम् द्विगोः कालाद् वर्षाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा खो लुक् च।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात्, तम् इति च द्वितीयासमर्थाद् द्विगुसंज्ञकात् कालविशेषवाचिनो वर्ष-शब्दात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति तयोश्च लुग् भवति।

उदा०-द्वाभ्यां वर्षाभ्यां निर्वृत्तम्-द्विवर्षीणं भवनम् (खः)। द्विवार्षिकं भवनम् (ठञ्)। द्विवर्षं भवनम् (लुक्)। द्विवर्षमधीष्टो द्विवर्षीणोऽध्यापकः (खः)। द्विवार्षिकोऽध्यापकः (ठञ्)। द्विवर्षोऽध्यापकः (लुक्)। द्विवर्षं भृतो द्विवर्षीणः कर्मकरः (खः)। द्विवार्षिकः कर्मकरः (ठञ्)। द्विवर्षः कर्मकरः (लुक्)। द्विवर्षं भूतो द्विवर्षीणो व्याधिः (खः)। द्विवार्षिको व्याधिः (ठञ्)। द्विवर्षो व्याधिः (लुक्)। द्विवर्षं भावी द्विवर्षीणो यज्ञः (खः)। द्वैवर्षिको यज्ञः (ठञ्)। द्विवर्षो यज्ञः (लुक्)। एवम्-त्रिवर्षीणम्, त्रिवार्षिकम्/त्रैवर्षिकम्, त्रिवर्षम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (कालात्) कालविशेषवाची (वर्षात्) वर्षान्त प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत, भावी इन पांच अर्थों में (वा) विकल्प से (खः) ख प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है और उन दोनों प्रत्ययो का (लुक्) लोप (च) भी होता है।*

*उदा०-दो वर्ष में बनाया गया-द्विवर्षीण भवन (ख)। द्विवार्षिक भवन (ठञ्)। द्विवर्ष भवन (लुक्)। दो वर्ष तक अधीष्ट-द्विवर्षीण अध्यापक (ख)। द्विवार्षिक अध्यापक (ठञ्)। द्विवर्ष अध्यापक (लुक्)। दो वर्ष तक भृत-द्विवर्षीण कर्मकर (ख)। द्विवार्षिक कर्मकर (ठञ्)। द्विवर्ष कर्मकर (लुक्)। दो वर्ष तक रही-द्विवर्षीण व्याधि (ख)। द्विवार्षिक व्याधि (ठञ्)। द्विवर्ष व्याधि (लुक्)। दो वर्ष तक होनेवाला-द्विवर्षीण यज्ञ (ख)। द्वैवर्षिक यज्ञ (ठञ्)। द्विवर्ष यज्ञ (लुक्)। ऐसे ही-**त्रिवर्षीण, त्रिवार्षिक, त्रिवर्ष।***

*सिद्धि-(१) **द्विवर्षीणम्।** द्विवर्ष+टा/अम्+ख। द्विवर्ष्+ईन। द्विवर्षीण+सु। द्विवर्षीणम्।*

*यहां तृतीया/द्वितीया-विभक्ति-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची, वर्षान्त 'द्विवर्ष' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'अट्कुप्वाङ्०'** (८।४।१) से णत्व होता है।*

*(२) द्विवार्षिकम्। यहां पूर्वोक्त 'द्विवर्ष' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में विकल्प पक्ष में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। **'वर्षस्याभविष्यति'** (७।३।१६) से उत्तरपद-वृद्धि होती है और भावी (भविष्यत्) अर्थ में तो पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है-द्विवर्षं भावी-द्वैवर्षिकः।*

(३) द्विवर्षम्। यहां पूर्वोक्त 'द्विवर्ष' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से विहित 'ख' और 'ठञ्' प्रत्यय का लुक् है।

ऐसे ही-त्रिवर्षीणम्, त्रिवार्षिकम्/त्रैवर्षिकम्, त्रिवर्षम्।

प्रत्ययस्य नित्यं लुक्-

(५) चित्तवति नित्यम्।८८।

प०वि०-चित्तवति ७।१ नित्यम् १।१। चित्तमस्यास्तीति चित्तवान्, तस्मिन्-चित्तवति। **'तदस्यास्मिन्नस्तीति मतुप्'** इति मतुप् प्रत्ययः।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी, द्विगोः, वर्षाद्, लुक् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन, तम् द्विगोः कालाद् वर्षाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी नित्यं लुक्, चित्तवति।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् तमिति च द्वितीयासमर्थाद् द्विगुसंज्ञकात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु विहितस्य प्रत्ययस्य नित्यं लुग् भवति, चित्तवत्यभिधेये।

उदा०-**(निर्वृत्तम्)** द्वाभ्यां वर्षाभ्यां निर्वृत्तम्-द्विवर्षं शिष्यमण्डलम्। **(अधीष्टः)** द्वौ वर्षावधीष्टः-द्विवर्षोऽध्यापकः। **(भृतः)** द्वौ वर्षौ भृतः-द्विवर्षः कर्मकरः। **(भूतः)** द्वौ वर्षौ भूतः-द्विवर्षो दारकः। **(भावी)** द्वौ वर्षौ भावी-द्विवर्षः समाजः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (द्विगोः) द्विगुसंज्ञक (कालात्) कालविशेषवाची (वर्षात्) वर्षान्त प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी इन पांच अर्थों में विहित प्रत्यय का (नित्यम्) सदा (लुक्) लोप होता है (चित्तवति) यदि वहां चेतन अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-*(निर्वृत्त) दो वर्ष में बनाया गया-द्विवर्ष शिष्यमण्डल।* ***(अधीष्ट)*** *दो वर्ष तक सत्कारपूर्वक अध्यापन कार्य में लगाया गया-द्विवर्ष अध्यापक।* ***(भृत)*** *दो वर्ष तक*

वेतन से खरीदा गया-द्विवर्ष कर्मकर। (भूत) जो दो वर्ष का हो चुका है वह-द्विवर्ष दारक (बच्चा)। (भावी) दो वर्ष तक होनेवाला-द्विवर्ष समाज।

सिद्धि-द्विवर्षम्। द्विवर्ष+टा/अम्+ख/ठञ्। द्विवर्ष+०। द्विवर्ष+सु। द्विवर्षम्।

यहां तृतीया तथा द्वितीया विभक्ति-समर्थ, द्विगुसंज्ञक, कालविशेषवाची, 'द्विवर्ष' प्रातिपदिक से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों तथा चेतन अर्थ अभिधेय में विहित प्रत्यय का इस सूत्र से नित्य लुक् होता है। 'वर्षाल्लुक् च' (५।१।८७) से 'द्विवर्ष' शब्द से ख, ठञ् और उनके लुक् का भी विधान किया गया था। इस सूत्र से चेतन अर्थ अभिधेय में नित्य लुक् का विधान किया गया है।

निपातनम्–

(६) षष्टिकाः षष्टिरात्रेण पच्यन्ते।८६।

प०वि०-षष्टिकाः १।३ षष्टिरात्रेण ३।१ पच्यन्ते क्रियापदम्।

स०-षष्टीनां रात्रीणां समाहारः षष्टिरात्रः, तेन षष्टिरात्रेण (द्विगुतत्पुरुषः)। अत्र **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) इति समाहारे द्विगुतत्पुरुषः। **'अहःसर्वैकदेशसंख्यात्** (५।४।८७) इति समासान्तोऽच् प्रत्ययः। **'रात्राह्नाहाः पुंसि'** (२।४।२९) इति च पुंस्त्वम्।

अनु०-तेन इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-तेन षष्टिरात्रात् पच्यन्ते षष्टिकाः।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् षष्टिरात्र-शब्दात् प्रातिपदिकात् पच्यन्ते इत्यस्मिन्नर्थे 'षष्टिकाः' इति पदं कन्प्रत्ययान्तं निपात्यते, रात्रिशब्दस्य च लोपो भवति। 'षष्टिकाः' इत्यत्र बहुवचनमप्रधानम्।

उदा०-षष्टिरात्रेण पच्यन्ते-षष्टिकाः। एषा धान्यविशेषस्य संज्ञा वर्तते।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (षष्टिरात्रेण) षष्टिरात्र प्रातिपदिक से (पच्यन्ते) पकाये जाते हैं, अर्थ में (षष्टिकाः) षष्टिक शब्द कन्-प्रत्ययान्त निपातित है, निपातन से रात्रि शब्द का लोप होता है। 'षटिकाः' शब्द में बहुवचन गौण है।*

उदा०-षष्टिरात्र=साठ रात में जो पकते हैं वे-षष्टिक धान्यविशेष (सांठी चावल)। यह साठी चावल नामक धान्य की ही संज्ञा है अन्य साठ रात्रि में पकनेवाले मुद्‌ग (मूंग) आदि की नहीं।

सिद्धि-षष्टिकाः। षष्टिरात्र+टा+कन्। षष्टि+क। षष्टिक+जस्। षष्टिकाः।

यहां तृतीया-समर्थ 'षष्टिरात्र' शब्द से पच्यन्ते-अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय निपातित है और निपातन से उत्तरपद 'रात्रि' शब्द का लोप होता है।

छः–

(७) वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि।६०।

प०वि०-वत्सरान्तात् ५।१ छः १।१ छन्दसि ७।१।

स०-वत्सरोऽन्ते यस्य तद् वत्सरान्तम्, तस्मात्-वत्सरान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तेन, तम् कालाद् वत्सरान्ताद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा छः।

अर्थः-छन्दसि विषये तेन इति तृतीयासमर्थात् तथा तम् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनो वत्सरान्तात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(निर्वृत्तम्)** इद्वत्सरेण निर्वृत्तम्-इद्वत्सरीयम्। इदावत्सरेण निर्वृत्तम्-इदावत्सरीयम्। **(अधीष्टः०)** इद्वत्सरम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इद्वत्सरीयः। इदावत्सरीयः (का०सं० १३।१५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची (वत्सरान्तात्) वत्सर शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी अर्थों में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-(निर्वृत्त) इद्वत्सर नामक वर्ष में बनाया गया-इद्वत्सरीय भवन। इदावत्सरीय भवन। (अधीष्ट०) इद्वत्सर नामक वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-इद्वत्सरीय अध्यापक आदि। इदावत्सरीय अध्यापक आदि।

सिद्धि-इद्वत्सरीयम्। इद्वत्सर+टा/अम्+छ। इद्वत्सर्+ईय। इद्वत्सरीय+सु। इद्वत्सरीयम्।

यहां तृतीया/द्वितीया विभक्ति-समर्थ, कालविशेषवाची वत्सरान्त 'इद्वत्सर' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में इस सूत्र से छन्दोविषय में 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०'

(७।१।२) से 'छ्' के स्थान में ईय् आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-इदावत्सरीयम्।

विशेषः *वर्ष-अर्थशास्त्र में पांच वर्षों के एक युग का उल्लेख है जिसमें हर एक वर्ष का अलग-अलग नाम होता था। इनमें से इद्वत्सर, इदावत्सर, संवत्सर, परिवत्सर का पाणिनि में भी उल्लेख है {५।१।९१-९२} (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १७८)।*

खः+छः–

(८) सम्परिपूर्वात् ख च।९१।

प०वि०-सम्परिपूर्वात् ५।१ ख १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-सम् च परिश्च तौ सम्परी, सम्परी पूर्वौ यस्य तत्-सम्परिपूर्वम्, तस्मात्-सम्परिपूर्वात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-कालात्, तेन, निर्वृत्तम्, तम्, अधीष्टः, भृतः, भूतः, भावी, वत्सरान्तात्, छः, छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तेन, तम् सम्परिपूर्वाद् वत्सरान्ताद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी खः, छश्च।

अर्थः-छन्दसि विषये तेन इति तृतीयासमर्थात् तथा तम् इति द्वितीयासमर्थात् सम्परिपूर्वाद् वत्सरान्तात् प्रातिपदिकाद् निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा इत्येतेषु पञ्चस्वर्थेषु खः, छश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सम्)** संवत्सरेण निर्वृत्तम्-संवत्सरीणम् (खः)। संवत्सरीयम् (छः)। संवत्सरम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा संवत्सरीणः (खः)। संवत्सरीयः (छः)। संवत्सरीणाः (कौ०सं० ४।३।१३।४)। **(परि)** परिवत्सरेण निर्वृत्तम्-परिवत्सरीणम् (खः)। परिवत्सरीयः (छः)। परिवत्सरीणम् (ऋ० ७।१०।३।८)। परिवत्सरीया (का०सं० १३।१५)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तेन) तृतीया-समर्थ तथा (तम्) द्वितीया-समर्थ (सम्परिपूर्वात्) सम्, परि पूर्वक (वत्सरान्तात्) वत्सर जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (निर्वृत्तम् अधीष्टो भृतो भूतो भावी) निर्वृत्त, अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी इन पांच अर्थों में (खः) ख (च) और (छः) छ प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(सम्)** संवत्सर नामक वर्ष में बनाया गया-संवत्सरीण (ख)। संवत्सरीय (छ)। संवत्सर नामक वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-संवत्सरीण अध्यापक आदि (ख)। संवत्सरीय अध्यापक आदि (छ)। **(परि)** परिवत्सर नामक वर्ष में बनाया गया-परिवत्सरीण (ख)। परिवत्सरीय (छ)। परिवत्सर नामक वर्ष तक अधीष्ट, भृत, भूत वा भावी-परिवत्सरीण (ख)। परिवत्सरीय (छ)।*

*सिद्धि-**(१) संवत्सरीणम्।** संवत्सर+टा/अम्+ख। संवत्सर्+ईन। संवत्सरीण+सु। संवत्सरीणम्।*

*यहां तृतीया/द्वितीया विभक्ति समर्थ, सम्-पूर्वक, वत्सरान्त 'संवत्सर' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में छन्दोविषय में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७ ।१ ।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'यस्येति च'** (६ ।४ ।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' से णत्व होता है। ऐसे ही-**परिवत्सरीणम्।***

(२) संवत्सरीयम्।** यहां पूर्वोक्त 'संवत्सर' शब्द से निर्वृत्त आदि पांच अर्थों में तथा छन्दोविषय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७ ।१ ।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**परिवत्सरीयम्।

***विशेषः** अर्थशास्त्र के अनुसार पांच वर्ष का एक युग होता है। उन पांच वर्षों के पृथक्-पृथक् नाम होते हैं जिसमें संवत्सर और परिसंवत्सर नामक दो वर्ष हैं।*

परिजय्याद्यर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)-

(१) तेन परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम्।६२।

प०वि०-तेन ३ ।१ परिजय्य-लभ्य-कार्य-सुकरम् १ ।१ ।

स०-परिजय्यश्च लभ्यश्च कार्यं च सुकरश्च एतेषां समाहारः परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-कालात् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तेन कालात् प्रातिपदिकात् परिजय्यलभ्यकार्यसुकरेषु यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् परिजय्यलभ्यकार्यसुकरेष्वर्थेषु यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(परिजय्यः) मासेन परिजय्यः=शक्यते जेतुम्-मासिको व्याधिः। सांवत्सरिको व्याधिः। **(लभ्यः)** मासेन लभ्यः-मासिकः पटः।

(कार्यम्) मासेन कार्यम्-मासिकं चान्द्रायणव्रतम्। (सुकरः) मासेन सुकरः-मासिकः प्रासादः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तिन) तृतीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (परिजय्यलभ्यकार्यसुकरम्) परिजय्य, लभ्य, कार्य, सुकर अर्थों में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(परिजय्य) एक मास में जीतने योग्य=चिकित्स्य-मासिक व्याधि (रोग)। संवत्सर=वर्ष में जीतने योग्य-सांवत्सरिक व्याधि। (लभ्य) एक मास में प्राप्य-मासिक पट (कपड़ा)। (कार्य) एक मास में करने योग्य-मासिक चान्द्रायणव्रत। चन्द्रमा की तिथियों पर आधारित एक व्रतविशेष। (सुकर) एक मास में सुखपूर्वक बनाया जानेवाला-मासिक प्रासाद (महल)।

सिद्धि-मासिकम्। *मास+टा+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

यहां तृतीया-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से परिजय्य-आदि चार अर्थों में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) तदस्य ब्रह्मचर्यम्।६३।

प०वि०-तत् २।१ (१।१) अस्य ६।१ ब्रह्मचर्यम् २।१ (१।१)।

अनु०-कालात्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कालाद् अस्य यथाविहितं ठञ् ब्रह्मचर्यम्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति, यद् द्वितीयासमर्थं ब्रह्मचर्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-मासं (यावत्) ब्रह्मचर्यमस्य-मासिको ब्रह्मचारी। अर्धमासिको ब्रह्मचारी। सांवत्सरिको ब्रह्मचारी। आयुष्को ब्रह्मचारी।

द्वितीयोऽर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् कालविशेषवाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति, यदस्येति षष्ठीनिर्दिष्टं ब्रह्मचर्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-मासोऽस्य ब्रह्मचर्यस्य-मासिकं ब्रह्मचर्यम्। आर्धमासिकं ब्रह्मचर्यम्। सांवत्सरिकं ब्रह्मचर्यम्। आयुष्कं ब्रह्मचर्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्) द्वितीया-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठीविभक्ति के अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है (ब्रह्मचर्यम्) जो द्वितीया-समर्थ है यदि वह ब्रह्मचर्य हो।*

उदा०-एक मास तक ब्रह्मचर्य है इसका यह-मासिक ब्रह्मचारी। अर्धमास तक ब्रह्मचर्य है इसका यह-अर्धमासिक ब्रह्मचारी। संवत्सर तक ब्रह्मचर्य है इसका यह-सांवत्सरिक ब्रह्मचारी। आयु (सम्पूर्ण जीवन काल)। ब्रह्मचर्य है इसका यह-आयुष्क ब्रह्मचारी।

द्वितीय अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है (ब्रह्मचर्यम्) जो अस्य=(षष्ठी-विभक्ति) अर्थ है यदि वह ब्रह्मचर्य हो।

उदा०-एक मास है इस ब्रह्मचर्य का यह-मासिक ब्रह्मचर्य। अर्धमास है इस ब्रह्मचर्य का यह आर्धमासिक ब्रह्मचर्य। संवत्सर है इस ब्रह्मचर्य का यह-सांवत्सरिक ब्रह्मचर्य। आयु (सम्पूर्ण जीवन-काल) है इस ब्रह्मचर्य का यह-आयुष्क ब्रह्मचर्य।

*सिद्धि-(१) **मासिक।** मास+अम्/सु+ठञ्। मास+इक। मासिक+सु। मासिकः।*

*यहां द्वितीया/प्रथमा विभक्ति-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा ब्रह्मचर्य अभिधेय में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आर्धमासिकः, सांवत्सरिकः।***

*(२) **आयुष्कः।** यहां द्वितीया-समर्थ/प्रथमा-समर्थ, जीवन-कालवाची 'आयुष्' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। 'इसुसुक्तान्तात् कः' (७।३।५१) से 'ठ्' के स्थान में 'क्' आदेश होता है।*

विशेषः *इस सूत्र के यहां दो अर्थ दर्शाये गये हैं। पाणिनीय शिष्य-परम्परा में दोनों ही अर्थ प्रामाणिक माने जाते हैं।*

दक्षिणार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)-

(१) तस्य च दक्षिणा यज्ञाख्येभ्यः।६४।

प०वि०-तस्य ६।१ दक्षिणा १।१ यज्ञाख्येभ्यः ५।३।

स०-यज्ञमाचक्षते इति यज्ञाख्याः, तेभ्यः-यज्ञाख्येभ्यः (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-ठञ् इत्यनुवर्तति, कालात् इति चार्थवशान्नानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य यज्ञाख्येभ्यश्च दक्षिणा यथाविहितं ठञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो यज्ञाख्येभ्यः=यज्ञविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दक्षिणा इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अग्निष्टोमस्य दक्षिणा-आग्निष्टोमिकी। वाजपेयिकी। राजसूयिकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (यज्ञाख्येभ्यः) यज्ञविशेषवाची प्रातिपदिकों से (च) भी (दक्षिणा) अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अग्निष्टोम यज्ञ की दक्षिणा-आग्निष्टोमिकी। वाजपेय यज्ञ की दक्षिणा-वाजपेयिकी। राजसूय यज्ञ की दक्षिणा-राजसूयिकी।

*सिद्धि-**आग्निष्टोमिकी।** अग्निष्टोम+ङस्+ठञ्। आग्निष्टोम+इक। आग्निष्टोमिक+ङीप्। आग्निष्टोमिकी+सु। आग्निष्टोमिकी।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, यज्ञविशेषवाची 'अग्निष्टोम' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**वायपेयिकी। राजसूयिकी।***

विशेषः *यहां 'यज्ञाख्येभ्यः' पद में आख्य-शब्द के ग्रहण करने से इस काल के अधिकार में अकालवाची यज्ञविशेषवाची प्रातिपदिकों से भी प्रत्ययविधि होती है।*

दीयते/कार्यम्-अर्थप्रत्ययविधिः

भववत्-प्रत्ययाः-

(१) तत्र च दीयते कार्यं भववत्।६५।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम् (सप्तम्यर्थे) च अव्ययपदम्, दीयते क्रियापदम् कार्यम् १।१ भववत् अव्ययपदम्। भवे इव भववत्। **'तत्र तस्येव'** (५।१।११६) इति सप्तम्यर्थे वतिः प्रत्ययः।

अनु०-कालात् इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-तत्र कालात् दीयते कार्यं च भववत्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः कालविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दीयते, कार्यं च इत्येतयोरर्थयोर्भववत् प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-मासे दीयते मासिकम्। मासे कार्यं मासिकम्। सांवत्सरिकम्। प्रावृषेण्यम् इत्यादिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (कालात्) कालविशेषवाची प्रातिपदिक से (दीयते, कार्यम्) दीयते=दिया जाता है, कार्यम्=करने योग्य अर्थों में (च) भी (भववत्) भव-अर्थ के समान प्रत्यय होते हैं, अर्थात् 'तत्र भवः' अर्थ में कालविशेषवाची प्रातिपदिकों से दीयते और कार्यम् अर्थों में भी होते हैं।*

उदा०-एक मास में जो दिया जाता है वह-मासिक। एक मास में जो करने योग्य है वह-मासिक। संवत्सर में जो दिया जाता है/करने योग्य है वह-सांवत्सरिक। प्रावृट् (वर्षा ऋतु) में जो दिया जाता है/करने योग्य है वह-प्रावृषेण्यः।

*सिद्धि-(१) **मासिकम्।** मास+ङि+ठञ्। मास्+इक। मासिक+सु। मासिकम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ, कालविशेषवाची 'मास' शब्द से दीयते/कार्यम् अर्थ में इस सूत्र से भववत् प्रत्ययों का विधान किया गया है अतः यहां **'कालाट्ठञ्'** (४।३।११) से भववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सांवत्सरिकम्।***

*(२) **प्रावृषेण्यम्।** यहां 'प्रावृट्' शब्द से **'प्रावृष एण्यः'** (४।३।१७) से भववत् 'एण्य' प्रत्यय है।*

विशेषः *भव-अर्थक प्रत्ययों का विशेष प्रवचन चतुर्थ अध्याय के तृतीय पाद में देख लेवें।*

।। इति कालाधिकारः ।।

अण्-

(२) व्युष्टादिभ्योऽण्।६६।

प०वि०-व्युटादिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-व्युष्ट आदिर्येषां ते व्युष्टादयः, तेभ्यः-व्युष्टादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र, च, दीयते, कार्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र व्युष्टादिभ्यो दीयते कार्यं चाऽण्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यो व्युष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दीयते कार्यं चेत्येतयोरर्थयोरण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(दीयते) व्युष्टे दीयते-वैयुष्टम्। नित्यं दीयते-नैत्यम्। (कार्यम्) व्युष्टे कार्यम्-वैयुष्टम्। नित्ये कार्यम्-नैत्यम्।

व्युष्ट। नित्य। निष्क्रमण। प्रवेशन। तीर्थ। सम्भ्रम। आस्तरण। संग्राम। संघात। अग्निपद। पीलूमूल। प्रवास। उपसंक्रमण। इति व्युष्टादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (व्युष्टादिभ्यः) व्युष्ट आदि प्रातिपदिकों से (दीयते/कार्यम्) दिया जाता है/करने योग्य अर्थों में (अण्) अण् प्रत्यय हेता है।*

उदा०-(दीयते) व्युष्ट=वर्ष के प्रथम दिन जो दिया जाता है वह-वैयुष्ट। नित्य सब काल में जो दान दिया जाता है वह-नैत्य। (कार्य) व्युष्ट=वर्ष के प्रथम दिन जो करने योग्य है वह-वैयुष्ट। नित्य=सब काल में जो करने योग्य है वह-नैत्य (परोपकार)।

*सिद्धि-(१) **वैयुष्टम्।** व्युष्ट+ङि+अण्। व्युष्ट्+अ। वैयुष्ट्+अ। वैयुष्ट+सु। वैयुष्टम्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'व्युष्ट' शब्द से दीयते/कार्यम् अर्थों में इस सूत्र 'अण्' प्रत्यय है। '**न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच्**' (७।३।३) से ऐच्' आगम और अंग को वृद्धि का प्रतिषेध होता है।*

*(२) **नैत्यम्।** यहां सप्तमी-समर्थ 'नित्य' शब्द से दीयते/कार्यम् अर्थों में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

विशेषः *व्युष्ट-व्युष्ट का सामान्य अर्थ रात्रि का चौथा प्रहर था (वाराह श्रौतसूत्र) किन्तु आर्थिक वर्ष के प्रथम दिन का पारिभाषिक नाम 'व्युष्ट' था जो कि आषाढी पौर्णमासी के अगले दिन होता था (अर्थशास्त्र २।६)। पाणिनि में भी व्युष्ट का यही विशेष अर्थ है। इस दिन के कार्य और देय भुगतानों पर कुछ प्रकाश अर्थशास्त्र से पड़ता है। वहां कहा है कि जितने गणनाध्यक्ष हैं वे आषाढी पूर्णिमा को अपने मोहरबन्द हिसाब-किताब के कागज और रोकड़ लेकर राजधानी में आयें। वहां उन्हें आय, व्यय, रोकड़ का जोड़ बताना पड़ता था और तब उनसे रोकड़ जमा कराई जाती थी। '**तत्र च दीयते**' में जिनकी ओर लक्ष्य है वे ही 'वैयुष्ट' भुगतान ज्ञात होते हैं। राजकीय गणना-विभाग के केन्द्रीय कार्यालय में हिसाब-किताब की जांच-पड़ताल बारीकी से की जाती थी। यही वे 'वैयुष्ट' कार्य थे जिनका '**तत्र च दीयते कार्यम्**' में संकेत है। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १७९)।*

णः+यत्–

(३) तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां णयतौ।६७।

प०वि०-तेन ३।१ यथाकथाच-हस्ताभ्याम् ५।२ ण-यतौ १।२।

स०-यथाकथाश्च हस्तश्च तौ यथाकथाचहस्तौ, ताभ्याम्-यथाकथाच-हस्ताभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-च, दीयते, कार्यम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन यथाकथाचहस्ताभ्यां दीयते, कार्यं च णयतौ।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां यथाकथाच-हस्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां दीयते कार्यं चेत्येतयोरर्थयोर्यथासंख्यं णयतौ प्रत्ययौ भवतः।

'यथाकथाच' (यथा, कथा, च) इत्यव्ययसमुदायोऽनादरेऽर्थे वर्तते, तेन तृतीयासमर्थविभक्तिरत्र न सम्भवति, तृतीयार्थमात्रं चात्र गम्यते। **'यथाकथाचहस्ताभ्याम्'** इत्यत्र **'अल्पाच्तरम्'** (२।२।३४) इत्यनेन हस्तशब्दस्य पूर्वनिपाताभावाल्लक्षणव्यभिचारेण यथासंख्यं प्रत्ययार्थसम्बन्धो न भवति।

उदा०-**(यथा, कथा, च)** यथा कथा च दीयते-याथाकथाचं दानम्। **(कार्यम्)** यथाकथा च कार्यम्-याथाकथाचं कर्म (णः)। **(हस्तः)** हस्तेन दीयते-हस्त्यं दानम्। हस्तेन कार्यम्-हस्त्यं कर्म (यत्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (यथाकथाच-हस्ताभ्याम्) यथाकथाच और हस्त प्रातिपदिकों से (दीयते, कार्यम्) दिया जाता है/करने योग्य अर्थों में (णयतौ) यथासंख्य ण और यत् प्रत्यय होते हैं।*

*यथाकथाच (यथा, कथा, च) यह एक अव्यय-समूह अनादर अर्थ में है अतः यहां तृतीया-समर्थ विभक्ति सम्भव नहीं है किन्तु तृतीया-अर्थमात्र की यहां प्रतीति होती है। सूत्रपाठ में **'यथाकथाचहस्ताभ्याम्'** इस पद में **'अल्पाच्तरम्'** (२।२।३४) से प्राप्त 'हस्त' शब्द का पूर्वनिपात न करने से लक्षण-व्यभिचार है अतः यहां दीयते और कार्यम् प्रत्ययार्थों का प्रातिपदिकों से यथासंख्य सम्बन्ध नहीं होता है।*

*उदा०-**(यथाकथाच)** जैसे-तैसे अनादर से जो दिया जाता है वह-याथाकथाच दान। यथाकथाच=जैसे तैसे अनादर से जो किया जाये वह-याथाकथाच कर्म (ण)। **(हस्त)** अपने हाथ से जो दिया जाता है वह-हस्त्य दान। अपने हाथ से जो करने योग्य है वह-हस्त्य कर्म (यत्)।*

*सिद्धि-**याथाकथाचम्।** यथाकथाच+टा+अण्। याथाकथाच्+अ। याथाकथाच+सु। याथाकथाचम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ अर्थ के प्रत्यायक **'यथाकथाच'** इस अवयवसमूह (वाक्य) से दीयते/कार्यम् अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) हस्त्यम्। हस्त+टा+यत्। हस्त्+य। हस्त्य+सु। हस्त्यम्।

*यहां तृतीया-समर्थ 'हस्त' शब्द से दीयते/कार्यम् अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

विशेषः *यहां प्रातिपदिक से प्रत्ययविधि के प्रकरण में 'यथाकथाच' (यथा, कथा, च) इस अनादरवाची अव्यय-समुदाय रूप वाक्य से भी विधान-सामर्थ्य से प्रत्ययविधि होती है।*

सम्पादि-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) सम्पादिनि।६८।

वि०-सम्पादिनि ७।१। कृद्वृत्तिः-अवश्यं सम्पद्यते इति सम्पादी, तस्मिन्-सम्पादिनि। अत्र **'आवश्यकाधमर्ण्ययोर्णिनिः'** (३।३।१७०) इति णिनिः प्रत्ययः।

अनु०-तेन, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् सम्पादिनि ठञ्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् सम्पादिनि इत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कर्णविष्टकाभ्यां सम्पादि मुखम्-कार्णविष्टकिकं मुखम्। वस्त्रयुगेण सम्पादि-वास्त्रयुगिकं शरीरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (सम्पादिनि) सम्पन्न (गुणोत्कर्ष) करनेवाला अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कर्णविष्टक=कान की दो बाळियों से सम्पन्न होनेवाला-कार्णविष्टिक मुख। वस्त्रयुग=धोती-कुर्ता से सम्पन्न होनेवाला-वास्त्रयुगिक शरीर। कर्णविष्टक से मुख और वस्त्रयुग से शरीर विशेषरूप से सुशोभित होता है।

सिद्धि-कार्णविष्टिकम्। *कर्णविष्ट+भ्याम्+ठञ्। कार्णविष्टक्+इक। कार्णविष्टकिक+सु। कार्णविष्टिकम्।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'कर्णविष्टक' शब्द से सम्पादी-अर्थ में इस सूत्र से **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वास्त्रयुगिकम्।***

यत्–

(२) कर्मवेषाद् यत् ।९९।

प०वि०–कर्म-वेषात् ५।१ यत् १।१।

स०–कर्म च वेषश्च एतयोः समाहारः कर्मवेषम्, कर्मवेषात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तेन, सम्पादिनि इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तेन कर्मवेषात् सम्पादिनि यत्।

अर्थः–तेन इति तृतीयासमर्थाभ्यां कर्मविषाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां सम्पादिनि इत्यस्मिन्नर्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(**कर्म**) कर्मणा सम्पद्यते-कर्मण्यः पुरुषः। (**वेषः**) वेषेण सम्पद्यते-वेष्यो नटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ (कर्मविषात्) कर्म, वेष प्रातिपदिकों से (सम्पादिनि) सम्पन्न=उत्कृष्ट बननेवाला अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(कर्म) शुभ कर्म से सम्पादी=उत्कृष्ट बननेवाला-कर्मण्य पुरुष। (वेष) सुन्दर वेष से सम्पादी=बढ़िया बननेवाला-वेष्य नट।

*सिद्धि-**कर्मण्यः**। कर्मन्+टा+य। कर्मन्+य। कर्मण्य+सु। कर्मण्यः।*

*यहां तृतीया-समर्थ 'कर्मन्' शब्द से सम्पादी-अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। '**ये चाभावकर्मणोः**' (६।४।१६८) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है। ऐसे ही 'वेष' शब्द से-**वेष्यः**।*

प्रभवति-अर्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययस्य (ठञ्)–

(१) तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः ।१००।

प०वि०–तस्मै ४।१ प्रभवति क्रियापदम्, सन्तापादिभ्यः ५।३।

स०–सन्ताप आदिर्येषां ते सन्तापादयः, तेभ्यः-सन्तापादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

प्रभवति=समर्थो भवति। 'तस्मै' इत्यत्र '**नमःस्वस्तिस्वाहा-स्वधालंवषड्योगाच्च**' (२।३।१६) इति अलमर्थे चतुर्थीविभक्तिर्वर्तते।

अनु०-ठञ् इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-तस्मै सन्तापादिभ्यः प्रभवति ठञ्

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थेभ्यः सन्तापादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सन्तापाय प्रभवति-सान्तापिकः। सान्नाहिकः इत्यादिकम्।

सन्ताप। सन्नाह। संग्राम। संयोग। संपराय। संपेष। निष्पेष। निसर्ग। असर्ग। उपपर्ग। उपवास। प्रवास। संघात। संमोदन। सक्तु।। मांसौदनाद् विगृहीतादपि। इति सन्तापादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (सन्तापादिभ्यः) सन्ताप आदि प्रातिपदिकों से (प्रभवति) समर्थ होता है=तैयार होता है, अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सन्ताप=तप करने के लिये जो तैयार होता है वह-सान्तापिक। सन्नाह=कवच और शस्त्र-अस्त्र धारण करने के लिये जो तैयार होता है वह-सान्नाहिक इत्यादि।

सिद्धि-सान्तापिकः *। सन्ताप+ङे+ठञ्। सान्ताप्+इक। सान्तापिकः।*

*यहां चतुर्थी-समर्थ 'सन्ताप' शब्द से प्रभवति-अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित ठञ् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सान्नाहिकः** इत्यादि।*

यत्+ठञ्-

(२) योगाद् यच्च।१०१।

प०वि०-योगात् ५।१ यत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-ठञ्, तस्मै, प्रभवति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै योगात् प्रभवति यत् ठञ् च।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थाद् योग-शब्दात् प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(यत्)** योगाय प्रभवति योग्यः। **(ठञ्)** योगाय प्रभवति-यौगिकः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (योगात्) योग प्रातिपदिक से (प्रभवति) तैयार होता है, अर्थ में (यत्) यत् (च) और (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(यत्) योग=समाधि लगाने के लिये जो तैयार होता है वह-योग्य। (ठञ्) योग के लिये जो तैयार होता है वह-यौगिक।

सिद्धि-(१) योग्यः । योग+ङे+यत्। योग्+य। योग्य+सु। योग्यः।

यहां चतुर्थी-समर्थ 'योग' शब्द से प्रभवति अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(२) यौगिकः । यहां चतुर्थी-समर्थ 'योग' शब्द से प्रभवति अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित ठञ् प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः महर्षि पतञ्जलि ने योगशास्त्र में योग का यह लक्षण किया है- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' (१।२) अर्थात् चित्त की प्रमाण आदि वृत्तियों के निरोध का नाम योग है। योग के परिज्ञान के लिये योगशास्त्र का अध्ययन करें।

उकञ्—

(३) कर्मण उकञ् ।१०२।

प०वि०-कर्मणः ५।१ उकञ् १।१।

अनु०-तस्मै, प्रभवति इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्मै कर्मणः प्रभवति उकञ्।

अर्थः-तस्मै इति चतुर्थीसमर्थात् कर्मन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् प्रभवतीत्यस्मिन्नर्थे उकञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कर्मणे प्रभवति-कार्मुकं धनुः। धनुषोऽन्यत्रार्थे प्रत्ययो न भवति, अनभिधानात्=प्रयोगादर्शनात्।

आर्यभाषाः अर्थः-(तस्मै) चतुर्थी-समर्थ (कर्मणः) कर्मन् प्रातिपदिक से (प्रभवति) तैयार रहता है, अर्थ में (उकञ्) उकञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-कर्म=शत्रुसंहार रूप कर्म के लिये जो तैयार रहता है वह-कार्मुक धनुष। धनुष से अन्यत्र अर्थ में यह प्रत्यय अनभिधान (प्रयोग-अदर्शन) वश नहीं होता है।

सिद्धि-कार्मुकम् । कर्मन्+ङे+उकञ्। कार्म्+उक। कार्मुक+सु। कार्मुकम्।

यहां चतुर्थी-समर्थ 'कर्मन्' शब्द से प्रभवति-अर्थ में तथा धनुः-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से उकञ् प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप और पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः (ठञ्)–

(१) समयस्तदस्य प्राप्तम्।१०३।

प०वि०-समयः १।१ तत् १।१ अस्य ६।१ प्राप्तम् १।१।

अनु०-ठञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् समयाद् अस्य यथाविहितं ठञ्, प्राप्तम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् समय-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेत् तद् भवति।

उदा०-समयः प्राप्तोऽस्य-सामयिकं कार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थः-(तत्) प्रथमा-समर्थ (समयः) समय प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है (प्राप्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्राप्त=आगया हो।*

उदा०-समय प्राप्त=आ गया है इसका यह-सामयिक कार्य।

सिद्धि-सामयिकम्। समय+सु+ठञ्। सामय्+इक। सामयिक+सु। सामयिकम्।

यहां प्रथमा-समर्थ 'समय' शब्द से प्राप्त अर्थ में 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

अण्–

(२) ऋतोरण्।१०४।

प०वि०-ऋतोः ५।१ अण् १।१

अनु०-तत्, अस्य, प्राप्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् ऋतोरस्याऽण्, प्राप्तम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् ऋतु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेत् तद् भवति।

उदा०-ऋतुः प्राप्तोऽस्य-आर्त्तवं पुष्पम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (ऋतोः) ऋतु प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (प्राप्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्राप्त=आगया हो।*

उदा०-ऋतु जिसका प्राप्त=आ गया है वह-आर्तव पुष्प (फूल)।

सिद्धि-आर्तवम्। ऋतु+सु+अण्। आर्तो+अ। आर्तव+सु। आर्तवम्।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'ऋतु' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्राप्त अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।*

घस्-

(३) छन्दसि घस्।१०५।

प०वि०-छन्दसि ७।१ घस् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, प्राप्तम्, ऋतोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तद् ऋतोरस्य घस् प्राप्तम्।

अर्थः-छन्दसि विषये तद् इति प्रथमासमर्थाद् ऋतु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे घस् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेत् तद् भवति।

उदा०-ऋतुः प्राप्तोऽस्य-ऋत्वियः। '**अयं ते योनिर्ऋत्वियः**' (ऋ० ३।२९।१०)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्) प्रथमा-समर्थ (ऋतोः) ऋतु प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (घस्) घस् प्रत्यय होता है (प्राप्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्राप्त=आ गया हो।*

*उदा०-ऋतु इसका प्राप्त=आ गया है यह-ऋत्विय। '**अयं ते योनिर्ऋत्वियः**' (ऋ० ३।२९।१०)।*

सिद्धि-ऋत्वियः। ऋतु+सु+घस्। ऋतो+इय। ऋतव्+इय। ऋत्विय+सु। ऋत्वियः।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'ऋतु' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा छन्दोविषय में इस सूत्र से 'घस्' प्रत्यय है। '**आयनेय०**' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। 'घस्' प्रत्यय के सित् होने से '**सिति च**' (१।४।१६) से ऋतु शब्द की पद संज्ञा होती है। पदसंज्ञा होने से भसंज्ञा निरस्त हो जाती है अतः यहां '**ओर्गुणः**' (६।४।१४६)*

से पदसंज्ञक अंग को गुण नहीं होता है अपितु 'इको यणचि' (६ ।१ ।७६) से यण् आदेश हो जाता है।

यत्–

(४) कालाद् यत्।१०६।

प०वि०-कालात् ५ ।१ यत् १ ।१।

अनु०-तत्, अस्य, प्राप्तम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कालाद् अस्य यत् प्राप्तम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् काल-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्राप्तं चेत् तद् भवति।

उदा०-कालः प्राप्तोऽस्य-काल्यस्तापः। काल्यं शीतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (कालात्) काल प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (प्राप्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्राप्त=आ गया हो।*

उदा०-काल=समय इसका प्राप्त=आ गया है यह-काल्य ताप (गर्मी)। काल्य शीत (ठण्ड)।

सिद्धि-काल्यः। काल+सु+यत्। काल्+य। काल्य+सु। काल्यः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'काल' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्राप्त अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६ ।४ ।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

ठञ्–

(५) प्रकृष्टे ठञ्।१०७।

प०वि०-प्रकृष्टे ७ ।१ ठञ् १ ।१।

अनु०-तत्, अस्य, कालाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रकृष्टे कालाद् अस्य ठञ्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रकृष्टेऽर्थे वर्तमानात् काल-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रकृष्टः=दीर्घः कालोऽस्य-कालिकम् ऋणम्। कालिकं वैरम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (प्रकृष्टे) दीर्घ अर्थ में विद्यमान (कालात्) काल प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रकृष्ट=दीर्घ है काल इसका यह-कालिक ऋण (कर्जा)। प्रकृष्ट=दीर्घ है काल इसका यह-कालिक वैर (दुश्मनी)।

सिद्धि-कालिकम्। काल+सु+ठञ्। काल्+इक। कालिक+सु। कालिकम्।

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रकृष्ट अर्थ में विद्यमान, 'काल' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) इस ठञ्-प्रत्यय के अधिकार में पुनः 'ठञ्' प्रत्यय का ग्रहण विस्पष्टता के लिये है।

यथाविहितं (ठञ्)–

(६) प्रयोजनम्।१०८।

प०वि०-प्रयोजनम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य यथाविहितं ठञ् प्रयोजनम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे यथाविहितं ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०-इन्द्रमहः प्रयोजनमस्य-ऐन्द्रमहिकम्। गाङ्गमहिकम्। बौधरात्रिकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति अर्थ में (ठञ्) यथाविहित ठञ् प्रत्यय होता है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन=उद्देश्य हो।*

उदा०-इन्द्रमह=इन्द्र-उत्सव प्रयोजन है इसका यह-ऐन्द्रमहिक। गङ्गामह=गङ्गा-उत्सव (गङ्गा-स्नान) है इसका यह-गाङ्गमहिक। बोधरात्रि नामक उत्सव है प्रयोजन इसका-बौधरात्रिक।

सिद्धि-ऐन्द्रमहिकम्। इन्द्रमह+सु+ठञ्। ऐन्द्रमह्+इक। ऐन्द्रमहिक+सु। ऐन्द्रमहिकम्।

यहां प्रथमा-समर्थ 'इन्द्रमह' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में ***'प्रागवतेष्ठञ्'*** *(५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-गाङ्गमहिकम्, बौधरात्रिकम्।*

अण्–

(७) विशाखाषाढादण् मन्थदण्डयोः।१०६।

प०वि०-विशाखा-आषाढात् ५।१ अण् १।१ मन्थ-दण्डयोः ७।२।

स०-विशाखा च आषाढश्च एतयोः समाहारो विशाखाषाढम्, तस्मात्-विशाखाषाढात् (समाहारद्वन्द्वः)। मन्थश्च दण्डश्च तौ मन्थदण्डौ, तयोः-मन्थदण्डयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, प्रयोजनम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् मन्थदण्डयोर्विशाखाषाढाभ्याम् अस्याऽण्, प्रयोजनम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां यथासंख्यं मन्थदण्डयोरर्थयोर्वर्तमानाभ्यां विशाखाषाढाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०-(विशाखा) विशाखा प्रयोजनमस्य-वैशाखो मन्थः। **(आषाढः)** आषाढः प्रयोजनमस्य-आषाढो दण्डः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (मन्थदण्डयोः) यथासंख्य मन्थ और दण्ड अर्थ में विद्यमान (विशाखाषाढात्) विशाखा, आषाढ प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन हो।*

उदा०-(विशाखा) विशाखा है प्रयोजन इसका यह-वैशाख मन्थ=मथानी (रई)। (आषाढ) आषाढ है प्रयोजन इसका यह-आषाढ दण्ड (ब्रह्मचारी का पलाश आदि का डंडा)।

सिद्धि-वैशाखः। विशाखा+सु+अण्। वैशाख्+अ। वैशाख+सु। वैशाखः।

*यहां प्रथमा-समर्थ, मन्थ-अर्थ में विद्यमान 'विशाखा' शब्द से तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही 'आषाढ' शब्द से दण्ड अर्थ में-**आषाढः।***

छः–

(८) अनुप्रवचनादिभ्यश्छः।११०।

प०वि०-अनुप्रवचन-आदिभ्यः ५।३ छः १।१।

स०-अनुप्रवचनम् आदिर्येषां तेऽनुप्रवचनादयः, तेभ्यः-अनुप्रवचनादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, प्रयोजनम्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अनुप्रवचनादिभ्योऽस्य छः, प्रयोजनम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्योऽनुप्रवचनादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०-अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य-अनुप्रवचनीयो होमः। उत्थापनीयम् आन्दोलनम्, इत्यादिकम्।

अनुप्रवचन। उत्थापन। प्रवेशन। अनुप्रवेशन। उपस्थापन। संवेशन। अनुवेशन। अनुवचन। अनुवादन। अनुवासन। आरम्भण। आरोहण। प्ररोहण। अन्वारोहण। इति अनुप्रवचनादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अनुप्रवचनादिभ्यः) अनुप्रवचन-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन हो।*

उदा०-अनुप्रवचन है प्रयोजन इसका यह-अनुप्रवचनीय होम। उत्थापन=समाज को उठाना है प्रयोजन इसका-उत्थापनीय आन्दोलन, इत्यादि।

*सिद्धि-**अनुप्रवचनीयः**। अनुप्रवचन+सु+छ। अनुप्रवचन्+ईय। अनुप्रवचनीय+सु। अनुप्रवचनीयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अनुप्रवचन' प्रातिपदिक से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**उत्थापनीयम्** आदि।*

विशेषः *उपनयन, गोदानव्रत, महानाम्नीव्रत आदि प्रत्येक व्रत की समाप्ति पर 'अनुप्रवचनीय' होम किया जाता था {आश्व० १।२२। प्रवचनात् पश्चात् क्रियते इत्यनुप्रवचनीयहोमः} (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २८७)।*

छः–

(६) समापनात् सपूर्वपदात्।१११।

प०वि०-समापनात् ५।१ सपूर्वपदात् ५।१।

स०-सह पूर्वपदेन इति सपूर्वपदः, तस्मात्-सपूर्वपदात् (बहुव्रीहिः)। **'तेन सहेति तुल्ययोगे'** (४।२।२८) इति बहुव्रीहिः, **'वोपसर्जनस्य'** (६।३।१२) इति सहस्य स्थाने स-आदेशः।

अनु०-तत्, अस्य, प्रयोजनम्, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सपूर्वपदात् समापनाद् अस्य छः, प्रयोजनम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् सपूर्वपदात्=विद्यमानपूर्वपदात् समापन-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे छः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०-छन्दःसमापनं प्रयोजनमस्य-छन्दःसमापनीयम् अग्निहोत्रम्। व्याकरणसमापनीयम् अग्निहोत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सपूर्वपदात्) पूर्वपद से युक्त (समापन) समापन प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन है।*

उदा०-छन्दःसमापन=वेद समाप्ति है प्रयोजन इसका यह-छन्दःसमापनीय अग्निहोत्र (यज्ञ)। वेदाध्ययन की समाप्ति पर किया जानेवाला होम। व्याकरण-समापन=व्याकरणशास्त्र की समाप्ति है प्रयोजन इसका यह-व्याकरणसमापनीय अग्निहोत्र। व्याकरणशास्त्र की समाप्ति पर किया जानेवाला होम।

*सिद्धि-**छन्दःसमापनीयम्।** छन्दःसमापन+सु+छ। छन्दःसमापन्+ईय। छन्दःसमापनीय+सु। छन्दःसमापनीयम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'छन्दःसमापन' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश तथा **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**व्याकरणसमापनीयम्।***

निपातनम् (ठञ्)-

(१०) ऐकागारिकट् चौरे।११२।

प०वि०-ऐकागारिकट् १।१ चौरे ७।१।

अनु०-ठञ्, तत्, अस्य, प्रयोजनम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् ऐकागारिकड् अस्य ठञ्, प्रयोजनम्, चौरे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थम् 'ऐकागारिकट्' इति प्रातिपदिकम् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ्-प्रत्ययान्तं-निपात्यते, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत्, चौरेऽभिधेये।

उदा०-एकागारम् (असहायगृहम्) प्रयोजमस्य-ऐकागारिकश्चौरः। स्त्री चेत्-ऐकारिकी चौरी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (ऐकागारिकट्) ऐकागारिकट् प्रातिपदिक (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में निपातित है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन हो और (चौरे) यदि वहां चौर अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-एकागार (असहाय-घर) प्रयोजन है इसका यह-ऐकागारिक चौर। यदि स्त्री हो तो-ऐकागारिकी चौरी (चौर स्त्री)।

सिद्धि-ऐकागारिकः। एकागार+सु+ठञ्। ऐकागार्+इक। ऐकागारिक+सु। ऐकागारिकः।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'एकागार' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में, प्रयोजन तथा चौर अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ठञ्' प्रत्यय निपातित है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। यहां 'एकागार' शब्द से 'प्राग्वतेष्ठञ्' (५।१।१८) से 'ठञ्' प्रत्यय तो सिद्ध ही है किन्तु चौर अर्थ में उसे निपातित किया गया है। 'ऐकागारिकट्' के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**ऐकागारिकी**।*

विशेषः *'एकागार' शब्द में 'एक' पद असहायवाची है। एकागार अर्थात् अकेला घर। एकागार=अकेला घर जिस पुरुष का प्रयोजन है वह 'ऐकागारिक' चौर कहाता है। ससहाय घर में अनेक पुरुषों का अधिष्ठान होने से उसमें चोरी करना सम्भव नहीं होता है।*

निपातनम् (ठञ्)-

(११) आकालिकडाद्यन्तवचने।११३।

प०वि०-आकालिकट् १।१ आदि-अन्तवचने ७।१।

स०-आदिश्च अन्तश्च तौ आद्यन्तौ, तयोः-आद्यन्तयोः, आद्यन्तयोर्वचनम्-आद्यन्तवचनम्, तस्मिन्-आद्यन्तवचने (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-ठञ्, अस्य, प्रयोजनम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् आद्यन्तवचने आकालिकड् अस्य ठञ् प्रयोजनम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थम् आद्यन्तवचनेऽर्थे वर्तमानम् आकालिकट् इति प्रातिपदिकम् अस्येति षष्ठ्यर्थे ठञ्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, यत् प्रथमासमर्थं प्रयोजनं चेत् तद् भवति।

उदा०-समानकालावाद्यन्तौ प्रयोजनमस्य-आकालिकः स्तनयित्नुः। स्त्री चेत्-आकालिकी विद्युत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (आद्यन्तवचने) आदि और अन्त के कथन अर्थ में विद्यमान (आकालिकट्) आकालिकट् प्रातिपदिक (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (ठञ्) ठञ्-प्रत्ययान्त निपातित है (प्रयोजनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रयोजन हो।*

उदा०-आकाल=समान कालवाला आदि और अन्त प्रयोजन है इसका यह-आकालिक स्तनयित्नु (बिजली)। यदि स्त्री हो तो-आकालिकी विद्युत् (बिजली)।

*सिद्धि-**आकालिकः**। समानकाल+सु+ठञ्। आकाल्+इक। आकालिक+सु। आकालिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'समानकाल' शब्द से अस्य (षष्ठी-विभक्ति) अर्थ में तथा प्रयोजन अर्थ अभिधेय में **'प्राग्वतेष्ठञ्'** (५।१।१८) से यथाविहित 'ठञ्' प्रत्यय है। 'समानकाल' शब्द के स्थान में 'आकाल' आदेश होता है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**आकालिकी**।*

विशेषः *(१) व्याकरण महाभाष्य के अनुसार ठञ्-प्रत्यय के अधिकार में 'आगार' शब्द से 'ठञ्' प्रत्यय तो सिद्ध ही है 'आद्यन्तवचन' अर्थ के लिये यह निपातन*

किया गया है। काशिकाकार पं० जयादित्य ने यहां 'ईकक्' प्रत्यय का निपातन किया है। 'ठञ्' प्रत्यय से सिद्धि होने पर 'ईकक्' प्रत्यय की कल्पना अनुचित है।

(२) किसी का समानकाल=एक ही काल में आदि (उत्पत्ति) और अन्त (विनाश) सम्भव नहीं हो सकता अतः यहां उत्पत्ति के पश्चात् तत्काल विनाश होना तात्पर्य समझना चाहिये।

तुल्यार्थप्रत्ययविधिः

वतिः—

(१) तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः।११४।

प०वि०-तेन ३।१ तुल्यम् २।१ क्रिया १।१ चेत् अव्ययपदम्, वतिः १।१। 'तुल्यम्' इत्यत्र क्रियाविशेषणत्वात् कर्मणि द्वितीया।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकात् तुल्यं वतिः, क्रिया चेत्।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकात् तुल्यमित्यस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति, यत् तुल्यं क्रिया चेत् सा भवति।

उदा०-ब्राह्मणेन तुल्यं वर्तति-ब्राह्मणवत्। राज्ञा तुल्यं वर्तति-राजवत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (तुल्यम्) समान अर्थ में (वतिः) वति प्रत्यय होता है (क्रिया) जो तुल्य है (चेत्) यदि वह क्रिया हो।*

उदा०-ब्राह्मण के तुल्य=समान है पठन-पाठन आदि क्रिया इसकी यह-ब्राह्मणवत्। राजा के तुल्य=समान है प्रजा की रक्षा आदि क्रिया इसकी यह-राजवत्। यहां क्रिया की तुल्यता का कथन इसलिये किया गया है कि गुण की तुल्यता में वति-प्रत्यय न हो जैसे-पुत्रेण तुल्यः स्थूलः।

*सिद्धि-(१) **ब्राह्मणवत्।** ब्राह्मण+टा+वति। ब्राह्मण+वत्। ब्राह्मणवत्+सु। ब्राह्मणवत्।*

*यहां तृतीया-समर्थ, 'ब्राह्मण' शब्द से तुल्य अर्थ में तथा क्रिया-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'वति' प्रत्यय है। **'स्वरादिनिपातमव्ययम्'** (१।१।३७) में पठित **'वत्=वदन्तमव्यय-संज्ञं भवति'** इस गण-सूत्र से 'ब्राह्मणवत्' पद की अव्ययसंज्ञा है अतः **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् हो जाता है।*

*(२) **राजवत्।** यहां तृतीया-समर्थ 'राजन्' शब्द से पूर्ववत् 'वति' प्रत्यय करने पर **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से 'राजन्' शब्द की पद-संज्ञा और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

इवार्थप्रत्ययविधिः

वतिः–

(१) तत्र तस्येव।११५।

प०वि०–तत्र अव्ययपदम् (सप्तम्यर्थे) तस्य ६।१ इव अव्ययपदम्।

अनु०–वतिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः–तत्र, तस्य प्रातिपदिकाद् इव वतिः।

अर्थः–तत्र इति सप्तमीसमर्थात्, तस्य इति षष्ठीसमर्थाच्च प्रातिपदिकाद् इव इत्यस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(तत्र)** मथुरायामिव-मथुरावत् स्रुघ्ने प्राकारः। पाटलिपुत्रे इव पाटलिपुत्रवत् साकेते परिखा। **(तस्य)** देवदत्तस्येव-देवदत्तवद् यज्ञदत्तस्य गावः। यज्ञदत्तस्येव-यज्ञदत्तवद् देवदत्तस्य दन्ताः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ और (तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (इव) समान अर्थ में (वतिः) वति प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(तत्र) स्रुघ्न नगर में मथुरावत्=मथुरा के सदृश प्राकार (चाहरदीवारी) है। साकेत=अयोध्या नगरी में पाटलिपुत्रवत्=पटनानगर के सदृश परिखा=खाई है। **(तस्य)** यज्ञदत्त की गौवें देवदत्तवत्=देवदत्त की गौवों के सदृश हैं। देवदत्त के दांत यज्ञदत्तवत्=यज्ञदत्त के दांतों के सदृश हैं।*

*सिद्धि-(१) **मथुरावत्।** मथुरा+ङि+वति। मथुरा+वत्। मथुरावत्+सु। मथुरावत्।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'मथुरा' शब्द से इव (सदृश) अर्थ में इस सूत्र से 'वति' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**पाटलिपुत्रवत्।***

*(२) **देवदत्तवत्।** देवदत्त+ङस्+वति। देवदत्त+वत्। देवदत्तवत्+सु। देवदत्तवत्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'देवदत्त' शब्द से इव (सदृश) अर्थ में इस सूत्र से 'वति' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**यज्ञदत्तवत्।***

अर्हार्थप्रत्ययविधिः

वतिः-

(१) तदर्हम्।११६।

प०वि०–तत् २।१ अर्हम् २।१।

कृद्वृत्तिः-अर्हतीति अर्हः, तम्-अर्हम्। अत्र **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।३४) इति कर्तरि कारकेऽच् प्रत्ययः। 'तत्' इत्यत्र **'कर्तृकर्मणोः कृति'** (२।३।६५) इति कृदन्तयोगे षष्ठ्यां प्राप्तायामस्मादेव सूत्रोक्तान्निपातनाद् द्वितीया वेदितव्या।

अनु०-वतिः, क्रिया, चेद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अर्हं वतिः, क्रिया चेत्।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अर्हमित्यस्मिन्नर्थे वतिः प्रत्ययो भवति, यद् अर्हमिति प्रत्ययार्थ आत्मार्हा क्रिया चेत् सा भवति।

उदा०-राजानमर्हति-राजवत् पालनम्। ब्राह्मणमर्हति-ब्राह्मणवद् वेदाध्ययनम्। ऋषिमर्हति-ऋषिवद् वेदार्थज्ञानम्। क्षत्रियमर्हति-क्षत्रियवत् प्रजारक्षणम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ प्रातिपदिक से (अर्हम्) योग्य अर्थ में (वतिः) वति प्रत्यय होता है। (क्रिया चेत्) जो अर्ह-प्रत्ययार्थ है यदि वहां आत्मार्हा क्रिया हो।*

उदा०-राजा को जो योग्य है वह-राजवत् पालन करना। ब्राह्मण को जो योग्य है वह-ब्राह्मणवत् वेद का अध्ययन करना। ऋषि को जो योग्य है वह-ऋषिवत् वेदार्थ को जानना। क्षत्रिय को जो योग्य है वह-क्षत्रियवत् प्रजा की रक्षा करना।

सिद्धि-राजवत्। राजन्+अम्+वति। राजन्+वत्। राजवत्+सु। राजवत्।

यहां द्वितीया-समर्थ 'राजन्' शब्द अर्ह (योग्य) अर्थ में तथा आत्मार्हा क्रिया अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से वति प्रत्यय है। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' (१।४।१७) से 'राजन्' शब्द की पदसंज्ञा और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-ब्राह्मणवत् आदि।

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

वतिः-

(१) उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे।११७।

प०वि०-उपसर्गात् ५।१ छन्दसि ७।१ धात्वर्थे ७।१।

स०-धातुकृतोऽर्थ इति धात्वर्थः, तस्मिन् धात्वर्थे (उत्तरपदलोपी-तत्पुरुषः)।

अनु०-वतिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि धात्वर्थे उपसर्गात् स्वार्थे वतिः।

अर्थः-छन्दसि विषये धात्वर्थे वर्तमानाद् उपसर्गात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे वतिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-उद्गतमिति-उद्वत्। निगतमिति-निवत्। **'यदुद्वतो निवतो यासि वप्सत्'** (ऋ० १०।१४२।४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (धात्वर्थे) धातुकृत अर्थ में विद्यमान (उपसर्गात्) उपसर्ग-संज्ञक प्रातिपदिक से स्वार्थ में (वतिः) वति प्रत्यय होता है।*

*उदा०-उद्गत ही-उद्वत्। ऊपर की ओर गया हुआ। निगत ही-निवत्। नीचे की ओर गया हुआ। **'यदुद्वतो निवतो यासि वप्सत्'** (ऋ० १०।१४२।४)।*

*सिद्धि-**उद्वत्**। उत्+सु+वति। उत्+वत्। उद्वत्+सु। उद्वत्।*

*यहां वेदविषय में धातुकृत-अर्थ में विद्यमान 'उत्' उपसर्ग से स्वार्थ में इस सूत्र से 'वति' प्रत्यय है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से 'त्' के स्थान में जश् 'द्' आदेश होता है। ऐसे ही-**निवत्**।*

विशेषः *'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१।१।३७) से स्वरादिगण में पठित **'वत्' वदन्तमव्ययसंज्ञं भवति,** इस गणसूत्र से 'उद्वत्' आदि शब्द अव्यय हैं किन्तु धातुकृत अर्थ साधन (द्रव्य) होने से उसका लिङ्ग और वचन के साथ योग सम्भव होता है। अतः यहां धात्वर्थ के बल से वेदमन्त्र में 'उद्वतः' आदि पद पुंलिङ्ग और बहुवचन में प्रयुक्त हैं।*

भावार्थप्रत्ययप्रकरणम्

त्वः+तल्-

(१) तस्य भावस्त्वतलौ।११८।

प०वि०-तस्य ६।१ भावः १।१ त्व-तलौ १।२।

स०-त्वश्च तल् च तौ त्वतलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

कृद्वृत्तिः- भवतोऽस्मादभिधानप्रत्ययाविति भावः। अत्र **'श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे'** (३।३।२४) इति करणे कारके घञ् प्रत्ययः। अत्र शब्दस्य यत् प्रवृत्तिनिमित्तं तद् भावशब्देनोच्यते।

अन्वयः-तस्य प्रातिपदिकाद् भावस्त्वतलौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् प्रातिपदिकाद् भाव इत्यस्मिन्नर्थे त्वतलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-अश्वस्य भावः-अश्वत्वम् (त्वः)। अश्वता (तल्)। गोर्भावः-गोत्वम् (त्वः)। गोता (तल्)।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ प्रातिपदिक से (भावः) शब्द के प्रवृत्ति निमित्त अर्थ में (त्वतलौ) त्व और तल् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-अश्व का भाव-अश्वत्व=घोड़ापन (त्व)। अश्वता=घोड़ापन (तल्)। गौ का भाव-गोत्व=गौपन (त्व)। गोता=गौपन (तल्)।

सिद्धि-(१) __अश्वत्वम्।__ अश्व+ङस्+त्व। अश्व+त्व। अश्वत्व+सु। अश्वत्वम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से भाव-अर्थ में इस सूत्र से 'त्व' प्रत्यय है। ऐसे ही-__गोत्वम्।__

(२) __अश्वता।__ अश्व+ङस्+तल्। अश्व+त। अश्वत+टाप्। अश्वता+सु। अश्वता।

यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'तल्' प्रत्यय है। 'तलन्तः' (लिङ्गा० १।१७) से तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-__गोता।__

त्वतल्प्रत्ययाधिकारः-

(२) आ च त्वात्।११६।

प०वि०-आ अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, त्वात् ५।१।

अनु०-भावः, त्वतलौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-आ त्वाच्च भावस्त्वतलौ।

अर्थः- **'ब्रह्मणस्त्वः'** (५।१।१३५) इति वक्ष्यति, आ त्वात्=एतस्मात् त्वशब्दात् यद् इत ऊर्ध्वं वक्ष्यामस्तत्र भावेऽर्थे त्वतलौ प्रत्ययौ भवतः, इत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति- **'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा'** (५।१।१२१) इति। पृथोर्भावः-प्रथिमा। पार्थवम्। पृथुत्वम्। पृथुता। इत्यादिकम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-पाणिनिमुनि कहेंगे- __'ब्रह्मणस्त्वः'__ (५।१।१३५) इस सूत्र में प्रोक्त (त्वात्) 'त्व' शब्द (आ) तक (च) भी अब जो इससे आगे कहा जायेगा वहां (भावः) भाव अर्थ में (त्वतलौ) त्व और तल् प्रत्यय होते हैं। जैसे आगे कहा जायेगा- __'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा'__ (५।१।१२१) अर्थात् पृथु-आदि शब्दों से विकल्प से

इमनिच् प्रत्यय होता है। अतः इस त्व-तल् प्रत्ययों के अधिकार से वहां विकल्प पक्ष में त्व और तल् प्रत्यय भी होते हैं। जैसे-प्रथिमा। पार्थवम्। पृथुत्वम्। पृथुता इत्यादि।

सिद्धि-प्रथिमा आदि शब्दों की सिद्धि यथास्थान लिखी जायेगी।

भावार्थप्रत्ययप्रतिषेधः-

(३) न नञ्पूर्वात् तत्पुरुषादचतुरमङ्गललवणबुधकतरसलसेभ्यः।१२०।

प०वि०-न अव्ययपदम्, नञ्पूर्वात् ५।१ तत्पुरुषात् ५।१ अचतुर-मङ्गल-लवण-बुध-कत-रस-लसेभ्यः ५।३।

स०-नञ् पूर्वो यस्मिन् स नञ्पूर्वः, तस्मात् नञ्पूर्वात् (बहुव्रीहिः)। चतुरश्च मङ्गलं च लवणं च बुधश्च कतश्च रसश्च लसश्च ते चतुरमङ्गललवणबुधकतरसलसाः, न चतुर०लसा इति अचतुर०लसाः, तेभ्यः-अचतुर०लसेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, भाव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य चतुरादिवर्जिताद् नञ्पूर्वात् तत्पुरुषाद् भाव इत उत्तरे प्रत्यया न।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाच्चतुरादिवर्जिताद् नञ्पूर्वात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् भाव इत्यस्मिन्नर्थे इत उत्तरे प्रत्यया न भवन्तीत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति- **'पत्यन्तपुरोहिताभ्यो यक्'** (५।१।१२७) इति अपतेर्भावः-अपतित्वम्, अपतिता। अपटुत्वम्, अपटुता। अरमणीयत्वम्, अरमणीयता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अचतुर०लसेभ्यः) चतुर, मङ्गल, लवण, बुध, कत, रस, लस प्रातिपदिकों को छोड़कर (नञ्पूर्वात्) नञ्पूर्ववाले (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (भावः) भाव अर्थ में (न) इससे आगे विधीयमान प्रत्यय नहीं होते हैं, यह अधिकार सूत्र है। जैसे पाणिनिमुनि कहेंगे-* ***'पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो यक्'*** *(५।१।१२७) अर्थात् पति-अन्तवाले तथा पुराहित आदि प्रातिपदिकों से यक् प्रत्यय होता है। वह इस नियम-सूत्र से नञ्-तत्पुरुष से नहीं होता है। जैसे-अपतित्व, अपतिता। अपटुत्व, अपटुता। अरमणीयत्व, अरमणीयता। यहां 'यक्' प्रत्यय का प्रतिषेध होने से* ***'तस्य भावस्त्वतलौ'*** *(५।१।११८) से औत्सर्गिक त्व और तल् प्रत्यय होते हैं।*

इमनिच्-विकल्पः–

(४) पृथ्वादिभ्य इमनिज् वा।१२१।

प०वि०–पृथु-आदिभ्य ५।३ इमनिच् १।१ वा अव्ययपदम्।

स०–पृथु आदिर्येषां ते पृथ्वादयः, तेभ्यः–पृथ्वादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तस्य, भाव इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य पृथ्वादिभ्यो भावो वा इमनिच्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः पृथ्वादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भाव इत्यस्मिन्नर्थे विकल्पेन इमनिच् प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाप्राप्तं त्वतलौ च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०–पृथुनो भावः–प्रथिमा (इमनिच्)। पार्थवम् (अण्)। पृथुत्वम् (त्वः)। पृथुता (तल्)। मृदुनो भावः–म्रदिमा (इमनिच्)। मार्दवम् (अण्)। मृदुत्वम् (त्वः)। मृदुता (तल्) इत्यादिकम्।

पृथु। मृदु। महत्। पटु। तनु। लघु। बहु। साधु। वेणु। आसु। बहुल। गुरु। दण्ड। ऊरु। खण्ड। चण्ड। बाल। अकिञ्चन। होड। पाक। वत्स। मन्द। स्वादु। ह्रस्व। दीर्घ। प्रिय। वृष। ऋजु। क्षिप्र। क्षुप्र। क्षुद्र। इति पृथ्वादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पृथ्वादिभ्यः) पृथु आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव अर्थ में (वा) विकल्प से (इमनिच्) प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाप्राप्त त्व और तल् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–पृथु का भाव प्रथिमा (इमनिच्)। पार्थव (अण्)। पृथुत्व (त्व)। पृथुता (तल्)। मोटापन।। मृदु का भाव म्रदिमा (इमनिच्)। मार्दव (अण्) मृदुत्व (त्व)। मृदुता (तल्) कोमलता इत्यादि।

सिद्धि-(१) ***प्रथिमा।*** *पृथु+ङस्+इमनिच्। प्रथ्+इमन्। प्रथिमन्+सु। प्रथिमान्+सु। प्रथिमान्+०। प्रथिमा।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथु' शब्द से भाव अर्थ में इस सूत्र से इमनिच् प्रत्यय है। ***'तुरिष्ठेमेयस्सु'*** *(६।४।१५४) की अनुवृत्ति में* ***'टेः'*** *(६।४।१५५) से अंग के टि-भाग (उ) का लोप तथा* ***'र ऋतो हलादेर्लघोः'*** *(६।४।१६१) से अंग के 'ऋ' के स्थान में रेफ' आदेश होता है।* ***'सौ च'*** *(६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ,*

*'हल्ङ्याब्भ्यो०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'न्' का लोप होता है। ऐसे ही-**म्रदिमा।***

*(२) **पार्थवम्।** पृथु+ङस्+अण्। पार्थो+अ। पार्थव+सु। पार्थवम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथु' शब्द से भाव अर्थ में तथा विकल्प पक्ष में 'इगन्ताच्च लघुपूर्वात्' (५।१।१३०) से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-**मार्दवम्।***

*(३) **पृथुत्वम्।** यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथु' शब्द से भाव अर्थ में तथा विकल्प पक्ष में 'तस्य भावस्त्वतलौ' (५।१।११८) से 'त्व' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मृदुत्वम्।***

*(४) **पृथुता।** यहां षष्ठी-समर्थ 'पृथु' शब्द से भाव अर्थ में पूर्ववत् 'तल्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मृदुता।***

ष्यञ्+इमनिच्+त्व+तल्-

(५) वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च।१२२।

प०वि०-वर्ण-दृढादिभ्यः ५।३ ष्यञ् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-दृढ आदिर्येषां ते दृढादयः, वर्णश्च दृढादयश्च ते वर्णदृढादयः, तेभ्यः-वर्णदृढादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, त्वतलौ इमनिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य वर्णदृढादिभ्यो भावः ष्यञ्, इमनिच्, त्वतलौ च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो वर्णविशेषवाचिभ्यो दृढादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भाव इत्यस्मिन्नर्थे ष्यञ्, इमनिच्, त्वतलौ च प्रत्यया भवन्ति। त्वतलौ प्रत्ययौ तु सर्वत्र भवत एव।

उदा०-**(वर्णः)** शुक्लस्य भावः-शौक्ल्यम् (ष्यञ्)। शुक्लिमा (इमनिच्)। शुक्लत्वम् (त्वः)। शुक्लता (तल्)। कृष्णस्य भावः-कार्ष्ण्यम् (ष्यञ्)। कृष्णिमा (इमनिच्)। कृष्णत्वम् (त्वः) कृष्णता (तल्)। **(दृढादिः)** दृढस्य भावः-दार्ढ्यम् (ष्यञ्)। द्रढिमा (इमनिच्)। दृढत्वम् (त्वः)। दृढता (तल्) इत्यादिकम्।

दृढ। परिवृढ। भृश। कृश। चक्र। आम्र। लवण। ताम्र। अम्ल। शीत। उष्ण। जड। बधिर। पण्डित। मधुर। मूर्ख। मूक। वेर्यातलाभ-मतिमनःशारदानाम्। समो मतिमनसोर्जवने। इति दृढादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (वर्णदृढादिभ्यः) वर्णविशेषवाची तथा दृढ-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव अर्थ में (ष्यञ्) ष्यञ् (इमनिच्) इमनिच् (च) और (त्वतलौ) त्व, तल् प्रत्यय होते हैं। त्व और तल् प्रत्यय तो सर्वत्र होते ही हैं।*

उदा०-(वर्ण) शुक्ल=सफेद का भाव-शौकल्य (ष्ठञ्)। शुक्लिमा (इमनिच्)। शुक्लत्व (त्व)। शुक्लता (तल्)। सफेदपन। कृष्ण का भाव-कार्ष्ण्य (ष्यञ्)। कृष्णिमा (इमनिच्)। कृष्णत्व (त्व)। कृष्णता (तल्) कालापन। (दृढादि) दृढ=मजबूत का भाव-दार्ढ्य (ष्यञ्)। द्रढिमा (इमनिच्)। दृढत्व (त्व)। दृढता (तल्) इत्यादि।

सिद्धि-(१) शौक्ल्यम्। शुक्ल+ङस्+ष्यञ्। शौक्ल्+य। शौक्ल्य+सु। शौक्ल्यम्।

यहां षष्ठी-समर्थ वर्णविशेषवाची 'शुक्ल' शब्द से भाव अर्थ में इस सूत्र से 'ष्यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-दार्ढ्यम् आदि।

(२) शुक्लिमा आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

भाव-कर्मार्थप्रत्ययप्रकरणम्

ष्यञ्-

(१) गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च।१२३।

प०वि०-गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः ५।३ कर्मणि ७।१ च अव्ययपदम्।

स०-गुणमुक्तवन्त इति गुणवचनाः, ब्राह्मण आदिर्येषां ते ब्राह्मणादयः, गुणवचनाश्च ब्राह्मणादयश्च ते गुणवचनब्राह्मणादयः, तेभ्यः-गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, ष्यञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गुणवचनब्राह्मणदिभ्यो भावे कर्मणि च ष्यञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो गुणवचनेभ्यो ब्राह्मणादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थे ष्यञ् प्रत्ययो भवति। त्वतलौ तु भवत एव। कर्मशब्दोऽत्र क्रियावचनो गृह्यते।

उदा०-(गुणवचनः) जडस्य भावः कर्म वा-जाड्यम् (ष्यञ्)। जडत्वम् (त्वः)। जडता (तल्)। **(ब्राह्मणादिः)** ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा-ब्राह्मण्यम् (ष्यञ्)। ब्राह्मणत्वम् (त्वः)। ब्राह्मणता (तल्)। माणवस्य भावः-माणव्यम् (ष्यञ्)। माणवत्वम् (त्वः)। माणवता (तल्) इत्यादिकम्।

ब्राह्मण। वाडव। माणव। चोर। मूक। आराधय। विराधय। अपराधय। उपराधय। एकभाव। द्विभाव। त्रिभाव। अन्यभाव। समस्थ। विषमस्थ। परमस्थ। मध्यमस्थ। अनीश्वर। कुशल। कपि। चपल। अक्षेत्रज्ञ। निपुण। अर्हतो नुम् च। आर्हन्त्यम्। संवादिन्। संवेशिन्। बहुभाषिन्। बालिश। दुष्पुरुष। कापुरुष। दायाद। विशसि। धूर्त। राजन्। सम्भाषिन्। शीर्षपातिन्। अधिपति। अलस। पिशाच। पिशुन। विशाल। गणपति। धनपति। नरपति। गडुल। निव। निधान। विष। सर्ववेदादिभ्यः स्वार्थे। चतुर्वेदस्योभयपदवृद्धिश्च। चातुर्वेद्यम्। इति ब्राह्मणादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः) गुणवाची तथा ब्राह्मण-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म=क्रिया अर्थ में (ष्यञ्) ष्यञ् प्रत्यय होता है। त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

*उदा०-(**गुण**) जड़ का भाव वा कर्म-जाड्य (ष्यञ्)। जडत्व (त्व)। जडता (तल्) मूर्खता। (**ब्राह्मणादि**) ब्राह्मण का भाव वा कर्म-ब्राह्मण्य (ष्यञ्)। ब्राह्मणत्व (त्व)। ब्राह्मणता (तल्) ब्राह्मणपन। माणव का भाव वा कर्म-माणव्य (ष्यञ्)। माणवत्व (त्व)। माणवता (तल्) छोकरापन, इत्यादि।*

सिद्धि-जाड्यम्। *जड+ङस्+ष्यञ्। जाड्+य। जाड्य+सु। जाड्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ गुणवाची 'जड' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'ष्यञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**ब्राह्मण्यम्, माणव्यम्।***

यत् (नलोपः)-

(२) स्तेनाद्यन्नलोपश्च।१२४।

प०वि०-स्तेनात् ५।१ यत् १।१ नलोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-नस्य लोप इति नलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य स्तेनाद् भावे कर्मणि च यद् नलोपश्च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् स्तेन-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भावे कर्मणि चार्थे यत् प्रत्ययो भवति, नकारस्य च लोपो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-स्तेनस्य भावः कर्म वा-स्तेयम् (यत्)। स्तेनत्वम् (त्वः)। स्तेनता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (स्तेनात्) स्तेन प्रातिपदिक से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (च) और (नलोपः) नकार का लोप होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

उदा०-स्तेन=चौर का भाव वा कर्म-स्तेय (यत्)। स्तेनत्व (त्व)। स्तेनता (तल्)।

सिद्धि-(१) स्तेयम्। *स्तेन+ङस्+यत्। स्ते+य। स्तेय+सु। स्तेयम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'स्तेन' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। यहां 'यस्येति च' (६।४।१४८) से प्रथम अकार का लोप करके इस सूत्र से 'न्' का लोप 'पूर्वत्रासिद्धम्' (८।२।१) से अकार का लोप असिद्ध हो जाने से, नहीं होता है अतः यहां आरम्भ-सामर्थ्य से संघात रूप न (न्+अ) का लोप किया जाता है।

(२) कई वैयाकरण यहां योगविभाग से 'स्तेन' शब्द से 'ष्यञ्' प्रत्यय करके 'स्तैन्य' शब्द भी सिद्ध करते हैं।

यः-

(३) सख्युर्यः।१२५।

प०वि०-सख्युः ५।१ यः १।१।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य सख्युर्भावे कर्मणि च यः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् सखि-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भावे कर्मणि चार्थे यः प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-सख्युर्भावः कर्म वा-सख्यम् (यः)। सखित्वम् (त्वः)। सखिता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (सख्युः) सखि प्रातिपदिक से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (यः) य प्रत्यय होता है त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

उदा०-सखा का भाव वा कर्म-सख्य (य)। सखित्व (त्व)। सखिता (तल्)।

सिद्धि-सख्यम्। *सखि+ङस्+य। सख्+य। सख्य+सु। सख्यम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'सखि' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'य' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।

ढक्—

(४) कपिज्ञात्योर्ढक्।१२६।

प०वि०-कपि-ज्ञात्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ढक् १।१।

स०-कपिश्च ज्ञातिश्च ते कपिज्ञाती, ताभ्याम्-कपिज्ञातिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य कपिज्ञातिभ्यां भावे कर्मणि च ढक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाभ्यां कपिज्ञातिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भावे कर्मणि चार्थे ढक् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-**(कपिः)** कपेर्भावः कर्म वा-कापेयम् (ढक्)। कपित्वम् (त्वः)। कपिता (तल्)। **(ज्ञातिः)** ज्ञातेर्भावः कर्म वा-ज्ञातेयम् (ढक्)। ज्ञातित्वम् (त्वः)। ज्ञातिता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (कपिज्ञात्योः) कपि, ज्ञाति प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

उदा०-(कपि) कपि=वानर का भाव वा-कापेय (ढक्)। कपित्व (त्व)। कपिता (तल्)। (ज्ञाति) ज्ञाति=सम्बन्धी का भाव वा कर्म-ज्ञातेय (ढक्)। ज्ञातित्व (त्व)। ज्ञातिता (तल्)।

सिद्धि-कापेयम्। *कपि+ङस्+ढक्। काप्+एय। कापेय+सु। कापेयम्।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'कपि' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'ढक्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-ज्ञातेयम्।

यक्—

(५) पत्यन्तपुराहितादिभ्यो यक्।१२७।

प०वि०-पत्यन्त-पुरोहितादिभ्यः ५।३ यक् १।१।

स०-पतिरन्ते यस्य तत् पत्यन्तम्, पुरोहित आदिर्येषां ते पुरोहितादयः, पत्यन्तं च पुरोहितादयश्च ते पत्यन्तपुरोहितादयः, तेभ्यः-पत्यन्त-पुरोहितादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो भावे कर्मणि च यक्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः पत्यन्तेभ्यः पुरोहितादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थे यक् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-(पत्यन्तम्) सेनापतेर्भावः कर्म वा-सेनापत्यम् (यक्)। सेनापतित्वम् (त्वः)। सेनापतिता (तल्)। गृहपतेर्भावः कर्म वा-गार्हपत्यम् (यक्)। गृहपतित्वम् (त्वः)। गृहपतिता (तल्)। **(पुरोहितादिः)** पुरोहितस्य भावः कर्म वा-पौरोहित्यम् (यक्)। पुरोहितत्वम् (त्वः)। पुरोहितता (तल्)। राज्ञो भावः कर्म वा-राज्यम् (यक्)। राजत्वम् (त्वः)। राजता (तल्) इत्यादिकम्।

पुरोहित। राजन्। संग्रामिक। एषिक। वर्मित। खण्डिक। दण्डित। छत्रिक। मिलिक। पिण्डिक। बाल। मन्द। स्तनिक। चूडितिक। कृषिक। पूतिक। पत्रिक। प्रतिक। अजानिक। सलनिक। सूचिक। शाक्वर। सूचक। पक्षिक। सारथिक। जलिक। सूतिक। अञ्जलिक। राजाऽसे सूचक। इति पुरोहितादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पत्यन्तपुरोहितादिभ्यः) पति शब्द जिसके अन्त में है उनसे तथा पुरोहित-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (यक्) यक् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

*उदा०-**(पत्यन्त)** सेनापति का भाव वा कर्म-सैनापत्य (यक्)। सेनापतित्व (त्व)। सेनापतिता (तल्)। गृहपति का भाव वा कर्म-गार्हपत्य (यक्)। गृहपतित्व (त्व)। गृहपतिता (तल्)। **(पुरोहितादि)** पुरोहित का भाव वा कर्म-पौरोहित्य (यक्)। पुरोहितत्व (त्व)। पुरोहितता (तल्)। राजा का भाव वा कर्म-राज्य (यक्)। राजत्व (त्व)। राजता (तल्) इत्यादि।*

सिद्धि-(१) सैनापत्यम्। *सेनापति+ङस्+यक्। सैनापत्+य। सैनापत्य+सु। सैनापत्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, पति-अन्त 'सेनापति' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'यक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**गार्हपत्यम्, पौरोहित्यम्।***

(२) राज्यम्। यहां षष्ठी-समर्थ 'राजन्' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'यक्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप और 'किति च' (७।२।११८) से पर्जन्यवत् अंग को आदिवृद्धि होती है।

अञ्–

(५) प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्।१२८।

प०वि०–प्राणभृज्जाति-वयोवचन-उद्गात्रादिभ्यः ५।३ अञ् १।१।

स०–प्राणं बिभ्रतीति प्राणभृतः=प्राणिनः। प्राणभृतां जातिरिति प्राणभृज्जातिः। वय उक्तवन्त इति वयोवचनाः। उद्गाता आदिर्येषां ते उद्गात्रादयः। प्राणभृज्जातिश्च वयोवचनाश्च उद्गात्रादयश्च ते प्राणभृज्जाति वयोवचनोद्गात्रादयः, तेभ्यः–प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्यः (षष्ठी-तत्पुरुषबहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तस्य प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्यो भावे कर्मणि चाऽञ्।

अर्थः–तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः प्राणभृज्जातिवाचिभ्यो वयोवचनेभ्य उद्गात्रादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवति एव।

उदा०–**(प्राणभृज्जातिः)** अश्वस्य भावः कर्म वा–आश्वम् (अञ्)। अश्वत्वम् (त्वः)। अश्वता (तल्)। उष्ट्रस्य भावः कर्म वा–औष्ट्रम् (अञ्)। उष्ट्रत्वम् (त्वः)। उष्ट्रता (तल्)। **(वयोवचनः)** कुमारस्य भावः कर्म वा–कौमारम् (अञ्)। कुमारत्वम् (त्वः)। कुमारता (तल्)। किशोरस्य भावः कर्म वा–कैशोरम् (अञ्)। किशोरत्वम् (त्वः)। किशोरता (तल्)। **(उद्गात्रादिः)** उद्गातुर्भावः कर्म वा–औद्गात्रम् (अञ्)। उद्गातृत्वम् (त्वः)। उद्गातृता (तल्)। उन्नेतुभावः कर्म वा–औन्नेत्रम् (अञ्)। उन्नेतृत्वम् (त्वः)। उन्नेतृता (तल्) इत्यादिकम्।

उद्गातृ। उन्नेतृ। प्रतिहर्तृ। रथगणक। पक्षिगणक। सुष्ठु। दुष्ठु। अध्वर्यु। वधू। सुभग मन्त्रे। इति उद्गात्रादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्यः) प्राणभृज्जाति=प्राणी जातिवाची, वयोवचन=आयुवाची तथा उद्गातृ-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है, त्व और तल् तो होते ही हैं।*

*उदा०-**(प्राणभृज्जाति)** अश्व=घोड़े का भाव वा कर्म-आश्व (अञ्)। अश्वत्व (त्व)। अश्वता (तल्)। उष्ट्र=ऊंट का भाव वा कर्म-औष्ट्र (अञ्)। उष्ट्रत्व (त्व)। उष्ट्रता (तल्)। **(वयोवचन)** कुमार का भाव वा कर्म-कौमार (अञ्)। कुमारत्व (त्व)। कुमारता (तल्)। किशोर का भाव वा कर्म-कैशोर (अञ्)। किशोरत्व (त्व)। किशोरता (तल्)। **(उद्गात्रादि)** उद्गाता नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म औद्गात्र (अञ्)। उद्गातृत्व (त्व)। उद्गातृता (तल्)। उन्नेता=उद्धारक का भाव वा कर्म-औन्नेत्र (अञ्)। उन्नेतृत्व (त्व)। उन्नेतृता (तल्) इत्यादि।*

*सिद्धि-**आश्वम्।** अश्व+ङस्+अञ्। आश्व्+अ। आश्व+सु। आश्वम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, प्राणीजातिवाची 'अश्व' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**औष्ट्रम्, कौमारम्, कैशोरम्, औद्गात्रम्, औन्नेत्रम्।***

अञ्-

(६) हायनान्तयुवादिभ्योऽण्।१२६।

प०वि०-हायनान्त-युवादिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-हायनमन्ते येषां ते हायनान्ताः, युवा आदिर्येषां ते युवादयः, हायनान्ताश्च युवादयश्च ते हायनान्तयुवादयः, तेभ्यः-हायनान्तयुवादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भाव, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य हायनान्तयुवादिभ्यो भावे कर्मणि चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो हायनान्तेभ्यो युवादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-(हायनान्तः) द्विहायनस्य भावः कर्म वा-द्वैहायनम् (अण्)। द्विहायनत्वम् (त्वः)। द्विहायनता (तल्)। त्रिहायनस्य भावः कर्म वा-**त्रैहायनम्**

(अण्)। त्रिहायनत्वम् (त्वः)। त्रिहायनता (तल्)। **(युवादिः)** यूनो भावः कर्म वा-यौवनम् (अण्)। युवत्वम् (त्वः)। युवता (तल्)। स्थविरस्य भावः कर्म वा-स्थाविरम् (अञ्) स्थविरत्वम् (त्वः)। स्थविरता (तल्) इत्यादिकम्।

युवन्। स्थविर। होतृ। यजमान। कमण्डलु। पुरुषाऽसे। सुहृत्। यातृ। श्रवण। कुस्त्री। सुस्त्री। सुहृदय। सुभ्रातृ। वृषल। दुर्भ्रातृ। हृदयाऽसे। क्षेत्रज्ञ। कृतक। परिव्राजक। कुशल। चपल। निपुण। पिशुन। सब्रह्मचारिन्। कुतूहल। अनृशंस। इति युवादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (हायनान्तयुवादिभ्यः) हायन शब्द जिनके अन्त में है उनसे तथा युवन्-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

*उदा०-**(हायनान्त)** द्विहायन=दो वर्ष का भाव वा कर्म-द्वैहायन (अण्)। द्विहायनत्व (त्व)। द्विहायनता (तल्)। त्रिहायन=तीन वर्ष का भाव वा कर्म-त्रैहायन (अण्)। त्रिहायनत्व (त्व)। त्रिहायनता (तल्)। **(युवादि)** युवा=जवान का भाव वा कर्म-यौवन (अण्)। युवत्व (त्व)। युवता (तल्)। स्थविर=ठेरे का भाव वा कर्म-स्थाविर (अण्)। स्थविरत्व (त्व)। स्थविरता (तल्)। इत्यादि।*

*सिद्धि-**द्वैहायनम्।** द्विहायन+ङस्+अण्। द्वैहायन्+अ। द्वैहायन+सु। द्वैहायनम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, हायनान्त 'द्विहायन' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**त्रैहायनम्, यौवनम्, स्थाविरम्।***

अण्-

(७) इगन्ताच्च लघुपूर्वात्।१३०।

प०वि०-इगन्तात् ५।१ च अव्ययपदम्, लघुपूर्वात् ५।१।

स०-इक् अन्ते यस्य तद् इगन्तम्, तस्मात्-इगन्तात् (बहुव्रीहिः)। लघुः पूर्वोऽवयवोऽस्येति-लघुपूर्वः, तस्मात्-लघुपूर्वात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, भाव, कर्मणि. च, अण् इति चानुवतति।

अन्वयः-लघुपूर्वाद् इगन्ताच्च भावे कर्मणि चाऽण्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाल्लघुपूर्वो यस्मादिकस्तदन्तात् प्रातिपदिकाच्च भावे कर्मणि चार्थेऽण् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-शुचेर्भावः कर्म वा-शौचम् (अण्)। शुचित्वम् (त्वः)। शुचिता (तल्)। मुनेर्भावः कर्म वा-मौनम् (अण्)। मुनित्वम् (त्वः)। मुनिता (तल्)। पटोर्भावः कर्म वा-पाटवम् (अण्)। पटुत्वम् (त्वः)। पटुता (तल्)। लघुनो भावः कर्म वा-लाघवम् (अण्)। लघुत्वम् (त्वः)। लघुता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (लघुपूर्वात्) लघु वर्ण पूर्व है जिस इक् से (इगन्तात्) उस इगन्त प्रातिपदिक से (च) भी (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय भी होते हैं।*

उदा०-शुचि=शुद्ध का भाव वा कर्म-शौच (अण्)। शुचित्व (त्व)। शुचिता (तल्)। मुनि का भाव वा कर्म-मौन (अण्)। मुनित्व (त्व)। मुनिता (तल्)। पटु=चतुर का भाव वा कर्म-पाटव (अण्)। पटुत्व (त्व)। पटुता (तल्)। लघु=छोटे का भाव वा कर्म-लाघव (अण्) लघुत्व (त्व)। लघुता (तल्)।

सिद्धि-शौचम्। *शुचि+ङस्+अण्। शौच्+अ। शौच+सु। शौचम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, इक् से पहले लघु वर्ण वाले इगन्त 'शुचि' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मौनम्, पाटवम्, लाघवम्।***

वुञ्–

(८) योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्।१३१।

प०वि०-योपधात् ५।१ गुरु-उपोत्तमात् ५।१ वुञ् १।१।

स०-य उपधा यस्य तद् योपधम्, तस्मात्-योपधात् (बहुव्रीहिः)। त्रिप्रभृतीनामन्तिममक्षरमुत्तमम्, उत्तमस्य समीपमुपोत्तमम्, गुरु उपोत्तमं यस्य तद् गुरूपोत्तमम्, तस्मात्-गुरूपोत्तमात् (अव्ययीभावगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य योपधाद् गुरूपोत्तमाद् भावे कर्मणि च वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् यकारोपधाद् गुरूपोत्तमात् प्रातिपदिकाद् भावे कर्मणि चार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-रमणीयस्य भावः कर्म वा-रामणीयकम् (वुञ्)। रमणीयत्वम् (त्वः)। रमणीयता (तल्)। वसनीयस्य भावः कर्म वा-वसनीयकम् (वुञ्)। वसनीयत्वम् (त्वः)। वसनीयता (तल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (योपधात्) यकार उपधावाले (गुरूपोत्तमात्) गुरु-उपोत्तमवाले प्रातिपदिक से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

उदा०-रमणीय=रमण करने योग्य (सुन्दर) का भाव वा कर्म-रामणीयक (वुञ्)। रमणीयत्व (त्व)। रमणीयता (तल्)। वसनीय=आच्छादन करने योग्य (उत्तम वस्त्र) का भाव वा कर्म-वासनीयम् (वुञ्)। वसनीयत्व (त्व)। वसनीयता (तल्)।

सिद्धि-रामणीयकम्। *रमणीय+ङस्+वुञ्। रामणीय+अक। रामणीयक+सु। रामणीयकम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, यकार उपधावाले एवं गुरु-उपोत्तमवाले 'रमणीय' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। **'युवोरनाकौ'** (७।१।२) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वासनीयकम्।***

वुञ्-

(६) द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च।१३२।

प०वि०-द्वन्द्व-मनोज्ञादिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-मनोज्ञ आदिर्येषां ते मनोज्ञादयः, द्वन्द्वश्च मनोज्ञादयश्च ते द्वन्द्वमनोज्ञादयः, तेभ्यः-द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च भावे कर्मणि च वुञ्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो द्वन्द्वसंज्ञकेभ्यो मनोज्ञादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-**(द्वन्द्वः)** गोपालपशुपालानां भावः कर्म वा-गौपालपशुपालिका (वुञ्)। गोपालपशुपालत्वम् (त्वः)। गोपालपशुपालता (तल्)। शिष्योपाध्याययोर्भावः कर्म वा-शैष्योपाध्यायिका (वुञ्)। शिष्योपाध्यायत्वम् (त्वः)। शिष्योपाध्यायता (तल्)। **(मनोज्ञादिः)** मनोज्ञस्य भावः कर्म वा-मानोज्ञकम् (वुञ्)। मनोज्ञत्वम् (त्वः) मनोज्ञता (तल्)। कल्याणस्य भावः कर्म वा-काल्याणकम् (वुञ्)। कल्याणत्वम् (त्वः)। कल्याणता (तल्) इत्यादिकम्।

मनोज्ञ। कल्याण। प्रियरूप। छान्दस। छात्र। मेधाविन्। अभिरूप। आढ्य। कुलपुत्र। श्रोत्रिय। चोर। धूर्त। वैश्वदेव। युवन्। ग्रामपुत्र। ग्रामखण्ड। ग्रामकुमार। अमुष्यपुत्र। अमुष्यकुल। शतपुत्र। कुशल। इति मनोज्ञादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यः) द्वन्द्वसंज्ञक तथा मनोज्ञ-आदि प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है। त्व और तल् प्रतयय तो होते ही हैं।*

उदा०-गोपाल और पशुपालों का भाव वा कर्म-गौपालपशुपालिका (वुञ्)। गोपालपशुपालत्व (त्व)। गोपालपशुपालता (तल्)। शिष्य और उपाध्याय का भाव वा कर्म-शैष्योपाध्यायिका (वुञ्)। शिष्योपाध्यायत्व (त्व)। शिष्योपाध्यायता (तल्)। ***(मनोज्ञादि)*** *मनोज्ञ=सुन्दर का भाव वा कर्म-मानोज्ञक (वुञ्)। मनोज्ञत्व (त्व)। मनोज्ञता (तल्)। कल्याण का भाव वा कर्म-काल्याणक (वुञ्)। कल्याणत्व (त्व)। कल्याणता (तल्) इत्यादि।*

सिद्धि-गौपालपशुपालिका। *गोपालपशुपाल+आम्+वुञ्। गौपालपशुपाल्अक। गौपालपशुपालक+टाप्। गौपालपशुपालिक्+आ। गौपालपशुपालिका+सु। गौपालपशुपालिका।*

यहां षष्ठी-समर्थ, द्वन्द्वसंज्ञक 'गोपालपशुपाल' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और* ***'प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः'*** *(७।३।४४) से इकार-आदेश होता है। ऐसे ही-* ***शैष्योपाध्यायिका, मानोज्ञकम्, काल्याणकम्।***

वुञ्-

(१०) गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु।१३३।

प०वि०-गोत्र-चरणात् ५।१ श्लाघा-अत्याकार-तदवेतेषु ७।३।

स०-गोत्रं च चरणं च एतयोः समाहारो गोत्रचरणम्, तस्मात्-गोत्रचरणात् (समाहारद्वन्द्वः)। श्लाघा च अत्याकारश्च तदवेतश्च ते श्लाघात्याकारतदवेताः, तेषु-श्लाघात्याकारतदवेतेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च, वुञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य गोत्रचरणाद् भावे कर्मणि च वुञ्, श्लाघात्याकारतदवेतेषु।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् गोत्रवाचिनश्चरणवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् भावे कर्मणि चार्थे वुञ् प्रत्ययो भवति, श्लाघात्याकारतदवेतेषु विषयेषु, त्वतलौ तु भवत एव। तत्र श्लाघा=विकत्थनम्, अत्याकारः=पराधिक्षेपः, तदवेतः=तत्प्राप्तः। तदित्यनेन गोत्रस्य चरणस्य च भावः कर्म च निर्दिश्यते। तत्प्राप्तस्तदवेत इति कथ्यते।

उदा०-(श्लाघा) गार्गिकया श्लाघते। काठिकया श्लाघते। गार्ग्यत्वेन श्लाघते। कठत्वेन श्लाघते। गार्ग्यत्वेन कठत्वेन च विकत्थते इत्यर्थः। **(अत्याकारः)** गार्गिकयाऽत्याकुरुते। काठिकयाऽत्याकुरुते। गार्ग्यत्वेनाऽत्याकुरुते। कठत्वेनाऽत्याकुरुते। गार्ग्यत्वेन कठत्वेन च परानधिक्षिपतीत्यर्थः। **(तदवेतः)** गार्गिकामवेतः। काठिकामवेतः। गार्ग्यत्वमवेतः। कठत्वमवेतः। गार्ग्यत्वं कठत्वं च प्राप्त इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (गोत्रचरणात्) गोत्रवाची और चरणवाची प्रातिपदिक से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (वुञ्) वुञ् प्रत्यय होता है (श्लाघाऽत्याकारतदवेतेषु) यदि वहां श्लाघा=प्रशंसा करना (डींग मारना), अत्याकार=दूसरे को दबाना (रौब जमाना), तदवेत=गोत्र एवं चरण भाव, कर्म को प्राप्त होना विषय हो, त्व और तल् प्रत्यय तो होते ही हैं।*

उदा०-(श्लाघा) गार्गिका से श्लाघा करता है। काठिका से श्लाघा करता है। गार्ग्यत्व से श्लाघा करता है। कठत्व से श्लाघा करता है। गार्ग्यगोत्र और कठ चरण के भाव एवं कर्म से अपनी डींग मारता है। (अत्याकारः) गार्गिका से दूसरे को दबाता है। काठिका से दूसरे को दबाता है। गार्ग्यत्व से दूसरे को दबाता है। कठत्व से दूसरे को दबाता है। गार्ग्य गोत्र और कठ चरण के भाव एवं कर्म से दूसरे पर अपना रौब जमाता है। (तद्वेतः) गार्गिका को अवेत=प्राप्त हुआ। काठिका को अवेत=प्राप्त हुआ। गार्ग्यत्व

को अवेत=प्राप्त हुआ। कठत्व को अवेत=प्राप्त हुआ। गार्ग्य गोत्र और कठ चरण के भाव एवं कर्म को प्राप्त हो गया। गार्ग्य एवं कठ बन गया।

सिद्धि-गार्गिका। गार्ग्य+ङस्+वुञ्। गार्ग्य्+अक। गार्ग्+अक। गार्गिक+टाप्। गार्गिक+आ। गार्गिका+सु। गार्गिका।

यहां षष्ठी-समर्थ, गोत्रवाची 'गार्ग्य' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'वुञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप तथा **'आपत्यस्य च तद्धितेऽनाति'** (६।४।१५१) से अंग के यकार का भी लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और **'प्रत्ययस्थात्०'** (७।३।४४) से इत्त्व होता है। ऐसे ही चरणवाची 'कठ' शब्द से-**काठिका।**

विशेषः वैदिक विद्यापीठ का प्राचीन नाम 'चरण' है।

छः-

(११) होत्राभ्यश्छः।१३४।

प०वि०-होत्राभ्यः ५।३ छः १।१।

कृद्वृत्तिः- 'होत्रा' इत्यत्र **'हुयामाश्रुभसिभ्यस्त्रन्'** (उणा० ४।१६८) इति हु-धातोस्त्रन् प्रत्ययः। होत्रशब्द ऋत्विग्विशेषवचनः। स्वभावतश्चायमृत्विक्ष्वपि स्त्रीलिङ्गः।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य होत्राभ्यो भावे कर्मणि च छः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यो होत्रावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भावे कर्मणि चार्थे छः प्रत्ययो भवति, त्वतलौ तु भवत एव।

उदा०-अच्छावाकस्य भावः कर्म वा-अच्छावाकीयम्, अच्छावाकत्वम्, अच्छावाकता। मित्रावरुणस्य भाव कर्म वा-मित्रावरुणीयम्, मित्रावरुणत्वम्, मित्रावरुणता। ब्राह्मणच्छंसिनो भावः कर्म वा-ब्राह्मणाच्छंसीयम्, ब्राह्मच्छंसित्वम्, ब्राह्मणाच्छंसिता। आग्नीध्रस्य भावः कर्म वा-आग्नीध्रीयम्, आग्नीध्रत्वम्, आग्नीध्रता। प्रतिप्रस्थातुर्भावः कर्म वा-प्रतिप्रस्थात्रीयम्, प्रतिप्रस्थातृत्वम्, प्रतिप्रस्थातृता। नेष्टुर्भावः कर्म वा-नेष्ट्रीयम्, नेष्टृत्वम्, नेष्टृता। पोतुर्भावः कर्म वा-पोत्रीयम्, पोतृत्वम्, पोतृता।

आर्यभाषाः अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (होत्राभ्यः) होत्रावाची=ऋत्विग् विशेषवाची प्रातिपदिकों से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है, त्व और तल् प्रत्यय होते ही है।

उदा०-अच्छावाक नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-अच्छावाकीय, अच्छावाकत्व, अच्छावाकता। मित्रावरुण नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-मित्रावरुणीय, मित्रावरुणत्व, मित्रावरुणता। ब्राह्मणाच्छंसी नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-ब्राह्मच्छंसीय, ब्राह्मणाच्छंसित्व, ब्राह्मणाच्छंसिता। आग्नीध्र नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-आग्नीध्रीय, आग्नीध्रत्व, आग्नीध्रता। प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-प्रतिप्रस्थात्रीय, प्रतिप्रस्थातृत्व, प्रतिप्रस्थातृता। नेष्टा नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-नेष्ट्रीय, नेष्टृत्व, नेष्टृता। पोता नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-पोत्रीय, पोतृत्व, पोतृता।

सिद्धि-**अच्छावाकीयम्**। अच्छवाक+ङस्+छ। अच्छावाक्+ईय। अच्छावाकीय+सु। अच्छावाकीयम्।

यहां षष्ठी-समर्थ, ऋत्विग्विशेषवाची 'अच्छावाक' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मित्रावरुणीयम्** आदि।

विशेषः यज्ञ में १६ सोलह ऋत्विजों का काम एक-दूसरे के साथ सहयोग पर आश्रित था। उनमें से हर एक कर्म और भाव को प्रकट करने के लिये भाषा में अलग-अलग शब्द थे। ये शब्द ऋत्विजों के नामों में प्रत्यय जोड़कर बनाये जाते थे। 'होत्राभ्यश्छः' (५।१।१३४) सूत्र में इसका विधान किया गया है। १६ सोलह ऋत्विजों के वेदानुसारी नाम निम्नलिखित हैं-

(१) ऋग्वेद- होता, मित्रावरुण, अच्छावाक, ग्रावस्तुत्।
(२) यजुर्वेद-, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता।
(३) सामवेद- उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता, सुब्रह्मण्य।
(४) अथर्ववेद- ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र, पोता।

(पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३६६-६७)

त्वः-

(१२) ब्रह्मणस्त्वः।१३५।

प०वि०-ब्रह्मणः ५।१ त्वः १।१।

अनु०-तस्य, भावः, कर्मणि, च, होत्राभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य होत्राया ब्रह्मणो भावे कर्मणि च त्वः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् होत्रावाचिनो ब्रह्मन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् भावे कर्मणि चार्थे त्वः प्रत्ययो भवति।

उदा०-ब्रह्मणो भावः कर्म वा ब्रह्मत्वम्। अत्र ब्रह्मन्-शब्दात् त्वप्रत्ययविधानं तल्प्रत्ययबाधनार्थम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (होत्राभ्यः) होत्रावाची=ऋत्विग्विशेषवाची (ब्रह्मणः) ब्रह्मन् प्रातिपदिक से (भावः) भाव (च) और (कर्मणि) कर्म अर्थ में (त्वः) त्व प्रत्यय होता है।*

उदा०-ब्रह्मा नामक ऋत्विक् का भाव वा कर्म-ब्रह्मत्व। यहां ऋत्विग् विशेषवाची 'ब्रह्मन्' शब्द से 'त्व' प्रत्यय का विधान 'तल्' प्रत्यय के प्रतिषेध के लिये किया गया है। जो जातिवाची ब्रह्मन् (ब्राह्मण-पर्याय) शब्द है उससे तो त्व और तल् प्रत्यय होते ही हैं-ब्रह्मत्व, ब्रह्मता।

सिद्धि-ब्रह्मत्वम्। ब्रह्मन्+ङस्+त्व। ब्रह्म+त्व। ब्रह्मत्व+सु। ब्रह्मत्वम्।

यहां षष्ठी-समर्थ, होत्रावाची 'ब्रह्मन्' शब्द से भाव और कर्म अर्थ में इस सूत्र से 'त्व' प्रत्यय है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से पद के नकार का लोप होता है। 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' (१।४।१७) से 'ब्रह्मन्' शब्द की पदसंज्ञा है।

विशेषः *अथर्ववेद के ऋत्विजों में पाणिनि ने ब्रह्मा (५।१।१३५) अग्नीध् (८।२।९२) और पोता (६।४।११) का उल्लेख किया है। ऋग्वेद में ही ब्रह्मा का महत्त्व और ऋत्विजों की अपेक्षा विशेष माना जाने लगा था, उसे सुविप्र कहा गयाा है। ब्रह्मा चारों वेदों का और यज्ञ के सम्पूर्ण कर्मकाण्ड का अधिष्ठाता होता है, यही उसकी विशेषता थी। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ३६७)।*

सूचना- ***'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्'*** *(४।१।८७) का अधिकार समाप्त हुआ।*

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने
पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः

भवनार्थप्रत्ययप्रकरणम्

खञ्–

(१) धान्यानां भवने क्षेत्रे खञ्।१।

प०वि०-धान्यानाम् ६।३ भवने ७।१ क्षेत्रे ७।१ खञ् १।१। **'धान्यानाम्'** इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते, बहुवचननिर्देशाच्च धान्यविशेषवाचिनः शब्दा गृह्यन्ते।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यो भवने खञ्, क्षेत्रे।

अर्थः-षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो भवनेऽर्थे **खञ्** प्रत्ययो भवति, यद् भवनं क्षेत्रं चेत् तद् भवति। भवन्ति=जायन्तेऽस्मिन्नितिभवनम्=उत्पत्तिस्थानम् **'करणाधिकरणयोश्च'** (६।३।११७) इत्यधिकरणे ल्युट् प्रत्ययः।

उदा०-मुद्गानां भवनम्-मौद्गीनं क्षेत्रम्। कोद्रवीणां भवनम्-कौद्रवीणं क्षेत्रम्। कुलत्थानां भवनम्-कौलत्थीनं क्षेत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-षष्ठी-समर्थ (धान्यानाम्) धान्यविशेषवाची प्रातिपदिकों से (भवने) उत्पत्ति-स्थान अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है (क्षेत्रे) जो भवन=उत्पत्ति-स्थान है, यदि वह क्षेत्र=खेत हो।*

उदा०-मुद्ग=मूंग का भवन=उत्पत्ति-स्थान-मौद्गीन क्षेत्र (खेत)। कोद्रव=कोदो नामक अन्न का भवन=कोद्रवीण क्षेत्र। कुलत्थ=कुलथी नामक अन्न का भवन-कौलत्थीन क्षेत्र। मूंग आदि बोने योग्य क्षेत्र।

सिद्धि-मौद्गीनम्। *मुद्ग+आम्+खञ्। मौद्ग्+ईन। मौद्गीन+सु। मौद्गीनम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, धान्यविशेषवाची 'मुद्ग' शब्द से भवन (उत्पत्ति-स्थान) अर्थ में तथा क्षेत्र अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कौद्रवीणम्, कौलत्थीनम्।***

ढक्–

(२) व्रीहिशाल्योर्ढक्।२।

प०वि०–व्रीहि-शाल्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) ढक् १।१।

स०–व्रीहिश्च शालिश्च तौ व्रीहिशाली, तयोः–व्रीहिशाल्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–धान्यानाम्, भवने, क्षेत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–षष्ठीसमर्थाभ्यां धान्यानां व्रीहिशालिभ्यां भवने ढक्, क्षेत्रे।

अर्थः–षष्ठीसमर्थाभ्यां धान्यविशेषवाचिभ्यां व्रीहिशालिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां भवनेऽर्थे ढक् प्रत्ययो भवति, यद् भवनं क्षेत्रं चेत् तद् भवति।

उदा०–(व्रीहिः) व्रीहिणां भवनम्–व्रैहेयं क्षेत्रम्। (शालिः) शालीनां भवनम्–शालेयं क्षेत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–षष्ठी-समर्थ (धान्यानाम्) धान्यविशेषवाची (व्रीहिशाल्योः) व्रीहि, शालि प्रातिपदिकों से (भवने) भवन अर्थ में (ढक्) ढक् प्रत्यय होता है (क्षेत्रे) जो भवन है यदि वह क्षेत्र हो।*

उदा०–(व्रीहि) चावलों का भवन–व्रैहेय क्षेत्र। (शालि) जड़हन चावलों का भवन–शालेय क्षेत्र। चावल बोने योग्य खेत।

सिद्धि–व्रैहेयम्। *व्रीहि+आम्+ढक्। व्रैह्+एय। व्रैहेय+सु। व्रैहेयम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ धान्यविशेषवाची 'व्रीहि' शब्द से भवन-अर्थ में इस सूत्र से ढक् प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही–**शालेयम्।***

यत्–

(३) यवयवकषष्टिकाद् यत्।३।

प०वि०–यव-यवक-षष्टिकात् ५।१ यत् १।१।

स०–यवश्च यवकश्च षष्टिकश्च एतेषां समाहारो यवयवकष्टिकम्, तस्मात्–यवयवकषष्टिकात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–धान्यानाम्, भवने, क्षेत्रे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-षष्ठीसमर्थाद् धान्याद् यवयवकषष्टिकाद् भवने यत्, क्षेत्रे।

अर्थ:-षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यो यवयवकषष्टिकेभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो भवनेऽर्थे यत् प्रत्ययो भवति, यद् भवनं क्षेत्रं चेत् तद् भवति।

उदा०-(**यव:**) यवानां भवनम्-यव्यं क्षेत्रम्। (**यवक:**) यवकानां भवनम्-यवक्यं क्षेत्रम्। (**षष्टिक:**) षष्टिकानां भवनम्-षष्टिक्यं क्षेत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-षष्ठी-समर्थ (धान्यानाम्) धान्यविशेषवाची (यवयवक-षष्टिकात्) यव, यवक, षष्टिक प्रातिपदिकों से (भवने) भवन अर्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है (क्षेत्रे) जो भवन है यदि वह क्षेत्र हो।*

*उदा०-**(यव)** जौओं का भवन-यव्य क्षेत्र। **(यवक)** जौओं का भवन-यवक्य क्षेत्र। **(षष्टिक)** साठी धानों का भवन-षष्टिक्य क्षेत्र। जौ आदि बोने योग्य खेत।*

*सिद्धि-**यव्यम्।** यव+आम्+यत्। यव्+य। यव्य+सु। यव्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, धान्यविशेषवाची 'यव' शब्द से भवन अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**यवक्यम्, षष्टिक्यम्।***

यत्-विकल्पः-

(४) विभाषा तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः।४।

प०वि०-विभाषा १।१ तिल-माष-उमा-भङ्गा-अणुभ्य: ५।३।

स०-तिलं च माषश्च उमा च भङ्गा च अणुश्च ते तिलमाषोमा-भङ्गाणव:, तेभ्य:-तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्य: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-धान्यानाम्, भवने, क्षेत्रे, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्येभ्यस्तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यो भवने विभाषा यत्, क्षेत्रे।

अर्थ:-षष्ठीसमर्थेभ्यो धान्यविशेषवाचिभ्यस्तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो भवनेऽर्थे विकल्पेन यत् प्रत्ययो भवति, यद् भवनं क्षेत्रं चेत् तद् भवति, पक्षे च खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**तिलम्**) तिलानां भवनम्-तिल्यं क्षेत्रम् (यत्)। तैलीनं क्षेत्रम् (खञ्)। (**माष:**) माषाणां भवनम्-माष्यं क्षेत्रम् (यत्)। माषीणं

क्षेत्रम् (खञ्)। **(उमा)** उमानां भवनम्-उम्यं क्षेत्रम् (यत्)। औमीनं क्षेत्रम् (खञ्)। **(भङ्गाः)** भङ्गानां भवनम्-भङ्ग्यं क्षेत्रम् (यत्)। भाङ्गीनं क्षेत्रम् (खञ्)। **(अणुः)** अणूनां भवनम्-अणव्यं क्षेत्रम् (यत्)। आणवीनं क्षेत्रम् (खञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-षष्ठी-समर्थ (धान्यानाम्) धान्यविशेषवाची (तिलमाषोमाभङ्गाणुभ्यः) तिल, माष, उमा, भङ्गा, अणु प्रातिपदिकों से (भवने) भवन-अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (यत्) यत् प्रत्यय होता है (क्षेत्रे) जो भवन है यदि वह क्षेत्र हो और पक्ष में खञ् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(तिल)** तिलों का भवन-तिल्य क्षेत्र (यत्)। तैलीन क्षेत्र (खञ्)। **(माष)** उड़दों का भवन-माष्य क्षेत्र (यत्)। माषीण क्षेत्र (खञ्)। **(उमा)** हल्दी का भवन-उम्य क्षेत्र (यत्)। औमीन क्षेत्र (खञ्)। **(भङ्गा)** भांग का भवन-भङ्ग्य क्षेत्र (यत्)। भाङ्गीन क्षेत्र (खञ्)। **(अणु)** सरसों का भवन-अणव्य क्षेत्र (यत्)। आणवीन क्षेत्र (खञ्)। तिल आदि बोने योग्य क्षेत्र।*

*सिद्धि-(१) **तिल्यम्**। तिल+आम्+य। तिल्+य। तिल्य+सु। तिल्यम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, धान्यविशेषवाची 'तिल' शब्द से भवन अर्थ में इस सूत्र से यत् प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**माष्यम्, उम्यम्, भङ्ग्यम्।***

*(२) **अणव्यम्**। यहां 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **तैलीनम्**। तिल+आम्+खञ्। तैल्+ईन। तैलीन+सु। तैलीनम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, धान्यविशेषवाची 'तिल' शब्द से भवन अर्थ में तथा विकल्प पक्ष में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**माषीणम्, औमीनम्, भाङ्गीनम्।***

*(४) **आणवीनम्**। यहां 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

कृतार्थप्रत्ययविधिः

खः+खञ्–

(१) सर्वचर्मणः कृतः खखञौ।५।

प०वि०-सर्वचर्मणः ५।१ कृतः १।१ ख-खञौ १।२।

स०-सर्वं च तच्चर्म इति सर्वचर्म, तस्मात्-सर्वचर्मण: **'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवला: समानाधिकरणेन'** (२।१।४९) इति कर्मधारय:। खश्च खञ् च तौ खखञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। अत्र 'कृत:' इति प्रत्ययार्थसामर्थ्येन तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वय:-तृतीयासमर्थात् सर्वचर्मण: कृत: खखञौ।

अर्थ:-तृतीयासमर्थात् सर्वचर्मन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् कृत इत्यस्मिन्नर्थे खखञौ प्रत्ययौ भवत:।

उदा०-सर्वचर्मणा कृत:-सर्वचर्मीण: (ख:)। सार्वचर्मीण: (खञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (सर्वचर्मण:) सर्वचर्मन् प्रातिपदिक से (कृत:) बनाया गया अर्थ में (खखञौ) ख और खञ् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-सर्वचर्म=पूरे चमड़े से बनाया हुआ-सर्वचर्मीण (ख)। सार्वचर्मीण।

सिद्धि-(१) ***सर्वचर्मीण:।*** *सर्वचर्मन्+टा+ख। सर्वचर्म्+ईन। सर्वचर्मीण+सु। सर्वचर्मीण:।*

यहां तृतीया-समर्थ 'सर्वचर्मन्' शब्द से कृत-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। ***'आयनेय०'*** *(७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'इन्' आदेश और* ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है।* ***'अट्कुप्वाङ्०'*** *(८।४।२) से णत्व होता है।*

(२) ***सार्वचर्मीण:।*** *यहां 'सर्वचर्मन्' शब्द से 'खञ्' प्रत्यय करने पर* ***'तद्धितेष्वचामादे:'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *(१)* ***'पूरे चमड़े का बना हुआ'*** *इस अर्थ में सर्वचर्मीण या सार्वचर्मीण प्रयोग भी चलता था। इस शब्द का प्रयोग उस वस्तु के लिये होता था जिसके बनाने में गाय-भैंस के चमड़े का पूरा थान लग जाये। जैसे प्राय: कुएँ से पानी उठाने के लिये गोट, चरस या पुर के बनाने में ऐसा किया जाता है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २२७)।*

(२) काशिकाकार पं० जयादित्य ने 'सर्व' शब्द का 'कृत' प्रत्ययार्थ के साथ सम्बन्ध बतलाया है- ***'सर्वश्चर्मणा कृत:'।*** *यदि 'सर्व' शब्द का 'कृत' शब्द के साथ सम्बन्ध माना जाये तो 'सर्वचर्मन्' शब्द से सामर्थ्यभाव से समास नहीं हो सकता अत: उन्होंने यहां असमर्थ-समास की कल्पना की है जो कि सूत्ररचना के विरुद्ध प्रतीत होती है। यहां 'सर्वचर्म' का अर्थ पूरा चमड़ा है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, चमड़े का पूरा बना हुआ नहीं। इस प्रकरण में आगे भी सर्वादि शब्दों से प्रत्यय-विधान किया गया है।*

दर्शनार्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) यथामुखसम्मुखस्य दर्शनः खः।६।

प०वि०–यथामुख-सम्मुखस्य ६।१ दर्शनः १।१ खः १।१।

स०–मुखस्य सदृशमिति यथामुखम्। **'यथाऽसादृश्ये'** (२।१।७) इत्यसादृश्येऽव्ययीभावसमासप्रतिषेधादस्मादेव निपातनात् सादृश्येऽव्ययीभावसमासः। समं मुखमिति सम्मुखम्। समशब्दः सर्वशब्दपर्यायः। अस्मादेव निपातनात् समशब्दस्यान्त्याकारस्य लोपः। यथामुखं च सम्मुखं च एतयोः समाहारो यथामुखसम्मुखम्, तस्य-यथामुखसम्मुखस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

दृश्यन्तेऽस्मिन्निति दर्शनः=आदर्शादिः प्रतिबिम्बाश्रय उच्यते। **'करणाधिकरयोश्च'** (३।३।११७) इत्यधिकरणे ल्युट् प्रत्ययः। अत्र **'यथामुखसम्मुखस्य'** इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–षष्ठीसमर्थाभ्यां यथामुखसम्मुखाभ्यां दर्शनः खः।

अर्थः–षष्ठीसमर्थाभ्यां यथामुखसम्मुखाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां दर्शन इत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०–यथामुखं दर्शनः-यथामुखीन आदर्शः। सम्मुखस्य दर्शनः-सम्मुखीन आदर्शः।

आर्यभाषाः *अर्थ-षष्ठी-समर्थ (यथामुखसम्मुखस्य) यथामुख, सम्मुख प्रातिपदिको से (दर्शनः) दर्शन अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(यथामुख)** मुख के सदृश दिखानेवाला-यथामुखीन आदर्श (शीशा)। **(सम्मुख)** सारा मुख दिखानेवाला-सम्मुखीन आदर्श।*

सिद्धि-यथामुखीनः। *यथामुख+ङस्+ख। यथामुख्+ईन। यथामुखीन+सु। यथामुखीनः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'यथामुख' शब्द से दर्शन अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सम्मुखीनः।***

विशेषः *यथामुखीन और सम्मुखीन दो प्रकार के शीशे होते थे। पहला चपटा और दूसरा उन्नतोदर या बीच में उठा हुआ जिसमें सामने से ही ठीक देखा जा सके (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १३८)।*

व्याप्नोति-अर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) तत् सर्वादेः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रं व्याप्नोति।७।

प०वि०-तत् २।१ सर्वादेः ५।१ पथि-अङ्ग-कर्म-पत्र-पात्रम् २।१ (पञ्चम्यर्थे) व्याप्नोति क्रियापदम्।

स०-सर्व आदिर्यस्य स सर्वादिः, तस्मात्-सर्वादेः (बहुव्रीहिः)। पन्थाश्च अङ्गं च कर्म च पत्रं च पात्रं एतेषां समाहारः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रम्, तत्-पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-ख इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् सर्वादेः पत्यङ्गकर्मपत्रपात्राद् व्याप्नोति खः।

अर्थ-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः सर्वादिभ्यः पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो व्याप्नोतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(पथिन्)** सर्वपथं व्याप्नोति-सर्वपथीनो रथः। **(अङ्गम्)** सर्वाङ्गं व्याप्नोति-सर्वाङ्गीणस्तापः। **(कर्म)** सर्वकर्म व्याप्नोति-सर्वकर्मीणः पुरुषः। **(पत्रम्)** सर्वपत्रं व्याप्नोति-सर्वपत्रीणः सारथिः। **(पात्रम्)** सर्वपात्रं व्याप्नोति-सर्वपात्रीण ओदनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (सर्वादेः) सर्व जिनके आदि में है उन (पथ्यङ्गकर्मपत्रपात्रम्) पथिन्, अङ्ग, कर्म, पत्र, पात्र प्रातिपदिकों से (व्याप्नोति) व्याप्त करता है, अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-(पथिन्) सर्वपथ=सब मार्गों पर चलनेवाला-सर्वपथीन रथ। (अङ्ग) सर्वाङ्ग=समस्त अङ्ग को घेरनेवाला-सर्वाङ्गीण ताप (बुखार)। (कर्म) सर्वकर्म=सब कर्म करनेवाला-सर्वकर्मीण पुरुष। (पत्र) सर्वपत्र=सब घोड़ा आदि जानवरों को हांकनेवाला-सर्वपत्रीण सारथि। (पात्र) सर्वपात्र=पकते समय पूरे पात्र को फूलकर व्याप्त करनेवाला-सर्वपात्रीण ओदन (भात)।

सिद्धि-सर्वपथीनः। *सर्वपथिन्+अम्+ख। सर्वपथ्+ईन। सर्वपथीन+सु। सर्वपथीनः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ सर्वादि पथिन् शब्द अर्थात् 'सर्वपथिन्' शब्द से व्याप्नोति-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**सर्वाङ्गीणः** आदि।*

विशेषः *वह रथ जो ऐसा मतबूत बना हो कि अच्छे रास्ते के समान ही ऊबड़-खाबड़ मार्ग में भी ले जाया जा सके वह 'सर्वपथीन' कहलाता था। वह सारथि जो सब तरह के अर्थात् सीधे और कड़वे जानवरों को हांक सके 'सर्वपत्रीण' कहा जाता था। यह सारथि की सुघड़ाई का वाचक था। (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १५५)।*

प्राप्नोति-अर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) आप्रपदं प्राप्नोति।८।

प०वि०-आप्रपदम् अव्ययपदम्, प्राप्नोति क्रियापदम्।

स०-प्रपदम् इति पादस्याग्रमुच्यते। आ प्रपदाद् इति-आप्रपदम्। 'आङ् मर्यादाभिविध्योः' (२।१।१३) इत्यव्ययीभावसमासः।

अनु०-तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् आप्रपदं प्राप्नोति खः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थात् आप्रपद-शब्दात् प्रातिपकिात् प्राप्नोतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-आप्रपदं प्राप्नोति-आप्रपीनः पटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (आप्रपदम्) आप्रपद प्रातिपदिक से (प्राप्नोति) प्राप्त करता है, अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-आप्रपद=पैरों के अग्रभाग को प्राप्त करनेवाला-आप्रपदीन पट (वस्त्र)। पैरों के अग्रभाग तक नीचे लटकती हुई पुरुषों की धोती और स्त्रियों की साड़ी।

सिद्धि-आप्रपदीनः। आप्रपद+अम्+ख। आप्रपद्+ईन्। आप्रपदीन+सु। आप्रपदीनः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'आप्रपद' शब्द से प्राप्नोति अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

बद्धाद्यर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु।९।

प०वि०- अनुपद-सर्वान्न-आयानयम् २।१ बद्धा-भक्षयति-नेयेषु ७।३।

स०-पदस्य अनु इति अनुपदम्। **'यस्य चायामः'** (२।१।१६) इति अव्ययीभावसमासः। सर्वं च तद् अन्नम् इति सर्वान्नम्। **'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन'** (२।१।४९) इति कर्मधारयसमासः। अयश्चासावनयश्च इति अयानयः (कर्मधारयः)। अनुपदं च सर्वान्नं च अयानयं च एतेषां समाहारः-अनुपदसर्वान्नायानयम्, तत्-अनुपदसर्वान्नायानयम् (समाहारद्वन्द्वः)। बद्धा च भक्षयतिश्च नेयश्च ते बद्धाभक्षयतिनेयाः, तेषु-बद्धाभक्षयतिनेयेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अनुपदसर्वान्नायानयेभ्यो बद्धाभक्षयतिनेयेषु खः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्योऽनुपदसर्वान्नायानयेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं बद्धाभक्षयतिनेयेष्वर्थेषु खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अनुपदम्)** अनुपदं बद्धा-अनुपदीना उपानत्। पदप्रमाणेत्यर्थः। **(सर्वान्नम्)** सर्वान्नानि भक्षयति-सर्वान्नीनः साधुः। **(अयानयः)** अयानयं नेयः-अयानयीनः शारः। फलकशिरसि स्थित इत्यर्थः। अयः=प्रदक्षिणम्, अनयः=प्रसव्यम्। प्रदक्षिणप्रसव्यगामिनां शाराणां यस्मिन् परशारैः पदानामसमावेशः सोऽयानय इति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (अनुपदसर्वान्नायानयम्) अनुपद, सर्वान्न, अयानय प्रातिपदिकों से (बद्धाभक्षयतिनेयेषु) यथासंख्य बद्धा, भक्षयति, नेय अर्थों में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अनुपद) अनुपद=पांव के प्रमाण (पुंवाणा) से बनाई गई-अनुपदीना उपानत् (जूती)। (सर्वान्न) सब अन्नों को खानेवाला-सर्वान्नीन साधु। (अयानय) अय=दाहिनी ओर तथा अनय=बाईं ओर से चलनेवाले चौपड़ के शारों की जिस चाल में प्रतियोगी की शारों द्वारा पदों में समावेश न होना 'अयानय' कहाता है। अयानय को नेय=ले जाने योग्य-अयानयीन शार (शतरंज का मोहरा)।

सिद्धि-अनुपदीना। अनुपद+अम्+ख। अनुपद्+ईन। अनुपदीन+टाप्। अनुपदीना+सु। अनुपदीना।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'अनुपद' शब्द से 'बद्धा' अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख' के स्थान में 'ईन्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सर्वान्नीनः, अयानयीनः।***

विशेषः *(१) लोक में जूता बनवाने के दो प्रकार हैं, एक तो मोची को बुलवा कर, पैर की नाप देकर और दूसरे हाट में जाकर, जो अपने पैर की माप का हो, पहन लेते हैं। पहले प्रकार की पनही के लिये लोक में 'अनुपदीना' शब्द चलता था, जिसका पाणिनि ने उल्लेख किया है (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २२७)।*

(२) {चौपड़ के शारों की} दाहिनी ओर की चाल 'अय' है और बाईं ओर की 'अनय' (आमने-सामने बैठे हुये खिलाड़ियों की दृष्टि से गोटें दाहिनी-बाईं ओर से चलती हुई आती हैं)। वह घर 'अयानय' है जिसमें दाहिनें-बायें दोनों ओर से आती हुई गोटें (अर्थात् दोनों खिलाड़ियों की गोटें) एक-दूसरे से या अपनी शत्रु-गोटों से पिट न सकें। ऐसी गोट जिसे ऐसे घर में ले जाना या पुगाना हो वह 'अयानयीन' कही जाती है। चौपड़ के फलक पर बीच का कोठा वह स्थान है जहां पहुंचकर गोटें फिर मरती नहीं। हमारी दृष्टि में यही 'अयानयीन' पद होना चाहिये (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १६९)।

अनुभवति-अर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) परोवरपरम्परपुत्रपौत्रमनुभवति।१०।

प०वि०–परोवर-परम्पर-पुत्रपौत्रम् २।१ अनुभवति क्रियापदम्।

स०–परोवरश्च परम्पराश्च पुत्रपौत्राश्च एतेषां समाहारः परोवर-परम्परपुत्रपौत्रम्, तत्-परोवरपरम्परपुत्रपौत्रम् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् परोवरपरम्परपुत्रपौत्रेभ्योऽनुभवति खः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्यः परोवरपरम्परपुत्रपौत्रेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनुभवतीत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(परोवराः)** पराँश्च अवराँश्च अनुभवति-परोवरीणः। परावरशब्दस्य परोवरभावो निपात्यते। **(परम्पराः)** पराँश्च परतराँश्च अनुभवति-परम्परीणः। परम्परतरशब्दस्य परम्परभावो निपात्यते। **(पुत्रपौत्राः)** पुत्रपौत्रान् अनुभवति-पुत्रपौत्रीणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (परोवरपरम्परपुत्रपौत्रम्) परोवर, परम्पर, पुत्रपौत्र प्रातिपदिकों से (अनुभवति) अनुभव करता है, अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(परोवर) परवर्ती और अवरवर्ती जनों के सुख को अनुभव करनेवाला-परोवरीण। यहां पर-अवर शब्द के स्थान में परोवर भाव निपातित है। **(परम्पर)** परवर्ती और परतरवर्ती जनों के सुख को अनुभव करनेवाला-परम्परीण। यहां पर-परतर शब्द के स्थान में परम्पर भाव निपातित है। **(पुत्रपौत्र)** पुत्र और पौत्रों के सुख को अनुभव करनेवाला-पुत्रपौत्रीण।*

सिद्धि-परोवरीण:। परोपवर+शस्+ख। परोवर्+ईन। परोवरीण+सु। परोवरीण:।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'परोवर' शब्द से अनुभवति-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख' के स्थान में 'ईन्' आदेश, **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप तथा 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।१) से णत्व होता है। यहां पर-अवर शब्द के स्थान में परोवर भाव भी निपातित है (पर+अवर=पर+उवर=परोवर)। ऐसे ही-**परम्परीण:, पुत्रपौत्रीण:।***

गामि-अर्थप्रत्ययविधि:

ख:-

(१) अवारपारात्यन्तानुकामं गामी।११।

प०वि०-अवारपार-अत्यन्त-अनुकामम् २।१ गामी १।१।

स०-अवारपारश्च अत्यन्तं च अनुकामं च एतेषां समाहारोऽवारपारात्यन्तानुकामम्, तत्-अवारपारात्यन्तानुकामम् (समाहारद्वन्द्व:)।

कृद्वृत्ति:-गमिष्यतीति गामी। **'भविष्यति गम्यादय:'** (३।३।३) इति गामि-शब्दस्य भविष्यति काले साधुत्वम्। **'अकेनोर्भविष्यदाधर्मण्ययो:'** (२।३।७०) इति षष्ठीप्रतिषेधात् **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) इति सूत्रपाठे द्वितीया विभक्तिर्वर्तति।

अनु०-तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वय:-तद् अवारपारात्यन्तानुकामेभ्यो गामी ख:।

अर्थ:-तद् इति द्वितीयासमर्थेभ्योऽवारपारात्यन्तानुकामेभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो गामी इत्यस्मिन्नर्थे ख: प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अवारपारम्) आवारपारं गामी-अवारपारीण:। **विगृहीतादपीष्यते**-अवारं गामी-अवारीण:। पारं गामी-पारीण:। **विपरीताच्च**-पारावारं

गामी-पारावारीणः। **(अत्यन्तम्)** अत्यन्तं गामी-अत्यन्तीनः, भृशं गन्तेत्यर्थः। **(अनुकामम्)** अनुकामं गामी-अनुकामीनः, यथेष्टं गन्तेत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (अवारपारात्यन्तानुकामम्) अवारपार, अत्यन्त, अनुकाम प्रातिपदिकों से (गामी) जानेवाला अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(अवारपार) इस ओर तथा उस ओर के नदी तट पर जानेवाला-अवारपारीण। **विगृहीत से भी प्रत्यय अभीष्ट है**-अवार=इस ओर के नदी तट पर जानेवाला-अवारीण। पार=उस ओर के नदी तट पर जानेवाला-पारीण। **विपरीत से भी प्रत्यय अभीष्ट है**-पारावार अर्थात् उस ओर के तथा इस ओर के नदी तट पर जानेवाला-पारावारीण (तैराक)। (अत्यन्त) अत्यधिक चलनेवाला-अत्यन्तीन। (अनुकाम) इच्छानुसार चलनेवाला-अनुकामीन।*

सिद्धि-अवारपारीणः। *अवारपार+अम्+ख। अवारपार्+ईन। अवारपारीण+सु। अवारपारीणः।*

यहां द्वितीया-समर्थ, 'अवारपार' शब्द से गामी अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग के अकार का लोप और णत्व होता है। ऐसे ही-आत्यन्तीनः, अनुकामीनः।

विजायते-अर्थप्रत्ययविधिः

खः-

(१) समां समां विजायते।१२।

प०वि०-समाम् ७।१ (समायाम्-यलोपः)। समाम् ७।१ (समायाम्-यलोपः) विजायते क्रियापदम्।

'समां समाम्' इत्यत्र **'नित्यवीप्सयोः'** (८।१।४) इति वीप्साया द्विर्वचनं वर्तते। समां समाम् इति सुबन्तसमुदायश्च प्रकृतिर्वेदितव्या समाम् (समायाम्) इति सप्तमी-निर्देशात् सप्तमीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-सप्तमी-समर्थात् समां समां सुबन्तसमुदायाद् विजायते खः।

अर्थः-सप्तमी-समर्थात् समां समाम् इति सुबन्तसमुदायाद् विजायते इत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-समां समाम् (समायां समायाम्) विजायते-समांसमीना गौः। प्रतिवर्षं प्रसूते इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-सप्तमी-समर्थ (समां समाम्) समा-समा इस सुबन्त-समुदाय से (विजायते) बिआती है, अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-समा-समा=प्रत्येक वर्ष में बिआनेवाली-समांसमीना गौः (बरस ब्यावा गाया)।

*सिद्धि-**समांसमीना।** समांसमा+ङि+ख। समांसम्+ईन। समांसमीन्+टाप्। समांसमीना+सु। समांसमीना।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'समांसमा' शब्द से विजायते-अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *काशिकाकार पं० जयादित्य ने 'समांसमाम्' यहां द्वितीया-विभक्ति स्वीकार की है क्योंकि **'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे'** (२।३।५) से कालवाची शब्दों में अत्यन्त-संयोग अर्थ में द्वितीया-विभक्ति होती है। यहां 'विजायते' शब्द का अर्थ बिआती है; है। अत्यन्त प्रसव-क्रिया के समा (वर्ष) के साथ अत्यन्त संयोग नहीं है। पं० जयादित्य के अनुसार 'विजायते' का अर्थ गर्भधारण करती है; है। गर्भधारण करना रूप क्रिया का भी समा (वर्ष) के साथ अत्यन्त संयोग नहीं है क्योंकि वह तात्कालिक क्रिया है। महाभाष्यकार के अनुसार 'समांसमाम्' यहां सप्तमी-विभक्ति (समायाम् समायाम्) है। यहां पूर्वपद के यकार का लोप निपातित है, उत्तरपद ङि-प्रत्यय का **'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः'** (२।४।७१) से लुक् हो ही जाता है।*

खः (निपातनम्)-

(२) अद्यश्वीनाऽवष्टब्धे।१३।

प०वि०-अद्यश्वीना १।१ अवष्टब्धे ७।१।

अनु०-खः, विजायते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सप्तमीसमर्थम् अद्यश्वीना इति पदं विजायते खोऽवष्टब्धे।

अर्थः-सप्तमीसमर्थम् **'अद्यश्वीना'** इति पदं विजायते इत्यस्मिन्नर्थे ख-प्रत्ययान्तं निपात्यते, अवष्टब्धे गम्यमाने।

उदा०-अद्य श्वो वा विजायते-अद्यश्वीना गौः। अद्यश्वीना वडवा।

आर्यभाषाः *अर्थ-सप्तमी-समर्थ (अद्यश्वीना) 'अद्यश्वीना' यह पद (विजायते) बिआती है, अर्थ में (खः) ख-प्रत्ययान्त निपातित है (अवष्टब्धे) यदि वहां अवष्टब्ध=अविदूर (निकट) काल की प्रतीति हो।*

उदा०-अद्य-श्व=आज और कल में बिआनेवाली-अद्यश्वीना गौ। अद्यश्वीना वडवा (घोड़ी)।

सिद्धि-अद्यश्वीना। *अद्यश्व+ङि+ख। अद्यश्व्+ईन। अद्यश्वीन+टाप्। अद्यश्वीना+सु। अद्यश्वीना।*

*यहां सप्तमी-समर्थ 'अद्यश्वीना' शब्द विजायते-अर्थ में तथा अवष्टब्ध (सामीप्य) अर्थ में इस सूत्र से ख-प्रत्ययान्त निपातित है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग के अकार का लोप और स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से टाप् प्रत्यय होता है।*

विशेषः *अवष्टब्धः-अव उपसर्ग पूर्वक 'स्तम्भ' धातु के सकार को अविदूर (निकट) अर्थ में **'अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः'** (८।३।४) से षत्व होता है। अवष्टब्ध=अविदूर=निकट (समीप)।*

खः (निपातनम्)-

(३) आगवीनः।१४।

प०वि०-आगवीनः १।१।

अर्थः-आगवीन इति पदं निपात्यते। अत्र आङ्पूर्वाद् गोशब्दात् आ तस्य गोः प्रतिदानात् कारिणि अर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-आगवीनः कर्मकरः। यो गवा भृतः कर्म करोति, आ तस्य गोः प्रत्यर्पणात्, स आगवीन इत्युच्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आगवीनः) आगवीन यह पद निपातित है। यहां उपसर्ग 'गो' शब्द से उसे गौ वापिस लौटाने तक, कारी=कार्य करनेवाला अर्थ में 'ख' प्रत्यय निपातित है।*

उदा०-आगवीन कर्मकर (नौकर)। जो गो-प्रदान से खरीदा हुआ पुरुष, गोस्वामी के द्वारा उसे गौ के लौटाने तक कार्य करता है, वह सेवक 'आगवीन' कहाता है।

सिद्धि-आगवीनः। *आङ्+गो+सु+ख। आ+गव्+ईन। आगवीन+सु। आगवीनः।*

*यहां आङ् उपसर्ग पूर्वक प्रतिदानवाची 'गो' शब्द से कारी अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय निपातित है। पूर्ववत् 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश तथा **'एचोऽयवायावः'** (२।१।७८) से 'अव्' आदेश होता है।*

विशेषः *आगवीन कर्मकर वह मजदूर था जो गाय मिल जाने तक काम करे। इसका ब्यौंत यूं बैठता है-माँ का दूध छोड़ देने पर बछिया किसी कमेरे को चराई पर दे दी जाती है। यदि वह अपने घर पर चरावे तब गाय के बिआने पर उसका मूल्य कूत कर आधा-आधा कर दिया जाता है। दोनों में कोई आधा मूल्य देकर गाय ले लेता है। इसे अधवट चराई कहते हैं। दूसरा तरीका यह है कि चरानेवाला मालिक के यहां ही काम करता रहता है। जब गाय बिआ जाती है तो उसकी भृति के बदले में वह गाय उसी को दे दी जाती है। यही 'आगवीन' कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २१६)।*

अलङ्गामि-अर्थप्रत्ययविधिः

खः–

(१) अनुग्वलङ्गामी।१५।

प०वि०–अनुगु अव्ययपदम्, अलङ्गामी १।१।

स०–गोः पश्चाद् इति अनुगु **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) इति पश्चादर्थेऽव्ययीभावः। **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) इति च ह्रस्वत्वम्। अलं गच्छतीति-अलङ्गामी। **'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये'** (३।२।७८) इति णिनिः प्रत्ययः (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०–तत्, ख इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् अनुगु अलङ्गामी खः।

अर्थः–तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अनुगु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अलङ्गामी इत्यस्मिन्नर्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०–अनुगु अलङ्गामी=पर्याप्तं गच्छतीति-अनुगवीनो गोपालकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (अनुगु) अनुगु प्रातिपदिक से (अलङ्गामी) गमन-सामर्थ्यवाला अर्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-अनुगु=गौ के पीछे अलङ्गामी जाने का जो सामर्थ्य रखता है वह-अनुगवीन गोपालक।

सिद्धि-अनुगवीनः। अनुगु+आम्+ख। अनुगो+ईन। अनुगवीन+सु। अनुगवीनः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'अनुगु' शब्द से अलङ्गामी अर्थ में इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश तथा 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है।

विशेषः *जब ग्वाले का नौजवान लड़का स्वतन्त्र रूप से जंगल में गायों को चरा लाने की आयु प्राप्त कर लेता तो उसे 'अनुगवीन' कहते थे। जैसे वयःप्राप्त क्षत्रिय कुमार के लिये 'कवचहर' शब्द था, वैसे ही गोपाल के पुत्र के लिये 'अनुगवीन' (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २१६)।*

यत्+खः–

(२) अध्वनो यत्खौ।१६।

प०वि०–अध्वनः ५।१ यत्-खौ १।२।

स०–यच्च खश्च तौ यत्खौ (इतरेतरद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अलङ्गामी इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अध्वनोऽलङ्गामी यत्खौ।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अध्वन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अलङ्गामी इत्यस्मिन्नर्थे यत्खौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-अध्वानम् अलङ्गामी-अध्वन्यः (यत्)। अध्वनीनः (खः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (अध्वनः) अध्वन् प्रातिपदिक से (अलङ्गामी) गमन सामर्थ्यवाला अर्थ में (यत्खौ) यत् और ख प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-अध्वा=मार्ग को तय करने में समर्थ-अध्वन्य (यत्)। अध्वनीन (ख)।

सिद्धि-(१) अध्वन्यः। अध्वन्+अम्+यत्। अध्वन्+य। अध्वन्य+सु। अध्वन्यः।

*यहां द्वितीया-समर्थ 'अध्वन्' शब्द से अलंगामी अर्थ में इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। यहां **'ये च भावकर्मणोः'** (६।४।१६८) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है।*

(२) अध्वनीनः। अध्वन्+अम्+ख। अध्वन्+ईन। अध्वनीन+सु। अध्वनीनः।

*यहां **'आत्माध्वानौ खे'** (६।४।१६९) से प्रकृतिभाव होता है, शेष कार्य पूर्ववत् है।*

छः+यत्+खः-

(३) अभ्यमित्राच्छ च।१७।

प०वि०-अभ्यमित्रात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-न मित्रमिति अमित्रम्, अमित्रम् अभि इति अभ्यमित्रम्, तस्मात्-अभ्यमित्रात् (नञ्गर्भिताव्ययीभावः) **'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये'** (२।१।१४) इत्यव्ययीभावः।

अनु०-तत्, अलङ्गामी, यत्खौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अभ्यमित्राद् अलङ्गामी छो यत्खौ च।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थाद् अभ्यमित्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अलङ्गामी इत्यस्मिन्नर्थे छो यत्खौ च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-अभ्यमित्रम् अलङ्गामी-अभ्यमित्रीयः (छः)। अभ्यमित्र्यः (यत्)। अभ्यमित्रीणः (खः)।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्) द्वितीया-समर्थ (अभ्यमित्रात्) अभ्यमित्र प्रातिपदिक से (अलङ्गामी) गमन-सामर्थ्यवाला अर्थ में (छः) छ (च) और (यत्खौ) यत्, ख प्रत्यय होते हैं।

उदा०-अभ्यमित्र=अमित्र (शत्रु) के अभिमुख जाने का सामर्थ्य रखनेवाला-अभ्यमित्रीय (छ)। अभ्यमित्र्य (यत्)। अभ्यमित्रीण (ख)।

सिद्धि-(१) **अभ्यमित्रीयः।** अभ्यमित्र+अम्+छः। अभ्यमित्र्+ईय। अभ्यमित्रीय+सु। अभ्यमित्रीयः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'अभ्यमित्र' शब्द से अलंगामी अर्थ में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(२) **अभ्यमित्रीणः।** यहां 'अभ्यमित्र' शब्द से पूर्ववत् 'यत्' प्रत्यय है।

(३) **अभ्यमित्रीणः।** यहां 'अभ्यमित्र' शब्द से पूर्ववत् 'ख' प्रत्यय है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

विशेषः जो राजा अपने मण्डल में इतना शक्तिशाली होता था कि शत्रु के विरुद्ध चढ़ाई कर सके वह अभ्यमित्रीण, {अभ्यमित्र्य} या अभ्यमित्रीण कहलाता था (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ४०३)।

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

खञ्–

(१) गोष्ठात् खञ् भतपूर्वे।१८।

प०वि०-गोष्ठात् ५।१ खञ् १।१ भूतपूर्वे ७।१।

स०-गावस्तिष्ठन्त्यस्मिन्निति-गोष्ठम् (उपपदतत्पुरुषः)। **वा०-'घञर्थे कविधानं स्थास्नायाव्यधिहनियुध्यर्थम्'** (३।३।५८) इति अधिकरणे कारके कः प्रत्ययः। पूर्वं भूत इति भूतपूर्वः (केवलसमासः) 'सुप् सुपा' इति समासः।

अन्वयः-प्रथमासमर्थाद् भूतपूर्वेऽर्थे वर्तमानाद् गोष्ठ-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-भूतपूर्वो गोष्ठः-गौष्ठीनो देशः।

आर्यभाषाः अर्थ-प्रथमा-समर्थ (भूतपूर्वे) भूतपूर्व अर्थ में विद्यमान (गोष्ठात्) गोष्ठ प्रातिपदिक से स्वार्थ अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-भूतपूर्व गोष्ठ-गौष्ठीन देश। वह स्थान जहां पहले गौवें बैठती थी। जहां अब गौवें बैठती हैं वह देश 'गोष्ठ' कहाता है।

*सिद्धि-**गौष्ठीनः।** गोष्ठ+सु+खञ्। गौष्ठ्+ईन। गौष्ठीन्+सु। गौष्ठीनः।*

यहां प्रथमा-समर्थ, भूतभूर्व उपाधिमान् 'गोष्ठ' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

***विशेषः** पशुओं के गोष्ठ-स्थान नये-नये चारे की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटते रहते थे। पाणिनि ने लिखा है कि वह भूमि जहां पहले कभी गोष्ठ रहा हो, पर अब हट गया हो, गौष्ठीन कही जाती थी (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १४७)।*

एकाहगमार्थप्रत्ययविधिः

खञ्-

अश्वस्यैकाहगमः।१६।

प०वि०-अश्वस्य ६।१ एकाहगमः १।१।

स०-एकं च तद् अहरिति-एकाहः, एकाहेन गम्यते इति एकाहगमः (कर्मधारयगर्भिततृतीयातत्पुरुषः)। **'कर्तृकरणे कृता बहुलम्'** (२।१।३२) इति तृतीयासमासः।

अनु०-खञ् इत्यनुवर्तते। अत्र **'अश्वस्य'** इति षष्ठीनिर्देशात् षष्ठीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-षष्ठीसमर्थाद् अश्वाद् एकाहगमः खञ्।

अर्थः-षष्ठीसमर्थाद् अश्व-शब्दात् प्रातिपदिकाद् एकाहगम इत्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अश्वस्यैकाहगमः-आश्वनोऽध्वा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-षष्ठी-समर्थ (अश्वस्य) अश्व प्रातिपदिक से (एकाहगमः) एक दिन में तय करने योग्य अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय है।*

उदा०-अश्व=घोड़े का एक दिन में तय किया जानेवाला-आश्वीन मार्ग।

*सिद्धि-**आश्वीनः।** अश्व+ङस्+खञ्। आश्व्+ईन। आश्वीन+सु। आश्वीनः।*

यहां षष्ठी-समर्थ 'अश्व' शब्द से एकाहगम अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *एक घोड़ा एक दिन में जितनी यात्रा करता था वह दूरी 'आश्वीन' कहलाती थी। अथर्ववेद में यह ३ योजन और ५ योजन के बाद आश्वीन दूरी का उल्लेख है-* ***'यद् धावसि त्रियोजनं पञ्चयोजनमाश्वीनम्'*** *(अथर्व० ६ ।१३१ ।३)।*

इस सम्बन्ध में भाष्यकार ने रोचक सूचना दी है-जो चार योजन दूरी तय करे वह 'अश्व' है। जो आठ योजन दूरी तय करे वह 'अश्वतर' है। ***"अश्वोऽयं यश्चत्वारि योजनानि गच्छति, अश्वतरोऽयं योऽष्टौ योजनानि गच्छति ५ ।३ ।५"*** *(पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० १५७)।*

खञ् (निपातनम्)–

(१) शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः ।२०।

प०वि०-शालीन-कौपीने १ ।२ अधृष्ट-अकार्ययोः ७ ।२।

स०-शालीनश्च कौपीनं च ते शालीनकौपीने (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न धृष्ट इति अधृष्टः, न कार्यमिति अकार्यम्। अधृष्टश्च अकार्यं च ते अधृष्टाकार्ये, तयोः-अधृष्टाकार्ययोः (नञ्गर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, खञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् शालीनकौपीने खञ् अधृष्टाकार्ययोः।

अर्थः-तद् इति द्वितीयासमर्थौ शालीन-कौपीनशब्दौ खञ्-प्रत्ययान्तौ निपात्येते, यथासंख्यम् अधृष्टाकार्ययोरभिधेययोः।

उदा०-शालाप्रवेशमर्हति-शालीनोऽधृष्टः। कूपावतारमर्हति-कौपीनम् अकार्यम् (पापम्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) द्वितीया-विभक्ति से समर्थ (शालीनकौपीने) शालीन, कौपीन शब्द (खञ्) खञ्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (अधृष्टाकार्ययोः) यथासंख्य अधृष्ट=अचतुर तथा अकार्य=पाप अर्थ अभिधेय में।*

उदा०-जो शाला (घर) में प्रविष्ट रह सकता है वह-शालीन अधृष्ट (भीरु)। जो कूप में डालने योग्य है वह-कौपीन अकार्य (पाप)।

सिद्धि-(१) शालीनः। *शालाप्रवेश+अम्+खञ्। शाला०+ईन। शाल्+ईन। शालीन+सु। कौपीनम्।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'शालाप्रवेश' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय और 'प्रवेश' उत्तरपद का लोप निपातित है। ***आयनेय०'*** *(७ ।१ ।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है।*

(२) कौपीनम्। कूपावतार+अम्+खञ्। कूप०+ईन। कौप्+ईन। कौपीन+सु। कौपीनम्।

यहां द्वितीया-समर्थ 'कूपावतार' शब्द से अर्हति-अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय और 'अवतार' उत्तरपद का लोप निपातित है। पूर्ववत् 'ख' के स्थान में 'ईन्' आदेश, अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः *जो कूपावतार कूएं में डालने योग्य अर्थात् छुपाने के योग अकार्य (पाप) है वह कौपीन कहाता है। छुपाने के योग्य होने से पुरुषलिङ्ग को भी कौपीन कहते हैं। लिङ्ग का आच्छादक साधुओं का वस्त्र-विशेष भी लिङ्ग-संयोग से कौपीन कहाता है।*

जीवति-अर्थप्रत्ययविधिः

खञ्–

(१) व्रातेन जीवति।२१।

प०वि०–व्रातेन ३।१ जीवति क्रियापदम्।

अनु०–खञ् इत्यनुवर्तते। **'व्रातेन'** इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–तृतीयासमर्थाद् व्रात-शब्दात् प्रातिपदिकाद् जीवतीत्यस्मिन्नर्थे खञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०–व्रातेन जीवति–व्रातीनः पुरुषः।

नानाजातीया अनियतवृत्तयः शारीरश्रमजीविनः सङ्घा व्राता इत्युच्यन्ते। तत्साहचर्यात् तेषां कर्मापि व्रातमिति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-तृतीया-समर्थ (व्रातेन) व्रात प्रातिपदिक से (जीवति) जीता है, अर्थ में (खञ्) खञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०–व्रात=शारीरिक श्रम से जो जीविका कमाता है वह-व्रातीन पुरुष।

नाना जातिवाले, अनिश्चितवृत्ति (जीविका) वाले, शारीरिक श्रम से जीविका-अर्जन करनेवाले लोगों का संघ 'व्रात' कहाता है। उनके साहचर्य से उनका कर्म भी 'व्रात' कहाता है।

सिद्धि-व्रातीनः। व्रात+टा+खञ्। व्रात्+ईन। व्रातीन+सु। व्रातीनः।

यहां तृतीया-समर्थ, व्रात-कर्मवाची 'व्रात' शब्द से जीवति अर्थ में इस सूत्र से 'खञ्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः वे लोग जो लूट-मारकर जीविका चलानेवाले, लगभग जंगली हालत में आर्यावर्त की सीमाओं पर प्राचीनकाल से बसे थे, ऐसे उत्सेधजीवी (शारीर श्रमजीवी) लोग पाणिनि के समय व्रात कहलाते थे। ये विशेष करके भारत के उत्तर-पश्चिम कबाइली इलाकों में थे। ये लोग हिन्दूसमाज की ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व्यवस्था से बाहर ही माने जाते थे (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० ९०)।

खञ् (निपातनम्)–

(१) साप्तपदीनं सख्यम्।२२।

प०वि०-साप्तपदीनम् १।१ सख्यम् १।१।

अनु०-खञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तृतीयासमर्थ साप्तपदीनं खञ्, सख्यम्।

अर्थः-तृतीयासमर्थ साप्तपदीनमिति पदं खञ्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, सख्यं चेत् तद् भवति।

उदा०-सप्तभिः पदैरवाप्यते-साप्तपदीनं सख्यम्।

आर्यभाषाः अर्थ-तृतीया-समर्थ (साप्तपदीनम्) साप्तपदीन पद (खञ्) खञ् प्रत्ययान्त निपातित है (सख्यम्) यदि वह सख्य=मित्रता अर्थ का वाचक हो।

उदा०-जो सात पदों (कदम) से प्राप्त किया जाता है वह-साप्तपदीन सख्य (मित्रता)।

सिद्धि-साप्तपदीनम्। सप्तपद+भिस्+खञ्। सप्तपद्+ईन। साप्तपदीन+सु। साप्तपदीनम्।

यहां तृतीया-समर्थ 'सप्तपद' शब्द से अवाप्यते-अर्थ में इस सूत्र से 'ख्' प्रत्यय निपातित है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख' के स्थान में 'ईन्' आदेश और अंग को आदिवृद्धि होती है।

विशेषः वैदिक विवाह-संस्कार विधि में वर और वधू को ईशान दिशा में सात पद चलने का विधान किया गया है जिसमें सातवां पद सख्य=मित्रता अर्थ का द्योतक है। सप्तपदी के मन्त्र निम्नलिखित हैं–

१. ओम् इषे एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा
नयतु पुत्रान् विन्दावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः।।
२. ओम् ऊर्ज्जे द्विपदी भव०।।
३. ओं रायस्पोषाय त्रिपदी भव०।।
४. ओं मयोभवाय चतुष्पदी भव०।।

५. ओं प्रजाभ्यः पञ्चपदी भव।।

६. ओम् ऋतुभ्यः षट्पदी भव०।।

७. ओ सखे सप्तपदी भव०।। आश्व०गृ० १।७।१९।।

खञ् (निपातनम्)–

(१) हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्।२३।

प०वि०–हैयङ्गवीनम् १।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०–खञ् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–षष्ठीसमर्थं हैयङ्गवीनं खञ्, संज्ञायाम्।

अर्थः–षष्ठीसमर्थं हैयङ्गवीनमिति पदं विकारेऽर्थे खञ्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, संज्ञायां विषये।

उदा०–ह्योगोदोहस्य विकारः–हैयङ्गवीनं घृतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-षष्ठी-समर्थ (हैयङ्गवीनम्) हैयङ्गवीन पद खञ्-प्रत्ययान्त निपातित है।*

उदा०–ह्योगोदोह=कल के गो-दोनहन (दूध) का विकार-हैयङ्गवीन घृत (मक्खन)।

सिद्धि–हैयङ्गवीनम्। ह्योगोदोह+ङस्+खञ्। हियङ्गु+ईन। हैयङ्गो+ईन। हैयङ्गवीन+सु। हैयङ्गवीनम्।

यहां षष्ठी-समर्थ 'ह्योगोदोह' शब्द से विकार अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से खञ् प्रत्यय और 'ह्योगोदोह' के स्थान में 'हियङ्गु' आदेश निपातित है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि तथा 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) अंग को गुण होता है।

पाक-मूलार्थप्रत्ययविधिः

कुणप्-जाहच्–

(१) तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणप्जाहचौ।२४।

प०वि०–तस्य ६।१ पाक-मूले ७।१ पील्वादि-कर्णादिभ्यः ५।३ कुणप्-जाहचौ १।२।

स०–पाकश्च मूलं च एतयोः समाहारः पाकमूलम्, तस्मिन्-पाकमूले (समाहारद्वन्द्वः)। पीलु आदिर्येषां ते पील्वादयः, कर्ण आदिर्येषां ते कर्णादयः, पील्वादयश्च कर्णादयश्च ते पील्वादिकर्णादयः, तेभ्यः–पील्वादिकर्णादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तस्य पील्वादिकर्णादिभ्यः पाकमूले कुणप्जाहचौ।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः पील्वादिभ्यः कर्णादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यो यथासंख्यं पाकमूलयोरर्थयोः कुणप्जाहचौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-**(पील्वादि)** पीलूनां पाकः-पीलुकुणः। कर्कन्धुकुणः, इत्यादिकम्। **(कर्णादिः)** कर्णस्य मूलम्-कर्णजाहम्। अक्षिजाहम्, इत्यादिकम्।

(१) पीलु। कर्कन्धु। शमी। करीर। कवल। बदर। अश्वत्थ। खदिर। इति पील्वादयः।।

(२) कर्ण। अक्षि। नख। मुख। मख। केश। पाद। गुल्फ। भ्रूभङ्ग। दन्त। ओष्ठ। पृष्ठ। अङ्गुष्ठ। इति कर्णादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पील्वादिकर्णादिभ्यः) पीलु-आदि तथा कर्ण-आदि प्रातिपदिकों से (पाकमूले) यथासंख्य पाक और मूल अर्थ में (कुणप्जाहचौ) यथासंख्य कुणप् और जाहच् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(पील्वादि) पीलु फल का पाक-पीलुकुण (जाळवृक्ष का पका हुआ फल)। कर्कन्धु फल का पाक-कर्कन्धुकुण (पका हुआ बेर) इत्यादि। **(कर्णादि)** कर्ण का मूल-कर्णजाह (कान की जड़)। अक्षि का मूल-अक्षिजाह (आंख की जड़) इत्यादि।*

*सिद्धि-(१) **पीलुकुणः।** पीलु+आम्+कुणप्। पीलु+कुण। पीलुकुण+सु। पीलुकुणः।*

*यहा षष्ठी-समर्थ 'पीलु' शब्द से पाक=फल अर्थ में इस सूत्र से 'कुणप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**कर्कन्धुकुणः।***

*(२) **कर्णजाहम्।** कर्ण+ङस्+जाहच्। कर्ण+जाह। कर्णजाह+सु। कर्णजाहम्।*

*यहां षष्ठी-समर्थ 'कर्ण' शब्द से मूल=जड़ अर्थ में इस सूत्र से 'जाहच्' प्रत्यय है। 'जाहच्' प्रत्यय के जकार की 'चुटू' (१।३।७) से इत् संज्ञा नहीं होती है क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसे ही-**अक्षिजाहम्।***

तिः-

(२) पक्षात् तिः।२५।

प०वि०-पक्षात् ५।१ तिः १।१।

अनु०-तस्य, मूलम् इति चानुवर्तते, पाक इति नानुवर्तते। तस्याऽर्थाभावात्। **'एकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशोऽनुवर्तते'** इति परिभाषावचनात्।

अन्वयः-तस्य पक्षाद् मूलं तिः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् पक्ष-शब्दात् प्रातिपदिकाद् मूलमित्यस्मिन्नर्थे तिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-पक्षस्य मूलम्-पक्षतिः प्रतिपदा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (पक्षात्) पक्ष प्रातिपदिक से (मूलम्) मूल अर्थ में (तिः) ति प्रत्यय होता है।*

उदा०-पक्ष का मूल-पक्षति प्रतिपदा। शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की मूलतिथि-'पक्षति' (पड़वा) कहाती है। संस्कृत साहित्य में पक्षी के पंख के मूल-स्थान को भी 'पक्षति' कहा गया है।

सिद्धि-पक्षतिः। पक्ष+ङस्+ति। पक्ष+ति। पक्षति+सु। पक्षतिः।

यहां षष्ठी-समर्थ 'पक्ष' शब्द से मूल अर्थ में इस सूत्र से 'ति' प्रत्यय है।

वित्तार्थप्रत्ययविधिः

चुञ्चुप्+चणप्–

(१) तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ।२६।

प०वि०-तेन ३।१ वित्तः १।१ चुञ्चुप्-चणपौ १।२।

स०-चुञ्चुप् च चणप् च तौ-चुञ्चुप्चणपौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-तेन प्रातिपदिकाद् वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ।

अर्थः-तेन इति तृतीयासमर्थात् प्रातिपदिकाद् वित्त इत्यस्मिन्नर्थे चुञ्चुप्चणपौ प्रत्ययौ भवतः। वित्तः=प्रतीतः, प्रसिद्ध इत्यर्थः।

उदा०-विद्यया वित्तः-विद्याचुञ्चुः (चुञ्चुप्)। विद्याचणः (चणप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तेन) तृतीया-समर्थ प्रातिपदिक से (वित्तः) प्रसिद्ध अर्थ में (चुञ्चुप्चणपौ) चुञ्चुप् और चणप् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-विद्या से जो वित्त=प्रसिद्ध है वह-विद्याचुञ्चु (चुञ्चुप्)। विद्याचणः (चणप्)।

सिद्धि-(१) विद्याचुञ्चुः। विद्या+टा+चुञ्चुप्। विद्या+चुञ्चु। विद्याचुञ्चु+सु। विद्याचुञ्चुः।

यहां तृतीया-समर्थ 'विद्या' शब्द से वित्त अर्थ में 'चुञ्चुप्' प्रत्यय है। 'चुञ्चुप्' प्रत्यय के आदि-चकार की 'चुटू' (१।३।७) से इत्-संज्ञा नहीं होती है क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

(२) विद्याचण:। यहां पूर्वोक्त 'विद्या' शब्द से 'चणप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'चणप्' प्रत्यय के चकार की 'चुटू' (१।३।७) से इत्-संज्ञा नहीं होती है।

स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

ना+नाञ्–

(१) विनञ्भ्यां नानाञौ नसह।२७।

प०वि०-वि-नञ्भ्याम् ५।२ ना-नाञौ १।२ न-सह अव्ययपदम्।

स०-विश्च नञ् च तौ विनञौ, ताभ्याम्-विनञ्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। नाश्च नाञ् च तौ नानाञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)। न सह इति नसह (अलुक्तत्पुरुष:)।

अन्वय:-न सह विनञ्भ्यां स्वार्थे नानाञौ।

अर्थ:-नसह=असहार्थे वर्तमानाभ्यां विनञ्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे यथासंख्यं नानाञौ प्रत्ययौ भवत:।

उदा०-(वि) न सह इति-विना। **(नञ्)** न सह इति-नाना।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नसह) असह=पृथक्भाव अर्थ में विद्यमान (विनञ्भ्याम्) वि, नञ् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (नानाञौ) ना और नाञ् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(वि)** नसह=असह (पृथक्)-विना। **(नञ्)** नसह=असह (पृथक्)-नाना।*

*सिद्धि-(१) **विना।** वि+सु+ना। वि+ना। विना+सु। विना।*

*यहां नसह-अर्थ में विद्यमान 'वि' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'ना' प्रत्यय है। 'विना' शब्द का स्वरादिगण में पाठ होने से **'स्वरादिनिपातमव्ययम्'** (१।१।३७) से अव्ययसंज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुप:'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

***(२) नाना।** नञ्+सु+नाञ्। न+ना। ना+ना। नाना+सु। नाना।*

*यहां नसह-अर्थ में विद्यमान 'नञ्' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'नाञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादे:'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। पूर्ववत् अव्ययसंज्ञा और 'सु' का लुक् होता है। 'नाञ्' प्रत्यय के ञित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-नानां।*

शालच्+शङ्कटच्–

(२) वे: शालच्छङ्कटचौ।२८।

प०वि०-वे: ५।१ शालच्-शङ्कटचौ १।२।

स०-शालच् च शङ्कटच् च तौ शालच्छङ्कटचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-वेः प्रातिपदिकात् स्वार्थे शालच्छङ्कटचौ।

अर्थः-ससाधनक्रियावचनाद् वि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे शालच्छङ्कटचौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-विगते शृङ्गे-विशाले। विगते शृङ्गे-विशङ्कटे। तच्छृङ्गसंयोगाद् गौरपि विशालः, विशङ्कट इति च कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वेः) ससाधनक्रियावाची 'वि' उपसर्ग रूप प्रातिपदिक से स्वार्थ में (शालच्छङ्कटचौ) शालच् और शङ्कटच् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-विगत=विशेष बढ़े हुये शृङ्ग-विशाल। विगत=विशेष बढ़े हुये शृङ्ग-विशङ्कट। विशालो गौः। विशङ्कटो गौः। विशाल=विशेष बढ़े हुये शृंगों (सींग) के संयोग से गौ (बैल) भी विशाल तथा विशङ्कट कहाता है।

सिद्धि-(१) विशालः। वि+सु+शालच्। वि+शाल। विशाल+सु। विशालः।

यहां ससाधान क्रियावाचक 'वि' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से शालच् प्रत्यय है। साधन=लिङ्ग, वचन।

(२) विशङ्कटः। यहां पूर्वोक्त 'वि' शब्द से 'शङ्कटच्' प्रत्यय है।

विशेषः *'विशाल' आदि शब्द वास्तव में गुणवाची शब्द हैं, इनकी जैसे-तैसे सिद्धि की जाती है। इनमें यथावत् प्रकृति और प्रत्ययार्थ का अभिनिवेश नहीं है।*

कटच्-

(३) सम्प्रोदश्च कटच्।२९।

प०वि०-सम्-प्र-उदः ५।१ च अव्ययपदम्, कटच् १।१।

अनु०-'वेः' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सम्प्रोदो वेश्च प्रातिपदिकाद् स्वार्थे कटच्।

अर्थः-ससाधनक्रियावचनेभ्यः सम्प्रोद्विभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कटच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(सम्) संहतः=सम्बाध इति सङ्कटः। (प्र) प्रज्ञात इति प्रकटः। (उत्) उद्भूत इति उत्कटः। (वि) विकृत इति विकटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-ससाधन क्रियावाची (सम्प्रोदः) सम्, प्र उत् (च) और (वेः) वि उपसर्ग रूप प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (कटच्) कटच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(सम्) जो संहत एवं सम्बाधित है वह-सङ्कट। (प्र) जो प्रज्ञात है वह-प्रकट। (उत्) जो उद्भूत=उत्पन्न है वह उत्कट। (वि) जो विकृत=बिगड़ा हुआ है वह-विकट।

सिद्धि-सङ्कटः। सम्+सु+कटच्। सम्+कट। सङ्कट+सु। सङ्कटः।

यहां ससाधन (लिङ्गवचन सहित) क्रियावाची 'सम्' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'कटच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-प्रकटः, उत्कटः, विकटः।

कुटारच्-

(४) अवात् कुटारच् च।३०।

प०वि०-अवात् ५।१ कुटारच् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-कटच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अवात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कुटारच् कटच् च।

अर्थः-ससाधनक्रियावचनाद् अव-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कुटारच् कटच्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अव) अवाचीनमिति-अवकुटारम्। अवाचीनमिति-अवकुटम्, अप्रसिद्धमित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-ससाधन क्रियावाची (अवात्) 'अव' उपसर्ग रूप प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कुटारच्) कुटारच् (च) और (कटच्) कटच् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-अवाचीन-अवकुटार। अवाचीन-अवकुट (अप्रसिद्ध)।

सिद्धि-(१) अवकुटारम्। अव+सु+कुटारच्। अव+कुटार। अवकुटार+सु। अवकुटारम्।

यहां ससाधन क्रियावाची 'अव' शब्द से स्वार्थ में कुटारच् प्रत्यय है।

(२) अवकुटम्। यहां पूर्वोक्त 'अव' शब्द से 'कटच्' प्रत्यय है।

टीटच्+नाटच्+भ्रटच्-

(५) नते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ्नाटज्भ्रटचः।३१।

प०वि०-नते ७।१ नासिकायाः ६।१ संज्ञायाम् ७।१ टीटच्-नाटच्-भ्रटचः १।३।

कृद्वृत्तिः-नतम्=नमनम्। अत्र 'नम्' इत्यस्माद् धातोः **'नपुंसके भावे क्तः'** (३।३।११४) इति भावार्थे क्तः प्रत्ययः। **नतम्=नीचैस्त्व-मित्यर्थः।**

स०-टीटच् च, नाटच् च भ्रटच् च ते-टीटञ्नाटञ्भ्रटचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'अवात्' इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-नासिकाया नतेऽवात् स्वार्थे टीटञ्नाटज्भ्रटचः, संज्ञायाम्।

अर्थः-नासिकाया नतेऽर्थे वर्तमानाद् अव-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे टीटञ्नाटज्भ्रटचः प्रत्यया भवन्ति, संज्ञायां विषये।

उदा०-नासिकाया नतम्-अवटीटम् (टीटच्)। अवनाटम् (नाटच्)। अवभ्रटम् (भ्रटच्)। तस्य नतस्य संयोगान्नासिका पुरुषश्चापि तथा कथ्यते-अवटीटा नासिका। अवनाटा नासिका। अवभ्रटा नासिका। अवटीटः पुरुषः। अवनाटः पुरुषः। अवभ्रटः पुरुषः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नासिकायाः) नासिका=नाक के (नते) झुका हुआ होना अर्थ में विद्यमान (अवात्) 'अव' प्रातिपदिक से स्वार्थ में (टीटञ्नाटज्भ्रटचः) टीटच्, नाटच्, भ्रटच् प्रत्यय होते हैं (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।*

उदा०-नासिका का नत होना-अवटीट (टीटच्)। अवनाट (नाटच्)। अवभ्रट (भटच्)। उस नत (नीचे की ओर होना) होने के संयोग से नासिका और पुरुष भी तथा कहे जाते हैं-अवटीट नासिका। अवनाट नासिका। अवभ्रट नासिका। अवटीट पुरुष। अवनाट पुरुष। अवभ्रट पुरुष (नकटा नर)।

*सिद्धि-(१) **अवटीटम्।** अव+सु+टीटच्। अव+टीट। अवटीट+सु। अवटीटम्।*

यहां नासिका के नत होने अर्थ में विद्यमान 'अव' शब्द से स्वार्थ में तथा संज्ञाविशेष में इस सूत्र से 'टीटच्' प्रत्यय है। 'टीटच्' प्रत्यय के आदि टकार की 'चुटू' (१।३।७) से इत्-संज्ञा नहीं होती है क्योंकि उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

*(२) **अवनाटम्।** यहां पूर्वोक्त 'अव' शब्द से 'नाटच्' प्रत्यय है।*

*(३) **अवभ्रटम्।** यहां पूर्वोक्त 'अव' शब्द से 'भ्रटच्' प्रत्यय है।*

बिडच्+बिरीसच्–

(६) नेर्बिडज्बिरीसचौ।३२।

प०वि०-नेः ५।१ विडच्-बिरीसचौ १।२।

स०-बिडच् च बिरीसच् च तौ बिडच्बिरीसचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-नते, नासिकायाः, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नासिकाया नते नेर्बिडज्बिरीसचौ, संज्ञायाम्।

अर्थः-नासिकाया नतेऽर्थे वर्तमानाद् नि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे बिडज्-बिरीसचौ प्रत्ययौ भवतः, संज्ञाया विषये।

उदा०-नासिकाया नतम्-निबिडम् (बिडच्)। निबिरीसम् (बिरीसच्)। तस्य नतस्य संयोगान्नासिका पुरुषश्चापि तथा कथ्यते-निबिडा नासिका। निबिरीसा नासिका। निबिडः पुरुषः। निबिरीसः पुरुषः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नासिकायाः) नासिका के (नते) झुकने अर्थ में विद्यमान (निः) 'नि' प्रातिपदिक से स्वार्थ में (बिडज्बिरीसचौ) बिडच् और बिरीसच् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-नासिका का नत होना-निबिड (बिडच्)। निबिरीस (बिरीसच्)। उस नत (नीचे की ओर होना) के संयोग से नासिका और पुरुष भी तथा कहे जाते हैं-निबिडा नासिका। निबिरीसा नासिका (नकटी नाक)। निबिड पुरुष। निबिरीस पुरुष (नकटा नर)।

*सिद्धि-(१) **निबिडम्।** नि+सु+बिडच्। नि+बिड। निबिड+सु। निबिडम्।*

यहां नासिका के नत अर्थ में विद्यमान 'नि' शब्द से स्वार्थ में 'बिडच्' प्रत्यय है।

*(२) **निबिरीसम्।** यहां पूर्वोक्त 'नि' शब्द से 'बिरीसच्' प्रत्यय है।*

इनच्+पिटच्-

(७) इनच्पिटच् चिकचि च।३३।

प०वि०-इनच्-पिटच् १।१ चिकि-चि १।१ च अव्ययपदम्।

स०-इनच् च पिटच् च एतयोः समाहारः-इनच्पिटच् (समाहारद्वन्द्वः)। चिकश्च चिश्च एतयोः समाहारः-चिकचि (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-नते, नासिकायाः, नेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-नासिकाया नते नेरिनच्पिटच्, तस्य च चिकचि।

अर्थः-नासिकाया नतेऽर्थे वर्तमानाद् नि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे इनच्पिटचौ प्रत्ययौ भवतः, तयोः सन्नियोगेन च निशब्दस्य स्थाने यथासंख्यं चिकची आदेशौ भवतः।

उदा०-नासिकाया नतम्-चिकिनम् (इनच्+चिकः)। चिपिटम् (पिटच्+चिः)। तस्य नतस्य संयोगान्नासिका पुरुषश्चापि तथा कथ्यते-चिकीना नासिका, चिपिटा नासिका। चिकीनः पुरुषः, चिपिटः पुरुषः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नासिकायाः) नासिका के (नत) झुका हुआ होने अर्थ में विद्यमान (निः) 'नि' प्रातिपदिक से स्वार्थ में (इनच्पिटच्) इनच् और पिटच् प्रत्यय होते हैं (च) और उनके सन्नियोग से 'नि' के स्थान में (चिकचि) यथासंख्य चिक और चि आदेश होता है।*

उदा०-नासिका का नत होना-चिकिन (इनच्+चिक)। चिपिट (पिटच्+चि)। चिपटी नाक। उस नत (नीचे की ओर होना) के संयोग से नासिका और पुरुष भी तथा कहे जाते हैं। चिकिन नासिका। चिपिट नासिका। चिपटी नाक। चिकिन पुरुष। चिपिट पुरुष। चिपटी नाकवाला नर।

सिद्धि-(१) ***चिकिनः ।*** *नि+सु+इनच्। चिक्+इन। चिकिन+सु। चिकिनः।*

यहां नासिका के नत अर्थ में विद्यमान 'नि' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'इनच्' प्रत्यय है और 'नि' के स्थान में 'चिक' आदेश होता है। ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) ***चिपिटः ।*** *नि+सु+पिटच्। चि+पिट। चिपिट+सु। चिपिटः।*

यहां पूर्वोक्त 'नि' शब्द से पूर्ववत् 'पिटच्' प्रत्यय और 'नि' के स्थान में 'चि' आदेश होता है।

त्यकन्-

(८) उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोः ।३४।

प०वि०-उप-अधिभ्याम् ५।२ त्यकन् १।१ आसन्न-आरूढयोः ७।२।

स०-उपश्च अधिश्च तौ उपाधी, ताभ्याम्-उपाधिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। आसन्नं च आरूढश्च तौ-आसन्नारूढौ, तयोः-आसन्नारूढयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संज्ञायाम् इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-आसन्नारूढयोरुपाधिभ्यां स्वार्थे त्यकन्, संज्ञायाम्।

अर्थः-यथासंख्यम् आसन्नारूढयोरर्थयोर्वर्तमानाभ्याम् उपाधिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे त्यकन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये।

उदा०-**(उप)** पर्वतस्यासन्नम्-उपत्यका। **(अधि)** पर्वतस्याऽऽरूढम्-अधित्यका।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आसन्नारूढयोः) आसन्न-समीप और आरूढ=उच्च-स्थान अर्थ में विद्यमान (उपाधिभ्याम्) उप और अधि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (त्यकन्) त्यकन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।*

*उदा०-(उप) पर्वत का समीपवर्ती प्रदेश-उपत्यका। **(अधि)** पर्वत का ऊंचा प्रदेश-अधित्यका।*

सिद्धि-(१) उपत्यका। उप+सु+त्यकन्। उप+त्यक। उपत्यक+टाप्। उपत्यका+सु। उपत्यका।

*यहां आसन्न अर्थ में विद्यमान 'उप' शब्द से स्वार्थ में तथा संज्ञा विषय में इस सूत्र से त्यकन् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। संज्ञा-विषय के कारण **'प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः'** (७।३।४४) से प्राप्त इत्त्व नहीं होता है क्योंकि 'उपत्यका' संज्ञा नहीं है।*

*(२) **अधित्यका।** यहां आरूढ अर्थ में विद्यमान 'अधि' शब्द से पूर्ववत् 'त्यकन्' तथा 'टाप्' प्रत्यय है।*

घटार्थप्रत्ययविधिः

अठच्-

(१) कर्मणि घटोऽठच्।३५।

प०वि०-कर्मणि ७।१ घटः १।१ अठच् १।१।

कृद्वृत्तिः-घटते इति घटः। **'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः'** (३।१।१३४) इति पचाद्यच् प्रत्ययः। **'कर्मणि'** इति सप्तमी-निर्देशात् सप्तमीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-सप्तमीसमर्थात् कर्मणो घटोऽठच्।

अर्थः-सप्तमीसमर्थात् कर्मन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् घट इत्यस्मिन्नर्थेऽठच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कर्मणि घटते-कर्मठः पुरुषः।

आर्यभाषाः *अर्थ-सप्तमी-समर्थ (कर्मणि) कर्मन् प्रातिपदिक से (घटः) चेष्टा=प्रयत्न करनेवाला अर्थ में (अठच्) अठच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कर्म में जो घट=चेष्टा (प्रयत्न) करनेवाला है वह-कर्मठ पुरुष।

सिद्धि-कर्मठः। कर्मन्+ङि+अठच्। कर्म्+अठ। कर्मठ+सु। कर्मठः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'कर्मन्' शब्द से घट (प्रयत्न करनेवाला) अर्थ में इस सूत्र से 'अठच्' प्रत्यय है। '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। 'अठच्' प्रत्यय के आदि में अकार-उच्चारण से '**ठस्येकः**' (७।३।५०) से प्राप्त 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश नहीं होता है। '**घट चेष्टायाम्**' (भ्वा०आ०) धातु के अकर्मक होने से 'कर्म' शब्द से '**कर्तुरीप्सिततमं कर्म**' (१।४।४९) से विहित पारिभाषिक 'कर्म' का ग्रहण नहीं किया जाता है।*

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

इतच्–

(१) तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्।३६।

प०वि०-तत् १।१ अस्य ६।१ सञ्जातम् १।१ तारकादिभ्यः ५।३ इतच् १।१।

स०-तारका आदिर्येषां ते तारकादयः, तेभ्यः-तारकादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-तत् तारकादिभ्योऽस्य इतच्, सञ्जातम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यस्तारकादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे इतच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं सञ्जातं चेत् तद् भवति।

उदा०-तारकाः सञ्जाता अस्य-तारकितं नभः। पुष्पाणि सञ्जातान्यस्य-पुष्पितो वृक्षः, इत्यादिकम्।

तारका। पुष्प। मुकुल। कण्टक। पिपासा। सुख। दुःख। ऋजीष। कुड्मल। सूचक। रोग। विचार। तन्द्रा। वेग। पुक्षा। श्रद्धा। उत्कण्ठा। भर। द्रोह। गर्भादप्राणिनि। फल। उच्चार। स्तवक। पल्लव। खण्ड। धेनुष्या। अभ्र। अङ्गारक। अङ्गार। वर्णक। पुलक। कुवलय। शैवल। गर्व। तरङ्ग। कल्लोल। पण्डा। चन्द। स्रवक। मुदा। राग। हस्त। कर। सीमन्त। कर्दम। कज्जल। कलङ्क। कुतूहल। कन्दल। आन्दोल। अन्धकार। कोरक। अङ्कुर। रोमाञ्च। हर्ष। उत्कर्ष। क्षुधा। ज्वर। गोर। दोह। शास्त्र। मुकुर। तिलक। बुभुक्षा। निद्रा। इति तारकादयः। आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (तारकादिभ्यः) तारका आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (इतच्) इतच् प्रत्यय होता है (सञ्जातम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह-संजात=उत्पन्न होगया हो।*

उदा०-तारका=तारे संजात=प्रकट हो गये हैं इसके यह-तारकित नभ (आकाश)। पुष्प=फूल संजात=उत्पन्न हो गये हैं इसके यह-पुष्पित वृक्ष इत्यादि।

सिद्धि-तारकितम्। *तारका+जस्+इतच्। तारक+इत। तारकित+सु। तारकितम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'तारका' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में तथा सञ्जात अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'इतच्' प्रत्यय है। ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पुष्पितः** आदि।*

द्वयसच्+दघ्नच्+मात्रच्–

(२) प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः ।३७।

प०वि०-प्रमाणे ७।१ द्वयसच्-दघ्नच्-मात्रचः १।३।

स०-द्वयसच् च दघ्नच् च मात्रच् च ते-द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः, प्रमाणे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थं प्रमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-ऊरुः प्रमाणमस्य-ऊरुद्वयसम् उदकम् (द्वयसच्)। ऊरुदघ्नम् उदकम् (दघ्नच्)। ऊरुमात्रम् उदकम् (मात्रच्)। जानुप्रमाणमस्य-जानुद्वयसम् उदकम् (द्वयसच्)। जानुदघ्नम् उदकम् (दघ्नच्)। जानुमात्रम् उदकम् (मात्रच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः) द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् प्रत्यय होते हैं (प्रमाणे) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रमाण (मांप) हो।*

उदा०-ऊरु (जंघा) प्रमाण है इसका यह-ऊरुद्वयस जल (द्वयसच्)। ऊरुदघ्न जल (दघ्नच्)। ऊरुमात्र जल (मात्रच्)। जानु=घुटना प्रमाण है इसका यह-जानुद्वयस जल (द्वयसच्)। जानुदघ्न जल (दघ्नच्)। जानुमात्र जल (मात्रच्)।

सिद्धि-ऊरुद्वयसम्। ऊरु+सु। द्वयसच्। ऊरु+द्वयस। ऊरुद्वयस+सु। अरुद्वयसम्।

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अरु' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में तथा प्रमाण अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'द्वयसच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**ऊरुदघ्नम्, ऊरुमात्रम्** आदि।*

अण्+द्वयसच्+दघ्नच्+मात्रच्-

(३) पुरुषहस्तिभ्यामण् च।३८।

प०वि०-पुरुष-हस्तिभ्याम् ५।२ अण् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-पुरुषश्च हस्ती च तौ पुरुषहस्तिनौ, ताभ्याम्-पुरुषहस्तिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, प्रमाणे, द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पुरुषहस्तिभ्याम् अस्याण् द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचश्च, प्रमाणे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां पुरुषहस्तिभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽण् द्वयसज्मात्रचश्च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थं प्रमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(पुरुषः) पुरुषः प्रमाणमस्य-पौरुषम् (अण्)। पुरुषद्वयसम् (द्वयसच्)। पुरुषदघ्नम् (दघ्नच्)। पुरुषमात्रम् (मात्रच्)। (हस्ती) हस्ती प्रमाणमस्य-हास्तिनम् (अण्)। हस्तिद्वयसम् (द्वयसच्)। हस्तिदघ्नम् (दघ्नच्)। हस्तिमात्रम् (मात्रच्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पुरुषहस्तिभ्याम्) पुरुष, हस्ती प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् (च) और (द्वयसज्दघ्नञ्मात्रचः) द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच् प्रत्यय होते हैं (प्रमाणे) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रमाण (मांप) हो।*

उदा०-(पुरुष) पुरुष है प्रमाण इसका यह-पौरुष (अण्)। पुरुषद्वयस (द्वयसच्)। पुरुषदघ्न (दघ्नच्)। पुरुषमात्र (मात्रच्)। खात-(खाई) पौरुष=८४ अंगुल। सेना-पौरुष-६ फुट। (हस्ती) हस्ती=हाथी है प्रमाण इसका यह-हास्तिन (अण्)। हस्तिद्वयस (द्वयसच्)। हस्तिदघ्न (दघ्नच्)। हस्तिमात्र (मात्रच्)। हस्ती=४० वर्षीय उत्तम जाति का हाथी। ऊंचाई=७ अरत्नि (२८×७=२१६ अंगुल)। लम्बाई=९ अरत्नि (२८×९=२५२ अंगुल)। घेरा=१० अरत्नि (२८×१०=२८० अंगुल)। अरत्नि=२८ अंगुल। हस्ती प्रमाण में उसकी लम्बाई ग्राह्य होती है।

सिद्धि-(१) पौरुषम्। पुरुष+सु+अण्। पौरुष्+अ। पौरुष+सु। पौरुषम्।

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रमाणवाची 'पुरुष' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है।

(२) **पुरुषद्वयसम्।** यहां पूर्वोक्त 'पुरुष' शब्द से 'द्वयसच्' प्रत्यय है।

(३) **पुरुषदघ्नम्।** यहां पूर्वोक्त 'पुरुष' शब्द से 'दघ्नच्' प्रत्यय है।

(४) **पुरुषमात्रम्।** यहां पूर्वोक्त 'पुरुष' शब्द से 'मात्रच्' प्रत्यय है।

(५) **हास्तिनम्।** हस्तिन्+सु+अण्। हास्तिन्+अ। हास्तिन+सु। हास्तिनम्।

यहां प्रथमा-समर्थ, प्रमाणवाची 'हस्तिन्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। यहां **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। **'इनण्यनपत्ये'** (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग (इन्) का लोप नहीं होता है।

(६) **हस्तिद्वयसम्।** हस्तिन्+सु+द्वयसच्। हस्ति+द्वयस। हस्तिद्वयस+सु। हस्तिद्वयसम्।

यहां पूर्वोक्त 'हस्तिन्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से द्वयसच् प्रत्यय है। **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से 'हस्तिन्' शब्द की पद-संज्ञा होकर **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से उसके नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**हस्तिदघ्नम्, हस्तिमात्रम्।**

वतुप्-

(४) यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्।३६।

प०वि०-यत्-तत्-एतेभ्यः ५।३ परिमाणे ७।१ वतुप् १।१।

स०-यच्च तच्च एतच्च तानि-यत्तदेतानि, तेभ्यः-यत्तदेतेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् यत्तदेतेभ्योऽस्य वतुप् परिमाणे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो यत्तदेतेभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं परिमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(यत्) यत् परिमाणमस्य-यावत्। **(तत्)** तत् परिमाणमस्य-तावत्। **(एतत्)** एतत् परिमाणमस्य-एतावत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (यत्तदेतेभ्यः) यत्, तत्, एतत् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (वतुप्) वतुप् प्रत्यय होता है (परिमाणे) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह परिमाण (तोल) हो।*

*उदा०-**(यत्)** जो है परिमाण इसका यह-यावत् (जितना)। **(तत्)** वह है परिमाण इसका यह-तावत् (उतना)। **(एतत्)** यह है परिमाण इसका यह-एतावत् (इतना)।*

*सिद्धि-**यावत्**। यत्+सु+वतुप्। यत्+वत्। या+वत्। यावत्+सु। यावत्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'यत्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय है। '**आ सर्वनाम्नः**' (६।३।९१) से अंग को आकार आदेश होता है। '**हल्ङ्याब्भ्यो०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही-**तावत्, एतावत्**। पुंलिंग में-यावान्, तावान्, एतावान्। स्त्रीलिंग में-**यावती, तावती, एतावती**।*

विशेषः *पाणिनि मुनि के मत में ऊंचाई और लम्बाई का मांप प्रमाण और तोल का मांप परिमाण कहाता है। अन्य वैयाकरण ऊंचाई के मांप को उन्मान, लम्बाई के मांप को प्रमाण और तोल के मांप को परिमाण मानते हैं-*

> *ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं परिमाणं तु सर्वतः।*
> *आयामास्तु प्रमाणं स्यात् संख्या बाह्या तु सर्वतः।।*

वतुप् (घः)-

(५) किमिदंभ्यां वो घः।४०।

प०वि०-किम्-इदंभ्याम् ५।२ वः ६।१ घः १।१।

स०-किम् च इदम् च तौ किमिदमौ, ताभ्याम्-किमिदंभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, परिमाणे, वतुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् किमिदंभ्याम् अस्य वतुप्, वो घ, परिमाणे।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां किमिदंभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे वतुप् प्रत्ययो भवति, अस्य च वकारस्य स्थाने घ आदेशो भवति, यत् प्रथमासमर्थं परिमाणं चेत् तद् भवति।

उदा०-(किम्) किं परिमाणमस्य-कियत्। **(इदम्)** इदं परिमाणमस्य-इयत्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (किमिदंभ्याम्) किम्, इदम् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (वतुप्) वतुप् प्रत्यय होता है और उसके (वः) व् के स्थान में (घः) घ् आदेश होता है (परिमाणे) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह परिमाण (तोल) हो।*

उदा०-(किम्) क्या है परिमाण इसका यह-कियत् (कितना)। (इदम्) यह है परिमाण इसका यह-इयत्।

*सिद्धि-(१) **कियत्।** किम्+सु+वतुप्। किम्+वत्। की+घत्। की+इयत्। क्+इयत्। कियत्+सु। कियत्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'किम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय है। **'इदंकिमोरीश्की'** (६।३।९०) से 'किम्' के स्थान में 'की' आदेश होता है। इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय के 'व्' के स्थान में 'घ्' आदेश और उसे **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'इय्' आदेश होकर **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। पुंलिंग में 'कियान्' और स्त्रीलिंग में 'कियती' रूप बनता है।*

*(२) **इयत्।** इदम्+सु+वतुप्। इदम्+वत्। ईश्+वत्। ई+घत्। ई+इयत्। ०+इयत्। इयत्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, परिमाणवाची 'इदम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय है। **'इदंकिमोरीश्की'** (६।३।९०) से 'इदम्' के स्थान में 'ईश्' आदेश होता है। 'ईश्' में शकार अनुबन्ध **'अनेकाल्शित्सर्वस्य'** (१।१।५५) से सवदिश के लिये है। इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय के 'व्' के स्थान में 'घ्' आदेश और उसे पूर्ववत् 'ईय्' आदेश होकर **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के ईकार का लोप होता है। पुंलिंग में 'इयान्' और स्त्रीलिंग में 'इयती' रूप बनता है।*

डतिः+वतुप्-

(६) किमः संख्यापरिमाणे डति च।४१।

प०वि०-किमः ५।१ संख्यापरिमाणे ७।१ डति १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-संख्यायाः परिमाणमिति संख्यापरिमाणम्, तस्मिन्-संख्यापरिमाणे (षष्ठीतत्पुरुषः)। परिमाणम्=परिच्छेद इयत्तेत्यर्थः।

अनु०-तत्, अस्य, वतुप्, वः, घ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् संख्यापरिमाणे किमोऽस्य डतिर्वतुप् च।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यापरिमाणेऽर्थे वर्तमानात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे डतिर्वतुप् च प्रत्ययो भवति, तस्य च वकारस्य स्थाने घ आदेशो भवति।

उदा०-का संख्या परिमाणमेषां ब्राह्मणानामिति-कति ब्राह्मणाः (डतिः) कियन्तो ब्राह्मणाः (वतुप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्यापरिमाणे) संख्या के परिमाण (इयत्ता) अर्थ में विद्यमान (किमः) किम् प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (डतिः) डति (च) और (वतुप्) वतुप् प्रत्यय होता है और उसके (वः) वकार के स्थान में (घः) घ आदेश होता है।*

उदा०-कौन संख्या परिमाण है इन ब्राह्मणों की ये-कति ब्राह्मण (डति)। कति=कितने। कियान् ब्राह्मण (वतुप्)। कियान्=कितने।

*सिद्धि-(१) **कति।** किम्+सु+डति। किम्+अति। क्+अति। कति+जस्। कति+०। कति।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, संख्या-परिमाण अर्थ में विद्यमान 'किम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से डति प्रत्यय है। डति प्रत्यय के 'डित्' होने से वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (इम्) का लोप होता है। **'डति च'** (१।१।२५) से डति-प्रत्ययान्त शब्द की षट् संज्ञा होने से **'षड्भ्यो लुक्'** (७।१।२२) से जस् प्रत्यय का लुक् होता है।*

*(२) **कियन्तः।** किम्+सु+वतुप्। किम्+वत्। की+घत्। की+इयत्। क्+इयत्। कियत्+जस्। किय नुम् त्+अस्। कियन्त्+अस्। कियन्तः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, संख्यापरिमाणवाची 'किम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'वतुप्' प्रत्यय और उसके वकार के स्थान में 'घ' आदेश होता है पूर्ववत् 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और अंग के ईकार का लोप होता है। प्रत्यय के उगित् होने से 'जस्' प्रत्यय परे होने पर **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से अंग को 'नुम्' आगम होता है।*

तयप्-

(७) संख्याया अवयवे तयप्।४२।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ अवयवे ७।१ तयप् १।१।

अनु०-तत्, अस्य इति चानुवतति।

अन्वयः-तद् अवयवे संख्याया अस्य तयप्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् अवयवेऽर्थे वर्तमानात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे तयप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चावयवा अस्य-पञ्चतयम्। दशतयम्। चतुष्टयम्। चतुष्टयी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अवयवे) अवयव अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (तयप्) तयप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पञ्च=पांच हैं अवयव इसके यह-पञ्चतय। दश=दस हैं अवयव इसके यह-दशतय। चतुर्=चार हैं अवयव इसके यह-चतुष्टय। स्त्रीलिंग में-चतुष्टयी।

सिद्धि-(१) ***पञ्चतयम्।*** *पञ्चन्+जस्+तयप्। पञ्च+तय। पञ्चतय+सु। पञ्चतयम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, अवयवार्थक संख्यावाची 'पञ्चन्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'तयप्' प्रत्यय है। ***'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'*** *(१।४।१७) से 'पञ्चन्' शब्द की पदसंज्ञा होकर* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से उसके नकार का लोप होता है। ऐसे ही-***दशतयम्।***

(२) ***चतुष्टयम्।*** *चतुर्+जस्+तयप्। चतुर्+तय। चतुः+तय। चतुस्+तय। चतुष्+टय। चतुष्टय+सु। चतुष्टयम्।*

यहां प्रथमा-समर्थ, अवयवार्थक संख्यावाची 'चतुर्' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'तयप्' प्रत्यय है। ***'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'*** *(८।३।१५) से 'चतुर्' के रेफ को विसर्जनीय आदेश,* ***'विसर्जनीयस्य सः'*** *(८।३।३४) से उस विसर्जनीय के स्थान में 'स्' आदेश और उसे* ***'ह्रस्वात्तादौ तद्धिते'*** *(८।३।१०१) से मूर्धन्य तथा* ***'ष्टुना ष्टुः'*** *(८।४।४१) से टुत्व होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में* ***'डिड्ढाणञ्०'*** *(४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-***चतुष्टयी।**

अयच्-आदेशविकल्पः-

(८) द्वित्रिभ्यां तयस्यायज् वा।४३।

प०वि०-द्वि-त्रिभ्याम् ५।२ तयस्य ६।१ अयच् १।१ वा अव्ययपदम्।

स०-द्वौ च त्रयश्च ते द्वित्रयः, ताभ्याम्-द्वित्रिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, संख्यायाः, अवयवे, तयप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अवयवे संख्याभ्यां द्वित्रिभ्याम् अस्य तयप्, तयस्य च वाऽयच्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्याम् अवयवेऽर्थे वर्तमानाभ्यां संख्यावाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे तयप् प्रत्ययो भवति, तयस्य च स्थाने विकल्पेनाऽयजादेशो भवति।

उदा०-(द्विः) द्वाववयवावस्य-द्वय (अयच्-आदेशः)। द्वितयम् (तयप्)। **(त्रिः)** त्रयोऽवयवा अस्य-त्रयम् (अयच्-आदेशः)। त्रितयम् (तयप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अवयवे) अवयव अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची (द्वित्रिभ्याम्) द्वि, त्रि प्रातिपदिकों से (तयप्) तयप् प्रत्यय होता है और (तयस्य) उसके स्थान में (वा) विकल्प से (अयच्) अयच् आदेश होता है।*

उदा०-(द्वि) दो हैं अवयव इसके यह-द्वय (अयच्-आदेश)। द्वितय (तयप्)। (त्रि) तीन हैं अवयव इसके यह-त्रय (अयच्-आदेश)। त्रितय (तयप्)।

*सिद्धि-(१) **द्वयम्**। द्वि+औ+तयप्। द्वि+तय। द्वि+अयच्। द्व्+अय। द्वय+सु। द्वयम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अवयवार्थक, संख्यावाची 'द्वि' शब्द से (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'तयप्' प्रत्यय और उसके स्थान में 'अयच्' आदेश है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही 'त्रि' शब्द से-**त्रयम्**।*

नित्यमयजादेशः-

(६) उभादुदात्तो नित्यम्।४४।

प०वि०-उभात् ५।१ उदात्तः १।१ नित्यम् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, संख्यायाः, अवयवे, तयप्, तयस्य, अयच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अवयवे संख्याया उभाद् अस्य तयप्, तयस्य च नित्यम् अयज् उदात्तः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् अवयवेऽर्थे वर्तमानात् संख्यावाचिन उभ-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे तयप् प्रत्ययो भवति, तयस्य च स्थाने नित्यम् अयजादेशो भवति, स चोदात्तो भवति।

उदा०-उभाववयवावस्य-उभयौ मणिः। उभये देवमनुष्याः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अवयवे) अवयव अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची (उभात्) उभ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (तयप्) तयप् प्रत्यय होता है और (तयस्य) तयप् प्रत्यय के स्थान में (नित्यम्) सदा (अयच्) अयच् आदेश होता है और वह (उदात्तः) उदात्त=आद्युदात्त होता है।*

उदा०-उभ=दो अवयव हैं इसके यह-उभय मणि (रत्न)। उभ=दो अवयव हैं इसके ये-उभय देव और मनुष्य।

*सिद्धि-**उभयः**। उभ+औ+तयप्। उभ+तय। उभ+अयच्। उभ्+अय। उभय+सु। उभयः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अवयवार्थक, संख्यावाची 'उभ' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से तयप् और उसके स्थान में नित्य उदात्त-अयच् आदेश है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'उभय' शब्द का सर्वादिगण में पाठ होने से **'सर्वादीनि सर्वनामानि'** (१।१।२७) से सर्वनाम संज्ञा होकर 'जसः शी' (७।१।१७) से जस् के स्थान में 'शी' आदेश होता है-**उभये देवमनुष्याः**।*

अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधिः

डः–

(१) तदस्मिन्नधिकमिति दशान्ताड्डः।४५।

प०वि०-तत् १।१ अस्मिन् ७।१ अधिकम् १।१ इति अव्ययपदम्, दशान्तात् ५।१ डः १।१।

स०-दश अन्ते यस्य तत्-दशान्तम्, तस्मात्-दशान्तात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संख्याया इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् संख्याया दशान्ताद् अस्मिन् इति डः, अधिकम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिनो दशान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे डः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अधिकं चेत् तद् भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः।

उदा०-एकादश अधिका अस्मिन्निति-एकादशं शतम्। एकादशं सहस्रम्। द्वादश अधिका अस्मिन्निति-द्वादशं शतम्। द्वादशं सहस्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्याया) संख्यावाची (दशान्तात्) दश जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (अस्मिन् इति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (डः) ड प्रत्यय होता है (अधिकम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अधिक हो। इति-करण विवक्षा के लिये है।*

उदा०-एकादश=ग्यारह कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-एकदश शत कार्षापण (१११ कार्षापण)। एकादश=ग्यारह कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-एकादश सहस्र कार्षापण (१०११ कार्षापण)। द्वादश=बारह कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-द्वादश शत कार्षापण (११२ कार्षापण)। द्वादश=बारह कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-द्वादश सहस्र कार्षापण (१०१२ कार्षापण)। कार्षापण=३२ रत्ती चांदी का सिक्का।

*सिद्धि-**एकादशम्।** एकादशन्+जस्+ड। एकादश्+अ। एकादश+सु। एकादशम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अधिकार्थक, संख्यावाची दशान्त 'एकादशन्' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग का (अन्) लोप होता है। ऐसे ही-**द्वादशम्।***

डः-

(२) शदन्तविंशतेश्च।४६।

प०वि०-शदन्त-विंशतेः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-शद् अन्ते यस्य सः-शदन्तः, शदन्तश्च विंशतिश्च एतयोः समाहारः शदन्तविंशतिः, तस्मात्-शदन्तविंशतेः (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, तत्, अस्मिन्, अधिकम्, ड इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् संख्यायाः शदन्तविंशतेश्चास्मिन् डोऽधिकम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिनः शदन्ताद् विंशतेश्च प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे डः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमधिकं चेत् तद् भवति।

उदा०-(शदन्त) त्रिंशद् अधिका अस्मिन्निति-त्रिंश शतम्। एकत्रिंशं शतम्। एकचत्वारिंशं शतम्। **(विंशतिः)** विंशतिरधिका अस्मिन्निति-विंशं शतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (शदन्तविंशतेः) शदन्त, विंशति प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (डः) ड प्रत्यय होता है (अधिकम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अधिक हो।*

उदा०-(शदन्त) त्रिंशत्=तीस कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-त्रिंश शत कार्षापण (१३० कार्षापण)। एकत्रिंशत्=इकत्तीस कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-एकत्रिंश शत कार्षापण। (१३१ कार्षापण)। एकचत्वारिंशत्=इकतालीस कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-एकचत्वारिंश शत कार्षापण (१४१ कार्षापण)। ***(विंशति)*** *बीस कार्षापण अधिक हैं इसमें यह-विंश शत कार्षापण (१२० कार्षापण)। कार्षापण=८० रत्ती सुवर्ण का सिक्का। ३२ रत्ती चांदी का सिक्का। ८० रत्ती ताम्बे का सिक्का।*

सिद्धि-(१) त्रिंशम्। *त्रिंशत्+सु+ड। त्रिंश्+अ। त्रिंश+सु। त्रिंशम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अधिकार्थक संख्यावाची, शदन्त 'त्रिंशत्' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। वा०-**'डित्यभस्यापि टेर्लोपः'** (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अत्) का लोप होता है। ऐसे ही-**एकत्रिंशत्, एकचत्वारिंशम्।***

(२) विंशम्। *विंशति+सु+ड। विंश+अ। विंश+सु। विंशम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, अधिकार्थक, संख्यावाची 'विंशति' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ड' प्रत्यय है। **'ति विंशतेर्डिति'** (६।४।१४२) से 'विंशति' शब्द के ति-भाग का लोप होता है।*

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

मयट्–

(१) संख्याया गुणस्य निमाने मयट्।४७।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ गुणस्य ६।१ निमाने ७।१ मयट् १।१।

अनु०-'तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' (५।२।३६) इत्यस्मात्-तत्, अस्य इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-तत् संख्याया अस्य मयट् गुणस्य निमाने।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे मयट् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं गुणस्य निमानं चेत् तद् वर्तते। गुणः=भागः। निमानम्=मूल्यम्।

उदा०-यवानां द्वौ गुणौ (भागौ) निमानमस्य तक्रगुणस्य (तक्रभागस्य) द्विमयं तक्रयवानम्। त्रिमयम्। चतुर्मयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है (गुणस्य निमाने) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह गुण=भाग के निमान=मूल्य अर्थ में विद्यमान हो।*

उदा०-यव=जौओं का दो गुण (भाग) निमान=मूल्य है इस एक तक्र (मट्ठा) भाग का यह-द्विमय तक्र। यव=जौओं का तीन गुण (भाग) निमान=मूल्य है इस एक तक्र भाग का यह त्रिमय तक्र। यव=जौओं का चार गुण (भाग निमान=मूल्य है इस एक तक्र भाग का यह-चतुर्मय तक्र।

*सिद्धि-**द्विमयम्**। द्वि+औ+मयट्। द्वि+मय। द्विमय+सु। द्विमयम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, गुण=भाग के निमान=मूल्य अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'द्वि' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**त्रिमयम्, चतुर्मयम्।***

विशेषः *एक वस्तु से बदलकर दूसरी वस्तु लेना निमान कहाता था, जिसे आजकल अदला बदली कहते हैं। जो वस्तु दी जाती थी उसका, उस वस्तु के साथ जो ली जाती थी, मूल्य का आनुपातिक सम्बन्ध निश्चित करना पड़ता था, या तो दोनों वस्तुओं का मूल्य बराबर होता जैसे सेर भर गेहूं के बदले में सेर भर तिल लेना, किन्तु यदि दो सेर जौ देकर सेर भर मट्ठा मिले तो जौ का मूल्य मट्ठे के मूल्य से दुगना होगा। उस समय कहा जायेगा-**'द्विमयम् उदश्विद् यवानाम्'** (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २३८)।*

पूरणार्थप्रत्ययप्रकरणम्

डट्-

(१) तस्य पूरणे डट्।४८।

प०वि०-तस्य ६।१ पूरणे ७।१ डट् १।१।

अनु०-संख्याया इत्यनुवर्तते।

कृद्वृत्तिः-पूर्यतेऽनेनेति-पूरणम् **'करणाधिकरयोश्च'** (३।३।११७) इति करणे कारके ल्युट् प्रत्ययः।

अन्वयः-तस्य संख्यायाः पूरणे डट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-एकादशानां पूरणः-एकादशः। द्वादशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-एकादश=ग्यारह संख्या को पूरा करनेवाला-एकादश (ग्यारहवां)। द्वादश=बारह संख्या को पूरा करनेवाला-द्वादश (बारहवां)।

सिद्धि-एकादशः। *एकादशन्+आम्+डट्। एकादश्+अ। एकादश+सु। एकादशः।*

यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'एकादशन्' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से डट् प्रत्यय है। वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-द्वादशः।

डट् (मट्)-

(२) नान्तादसंख्यादेर्मट्।४६।

प०वि०-न अन्तात् ५।१ असंख्यादेः ५।१ मट् १।१।

स०-नोऽन्ते यस्य स नान्तः, तस्मात्-नान्तात् (बहुव्रीहिः)। संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिः, न संख्यादिरिति-असंख्यादिः, तस्मात्-असंख्यादेः (बहुव्रीहिगर्भित नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संख्याया, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य असंख्यादेर्नान्तात् संख्यायाः पूरणे डट्, तस्य च मट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् असंख्यादेर्नकारान्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाद् पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च मडागमो भवति।

उदा०-पञ्चानां पूरणः-पञ्चमः। सप्तमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (असंख्यादेः) संख्या जिसके आदि में नहीं है उस (नान्तात्) नकारान्त (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (मट्) मट् आगम होता है।*

उदा०-पञ्च=पांच को पूरा करनेवाला-पञ्चम (पांचवां)। सप्त=सात को पूरा करनेवाला-सप्तम (सातवां)।

सिद्धि-पञ्चमः। *पञ्चन्+आम्+डट्। पञ्चन्+मट्+अ। पञ्च+म्+अ। पञ्चम+सु। पञ्चमः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, असंख्यादि, नकारान्त, संख्यावाची 'पञ्चन्' शब्द से पूरण-अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे 'मट्' आगम होता है। प्रत्यय को 'मट्' आगम होने पर भ-संज्ञा का अभाव होता है। 'टेः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है। ऐसे ही-**सप्तमः।***

डट् (थट्)-

(३) थट् च च्छन्दसि।५०

प०वि०-थट् १।१ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट्, नान्तात्, असंख्यादेः, मट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तस्य असंख्यादेर्नान्तात् संख्यायाः पूरणे डट्, तस्य च थट् मट् च।

अर्थः-छन्दसि विषये तस्य इति षष्ठीसमर्थाद् असंख्यादेर्नकारान्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकात् पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च थट् मट् चागमो भवति।

उदा०-पञ्चानां पूरणः-पञ्चथः। **पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति** (का०सं० ८।२)। **पञ्चथः** (का०सं० ९।३)। सप्तानां पूरणः-सप्तथः (थट्)। **सप्तथः** (का०सं० ३७।११)। पञ्चानां पूरणः-पञ्चमः (मट्)। **पञ्चममिन्द्रियस्यापाक्रामत्** (का०सं० ९।१२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तस्य) षष्ठी-समर्थ (असंख्यादेः) संख्या जिसके आदि में नहीं है उस (नान्तात्) नकारान्त (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (पूरणः) पूरा करनेवाला अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (थट्) थट् तथा (मट्) मट् आगम होते हैं।*

उदा०-पञ्च=पांच को पूरा करनेवाला-पञ्चथ (पांचवां)। ***पर्णमयानि पञ्चथानि भवन्ति*** *(का०सं० ८।२)।* ***पञ्चथः*** *(का०सं० ९।३)। सप्त=सात को पूरा करनेवाला-सप्तथ (सातवां) थट् आगम।* ***सप्तथः*** *(का०सं० ३७।११)। पञ्च=पांच को पूरा करनेवाला-पञ्चम (पांचवां) मट् आगम।* ***पञ्चममिन्द्रियस्यापाक्रामत्*** *(का०सं० ९।१२)।*

सिद्धि- *(१) पञ्चथः। पञ्चन्+आम्+डट्। पञ्चन्+थट्+अ। पञ्च+थ्+अ। पञ्चथ+सु। पञ्चथः।*

यहां वेदविषय में, षष्ठी-समर्थ, असंख्यादि, नकारान्त, संख्यावाची 'पञ्चन्' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे 'थट्' आगम होता है। प्रत्यय को 'थट्' आगम होने पर भ-संज्ञा का अभाव होने से 'टेः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है।

(२) ***पञ्चमः।*** *इस पद की सिद्धि पूर्ववत् (५।२।४९) है।*

डट् (थुक)–

(४) षट् कतिकतिपयचतुरां थुक् ।५१।

प०वि०-षट्-कति-कतिपय-चतुराम् ६ ।३ थुक् १ ।१।

स०-षट् च कतिश्च कतिपयश्च चतुर् च ते षट् कतिकतिपयचतुरः, तेषाम्-षट्कतिकतिपयचतुराम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्यानां षट्कतिकतिपयचतुरां पूरणे थुक्, डटि।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थानां संख्यावाचिनां षट्कतिकतिपयचतुरां प्रातिपदिकानां पूरणेऽर्थे थुक् आगमो भवति, डटि प्रत्यये परतः।

उदा०-**(षट्)** षण्णां पूरणः-षष्ठः। **(कति)** कतीनां पूरणः-कतिथः। **(कतिपयः)** कतिपयानां पूरणः-कतिपयथः। **(चतुर्)** चतुर्णां पूरणः-चतुर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (षट्कतिकतिपयचतुराम्) षट्, कति, कतिपय, चतुर प्रातिपदिकों को (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (थुक्) थुक् आगम होता है (डट्) डट् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**(षट्)** षट्=छह को पूरा करनेवाला-षष्ठ (छठा)। **(कति)** कति=कितने को पूरा करनेवाला-कतिथ (कितनेवां)। **(कतिपय)** कई को पूरा करनेवाला-कतिपयथ (कईवां)। (चतुर्) चार को पूरा करनेवाला-चतुर्थ (चौथा)।*

*सिद्धि-**षष्ठः।** षष्+आम्+डट्। षष्+थुक्+अ। षष्+थ+अ। षष्+ठ्+अ। षष्ठः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'षष्' शब्द से पूरण-अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय परे होने पर 'षष्' प्रातिपदिक को 'थुक्' आगम होता है। 'ष्टुना ष्टुः' (८।४।४१) से 'थ्' को टुत्व (ठ्) होता है। ऐसे ही-**कतिथः, कतिपयथः,** चतुर्थः।*

डट् (तिथुक)–

(५) बहुपूगगणसङ्घस्य तिथुक् ।५२।

प०वि०-बहु-पूग-गण-सङ्घस्य ६ ।१ तिथुक् १ ।१।

स०-बहुश्च गणश्च पूगश्च सङ्घश्च एतेषां समाहारो बहुपूगगणसङ्घम्, तस्य-बहुपूगगणसङ्घस्य (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्यानां बहुपूगगणसङ्घानां पूरणे तिथुक्, डटि।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थानां संख्यावाचिनां बहुपूगगणसङ्घानां प्रातिपदिकानां पूरणेऽर्थे तिथुक् आगमो भवति, डटि प्रत्यये परतः।

उदा०-(**बहुः**) बहूनां पूरणः-बहुतिथः। (**पूगः**) पूगस्य पूरणः-पूगतिथः। (**गणः**) गणस्य पूरणः-गणतिथः (सङ्घः) सङ्घस्य पूरणः-सङ्घतिथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (बहुपूगगणसङ्घस्य) बहु, पूग, गण, संघ प्रातिपदिकों को (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (तिथुक्) तिथुक् आगम होता है (डट्) डट् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-(बहु) बहुत को पूरा करनेवाला-बहुतिथ (बहुतेरा)। (पूग) पूग=समूह को पूरा करनेवाला-पूगतिथ। (गण) गण=समुदाय को पूरा करनेवाला-गणतिथ। (सङ्घ) सङ्घ=समूह को पूरा करनेवाला-सङ्घतिथ।

सिद्धि-बहुतिथः। बहुः+आम्+डट्। बहु+तिथुक्+अ। बहु+तिथ्+अ। बहुतिथ+सु। बहुतिथः।

यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'बहु' शब्द को पूरण अर्थ में इस सूत्र से डट् प्रत्यय परे होने पर 'तिथुक्' आगम होता है। 'बहु' शब्द की 'बहुगणवतुडति संख्या' (१।१।२३) से संख्या संज्ञा है। ऐसे ही-पूगतिथः आदि।

डट् (इथुक्)-

(६) वतोरिथुक्।५३।

प०वि०-वतोः ६।१ इथुक् १।१।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याया वतोः पूरणे इथुक् डटि।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनो वतु-अन्तस्य प्रातिपदिकस्य पूरणेऽर्थे इथुक् आगमो भवति, डटि प्रत्यये परतः।

उदा०-यावतां पूरणः-यावतिथः। तावतिथः। एतावतिथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (वतोः) वतु-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक को (पूरणे) पूरण अर्थ में (इथुक्) इथुक् आगम होता है (डट्) डट् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-यावत्=जितने को पूरा करनेवाला-यावतिथ (जितनेवां)। तावत्=उतने को पूरा करनेवाला-तावतिथ (उतनेवां)। एतावत्=इतने को पूरा करनेवाला-एतावतिथ (इतनेवां)।

सिद्धि-यावत्+आम्+डट्। यावत्+इथुक्+अ। यावत्+इथ्+अ। यावतिथ+सु। यावतिथः।

यहां प्रथमा 'यत्' शब्द से **'यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्'** (५।२।३९) से 'वतुप्' प्रत्यय करने पर 'यावत्' शब्द सिद्ध होता है। तत्पश्चात् उस षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची, वतु-प्रत्ययान्त 'यावत्' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय परे होने पर 'अथुक्' आगम होता है। 'यावत्' शब्द की **'बहुगणवतुडति संख्या'** (१।१।२३) से संख्या संज्ञा है। ऐसे ही-**तावतिथः, एतावतिथः।**

तीयः-

(७) द्वेस्तीयः।५४।

प०वि०-द्वेः ५।१ तीयः १।१।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याया द्वेः पूरणे तीयः।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनो द्विशब्दात् प्रातिपदिकात् पूरणेऽर्थे तीयः प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वयोः पूरणः-द्वितीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ*-(अस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (द्वेः) द्वि प्रातिपदिक से (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (तीयः) तीय प्रत्यय होता है।

उदा०-द्वि=दो को पूरा करनेवाला-द्वितीय (दूसरा)।

सिद्धि-**द्वितीयः।** द्वि+ओस्+तीय। द्वि+तीय। द्वितीय+सु। द्वितीयः।

यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'द्वि' शब्द से पूरण-अर्थ में इस सूत्र से 'तीय' प्रत्यय है। यह **'तस्य पूरणे डट्'** (५।२।४८) का अपवाद है।

तीयः (सम्प्रसारणम्)-

(८) त्रेः सम्प्रसारणं च।५५।

प०वि०-त्रेः ५।१ सम्प्रसारणम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, तीय इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्यायास्त्रेः पूरणे तीयः सम्प्रसारणं च।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनस्त्रिशब्दात् प्रातिपदिकात् पूरणेऽर्थे तीयः प्रत्ययो भवति, तत्संयोगेन त्रेः सम्प्रसारणं च भवति।

उदा०-त्रयाणां पूरणः-तृतीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (त्रेः) त्रि प्रातिपदिक से (पूरणे) पूरण अर्थ में (तीयः) तीय प्रत्यय होता है।*

उदा०-त्रि=तीन को पूरा करनेवाला-तृतीय (तीसरा)।

सिद्धि-तृतीयः। त्रि+आम्+तीय। त्रि+तीय। त् ऋइ+तीय। तृ+तीय। तृतीयः।

यहां षष्ठी-समर्थ, संख्यावाची 'त्रि' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'तीय' प्रत्यय और सम्प्रसारण होता है। 'त्रि' के रेफ के स्थान में 'ऋ' सम्प्रसारण होकर ***'सम्प्रसारणाच्च'*** *(६।१।१०६) से 'इ' को पूर्वरूप (ऋ) हो जाता है। यहां 'हलः' (६।४।२) से सम्प्रसारण को दीर्घ नहीं होता है क्योंकि वहां* ***'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'*** *(६।३।१११) से 'अण्' की अनुवृत्ति होने से 'अण्' को ही दीर्घ होता है। 'अइउण्' (प्र० १) में विहित 'अण्' प्रत्याहार से 'ऋ' वर्ण बाह्य है।*

डट् (तमट्)-

(६) विंशत्यादिभ्यस्तमडन्यतरस्याम्।५६।

प०वि०-विंशति-आदिभ्यः ५।३ तमट् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-विंशतिरादिर्येषां ते विंशत्यादयः, तेभ्यः-विंशत्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याभ्यो विंशत्यादिभ्यः पूरणे डट्, अन्यतरस्यां मट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः संख्यावाचिभ्यो विंशत्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च विकल्पेन मट्-आगमो भवति। अत्र तीयप्रत्ययव्यवधानेऽपि पूरणाधिकाराद् डट् प्रत्यय एवागमी वेदितव्यः।

उदा०-विंशतेः पूरणः-विंशतितमः (तमट्)। विंशः (डट्)। एकविंशतितमः (तमट्)। एकविंशः (डट्)। त्रिंशत्तमः (तमट्)। त्रिंशः

(डट्)। एकत्रिंशत्तमः (तमट्)। एकत्रिंशः (डट्)। अत्र विंशत्यादयो लौकिकाः संख्यावाचिशब्दा गृह्यन्ते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (विंशत्यादिभ्यः) विंशति-आदि प्रातिपदिकों से (पूरणे) पूरण अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तमट्) आगम होता है।*

उदा०-विंशति=बीस को पूरा करनेवाला-विंशतितम, बीसवां (तमट्)। विंश, बीसवां (डट्)। एकविंशति=इक्कीस को पूरा करनेवाला-एकविंशतितम, इक्कीसवां (तमट्)। एकविंश, इक्कीसवां (डट्)। त्रिंशत्=तीस को पूरा करनेवाला-त्रिंशत्तम, तीसवां (तमट्)। त्रिंश, तीसवां (डट्)। एकत्रिंशत्=इकत्तीस को पूरा करनेवाला-एकत्रिंशत्तम, इकत्तीसवां (तमट्)। एकत्रिंश इकतीसवां (डट्)।

*सिद्धि-(१) **विंशतितमः।** विंशति+ङस्+डट्। विंशति+तमट्+अ। विंशति+तम्+अ। विंशतितम+सु। विशतितमः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, लौकिक संख्यावाची 'विंशति' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे 'तमट्' आगम होता है। 'तमट्' आगम के अन्तर से 'विंशति' शब्द की भ-संज्ञा न होने से **'ति विंशतेर्डिति'** (६।४।१४५) से 'विंशति' के ति-भाग का लोप नहीं होता है। ऐसे ही-**एकविंशतितमः, त्रिंशत्तमः, एकत्रिंशत्तमः।***

*(२) **विंशः।** विंशति+ङस्+डट्। विंशति+अ। विंश+अ। विंश+सु। विंशः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, लौकिक संख्यावाची 'विंशति' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय है और विकल्प पक्ष में तमट् आगम नहीं होता है। अतः 'विंशति' शब्द की **'यचि भम्'** भ-संज्ञा होने से **'ति विंशतेर्डिति'** (६।४।१४५) से विंशति के ति-भाग को लोप हो जाता है। **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से दोनों अकारों को पररूप एकादेश (अ) होता है। ऐसे ही-**एकविंशः, त्रिंशः, एकत्रिंशः।***

डट् (नित्यं तमट्)-

(१०) नित्यं शतादिमासार्धमाससंवत्सराच्च।५७।

प०वि०-नित्यम् १।१ शतादि-मास-अर्धमास-संवत्सरात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-शतम् आदिर्येषां ते शतादयः, शतादयश्च मासश्च अर्धमासश्च संवत्सरश्च एतेषां समाहारः शतादिमासार्धमाससंवत्सरम्, तस्मात्-शतादिमासार्धमाससंवत्सरात् (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट्, तमट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याभ्यः शतादिभ्यो मासार्धमाससंवत्सरेभ्यश्च पूरणे डट्, नित्यं तमट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थेभ्यः संख्यावाचिभ्यः शतादिभ्यो मासार्धमाससंवत्सरेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च नित्यं तमट्-आगमो भवति।

उदा०-(शतादिः) शतस्य पूरणः-शततमः। सहस्रतमः। लक्षतमः। **(मासः)** मासस्य पूरणः-मासतमो दिवसः। **(अर्धमासः)** अर्धमासस्य पूरणः-अर्धमासतमो दिवसः। **(संवत्सरः)** संवत्सरस्य पूरणः-संवत्सरतमो दिवसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) लौकिक संख्यावाची (शतादि-मासार्धमाससंवत्सरेभ्यः) शतादि और मास, अर्धमास, संवत्सर प्रातिपदिकों से (च) भी (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ में (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (नित्यम्) सदा (तमट्) तमट् आगम होता है। संख्यावाची विशेषण का सम्बन्ध शतादि शब्दों के ही साथ है, मास आदि शब्दों के साथ नहीं।*

उदा०-(शतादि) शत=सौ को पूरा करनेवाला-शततम (सौवां)। सहस्र=हजार को पूरा करनेवाला-सहस्रतम (हजारवां)। लक्ष=लाख को पूरा करनेवाला-लक्षतम (लाखवां)। (मास) मास को पूरा करनेवाला-मासतम दिवस (मास का अन्तिम दिन)। ***(अर्धमास)*** *आधा मास को पूरा करनेवाला-अर्धमास दिवस (अमावस्या, पौर्णमासी)।* ***(संवत्सर)*** *संवत्सर=वर्ष को पूरा करनेवाला-संवत्सरतम (वर्ष का अन्तिम दिन-होलिका उत्सव)।*

*सिद्धि-**शततमः**। शत+ङस् डट्। शत+तमट्+अ। शत+तम्+अ। शततम+सु। शततमः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, लौकिक संख्यावाची 'शत' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे नित्य 'तमट्' आगम होता है। ऐसे ही-**सहस्रतमः** आदि।*

डट् (नित्यं तमट्)-

(११) षष्ट्यादेश्चासंख्यादेः।५८।

प०वि०-षष्टि-आदेः ५।१ च अव्ययपदम्, असंख्या-आदेः ५।१।

स०-षष्टिरादिर्यस्य स षष्ट्यादिः, तस्मात् षष्टयादेः (बहुव्रीहिः)। संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिः, न संख्यादिरिति असंख्यादिः, तस्मात्-असंख्यादेः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-संख्यायाः, तस्य, पूरणे, डट्, नित्यम्, तमट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तस्य संख्याया असंख्यादेः षष्ट्यादेश्च पूरणे डट्, नित्यं तमट्।

अर्थः-तस्य इति षष्ठीसमर्थात् संख्यावाचिनः षष्ट्यादेः प्रातिपदिकाच्च पूरणेऽर्थे डट् प्रत्ययो भवति, तस्य च नित्यं तमट्-आगमो भवति।

उदा०-षष्टेः पूरणः-षष्टितमः। सप्ततेः पूरणः-सप्ततितमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अस्य) षष्ठी-समर्थ (संख्यायाः) संख्यावाची (असंख्यादेः) जिसके आदि में संख्या नहीं है उन (षष्ट्यादेः) षष्टि आदि प्रातिपदिकों से (पूरणे) पूरा करनेवाला अर्थ (डट्) डट् प्रत्यय होता है और उसे (नित्यम्) सदा (तमट्) तमट् आगम होता है।*

उदा०-षष्टि=साठ को पूरा करनेवाला-षष्टितम (साठवां)। सप्तति=सत्तर को पूरा करनेवाला-सप्ततितम (सत्तरवां)।

सिद्धि-षष्टितमः। *षष्टि+ङस्+डट्। षष्टि+तमट्+अ। षष्टि+तम्+अ। षष्टतम+सु। षष्टितमः।*

*यहां षष्ठी-समर्थ, लौकिक संख्यावाची 'षष्ठी' शब्द से पूरण अर्थ में इस सूत्र से 'डट्' प्रत्यय और उसे नित्य 'तमट्' आगम होता है। ऐसे ही-**सप्ततितमः**।*

मत्वर्थप्रत्ययप्रकरणम्

छः—

(१) मतौ छः सूक्तसाम्नोः।५६।

प०वि०-मतौ ७।१ छः १।१ सूक्त-साम्नोः ७।२।

स०-सूक्तं च साम च ते सूक्तसाम्नी, तयोः-सूक्तसाम्नोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-मताविति मत्वर्थ उच्यते। अत्र मत्वर्थग्रहणेन **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) इति प्रथमासमर्थविभक्तिः, प्रकृतिविशेषणं प्रत्ययाश्चेति सर्वमुपस्थाप्यते।

अन्वयः-{तत्} प्रातिपदिकाद् मतौ छः, सूक्तसाम्नोः।

अर्थः-{तत्} इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे छः प्रत्ययो भवति, सूक्ते सामनि चाभिधेये।

उदा०-(**सूक्तम्**) अच्छावाकशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-अच्छावाकीयं सूक्तम्। मित्रावरुणीयं सूक्तम्। (**साम**) यज्ञायज्ञाशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-यज्ञायज्ञीयं साम। वारवन्तीयं साम।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तत्} प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है (सूक्तसाम्नोः) यदि वहां सूक्त और साम अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(सूक्त) अच्छावाक-शब्द इसमें है यह-अच्छावाकीय सूक्त। मित्रावरुण शब्द इसमें है यह-मित्रावरुणीय सूक्त। (साम) यज्ञायज्ञा शब्द इसमें है यह-यज्ञायज्ञीय साम। वारवन्त शब्द इसमें है य-वारवन्तीय साम।

*सिद्धि-**अच्छावाकीयम्**। अच्छावाक+सु+छ। अच्छावाक्+ईय। अच्छावाकीय+सु। अच्छावाकीयम्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अच्छावाक' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) के अर्थ में तथा सूक्त अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है, 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मित्रावरुणीयम्, यज्ञायज्ञीयम्, वारवन्तीयम्**।*

विशेषः *(१) अच्छावाकीय तथा मित्रावरुणीय सूक्त के उदाहरण निम्नलिखित हैं-*

(क) अच्छावाक शब्द ऋग्वेद के खिल में वैदिक पदानुक्रम कोष के अनुसार (५।७।५।१०) पर है। जर्मनी से छपे खिलानि में उक्त पते पर प्रैष में अच्छावाक पद है परन्तु वहां सूक्तविभाग नहीं है।

*(ख) **विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै।***
स यां रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः।।
(ऋ० ६।६७।१)

(२) यज्ञायज्ञीय तथा वारतन्तीय साम के उदाहरण निम्नलिखित हैं-

*(क) **यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे।***
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम्। *(साम० १।१।४।१)*

*(ख) **अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः।***
सम्राजन्तमध्वराणाम्।। *(ऋ० १।२७।१)*

छस्य लुक्-

(२) अध्यायानुवाकयोर्लुक्।६०।

प०वि०-अध्याय-अनुवाकयोः ७।२ लुक् १।१।

स०-अध्यायश्च अनुवाकश्च तौ अध्यायानुवाकौ, तयोः-अध्यायानुवाकयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-{तत्}, मतौ, छ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-{तत्} प्रातिपदिकाद् मतौ छस्य लुक्, अध्यायानुवाकयोः।

अर्थः-{तत्} इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् मत्वर्थे छ-प्रत्ययस्य लुग् भवति, अध्यायानुवाकयोरभिधेययोः। विकल्पेन लुगयमिष्यते।

उदा०-गर्दभाण्डशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-गर्दभाण्डोऽध्यायः (लुक्)। गर्दभाण्डीयोऽध्यायः (छः)। दीर्घजीवितशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-दीर्घजीवितः (लुक्)। दीर्घजीवितीयः (छः)। पलितस्तम्भशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-पलितस्तम्भः (लुक्)। पलितस्तम्भीयः (छः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तत्} प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (छः) छ प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है (अध्यायानुवाकयोः) यदि वहां अध्याय और अनुवाक अर्थ अभिधेय हो। यह लुक् विकल्प से अभीष्ट है।*

उदा०-गर्दभाण्ड शब्द इसमें है यह-गर्दभाण्ड अध्याय वा अनुवाक (लुक्)। गर्दभाण्डीय अध्याय वा अनुवाक (छ)। दीर्घजीवित शब्द इसमें है यह-दीर्घजीवित अध्याय वा अनुवाक (लुक्)। दीर्घजीवतीय अध्याय वा अनुवाक। पलितस्तम्भ शब्द इसमें है यह-पलितस्तम्भ अध्याय वा अनुवाक (लुक्)। पलितस्तम्भीय अध्याय वा अनुवाक (छ)।

सिद्धि-(१) गर्दभाण्डः। गर्दभाण्ड+सु+छ। गर्दभाण्ड+०। गर्दभाण्ड+सु। गर्दभाण्डः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'गर्दभाण्ड' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) अर्थ में तथा अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय का लुक् होता है। ऐसे ही-दीर्घजीवितः, पलितस्तम्भः।

(२) गर्दभाण्डीयः। गर्दभाण्ड सु+छ। गर्दभाण्ड्+ईय्। गर्दभाण्डीय+सु। गर्दभाण्डीयः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'गर्दभाण्ड' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) अर्थ में तथा अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय में इस सूत्र विकल्प से अभीष्ट 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और 'यस्येति च' (७।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-दीर्घजीवितीयः, पलितस्तम्भीयः।

विशेषः *गानरहित ऋचाओं का समूह 'अनुवाक' कहाता है।*

अण्-

(३) विमुक्तादिभ्योऽण्।६१।

प०वि०-विमुक्त-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-विमुक्त आदिर्येषां ते विमुक्तादयः, तेभ्यः-विमुक्तादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-{तत्} मतौ अध्यायानुवाकयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-{तत्} विमुक्तादिभ्यो मतावण् अध्यायानुवाकयोः।

अर्थः-{तत्} इति प्रथमासमर्थेभ्यो विमुक्तादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, अध्यायानुवाकयोरभिधेययोः।

उदा०-विमुक्तशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-वैमुक्तोऽध्यायोऽनुवाको वा। देवासुरशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-दैवासुरोऽध्यायोऽनुवाको वा, इत्यादिकम्।

विमुक्त। देवासुर। वसुमत्। सत्त्ववत्। उपसत्। दशार्हपयस्। हविर्धान। मित्री। सोमापूषन्। अग्नाविष्णू। वृत्रहति। इडा। रक्षोऽसुर। सदसत्। परिषादक्। वसु। मरुत्वत्। पत्नीवत्। महीयल। दशार्ह। वयस्। पतत्रि। सोम। महित्री। हेतु। इति विमुक्तादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तत्} प्रथमा-समर्थ (विमुक्तादिभ्यः) विमुक्त आदि प्रातिपदिकों से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (अध्यायानुवाकयोः) यदि वहां अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-विमुक्त शब्द इसमें है यह-वैमुक्त अध्याय वा अनुवाक। देवासुर शब्द इसमें है यह-दैवासुर अध्याय वा अनुवाक इत्यादि।

सिद्धि-वैमुक्तः। *विमुक्त+सु+अण्। वैमुक्त्+अ। वैमुक्त+सु। वैमुक्तः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'विमुक्त' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) के अर्थ में तथा अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-दैवासुरः आदि।*

वुन्-

(४) गोषदादिभ्यो वुन्।६२।

प०वि०-गोषद-आदिभ्यः ५।२ वुन् १।१।

स०-गोषद आदिर्येषां ते गोषदादयः, तेभ्यः-गोषदादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-{तत्} मतौ अध्यायानुवाकयोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-{तत्} गोषदादिभ्यो मतौ वुन्, अध्यायानुवाकयोः।

अर्थः-{तत्} इति प्रथमासमर्थेभ्यो गोषदादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो मत्वर्थे वुन् प्रत्ययो भवति, अध्यायानुवाकयोरभिधेययोः।

उदा०-गोषदशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-गोषदकोऽध्यायोऽनुवाको वा। इषेत्वशब्दोऽस्मिन्नस्तीति-इषेत्वकोऽध्यायोऽनुवाको वा, इत्यादिकम्।

गोषद। इषेत्व। मातरिश्वन्। देवस्य त्वा। देवीराप:। कृष्णोऽस्याखरेष्ट:। दैवींधियम्। रक्षोहण। अञ्जन। प्रभूत। प्रतूर्त। कृशानु। इति गोषदादय:।।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तत्} प्रथमा-समर्थ (गोषदादिभ्य:) गोषद आदि प्रातिपदिकों से (मतौ) मतुप्-प्रत्यय के अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (अध्यायानुवाकयो:) यदि वहां अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-गोषद शब्द इसमें है यह-गोषदक अध्याय वा अनुवाक। इषेत्व शब्द इसमें है यह-इषेत्वक अध्याय वा अनुवाक इत्यादि।

सिद्धि-गोषदक:। *गोषद+सु+वुन्। गोषद्+अक। गोषदक+सु। गोषदक:।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'गोषद' शब्द से मतुप् (सप्तमी-विभक्ति) के अर्थ में तथा अध्याय वा अनुवाक अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। ***'युवोरनाकौ'*** *(७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-इषेत्वक: आदि।*

कुशलार्थप्रत्ययविधि:

वुन्-

(१) तत्र कुशल: पथ:।६३।

प०वि०-तत्र अव्ययपदम् (सप्तम्यर्थे) कुशल: १।१ पथ: ५।१।

अनु०-वुन् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-तत्र पथ: कुशलो वुन्।

अर्थ:-तत्र इति सप्तमीसमर्थात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् कुशल इत्यस्मिन्नर्थे वुन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पथि कुशल:-पथक:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (पथ:) पथिन् प्रातिपदिक से (कुशल:) कुशल=चतुर अर्थ में (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पन्था=मार्ग के ज्ञान में कुशल-पथक। मार्ग=रास्ता जाननेवाला।

सिद्धि-पथकः। पथिन्+ङि+वुन्। पथ्+अक। पथक+सु। पथकः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'पथिन्' शब्द से कुशल अर्थ में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय है। '**युवोरनाकौ**' (७।१।२) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश और '**नस्तद्धिते**' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है।*

कन्-

(२) आकर्षादिभ्यः कन्।६४।

प०वि०-आकर्ष-आदिभ्यः ५।३ कन् १।१।

स०-आकर्ष आदिर्येषां ते आकर्षादयः, तेभ्यः-आकर्षादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्र कुशल इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्राऽऽकर्षादिभ्यः कुशलः कन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमी-समर्थेभ्यः आकर्षादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कुशल इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-आकर्षे कुशलः-आकर्षकः। त्सरौ कुशलः=त्सरुकः, इत्यादिकम्।

आकर्ष। त्सरु। पिपासा। पिचण्ड। अशनि। अश्मन्। विचय। चय। जय। आचय। अय। नय। निपाद। गद्गद। दीप। ह्रद। ह्राद। ह्लाद। शकुनि। इति आकर्षादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (आकर्षादिभ्यः) आकर्ष आदि प्रातिपदिकों से (कुशल) चतुर अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-आकर्ष=कसौटी पर कसने में कुशल-आकर्षक। त्सरु=तलवार की मूंठ पकड़ने में कुशल-त्सरुक इत्यादि।

सिद्धि-आकर्षकः। आकर्ष+ङि+कन्। आकर्ष+क। आकर्षक+सु। आकर्षकः।

*यहां सप्तमी-समर्थ 'आकर्ष' शब्द से कुशल अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**त्सरुकः** आदि।*

कामार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) धनहिरण्यात् कामे।६५।

प०वि०-धन-हिरण्यात् ५।१ कामे ७।१।

स०-धनं च हिरण्यं च एतयोः समाहारो धनहिरण्यम्, तस्मात्-धनहिरण्यात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्र, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र धनहिरण्याभ्यां कामे कन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाभ्यां धनहिरण्याभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां कामेऽर्थे कन् प्रत्ययो भवति। कामः=इच्छा, अभिलाष इत्यर्थः।

उदा०-**(धनम्)** धने कामः-धनकः। धनको देवदत्तस्य। **(हिरण्यम्)** हिरण्ये कामः-हिरण्यकः। हिरण्यको यज्ञदत्तस्य।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (धनहिरण्यात्) धन, हिरण्य प्रातिपदिकों से (कामे) इच्छा अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(धन) धन में इच्छा-धनक। देवदत्त को धनक (धन में इच्छा) है। (हिरण्य) हिरण्य में इच्छा-हिरण्यक। यज्ञदत्त को हिरण्यक (सुवर्ण में इच्छा) है।

सिद्धि-धनकः। धन+ङि+कन्। धन+क। धनक+सु। धनकः।

यहां सप्तमी-समर्थ 'धन' शब्द से काम (इच्छा) अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-हिरण्यकः।

प्रसितार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते।६६।

प०वि०-स्वाङ्गेभ्यः ५।३ प्रसिते ७।१ **'स्वाङ्गेभ्यः'** इति बहुवचननिर्देशात् स्वाङ्गवाचिनः शब्दा गृह्यन्ते।

अनु०-तत्र, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र, स्वाङ्गेभ्यः प्रसिते कन्।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थेभ्यः स्वाङ्गवाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः प्रसितेऽर्थे कन् प्रत्ययो भवति। प्रसितः=प्रसक्तः, तत्पर इत्यर्थः।

उदा०-केशेषु प्रसितः-केशकः। केशरचनायां प्रसक्त इत्यर्थः। दन्तौष्ठकः। केशनखकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (स्वाङ्गेभ्यः) स्वाङ्गवाची प्रातिपदिकों से (प्रसितः) प्रसक्त=फंसा हुआ अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-केशो में प्रसित=फंसा हुआ-केशक। केश-शृङ्गार में फंसा हुआ पुरुष। दन्त और ओष्ठ के शृङ्गार में फंसा हुआ-दन्तौष्ठक। केश नख के शृङ्गार में फंसा हुआ-केशनखक।

सिद्धि-केशकः। केश+सुप्+कन्। केश+क। केशक+सु। केशकः।

*यहां सप्तमी-समर्थ, स्वाङ्गवाची 'केश' शब्द से प्रसित अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दन्तौष्ठकः, केशनखकः।***

ठक्-

(२) उदराट्ठगाद्यूने।६७।

प०वि०-उदरात् ५।१ ठक् १।१ आद्यूने ७।१।

कृद्वृत्तिः-'आद्यूनः' इत्यत्र **'दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु'** (दि०प०) इत्यस्माद् धातोः क्तः प्रत्ययः, **'दिवोऽविजिगीषायाम्'** (८।२।४९) इति च निष्ठातकारस्य नत्वं भवति। आद्यूनः=अविजिगीषुरित्यर्थः।

अनु०-तत्र, प्रसिते इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्र उदरात् प्रसिते ठक्, आद्यूने।

अर्थः-तत्र इति सप्तमीसमर्थाद् उदर-शब्दात् प्रातिपदिकात् प्रसितेऽर्थे ठक् प्रत्ययो भवति, यत् प्रसितम् आद्यूनं चेत् तद् भवति।

उदा०-उदरे प्रसितः-औदरिक आद्यूनः। यो बुभुक्षयाऽत्यन्तं पीड्यते स औदरिक आद्यून इति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्र) सप्तमी-समर्थ (उदरात्) उदर प्रातिपदिक से (प्रसिते) खाने में फंसा हुआ अर्थ में (ठक्) प्रत्यय होता है (आद्यूने) जो प्रसित अर्थ यदि वह आद्यून=अविजिगीषा हो, पूर्ण न हो।*

उदा०-उदर में प्रसित अर्थात् खाने में फंसा हुआ और उससे तृप्त न होनेवाला औदरिक आद्यून (पेटू)।

सिद्धि-औदरिकः। *उदर+ङि+ठक्। औदर्+इक। औदरिक+सु। औदरिकः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'उदर' शब्द से प्रसित अर्थ में तथा आद्यून अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और 'किति च' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

परिजातार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) सस्येन परिजातः।६८।

प०वि०-सस्येन ३।१ परिजातः १।१।

अनु०-'कन्' इत्यनुवर्तते। अत्र **'सस्येन'** इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-{तिन} सस्यात् परिजातः कन्।

अर्थः-{तिन} तृतीयासमर्थात् सस्यात् प्रातिपदिकात् परिजात इत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति। सस्यशब्दोऽयं गुणवाची गृह्यते न तु धान्यवाची, अनभिधानात्। परिजातः=सर्वतः सम्बद्ध इत्यर्थः।

उदा०-सस्येन परिजातः-सस्यकः शालिः। सस्यकः साधुः। सस्यको मणिः। आकरशुद्ध इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तिन} तृतीया-समर्थ (सस्येन) सस्य प्रातिपदिक से (परिजातः) सब ओर से सम्बद्ध अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है। यह 'सस्य' शब्द गुणवाचक है, धान्य=खेती का वाचक नहीं है, अभीष्ट अर्थ का वाचक न होने से।*

उदा०-सस्य=गुण से परिजात=सब ओर से सम्बद्ध-सस्यक शालि (चावल)। सर्वथा दोषरहित चावल। सस्यक मणि। सर्वथा दोषरहित रत्न। आकर=खान से ही शुद्ध निकला हुआ हीरा।

सिद्धि-सस्यकः। *सस्य+टा+कन्। सस्य+क। सस्यक+सु। सस्यकः।*

यहां तृतीया-समर्थ 'सस्य' शब्द से परिजात अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

हारि-अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) अंशं हारी।६७।

प०वि०–अंशम् २।१ हारी १।१।

अनु०–कन् इत्यनुवर्तते। अत्र **'अंशम्'** इति द्वितीयानिर्देशाद् द्वितीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–{तत} अंशाद् हारी कन्।

अर्थः–{तत्} द्वितीयासमर्थाद् अंश-शब्दात् प्रातिपदिकाद् हारीत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अंशं हारी–अंशकः पुत्रः। अंशको दायादः।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तत्} द्वितीया-समर्थ (अंशम्) अंश प्रातिपदिक से (हारी) हरण करनेवाला अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०–अंश (भाग) को ग्रहण करनेवाला-अंशक पुत्र (पैतृक सम्पत्ति में हिस्सेदार)। अंशक दायाद=दायभागी (सम्पत्ति में हिस्सेदार)।

सिद्धि–अंशकः। *अंश+अम्+कन्। अंश+क। अंशक+सु। अंशकः।*

यहां द्वितीया-समर्थ 'अंश' शब्द से हारी=हरण (ग्रहण) करनेवाला अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

अचिरापहृतार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) तन्त्रादचिरापहृते।७०।

प०वि०–तन्त्रात् ५।१ अचिरापहृते ७।१।

स०–चिरम् अपहृतस्य इति चिरापहृतः न चिरापहृत इति अचिरापहृतः, तस्मिन्–अचिरापहृते **'कालाः परिमाणिना'** (२।२।५) इति षष्ठीतत्पुरुषः (षष्ठीतत्पुरुषगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–कन् इत्यनुवर्तते। अत्र **'तन्त्रात्'** इति पञ्चमीनिर्देशात् पञ्चमीसमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-{ततः} तन्त्राद् अचिरापहृते कन्।

अर्थः-{ततः} पञ्चमीसमर्थात् तन्त्र-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अचिरापहृतेऽर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-तन्त्राद् अचिरापहृत इति तन्त्रकः पटः।

आर्यभाषाः *अर्थ {ततः} पञ्चमी-समर्थ (तन्त्रात्) तन्त्र प्रातिपदिक से (अचिरापहृतः) जिसे उतारे हुये थोड़ा समय हुआ है, अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-तन्त्र (करघा) से जो अचिरापहृत (जिसे उतारे हुये थोड़ा समय हुआ) है वह-तन्त्रक पट (कपड़ा)। करघे से अभी उतारा हुआ ताज़ा कपड़ा।

सिद्धि-तन्त्रकः। तन्त्र+ङसि+कन्। तन्त्र+क। तन्त्रक+सु। तन्त्रकः।

यहां पञ्चमी-समर्थ 'तन्त्र' शब्द से अचिरापहृत अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

कन् (निपातनम्)-

(२) ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम्।७१।

प०वि०-ब्राह्मणक-उष्णिके १।२ संज्ञायाम्।

स०-ब्राह्मणकश्च अष्णिका च ते-ब्राह्मणकोष्णिके (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ब्रह्मणोष्णिके कन् संज्ञायाम्।

अर्थः-ब्राह्मणक-उष्णिकाशब्दौ कन् प्रत्ययान्तौ निपात्येते संज्ञायां विषये।

उदा०-ब्राह्मणको देशः। यत्राऽऽयुधजीविनो ब्राह्मणाः सन्ति तस्य देशस्य 'ब्राह्मणकः' इति संज्ञा वर्तते। **उष्णिका यवागूः।** अल्पान्ना यवागूः 'उष्णिका' इति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ब्राह्मणकोष्णिके) ब्राह्मणक, उष्णिका शब्द (कन्) कन्-प्रत्ययान्त निपातित हैं (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में।*

*उदा०-**ब्राह्मणक देश।** जिस देश में आयुधजीवी ब्राह्मण रहते हैं उस देश की 'ब्राह्मणक' संज्ञा है। **उष्णिका यवागू।** थोड़े अन्न-भागवाली यवागू (राबड़ी) 'उष्णिका' कहाती है।*

सिद्धि-(१) ब्राह्मणकः। ब्राह्मणस्य+जस+कन्। ब्राह्मण+क। ब्राह्मणक+सु। ब्राह्मणकः।

यहां प्रथमा-समर्थ, आयुधजीवीवाची 'ब्राह्मण' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में तथा संज्ञाविषय में 'कन्' प्रत्यय निपातित है। ***"ब्राह्मणशब्दादायुधनीव्युपाधिकात् प्रथमान्तात् सप्तम्यर्थे कन् प्रत्ययः" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः।***

(२) उष्णिका। अन्न+सु+कन्। उष्ण+कन्। उष्णक+टाप्। उष्णिका+सु। उष्णिका।

यहां प्रथमा-समर्थ, अल्पवाची 'अन्न' शब्द से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में तथा संज्ञाविषय में 'कन्' प्रत्यय और उष्ण आदेश निपातित हैं। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।* ***"अन्नशब्दादल्पत्वोपाधिकात् सप्तम्यर्थ एव कन् प्रत्ययः, अन्नशब्दस्योष्ण्यादेशः" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः।***

कारि-अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) शीतोष्णाभ्यां कारिणि।७२।

प०वि०-शीत-उष्णाभ्याम् ५।२ कारिणि ७।१।

स०-शीतं च उष्णं च ते शीतोष्णे, ताभ्याम्-शीतोष्णाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते। अत्र शीतोष्णशब्दयोः क्रियाविशेषणत्वाद् द्वितीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-{तत्} शीतोष्णाभ्यां कारिणि कन्।

अर्थः-{तत्} द्वितीयासमर्थाभ्यां शीतोष्णाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां कारिणि अर्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(शीतम्)** शीतं करोति-शीतकः। अलसः, जड इत्यर्थः। **(उष्णम्)** उष्णं करोति-उष्णकः। शीघ्रकारी, दक्ष इत्यर्थः। अत्र शीतोष्ण-शब्दौ मन्दशीघ्रपर्यायौ वेदितव्यौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तत्} द्वितीया-समर्थ (शीतोष्णाभ्याम्) शीत, उष्ण प्रातिपदिकों से (कारिणि) करनेवाला अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(शीत) शीत=मन्द कार्य करनेवाला-शीतक। आलसी, जड़ पुरुष। (उष्ण) उष्ण=शीघ्र कार्य करनेवाला-उष्णक। शीघ्रकारी, दक्ष (चतुर) पुरुष। यहां शीत और उष्ण शब्द मन्द और शीघ्र के पर्यायवाची हैं, ठण्डा और गर्म अर्थक नहीं हैं।

सिद्धि-शीतकः। *शीत+अम्+कन्। शीत+क। शीतक+सु। शीतकः।*

*यहां द्वितीया-समर्थ 'शीत' शब्द से कारी अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। 'शीत' शब्द के क्रिया-विशेषण होने से **'कर्मणि द्वितीया'** (२।३।२) से द्वितीया विभक्ति होती है। ऐसे ही-उष्णकः।*

कन् (निपातनम्)-

(२) अधिकम्।७३।

वि०-अधिकम् १।१।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अधिकं कन्।

अर्थः-अधिकम् इति पदं कन्-प्रत्ययान्तं निपात्यते। अध्यारूढशब्द-स्योत्तरपदलोपः कन् प्रत्ययश्चात्र निपातितो वेदितव्यः।

उदा०-अधिको द्रोणः खार्याम्। अधिका खारी द्रोणेन।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अधिकम्) अधिक यह पद (कन्) कन् प्रत्ययान्त निपातित है। यहां अध्यारूढ शब्द के उत्तरपद (आरूढ) का लोप और कन् प्रत्यय का निपातन समझें।*

उदा०-द्रोण परिमाण से खारी परिमाण अधिक है। द्रोण=१० सेर। खारी=१६० सेर (४ मण)।

सिद्धि-अधिकम्। *अधि-आरूढ+सु+कन्। अधि+०+क। अधिक+सु। अधिकम्।*

*यहां अधि-आरूढ शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय और उत्तरपद 'आरूढ' शब्द का लोप निपातित है। **'रुह बीजजन्मनि प्रादुर्भावे च'** (भ्वा०प०) धातु से **'गत्यर्थाकर्मक-श्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च'** (३।४।७२) से 'क्त' प्रत्यय कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में भी होता है। जब कर्तृवाच्य में 'क्त' प्रत्यय है। तब **'अधिको द्रोणः खार्याम्'** यह प्रयोग बनता है। यहां **'यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी'** (२।३।७) से अधिकवाची 'खारी' शब्द में सप्तमी-विभक्ति होती है और जब कर्मवाच्य में 'क्त' प्रत्यय होता है तब **'अधिका खारी द्रोणेन'** यह प्रयोग बनता है। यहां **'कर्तृकरणयोस्तृतीया'** (२।३।१८) से अनभिहितकर्ता द्रोण में तृतीया और अभिहित कर्म 'खारी' में प्रथमा-विभक्ति होती है।*

कन् (निपातनम्)–

(३) अनुकाभिकाभीकः कमिता।७४।

प०वि०-अनुक-अभिक-अभीकः १।१ कमिता १।१।

स०-अनुकश्च अभिकश्च अभीकश्च एतेषां समाहारः-अनुकाभिकाभीकः (समाहारद्वन्द्वः)। अत्र समाहारद्वन्द्वे **'व्यत्ययो बहुलम्'** (३।१।८५) इति लिङ्गव्यत्ययेन पुंस्त्वं वेदितव्यम्।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुकाभिकाभीकाः शब्दाः कमिता इत्यस्मिन्नर्थे कन्-प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-**(अनुकः)** अनुकामयते-अनुकः। **(अभिकः)** अभिकामयते-अभिकः। **(अभीकः)** अभिकामयते-अभीकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुकाभिकाभीकः) अनुक, अभिक, अभीक शब्द (कमिता) कामुक अर्थ में (कन्) कन्-प्रत्ययान्त निपातित हैं।*

उदा०-अनुकामना करनेवाला-अनुक। अभिकामना करनेवाला-अभिक अथवा अभीक (कामुक)।

सिद्धि-(१) अनुकः। अनु+सु+कन्। अनु+क। अनुक+सु। अनुकः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'अनु' शब्द से कमिता-अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय निपातित है। ऐसे ही 'अभि' शब्द से-अभिकः।

(२) अभीकः। यहां 'अभि' शब्द को दीर्घत्व भी निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अन्विच्छति-अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) पार्श्वेनान्विच्छति।७५।

प०वि०-पार्श्वेन ३।१ अन्विच्छति क्रियापदम्।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते। अत्र **'पार्श्वेन'** इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिगृह्यते।

अन्वयः-{तिन} पार्श्वाद् अन्विच्छति कन्।

अर्थः-{तिन} तृतीयासमर्थात् पार्श्वशब्दात् प्रातिपदिकाद् अन्विच्छतीत्यस्मिन्नर्थे कन् प्रत्ययो भवति। कुटिलोपायः=पार्श्वम्। पार्श्वेनान्विच्छति-पार्श्वकः। मायावीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तिन} तृतीया-समर्थ (पार्श्वेन) पार्श्व प्रातिपदिक से (अन्विच्छति) प्राप्त करना चाहता है, अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय है। यहां 'पार्श्व' शब्द का अर्थ कुटिल उपाय है।*

उदा०-पार्श्व=कुटिल उपाय से जो धन प्राप्त करना चाहता है वह-पार्श्वक, मायावी (छली)।

सिद्धि-पार्श्वकः। पार्श्व+टा+कन्। पार्श्व+क। पार्श्वक+सु। पार्श्वकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'पार्श्व' शब्द से अन्विच्छति अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

ठक्+ठञ्-

(२) अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां ठक्ठञौ।७६।

प०वि०-अयःशूल-दण्डाजिनाभ्याम् ३।२ ठक्-ठञौ १।२।

स०-अयःशूलं च दण्डाजिनं च ते अयःशूलदण्डाजिने, ताभ्याम्-अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। ठक् च ठञ् च तौ ठक्ठञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अन्विच्छति इत्यनुवर्तते। अत्र **'अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम्'** इति तृतीयानिर्देशात् तृतीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः-{तिन} अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम् अन्विच्छति ठक्ठञौ।

अर्थः-{तिन} तृतीयासमर्थाभ्याम् अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अन्विच्छतीत्यस्मिन्नर्थे यथासंख्यं ठक्ठञौ प्रत्ययौ भवतः। अयःशूलम्=तीक्ष्णोपायः। दण्डाजिनम्=दम्भः।

उदा०-(अयःशूलम्) अयःशूलेनान्विच्छति-आयःशूलिकः (ठक्)। साहसिक इत्यर्थः। **(दण्डाजिनम्)** दण्डाजिनेनान्विच्छति-दाण्डाजिनिक (ठञ्)। दाम्भिक इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तिन) तृतीया-समर्थ (अयःशूलदण्डाजिनाभ्याम्) अयःशूल, दण्डाजिन प्रातिपदिकों से (अन्विच्छति) प्राप्त करना चाहता है, अर्थ में (ठक्ठञौ) ठक् और ठञ् प्रत्यय होते हैं। यहां 'अयःशूल' शब्द का लाक्षणिक अर्थ कठोर उपाय तथा 'दण्डाजिन' शब्द का अर्थ दम्भ (ढोंग) है।*

उदा०-(अयःशूल) अयःशूल=कठोर उपाय से जो धन प्राप्त करना चाहता है वह-आयःशूलिक साहसिक (जबरदस्ती करनेवाला)। (दण्डाजिन) दण्डाजिन=दण्ड और अजिन=मृगचर्म धारण रूप तपस्वी वेष से जो धन प्राप्त करना चाहता है वह-दाण्डाजिनिक (ठञ्) दाम्भिक (ढौंगी)।

सिद्धि-(१) आयःशूलिकः। अयःशूल+टा+ठक्। आयःशूल+इक। आयःशूलिक+सु। आयःशूलिकः।

यहां तृतीया-समर्थ 'अयःशूल' शब्द से अन्विच्छति-अर्थ में इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, 'किति च' (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

(२) दाण्डाजिनिकः। यहां 'दण्डाजिन' शब्द से पूर्ववत् 'ठञ्' प्रत्यय है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।९४) आद्युदात्त स्वर होता है-दाण्डाजिनिकः।

स्वार्थिकप्रत्ययविधिः

कन् (पूरणप्रत्ययस्य वा लुक्)-

(१) तावतिथं ग्रहणमिति लुग् वा।७७।

प०वि०-तावतिथम् २।१ ग्रहणम् १।१ इति अव्ययपदम्, लुक् १।१ वा अव्ययपदम्।

तद्धितवृत्तिः-तावतां पूरणस्तावतिथः, तम्-तावतिथम्। अत्र **'वतोरिथुक्'** (५।२।५३) इति पूरणार्थे डटि परत इथुगागमः। अत्र **'तावतिथम्'** इति द्वितीयानिर्देशाद् द्वितीयासमर्थविभक्तिर्गृह्यते।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-{तम्} तावतिथात् स्वार्थे कन्, लुग् वा, ग्रहणमिति।

अर्थः-{तम्} द्वितीयासमर्थात् तावतिथात्=पूरणप्रत्ययन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति, पूरणप्रत्ययस्य च विकल्पेन लुग्

भवति, यद् द्वितीयासमर्थं ग्रहणं चेत् तद् भवति, इतिकरणो विवक्षार्थस्तेन ग्रन्थविषयकं ग्रहणमिष्यते।

उदा०-द्वितीयेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति-द्विकं ग्रहणम् (लुक्)। द्वितीयकं ग्रहणम् (लुङ् न)। तृतीयेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति-त्रिकं ग्रहणम् (लुक्)। तृतीयकं ग्रहणम् (लुङ् न)। चतुर्थेन रूपेण ग्रन्थं गृह्णाति-चतुष्कं ग्रहणम् (लुक्)। चतुर्थकं ग्रहणम् (लुङ् न)।

आर्यभाषाः *अर्थ-{तम्} द्वितीया-समर्थ (तावतिथम्) पूरण प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है और (लुक्, वा) उस पूरणार्थक प्रत्यय का विकल्प से लोप होता है (ग्रहणम्) जो द्वितीया-समर्थ है यदि वह ग्रहण करना हो, (इति) इतिकरण विवक्षा के लिये है अतः यहां ग्रन्थ-विषयक ग्रहण करना ही अभीष्ट है।*

उदा०-जो द्वितीय रूप से अर्थात् दूसरी बाद सुनकर ग्रन्थ को ग्रहण करता है (समझता) है वह-द्विक ग्रहण (लुक्)। द्वितीयक ग्रहण (लुक् नहीं)। जो तृतीय रूप से अर्थात् तीसरी बार सुनकर ग्रन्थ को ग्रहण करता है वह-त्रिक ग्रहण (लुक्)। तृतीयक ग्रहण (लुक् नहीं)। जो चतुर्थ रूप से अर्थात् चौथी बार सुनकर ग्रन्थ को ग्रहण करता है वह-चतुष्क ग्रहण (लुक्)। चतुर्थक ग्रहण (लुक् नहीं)।

सिद्धि-(१) ***द्विकम्।*** *द्वितीय+अम्+कन्। द्वि+क। द्विक+सु। द्विकम्।*

*यहां द्वितीया-समर्थ, ग्रहणवाची 'द्वितीय' शब्द से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय और पूरणार्थक 'तीय' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही 'तृतीय' शब्द से-***त्रिकम्।***

(२) ***द्वितीयकम्।*** *यहां 'द्वितीय' शब्द से पूर्ववत् 'कन्' प्रत्यय और विकल्प पक्ष में पूरणार्थक 'तीय' प्रत्यय का लुक् नहीं होता है। ऐसे ही 'तृतीय' शब्द से-***तृतीयकम्।***

(३) ***चतुष्कम्।*** *चतुर्थ+अम्+कन्। चतुर्०+क। चतुः+क। चतुस्+क। चतुष्+क। चतुष्क+सु। चतुष्कम्।*

यहां द्वितीया-समर्थ, ग्रहणवाची 'चतुर्थ' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय और पूरण प्रत्यय डट् का सथुक् लुक् होता है। ***'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'*** *(८।३।१५) से 'चतुर्' के रेफ को विसर्जनीय,* ***'विसर्जनीयस्य सः'*** *(८।३।३४) से विसर्जनीय को सकार आदेश और* ***'इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य'*** *(८।३।४१) से षत्व होता है।*

(४) ***चतुर्थकम्।*** *यहां 'चतुर्थ' शब्द 'कन्' प्रत्यय और विकल्प पक्ष में पूरण प्रत्यय 'डट्' का लुक् नहीं होता है।*

विशेषः *'तावतिथ' शब्द में 'वतोरिथुक्' (५।२।५३) से डट् प्रत्यय और वत्वन्त प्रातिपदिक को इथुक् आगम होता है। 'डट्' पूरणार्थक प्रत्यय है अतः यहां 'तावतिथ' शब्द से पूरण-प्रत्ययान्त शब्दों का ग्रहण किया जाता है।*

एषाम् (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) स एषां ग्रामणीः ।७८।

प०वि०–सः १।१ एषाम् ६।३ ग्रामणीः १।१।

अनु०–कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–स प्रातिपदिकाद् एषां कन् ग्रामणीः।

अर्थः–स इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् एषामिति षष्ठ्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं ग्रामणीश्चेत् स भवति। ग्रामम्=समूहं नयतीति ग्रामणीः प्रधानो मुख्य इत्यर्थः।

उदा०–देवदत्तो ग्रामणीरेषाम्–देवदत्तकाः। यज्ञदत्तो ग्रामणीरेषाम्–यज्ञदत्तकाः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(सः) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (एषाम्) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (ग्रामणीः) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह ग्रामणी=ग्राम (समूह) का नेता हो। ग्रामणी=प्रधान, मुख्य।*

उदा०–देवदत्त है ग्रामणी इनका ये–देवदत्तक। यज्ञदत्त है ग्रामणी इनका ये–यज्ञदत्तक।

*सिद्धि–**देवदत्तकाः**। देवदत्त+सु+कन्। देवदत्त+क। देवदत्तक+जस्। देवदत्तकाः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, ग्रामणी-वाची देवदत्त' शब्द से एषाम् (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही–**यज्ञदत्तकाः**।*

अस्य (षष्ठी) अर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) शृङ्खलमस्य बन्धनं करभे ।७९।

प०वि०–शृङ्खलम् १।१ अस्य ६।१ बन्धनम् १।१ करभे ७।१।

अनु०–कन्, स इति चानुवर्तते।

अन्वयः–स शृङ्खलाद् अस्य कन्, बन्धनं करभे।

अर्थः-स इति प्रथमासमर्थात् शृङ्खलशब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थं बन्धनं चेत्, यच्चास्येति षष्ठीनिर्दिष्टं करभश्चेत् स भवति। उष्ट्राणां बालकाः करभा भवन्ति, तेषां पादे यत् काष्ठमयं पाशकं बध्यते तत् **'शृङ्खलम्'** इति कथ्यते।

उदा०-शृङ्खलं बन्धनमस्य करभस्य-शृङ्खलकः करभः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सः) प्रथमा-समर्थ (शृङ्खलम्) शृङ्खल प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (बन्धनम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह बन्धन हो (करभे) और जो अस्य=षष्ठी-अर्थ है यदि वह करभ=ऊंट का बच्चा हो। ऊंट के बच्चे 'करभ' कहाते हैं और उनके पांव में डाला जानेवाला पाश (बन्धन) 'शृङ्खल' कहाता है।*

उदा०-शृङ्खल बन्धन है इस करभ का यह-शृङ्खलक करभ। करभ=वह ऊंट का बच्चा (टोरड़ा) जिसे पराधीन करने के लिये पांव में बन्धन लगाना आवश्यक है।

सिद्धि-शृङ्खलकः। *शृङ्खल+सु+कन्। शृङ्खल+क। शृङ्खलक+सु। शृङ्खलकः।*

यहां प्रथमा-समर्थ, बन्धनवाची 'शृङ्खल' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में तथा करभ-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

कन् (निपातनम्)-

(१) उत्क उन्मनाः।८०।

प०वि०-उत्कः १।१ उन्मनाः १।१।

स०-उद्गत मनो यस्य स उन्मनाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-उत्कः कन् उन्मनाः।

अर्थः-उत्क इति पदं कन्-प्रत्ययान्तं निपात्यते, उन्मनाश्चेत् स भवति।

उदा०-उत्को देवदत्तः। उत्कः प्रवासी। उन्मनाः (उत्सुकः) इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उत्कः) उत्क पद (कन्) कन्-प्रत्ययान्त निपातित है (उन्मनाः) यदि उसका अर्थ 'उन्मना' (उत्सुक) हो।*

उदा०-उत्क देवदत्त। उत्क प्रवासी। उन्मना=उखड़े मनवाला।

सिद्धि-उत्कः। *उत्+सु+कन्। उत्+क। उत्क+सु। उत्कः।*

यहां साधन और क्रियावाची 'उत्' शब्द से उन्मना अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। यहां 'उत्' शब्द से सम्बद्ध 'मन' शब्द साधनवाची और 'गत' शब्द क्रियावाची है।

भवजनितार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) कालप्रयोजनाद् रोगे।८१।

प०वि०–काल-प्रयोजनात् ५।१ रोगे ७।१।

स०–कालश्च प्रयोजनं च एतयोः समाहारः कालप्रयोजनम्, तस्मात्–कालप्रयोजनात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–कन् इत्यनुवर्तते। अत्रार्थलभ्या सप्तमी तृतीया च समर्थ-विभक्तिर्गृह्यते।

अन्वयः–सप्तमीतृतीयासमर्थाभ्यां कालप्रयोजनाभ्यां भवे जनिते च कन् रोगे।

अर्थः–सप्तमीसमर्थात् तृतीयासमर्थाच्च यथासंख्यं कालवाचिनः प्रयोजनवाचिनश्च प्रातिपदिकाद् यथासंख्यं भवे जनिते चार्थे कन् प्रत्ययो भवति, रोगेऽभिधेये। कालः=दिवसादिः। प्रयोजनम्=कारणं रोगस्य फलं च।

उदा०–**(कालः)** द्वितीयेऽहनि भवः–द्वितीयको ज्वरः। चतुर्थेऽहनि भवः–चतुर्थको ज्वरः। **(प्रयोजनम्)** विषपुष्पैर्जनितः–विषपुष्पको ज्वरः। काशपुष्पैर्जनितः–काशपुष्पको ज्वरः। उष्णं कार्यमस्य–उष्णको ज्वरः। शीतं कार्यमस्य–शीतको ज्वरः।

आर्यभाषाः *अर्थ–{सप्तमी-विभक्ति और तृतीया-विभक्ति समर्थ} (काल-प्रयोजनात्) यथासंख्य कालवाची और प्रयोजनवाची प्रातिपदिक से यथासंख्य {भव और जनित} अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है (रोगे) यदि वहां रोग अर्थ अभिधेय हो। प्रयोजन=कारण और रोग का फल।*

*उदा०–**(काल)** द्वितीय दिन होनेवाला–द्वितीयक ज्वर। चतुर्थ दिन होनेवाला–चतुर्थक ज्वर। **(प्रयोजन)** विषपुष्पों से जनित–विषपुष्पक ज्वर। काशपुष्पों (कांस के फूल) से उत्पन्न–काशपुष्पक ज्वर। उष्ण है कार्य इसका–उष्णक ज्वर। गर्मी का बुखार। शीत है कार्य इसका–शीतक ज्वर। जाड़े का बुखार।*

सिद्धि-(१) द्वितीयक:। द्वितीय+ङि+कन्। द्वितीय+क। द्वितीयक+सु। द्वितीयक:।

यहां सप्तमी-समर्थ, कालवाची 'द्वितीय' शब्द से भव-अर्थ में तथा रोग अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-चतुर्थक:।

(२) विषपुष्पक:। यहां तृतीया-समर्थ, प्रयोजन (कारण) वाची 'विषपुष्प' शब्द से जनित-अर्थ में तथा रोग अर्थ अभिधेय में 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-काशपुष्पक: आदि।

अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययविधि:

कन्–

(१) तदस्मिनन्नं प्राये संज्ञायाम्।८२।

प०वि०-तत् १।१ अस्मिन् ७।१ अन्नम् १।१ प्राये ७।१। संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-तद् प्रातिपदिकाद् अस्मिन् कन् अन्नं प्राये संज्ञायाम्।

अर्थ:-तद् इति प्रथमासमर्थाद् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्निति सप्तम्यर्थे कन् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमन्नं चेत् प्रायविषयं भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्। प्राय:=बाहुल्यम्।

उदा०-गुडापूपा: प्रायेणान्नमस्याम्-गुडापूपिका पौर्णमासी। तिलापूपा: प्रायेणान्नमस्याम्-तिलापूपिका पौर्णमासी।

आर्यभाषा: *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है, (अन्नं प्राये) जो प्रथमा-समर्थ है वह यदि प्रायविषयक अन्न हो और (संज्ञायाम्) वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-गुडापूप (गुड़ के पूड़े) इसमें प्रायश: (अधिकश:) बनते हैं यह-गुडापूपिका पौर्णमासी। श्रावण मास की पूर्णिमा। तिलापूप=तिल के पूड़े इसमें प्रायश: बनते हैं यह-तिलापूपिका पौर्णमासी। पौष मास की पूर्णिमा।

सिद्धि-गुडापूपिका। गुडापूप+जस्+कन्। गुडापूप+क। गुडापूपक+टाप्। गुडापूपिका+सु। गुडापूपिका।

यहां प्रथमा-समर्थ, अन्नप्रायविषयक 'गुडापूप' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से कन् प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से टाप् प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात्०' (७।३।४४) से इत्त्व होता है। ऐसे ही-तिलापूपिका।

अञ्–

(२) कुल्माषादञ् ।८३।

प०वि०-कुल्माषात् ५ ।१ अञ् १ ।१।

अनु०-तत्, अस्मिन्, अन्नम्, प्राये, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कुल्माषाद् अस्मिन् अञ् अन्नं प्राये संज्ञायाम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् कुल्माषशब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्मिन्नितिसप्तम्यर्थेऽञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थम् अन्नं चेत् प्रायविषयं भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-कुल्माषाः प्रायेणान्नमस्याम्-कौल्माषी पौर्णमासी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (कुल्माषात्) कुल्माष प्रातिपदिक से (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है (अन्नं प्राये) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह प्रायविषयक अन्न हो और (संज्ञायाम्) वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-कुल्माष=चणे आदि के होळे प्रायशः इसमें बनते हैं यह-कौल्माषी पौर्णमासी। फाल्गुन मास की पूर्णिमा।

*सिद्धि-**कौल्माषी**। कुल्माष+जस्+अञ्। कौल्माष्+अ। कौल्माष+ङीप्। कौल्माषी+सु। कौल्माषी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ प्रायविषयक 'कुल्माष' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा संज्ञा अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'अञ्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७ ।२ ।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६ ।४ ।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४ ।१ ।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।*

छन्दोऽधीतेऽर्थे निपातनम्

(१) श्रोत्रियँश्छन्दोऽधीते ।८४।

प०वि०-श्रोत्रियन् १ ।१ छन्दः २ ।१ अधीते क्रियापदम्।

अर्थः-(१) छन्दोऽधीते इत्यस्य वाक्यस्यार्थे **'श्रोत्रियन्'** इत्येतद् निपात्यते। (२) छन्दसो वा श्रोत्रभावो निपात्यते, तदधीते इत्यस्मिन्नर्थे, घँश्च प्रत्ययः।

उदा०-छन्दोऽधीते इति श्रोत्रियो ब्राह्मणः।

आर्यभाषाः *अर्थ-{१}-(छन्दः) वेद को (अधीते) पढ़ता है इस वाक्य के अर्थ में (श्रोत्रियन्) 'श्रोत्रियन्' यह शब्द निपातित है। {२}-अथवा 'छन्दः' शब्द के स्थान में श्रोत्र-आदेश, (अधीते) उस छन्द को पढ़ता है इस अर्थ में (घन्) घन् प्रत्यय निपातित है।*

उदा०-जो छन्द को पढ़ता है वह-श्रोत्रिय ब्राह्मण।

सिद्धि-श्रोत्रियः। छन्दस्+अम्+घन्। श्रोत्र्+इय। श्रोत्रिय+सु। श्रोत्रियः।

यहां द्वितीया-समर्थ 'छन्दस्' शब्द से अधीते=पढ़ता है अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय निपातित है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'श्रोत्रियन्' शब्द में नकार अनुबन्ध 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९७) से आद्युदात्त स्वर के लिये है-श्रोत्रि॑य॒ः।

अनेन (तृतीया) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

इनिः+ठन्–

(१) श्राद्धमनेन भुक्तमिनिठनौ।८५।

प०वि०-श्राद्धम् १।१ अनेन ३।१ भुक्तम् १।१ इनिठनौ १।२।

स०-इनिश्च ठन् च तौ-इनिठनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् श्राद्धाद् अनेन इनिठनौ भुक्तम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् श्राद्धशब्दात् प्रातिपदिकाद् अनेन इति तृतीयार्थे इनिठनौ प्रत्ययौ भवतः, यत् प्रथमासमर्थं भुक्तं चेत् तद् भवति। श्राद्धशब्दः कर्मनामधेयम्, तस्मात्-तत्साधनाद् द्रव्ये वर्तमानात् प्रत्ययो विधीयते।

उदा०-श्राद्धं भुक्तमनेन-श्राद्धी (इनिः)। श्राद्धिकः (ठन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (श्राद्ध) श्राद्ध प्रातिपदिक से (अनेन) तृतीया-विभक्ति के अर्थ में (इनिठनौ) इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं (भुक्तम्) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह भुक्त=खाना-पीना हो। श्राद्ध शब्द जीवित माता की श्रद्धापूर्वक सेवा-कर्म का वाचक है। अतः सेवा के साधन द्रव्यविशेष अर्थ में विद्यमान 'श्राद्ध' शब्द से प्रत्यय-विधान किया जाता है।*

उदा०-श्राद्ध को इसने भुक्त=सेवन कर लिया है **यह-श्राद्धी** (इनि)। **श्राद्धिक** (ठन्)।

सिद्धि-(१) **श्राद्धी।** श्राद्ध+सु+इनि। श्राद्ध्+इन्। श्राद्धिन्+सु। श्राद्धीन्+सु। श्राद्धीन्+०। श्राद्धी।

यहां प्रथमा-समर्थ, भुक्तवाची 'श्राद्ध' शब्द से अनेन (तृतीया) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'सौ च'** (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो० दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।

(२) **श्राद्धिकः।** यहां 'श्राद्ध' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और अंग के अकार का लोप होता है।

विशेषः (१) 'पितृयज्ञ' अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने-पढ़ानेहारे, पितर माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परमयोगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद **हैं**-एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम **है। 'श्रत्=सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्'** जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाये उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया जाये उसका नाम श्राद्ध है (सत्यार्थप्रकाश समु० ३)।

(२) श्राद्ध अर्थात् श्रद्धापूर्वक किये गये यज्ञ आदि शुभकर्मों में जो देव, ऋषि, पितर और परमयोगी लोग भोजन करते हैं वे श्राद्धी अथवा श्राद्धिक कहाते हैं।

इनिः–

(२) पूर्वादिनिः।८६।

प०वि०-पूर्वात् ५।१ इनिः १।१।

अनु०-तत्, अनेन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पूर्वाद् अनेन इनिः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् पूर्वशब्दात् प्रातिपदिकाद् अनेन इति तृतीयार्थे इनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-पूर्वं भुक्तमनेन-पूर्वी। पूर्वं पीतमनेन-पूर्वी।। पूर्वी। पूर्विणौ। पूर्विणः।

आर्यभाषाः अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पूर्वात्) पूर्व प्रातिपदिक से (अनेन) तृतीया-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है।

उदा०-पूर्व=पहले खा लिया है इसने **यह-पूर्वी।** पूर्व=पहले पी लिया है इसने **यह पूर्वी।** पूर्वी। **पूर्विणौ।** पूर्विणः।

सिद्धि-पूर्वी। पूर्व+सु+इनि। पूर्व्+इन्। पूर्विन्+सु। पूर्वीन्+सु। पूर्वीन्+०। पूर्वी।

यहां प्रथमा-समर्थ 'पूर्व' शब्द से अनेन (तृतीया) अर्थ में इस सूत्र से इनि प्रत्यय है। शेष कार्य 'श्राद्धी' (५।२।८५) के समान है।

इनिः-

(३) सपूर्वाच्च।८७।

प०वि०-सपूर्वात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-विद्यमानं पूर्वं यस्मादिति-सपूर्वम्, तस्मात्-सपूर्वात् (अस्वपदबहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अनेन, पूर्वात्, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सपूर्वात् पूर्वाच्च अनेन इनिः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् सपूर्वात् पूर्वात् प्रातिपदिकाच्चाऽनेन इति तृतीयार्थे इनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-कृतं पूर्वमनेन-कृतपूर्वी कटम्। भुक्तं पूर्वमनेन-भुक्तपूर्वी ओदनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सपूर्वात्) विद्यमान पूर्ववाले (पूर्वात्) पूर्व प्रातिपदिक से (च) भी (अनेन) तृतीया-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है।*

उदा०-बनाया है कट पूर्व (पहले) इसने यह-कृतपूर्वी। खाया है ओदन पूर्व इसने यह-भुक्तपूर्वी।

सिद्धि-कृतपूर्वी। कृतपूर्व+सु+इनि। कृतपूर्व्+इन्। कृतपूर्विन्+सु। कृतपूर्वीन्+०। कृतपूर्वी।

यहां प्रथमा-समर्थ, विद्यमान-पूर्ववाले 'पूर्व' शब्द से अनेन (तृतीया) अर्थ में इस सूत्र से इनि प्रत्यय है। 'कृतपूर्व' शब्द में 'सुप् सुपा' से केवल-समास है। ऐसे ही-भुक्तपूर्वी।

इनिः-

(४) इष्टादिभ्यश्च।८८।

प०वि०-इष्ट-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-इष्ट आदिर्येषां ते इष्टादयः, तेभ्यः-इष्टादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अनेन, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् इष्टादिभ्योऽनेन इनिः।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्य इष्टादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽनेनेति तृतीयार्थे इनिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-इष्टमनेन-इष्टी यज्ञे। पूर्तमनेन-पूर्ती श्राद्धे, इत्यादिकम्।

वा०-'सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्' (२।३।३६) इति कर्मणि सप्तमीविभक्तिर्भवति।

इष्ट। पूर्त। उपसादित। निगदित। परिवादित। निकथित। परिकथित। सङ्कलित। निपठित। सङ्कल्पित। अनर्चित। विकलित। संरक्षित। निपतित। पठित। परिकलित। अर्चित। परिरक्षित। पूजित। परिगणित। उपगणित। अवकीर्ण। परिणत। उपकृत। उपाकृत। आयुक्त। आम्नात। श्रुत। अधीत। आसेवित। अपवारित। अवकल्पित। निराकृत। अनुयुक्त। उपनत। अनुगुणित। अनुपठित। व्याकुलित। निगृहीत। इति इष्टादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (इष्टादिभ्यः) इष्टादि प्रातिपदिकों से (अनेन) तृतीया-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है।*

उदा०-इसने यज्ञ किया है यह-इष्टी। ***इष्टी यज्ञे।*** *जो यज्ञ को कर चुका है। इसने पूरा किया है यह-पूर्ती।* ***पूर्ती श्राद्धे।*** *जो श्राद्ध को पूरा कर चुका है। यहां वा०-'सप्तमीविधाने क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्' (२।३।३६) से कर्म में सप्तमी-विभक्ति होती है-***इष्टी यज्ञे*** *इत्यादि।*

सिद्धि-इष्टी। *इष्ट+सु+इनि। इष्ट्+इन्। इष्टिन्+सु। इष्टीन्+सु। इष्टीन्+०। इष्टी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'इष्ट' शब्द से अनेन (तृतीया) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य ***'श्राद्धी'*** *(५।२।८५) के समान है। ऐसे ही-***पूर्ती*** *आदि।*

इनिः (निपातनम्)–

(५) छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणौ पर्यवस्थातरि।८६।

प०वि०- छन्दसि ७।१ परिपन्थि-परिपरिणौ १।२ पर्यवस्थातरि ७।१।

स०-परिपन्थी च परिपरी च तौ-परिपन्थिपरिपरिणौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-इनिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि परिपन्थिपरिपरिणाविनिः, पर्यवस्थातरि।

अर्थः-छन्दसि विषये परिपन्थिपरिपरिणौ शब्दाविनिप्रत्ययान्तौ निपात्येते, पर्यवस्थातरि वाच्ये। पर्यवस्थाता=प्रतिपक्षः सपत्नः कथ्यते।

उदा०-मा त्वा परिपन्थिनो विदन्, मा त्वा परिपरिणो विदन् (मा०सं० ४।३४)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (परिपन्थिपरिपरिणौ) परिपन्थी, परिपरी शब्द (इनिः) इनि-प्रत्ययान्त निपातित हैं (पर्यवस्थातरि) यदि वहां पर्यवस्थाता=प्रतिपक्षी (शत्रु) अर्थ वाच्य हो।*

*उदा०-**मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा परिपरिणो विदन्** (मा०सं० ४।३४)। तुझे परिपन्थी=शत्रुओं ने नहीं जाना। तुझे परिपरी=शत्रुओं ने नहीं जाना।*

*सिद्धि-(१) **परिपन्थी।** परि-अवस्थातृ+सु+इनि। परि-पन्थ+इन्। परिपन्थिन्+सु। परिपन्थीन्+सु। परिपन्थीन्+०। परिपन्थी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'परि-अवस्थातृ' शब्द से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय और उसके 'अवस्थातृ' अवयव के स्थान में पन्थ-आदेश निपातित है। शेष कार्य **श्राद्धी**' (५।२।८५) के समान है।*

*(२) **परिपरी।** परि-अवस्थातृ+सु+इनि। परि+परि+इन्। परिपर्+इन्। परिपरिन्+सु। परिपरीन्+सु। परिपरीन्+०। परिपरी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'परि-अवस्थातृ' शब्द से इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय और उसके 'अवस्थातृ' अवयव के स्थान में 'परि' आदेश निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

इनिः (निपातनम्)-

(६) अनुपद्यन्वेष्टा।६०।

प०वि०-अनुपदी १।१ अन्वेष्टा १।१।

अनु०-इनिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनुपदी इनिरन्वेष्टा।

अर्थः-अनुपदीति पदम् इनि-प्रत्ययान्तं निपात्यतेऽन्वेष्टा चेत् स भवति।

उदा०-अनुपदी गवाम्। अनुपदी उष्ट्राणाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुपदी) अनुपदी शब्द (इनिः) इनि-प्रत्ययान्त निपातित है (अन्वेष्टा) यदि वहां अन्वेष्टा=ढूंढनेवाला अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-अनुपदी गवाम्। गौओं के पदचिह्नों पर चलनेवाला अर्थात् उन्हें ढूंढनेवाला। **अनुपदी उष्ट्राणाम्।** ऊंटों के पदचिह्नों पर चलनेवाला अर्थात् उन्हें ढूंढनेवाला।*

सिद्धि-अनुपदी। *अनुपद+सु+इनि। अनुपद्+इन्। अनुपदिन्+सु। अनुपदीन्+सु। अनुपदीन्+०। अनुपदी।*

*यहां 'अनुपद' शब्द में **'पदस्य पश्चात्-अनुपदम्' 'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से पश्चात् अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'अनुपद' शब्द से अन्वेष्टा अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य **'श्राद्धी'** (५।२।८५) के समान है।*

इनिः-

(७) साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्।९१।

प०वि०-साक्षात् अव्ययपदम् (पञ्चम्यर्थे) द्रष्टरि ७।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-तत्, इनिरित्यनुवर्तते।

अन्वयः-तत् साक्षाद् द्रष्टरि इनिः संज्ञायाम्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् साक्षात्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् द्रष्टरि इत्यस्मिन्नर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, संज्ञायामभिधेयायाम्।

उदा०-साक्षाद् द्रष्टा-साक्षी। साक्षी। साक्षिणौ। साक्षिणः। अत्र संज्ञावचनाद् धनस्य दाता (उत्तमर्णः) ग्रहीता (अधमर्णः) च साक्षी न कथ्यतेऽपितु उपद्रष्टैव साक्षीत्युच्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (साक्षात्) साक्षात् प्रातिपदिक से (द्रष्टरि) द्रष्टा अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-साक्षात्=प्रत्यक्ष द्रष्टा=देखनेवाला-साक्षी। यहां संज्ञा-वचन से धन का दाता=साहूकार तथा ग्रहीता=कर्जदार के द्रष्टा होने पर भी उन्हें 'साक्षी' नहीं कहते अपितु जो उपद्रष्टा=उनके समीप प्रत्यक्षदर्शी पुरुष है, वही 'साक्षी' कहाता है।

सिद्धि-साक्षी। *साक्षात्+सु+इनि। साक्ष्०+इन्। साक्षिन्+सु। साक्षीन्+सु। साक्षीन्+०। साक्षी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'साक्षात्' शब्द से द्रष्टा अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। वा०-'अव्ययानां च सायंप्रातिकाद्यर्थमुपसंख्यानम्' (६।४।१४४) से 'साक्षात्' अव्यय के टि-भाग (आत्) का लोप होता है। शेष कार्य 'श्राद्धी' (५।२।८५) के समान है।

निपातनम्–

(१) क्षेत्रियच् परक्षेत्रे चिकित्स्यः।६२।

प०वि०-क्षेत्रियच् १।१ परक्षेत्रे ७।१ चिकित्स्यः १।१।

अर्थः-{१}-परक्षेत्रे चिकित्स्य इत्येतस्य वाक्यस्यार्थे 'क्षेत्रियच्' इत्येतद् निपात्यते। {२}-परक्षेत्राद् वा तत्र चिकित्स्य इत्येतस्मिन्नर्थे परलोपो घँश्चप्रत्ययो निपात्यते।

उदा०-परक्षेत्रे चिकित्स्यः-क्षत्रियो व्याधिः। क्षेत्रियं कुष्ठम्। परक्षेत्रम्=जन्मान्तरशरीरम्, तत्र चिकित्स्यः क्षेत्रियोऽसाध्यो रोग इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-{१}-(परक्षेत्रे) जन्मान्तर के शरीर में (चिकित्स्यः) चिकित्सा के योग्य, इस वाक्य के अर्थ में (क्षेत्रियच्) क्षत्रिय शब्द निपातित है। {२}-अथवा परक्षेत्र शब्द से (चिकित्स्यः) वहां चिकित्सा के योग्य, इस अर्थ में (घन्) घन् प्रत्यय और 'पर' शब्द का लोप निपातित है।*

उदा०-परक्षेत्र=जन्मान्तरीय शरीर में चिकित्सा के योग्य-क्षत्रिय व्याधि। क्षेत्रिय कुष्ठ रोग। क्षेत्रिय=असाध्य रोग।

सिद्धि-क्षेत्रियः। *परक्षेत्र+ङि+घन्। क्षेत्र्+इय। क्षेत्रिय+सु। क्षेत्रियः।*

यहां सप्तमी-समर्थ 'परक्षेत्र' शब्द से चिकित्स्य अर्थ में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय और उसके अवयव 'पर' शब्द का लोप निपातित है।

"परक्षेत्रे-जन्मान्तरशरीरे चिकित्स्यो व्याधिरसाध्यत्वात् क्षेत्रियः। तथा परक्षेत्रे-धान्यार्थे क्षेत्रे यानि तृणानि जातानि विनाश्यानि-तानि क्षेत्रियाणि। तथा-परदारेषु निग्राह्यः क्षेत्रियः। तथा-परशरीरेषु संक्रमय्य यद् विषं चिकित्स्यते तत् क्षेत्रियम्" इति महाभाष्यप्रदीपटीकायां कैयटः।

निपातनम्–

(१) इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा।६३।

प०वि०-इन्द्रियम् १।१ इन्द्रलिङ्गम् १। इन्द्रदृष्टम् १।१ इन्द्रसृष्टम् १।१ इन्द्रजुष्टम् १।१ इन्द्रदत्तम् १।१ इति अव्ययपदम्, वा अव्ययपदम्।

स०-इन्द्रस्य लिङ्गम्-इन्द्रलिङ्गम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। इन्द्रेण दृष्टम्-इन्द्रदृष्टम् (तृतीयातत्पुरुषः)। इन्द्रेण सृष्टम्-इन्द्रसृष्टम् (तृतीयातत्पुरुषः)। इन्द्रेण जुष्टम्-इन्द्रजुष्टम् (तृतीयातत्पुरुषः)। इन्द्रेण दत्तम्-इन्द्रदत्तम् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अर्थः-इन्द्रियमिति पदम् इन्द्रलिङ्गादिष्वर्थेषु विकल्पेन निपात्यते।

उदा०-इन्द्रस्य लिङ्गम्-इन्द्रियम्। इन्द्र आत्मा स चक्षुरादिना लिङ्गेन (करणेन) अनुमीयते, न हि अकर्तृकं करणं भवति। **इन्द्रेण दृष्टम्-इन्द्रियम्।** आत्मना दृष्टमित्यर्थः। **इन्द्रेण सृष्टम्-इन्द्रियम्।** आत्मना सृष्टम्, तत्कृतेन शुभाशुभकर्मणा समुत्पन्नमित्यर्थः। **इन्द्रेण जुष्टम्-इन्द्रियम्।** आत्मना जुष्टम्=सेवितम्, तद्द्वारा विज्ञानोत्पत्तिभावात्। **इन्द्रेण दत्तम्-इन्द्रियम्।** आत्मना यथायथं ग्रहणाय विषयेभ्यो दत्तमित्यर्थः। अथवा-इन्द्रेण=ईश्वरेणात्मने दत्तम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इन्द्रियम्) इन्द्रिय (इति) यह पद (इन्द्रलिङ्गम्०) इन्द्रलिङ्ग, इन्द्रदृष्ट, इन्द्रसृष्ट, इन्द्रजुष्ट, इन्द्रदत्त इन अर्थों में (वा) विकल्प* ***से*** *निपातित है।*

*उदा०-**इन्द्र का लिङ्ग-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा और उसका जो लिङ्ग (चिह्न) है वह इन्द्रिय कहाता है। लिङ्गदर्शन से लिङ्गी का अनुमान किया जाता है। इन्द्र कर्ता है और चक्षु आदि इन्द्रियां उसका करण हैं। कर्ता के विना करण सम्भव नहीं है। **इन्द्र के द्वारा दृष्ट-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा के द्वारा दृष्ट होने से चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं। **इन्द्र के द्वारा सृष्ट-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा के द्वारा किये गये शुभ-अशुभ कर्मों के कारण उत्पन्न होने से चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं। **इन्द्र के द्वारा जुष्ट-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा के द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति के लिये इनका सेवन किया जाता है इसलिये चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं। **इन्द्र के द्वारा दत्त-इन्द्रिय।** इन्द्र अर्थात् आत्मा के द्वारा ये वस्तु को यथायथ ग्रहण करने के लिये विषयों को प्रदान की गई हैं अतः चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं। अथवा इन्द्र=ईश्वर ने आत्मा के उपयोग के लिये इन्हें प्रदान किया है इसलिये चक्षु आदि इन्द्रिय कहाती हैं।*

'इन्द्रिय' शब्द चक्षु आदि करणों के लिये रूढ है। इसकी व्युत्पत्ति के अनेक प्रकार यहां दर्शाये गये हैं, अतः इस प्रकार से अन्य व्युत्पत्ति भी संभव है। सूत्र में 'वा' पद का ग्रहण 'इन्द्रलिङ्ग' आदि विकल्प अर्थों का द्योतक है।

सिद्धि-इन्द्रियम्। *इन्द्र+ङस्/टा+घच्। इन्द्+इय। इन्द्रिय+सु। इन्द्रियम्।*

*षष्ठी-समर्थ तथा तृतीया-समर्थ 'इन्द्र' शब्द से इन्द्रलिङ्ग आदि अर्थों में इस सूत्र से 'घच्' प्रत्यय निपातित है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'घच्' प्रत्यय के चित् होने से **'चितः'** (६।१।१६३) से अन्तोदात्त स्वर होता है-**इन्द्रियम्।***

अस्य (षष्ठी) अस्मिन् (सप्तमी) अर्थप्रत्ययप्रकरणम्

मतुप्–

(१) तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्।९४।

प०वि०-तत् १।१ अस्य ६।१ अस्ति क्रियापदम्, अस्मिन् ७।१ इति अव्ययपदम्, मतुप् १।१।

अन्वयः-तत् प्रातिपदिकाद् अस्य, अस्मिन् इति मतुप्।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति। इतिकरणो विवक्षार्थः।

उदा०-गावोऽस्य सन्ति-गोमान् देवदत्तः। वृक्षा अस्मिन् सन्ति-वृक्षवान् पर्वतः। यवमान्। प्लक्षवान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो। इतिकरण विवक्षा के लिये है।*

उदा०-गौवें इसकी हैं यह-गोमान् देवदत्त। वृक्ष इस पर हैं यह-वृक्षवान् पर्वत। यव=जौ इसमें हैं यह-यवमान्। प्लक्ष=पिलखण इसमें हैं यह-प्लक्षवान्।

सिद्धि-(१) गोमान्। *गो+जस्+मतुप्। गो+मत्। गोमत्+सु। गोमनुम्त्+सु। गोमन्त्+सु। गोमान्त्+सु। गोमान्त्+०। गोमान्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ अस्ति-उपाधिमान् 'गो' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में इस सूत्र से 'मतुप्' प्रत्यय है। प्रत्यय के उगित् होने से **'उगिदचां-सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, **'अत्वसन्तस्य चाधातोः'** (६।४।१४) से अङ्ग को दीर्घ, **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से 'त्' का लोप होता है।*

*(२) **वृक्षवान्।** वृक्ष+जस्+मतुप्। वृक्ष+मत्। वृक्ष+वत्। वृक्षवत्+सु। वृक्षवनुम्त्+सु। वृक्षवन्त्+सु। वृक्षवान्त्+सु। वृक्षवान्+०। वृक्षवान्०। वृक्षवान्।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'वृक्ष' शब्द से अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से मतुप् प्रत्यय है। **'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः'** (८।२।९) से 'मतुप्' के मकार के स्थान में वकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्लक्षवान्।***

*(३) **यवमान्।** यहां 'यव' शब्द से पूर्ववत् प्रत्यय है। **'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः'** (८।२।९) में यवादि के प्रतिषेध से 'मतुप्' के मकार को वकार आदेश नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

मतुप्–

(२) रसादिभ्यश्च।६५।

प०वि०–रस-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तद् रसादिभ्यश्चास्यास्मिन्निति मतुप्, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो रसादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे मतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–रसोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-रसवान्। रूपमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-रूपवान्, इत्यादिकम्।

रस। रूप। गन्ध। स्पर्श। शब्द। स्नेह। गुणात्। एकाचः। इति रसादयः। गुणग्रहणं रसादीनां विशेषण्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (रसादिभ्यः) रस-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-रस इसका है वा इसमें है यह-रसवान्। रूप इसका है वा इसमें है यह-रूपवान्, इत्यादि।

*सिद्धि-**रसवान्।** यहां प्रथमा-समर्थ 'रस' शब्द से अस्य और अस्मिन् अर्थ में इस सूत्र से 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-**रूपवान्** आदि।*

लच्-विकल्पः–

(३) प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्।६६।

प०वि०-प्राणिस्थात् ५।१ आतः ५।१ लच् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-प्राणिनि तिष्ठतीति प्राणिस्थः, तस्मात्-प्राणिस्थात् (उपपद-तत्पुरुषः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्राणिस्थाद् आतोऽस्य, अस्मिन् इति अन्यतरस्यां लच्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् आकरान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन लच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति। पक्षे च मतुप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-चूडाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-चूडालः (लच्)। चूडावान् (मतुप्)। कर्णिकाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-कर्णिकालः (लच्)। कर्णिकावान् (मतुप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (प्राणिस्थात्) प्राणी में अवस्थित (आतः) आकारान्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लच्) लच् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अस्ति हो और पक्ष में मतुप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-चूडा=शिखा इसकी है वा इसमें है यह-चूडाल (लच्)। चूडावान् (मतुप्) मोर। कर्णिका इसकी है वा इसमें है वह-कर्णिकाल (लच्)। कर्णिकावान् (मतुप्)। हाथी। कर्णिका=हाथी के सूंड की नोक। यहां 'कर्णिका' शब्द कर्ण-आभूषण का वाची नहीं, अपितु प्राणी-अंग का वाचक है।

सिद्धि-(१) चूडालः। चूड+सु+लच्। चूडा+ल। चूडाल+सु। चूडालः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'चूडा' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'लच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-कर्णिकालः।

(२) चूडावान् और कर्णिकावान् पदों की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है। यहां विकल्प-पक्ष में 'मतुप्' प्रत्यय है।

लच्-विकल्पः–

(४) सिध्मादिभ्यश्च।६७।

प०वि०–सिध्म-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०–सिध्म आदिर्येषां ते सिध्मादयः, तेभ्यः–सिध्मादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन् इति लच्, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् सिध्मादिभ्यश्चाऽस्य, अस्मिन् इति अन्यतरस्यां लच्, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः सिध्मादिभ्यः प्रातिपदिकाभ्यश्चास्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन लच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति, पक्षे च मतुप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–सिध्ममस्य, अस्मिन् वाऽस्ति–सिध्मलः (लच्)। सिध्मवान् (मतुप्)। गडु अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति–गडुलः (लच्)। गडुमान् (मतुप्) इत्यादिकम्।

सिध्म। गडु। मणि। नाभि। जीव। निष्पाव। पांसु। सक्तु। हनु। मांस। परशु। पार्ष्णिधमन्योर्दीर्घश्च। पार्ष्णीलः। धमनीलः। पर्ण। उदक। प्रज्ञा। मण्ड। पार्श्व। गण्ड। ग्रमि। वातदन्तबलललाटानामूङ् च। वातूलः। दन्तूलः। बलूलः। ललाटूलः। जटाघटाकलाः क्षेपे। जटालः। घटालः। कलालः। सक्थि। कर्ण। स्नेह। शीत। श्याम। पिङ्ग। पित्त। शुष्क। पृथु। मृदु। मञ्जु। पत्र। चटु। कपि। कण्डु। संज्ञा। क्षुद्रजन्तूपतापाच्चेष्यते। क्षुद्रजन्तु-यूकालः। मक्षिकालः। उपताप-विचर्चिकालः। विपादिकालः। मूर्छालः। इति सिध्मादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सिध्मादिभ्यः) सिध्म आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (लच्) लच् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अस्ति हो और पक्ष में मतुप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सिध्म=कुष्ठ रोग इसका है वा इसमें है यह-सिध्मल (लच्)। सिध्मवान् (मतुप्) कोढ़ी। गडु=कुबड़ापन इसका है वा इसमें है यह-गडुल (लच्)। गडुमान् (मतुप्) कुबड़ा, इत्यादि।

सिद्धि-(१) सिध्मलः। यहां प्रथमा-समर्थ 'सिध्म' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'लच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-गडुलः।

(२) सिध्मवान् और गडुमान् पदों की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) तथा 'गोमान्' (५।२।९४) के समान है।

लच्—

(५) वत्सांसाभ्यां कामबले।९८।

प०वि०-वत्स-अंसाभ्याम् ५।२ काम-बले ७।१।

स०-वत्सश्च अंसश्च तौ वत्सांसौ, ताभ्याम्-वत्सांसाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कामश्च बलं च एतयोः समाहारः कामबलम्, तस्मिन्-कामबले (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्मिन्, इति, लच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वत्सांसाभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति च लच् कामबले, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां वत्सांसाभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे लच् प्रत्ययो भवति, यथासंख्यं कामवति बलवति चाभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(वत्सः)** वत्सोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वत्सलः पिता। कामवान्=स्नेहवानित्यर्थः। **(अंसः)** अंसोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-अंसलो मल्लः। बलवानित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (वत्सांसाभ्याम्) वत्स, अंस प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (लच्) लच् प्रत्यय होता है (कामबले) यदि वहां यथासंख्य काम=कामवान् और बल=बलवान् अर्थ अभिधेय हो और (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह अस्ति हो। यहां काम शब्द से कामवान् (स्नेहवान्) और बल शब्द से बलवान् अर्थ का ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-(वत्स) वत्स इसका है वा इसमें है यह-वत्सल=स्नेहवान् पिता। **(अंस)** अंस इसका है वा इसमें है यह-अंसवान् मल्ल। बलवान् पहलवान।*

सिद्धि-(१) वत्सलः। यहां प्रथमा-समर्थ, कामवाची 'वत्स' शब्द से अस्य (षष्ठी) अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'लच्' प्रत्यय है।

(२) अंसलः। यहां प्रथमा-समर्थ, बलवाची 'अंस' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'लच्' प्रत्यय है।

इलच्+लच्+मतुप्–

(६) फेनादिलच् च।६६।

प०वि०-फेनात् ५।१ इलच् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप्, लच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् फेनाद् अस्य, अस्मिन्निति च इलच्, लच्, मतुप् च।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् फेन-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इलच्, लच्, मतुप् च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-फेनमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-फेनिलः (इलच्)। फेनलः (लच्)। फेनवान् (मतुप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (फेनात्) फेन प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इलच्) इलच् (लच्) लच् (च) और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-फेन=झाग इसका है वा इसमें है यह-फेनिल (इलच्)। फेनल (लच्)। फेनवान् (मतुप्) झागवाला साबुन आदि।

सिद्धि-(१) फेनिलः। फेन+सु+इलच्। फेन्+इल। फेनिल+सु। फेनिलः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'फेन' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इलच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(२) फेनलः। यहां 'फेन' शब्द से पूर्ववत् 'लच्' प्रत्यय है।

(३) फेनवान्। यहां 'फेन' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य ***'वृक्षवान्'*** *(५।२।९४) के समान है।*

शः+नः+इलच्–

(७) लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ।१००।

प०वि०-लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः ५ ।३ श-न-इलचः १ ।३।

स०-लोम आदिर्येषां ते लोमादयः, पाम आदिर्येषां ते पामादयः, पिच्छ आदिर्येषां ते पिच्छादयः । लोमादयश्च पामादयश्च पिच्छादयश्च ते लोमादिपामादिपिच्छादयः, तेभ्यः-लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भित इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। शश्च नश्च इलच् च ते शनेलचः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप् इति चानुवर्तते।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो लोमादिभ्यः पामादिभ्यः पिच्छादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यथासंख्यं श-न-इलचो मतुप् च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(लोमादिः)** लोमान्यस्य, अस्मिन् वा सन्ति-लोमशः (शः)। लोमवान् (मतुप्)। रोमशः (शः)। रोमवान् (मतुप्) इत्यादिकम्। **(पामादिः)** पामाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-पामनः (नः)। पामवान् (मतुप्)। वामनः (नः)। वामवान् (मतुप्) इत्यादिकम्। **(पिच्छादिः)** पिच्छमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-पिच्छिलः (इलच्)। पिच्छवान् (मतुप्)। उरसिलः (इलच्)। उरस्वान् (मतुप्) इत्यादिकम्।

(१) लोमन्। रोमन्। वल्गु। बभ्रु। हरि। कपि। शुनि। तरु। इति लोमादयः।।

(२) पामन्। वामन्। हेमन्। श्लेष्मन्। कद्र। बलि। श्रेष्ठ। पलल। सामन्। अङ्गात् कल्याणे। शाकीपलालीदद्र्वां ह्रस्वत्वं च। विष्वगित्युत्तरपदलोपश्चाकृतसन्धेः। लक्ष्म्या अच्च। इति पामादयः।।

(३) पिच्छ। उरस्। ध्रुवका। क्षुवका। जटाघटाकलाः क्षेपे। वर्ण। उदक। पङ्क। प्रज्ञा। इति पिच्छादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः) लोमादि, पामादि, पिच्छादि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति*

के अर्थ में (शनेलचः) यथासंख्य श, न, इलच् और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।

उदा०-(लोमादि) लोम हैं इसके वा इसमें यह-लोमश (श)। लोमवान् (मतुप्)। रोंगटेंवाला इत्यादि। (पामादि) पामा है इसका वा इसमें यह-पामन (न)। पामवान् (मतुप्)। पामा=चर्मरोग। वामा है इसका वा इसमें यह वामनः (न)। वामवान् (मतुप्)। वामा=कुटिल स्वभाव, इत्यादि। (पिच्छादि) पिच्छ है इसका वा इसमें-पिच्छिल (इलच्)। पिच्छवान् (मतुप्) फिसलनवाला। उरस् है इसका वा इसमें उरसिल (इलच्)। उरस्वान् (मतुप्) चौड़ी छातीवाला, इत्यादि।

सिद्धि-(१) **लोमशः।** यहां प्रथमा-समर्थ 'लोम' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'श' प्रत्यय है। ऐसे ही-**रोमशः।**

(२) **लोमवान्** और **रोमवान्** पदों की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से लोमन्/रोमन् के नकार का लोप होता है।

(३) **पामनः।** यहां 'पामन्' शब्द से पूर्ववत् 'न' प्रत्यय और पूर्ववत् 'पामन्' के नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वामनः।**

(४) **पामवान्** और **वामवान्** पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

(५) **पिच्छिलः।** पिच्छ+सु+इलच्। पिच्छ्+इल। पिच्छिल+सु। पिच्छिलः।

यहां 'पिच्छ' शब्द से पूर्ववत् 'इलच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**उरसिलः।**

(६) **पिच्छवान्** और **उरस्वान्** पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

णः-

(८) प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः।१०१।

प०वि०-प्रज्ञा-श्रद्धा-अर्चाभ्यः ५।३ णः १।१।

स०-प्रज्ञा च श्रद्धा च अर्चा च ताः प्रज्ञाश्रद्धार्चाः, ताभ्यः-प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप् इति चानुवतति।

अन्वयः-तत् प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्योऽस्य, अस्मिन्निति णो मतुप् च, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे णो मतुप् च प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति। मतुप्-प्रत्ययः सर्वत्र समुच्चीयते।

उदा०-(**प्रज्ञा**) प्रज्ञाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-प्राज्ञः (णः)। प्रज्ञावान् (मतुप्)। (**श्रद्धा**) श्रद्धाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-श्राद्धः (णः)। श्रद्धावान् (मतुप्)। (**अर्चा**) अर्चाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-आर्चः (णः)। अर्चावान् (मतुप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यः) प्रज्ञा, श्रद्धा, अर्चा प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (णः) ण प्रत्यय और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो। 'मतुप्' प्रत्यय का सर्वत्र संग्रह किया जाता है।*

*उदा०-(**प्रज्ञा**) बुद्धि इसकी है वा इसमें है यह-प्राज्ञ (ण)। प्रज्ञावान् (मतुप्)। (**श्रद्धा**) श्रद्धा=सत्य-धारणा इसकी है वा इसमें है यह-श्राद्ध (ण) श्रद्धावान् (मतुप्)। (**अर्चा**) अर्चा=पूजा-भावना इसकी है वा इसमें है यह-आर्च (ण)। अर्चावान् (मतुप्)।*

*सिद्धि-(१) **प्राज्ञः**। प्रज्ञा+सु+ण। प्राज्ञ्+अ। प्राज्ञ+सु। प्राज्ञः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'प्रज्ञा' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ण' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**श्राद्धः, आर्चः**।*

*(२) **प्रज्ञावान्, श्रद्धावान्, अर्चावान्** पदों की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है।*

विशेषः *काशिकावृत्तिकार पं० जयदित्य ने '**प्रज्ञाश्रद्धार्चावृत्तिभ्यो णः**' यह सूत्रपाठ स्वीकार किया है। महाभाष्य के अनुसार '**वृत्तेश्च**' यह कात्यायन मुनि का वार्तिक है। अतः यहां महाभाष्यानुसारी सूत्रपाठ मानकर प्रवचन किया गया है।*

विनिः+इनिः–

(६) तपःसहस्राभ्यां विनीनी।१०२।

प०वि०-तपः-सहस्राभ्याम् ५।२ विनि+इनी १।२।

स०-तपश्च सहस्रं च ते तपःसहस्रे, ताभ्याम्-तपःसहस्राभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। विनिश्च इनिश्च तौ-विनीनी (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् तपः-सहस्राभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति च यथासंख्यं विनीनी, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां तपःसहस्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यथासंख्यं विनीनी प्रत्ययौ भवतः, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(तपः) तपोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-तपस्वी। **(सहस्रम्)** सहस्रमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सहस्री।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (तपःसहस्राभ्याम्) तपस्, सहस्र प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (विनीनी) यथासंख्य विनि और इनि प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(तपः) तप इसका है वा इसमें है यह-तपस्वी। ***'द्वन्द्वसहनं तपः'*** *भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, हानि-लाभ, मान-अपमान रूप द्वन्द्वों को सहन करना 'तप' कहाता है। (सहस्र) सहस्र=हजार कार्षापण (रुपया) इसका है वा इसमें है यह-सहस्री (हजारी)।*

सिद्धि-(१) ***तपस्वी।*** *तपस्+सु+विनि। तपस्+विन्। तपस्विन्+सु। तपस्वीन्+०। तपस्वी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'तपस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'विनि' प्रत्यय है। ***'सौ च'*** *(६।४।११३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ,* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'*** *(६।१।६७) से 'सु' का लोप और* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है। यहां* ***'तसौ मत्वर्थे'*** *(१।४।१९) से 'तपस्' शब्द की भ-संज्ञा होने से* ***'ससजुषो रुः'*** *(८।२।६६) से 'तपस्' शब्द को 'रुत्व' नहीं होता है।*

(२) ***सहस्री।*** *यहां 'सहस्र' शब्द से पूर्ववत् 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

विशेषः *'तपस्' शब्द से* ***'अस्मायामेधास्रजो विनिः'*** *(५।२।१२१) से 'विनि' प्रत्यय सिद्ध था और 'सहस्र' शब्द से* ***'अत इनिठनौ'*** *(५।२।११५) से 'इनि' प्रत्यय सिद्ध था फिर यहां 'विनि' और 'इनि' प्रत्यय का विधान इसलिये किया गया है कि* ***'अण् च'*** *(५।२।१०३) से विधीयमान अण् प्रत्यय 'विनि' और 'इनि' प्रत्यय का बाधक न हो।*

अण्–

(१०) अण् च।१०३।

प०वि०-अण् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, तपःसहस्राभ्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् तपःसहस्राभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति चाऽण्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां तपःसहस्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थेऽण् प्रत्ययो च भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(तपः) तपोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-तापसः। **(सहस्रम्)** सहस्रमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-साहस्रः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (तपःसहस्राभ्याम्) तपस्, सहस्र प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय (च) भी होता है, (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(तपः) तप इसका है वा इसमें है यह-तापस (तपस्वी)। (सहस्र) सहस्र=हजार कार्षापण (रुपया) इसके हैं वा इसमें है यह-साहस्र (हजारी)।

सिद्धि-तापसः। तपस्+सु+अण्। तापस्+अ। तापस+सु। तापसः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'तपस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि होती है। ऐसे ही-साहस्रः।

अण्–

(११) सिकताशर्कराभ्यां च।१०४।

प०वि०-सिकता-शर्कराभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-सिकता च शर्करा च ते सिकताशकरे, ताभ्याम्-सिकता-शर्कराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, अण् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सिकताशर्कराभ्यां चाऽस्य, अस्मिन्निति चाऽण्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां सिकताशर्कराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां चास्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थेऽण् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(सिकता) सिकताऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सैकतो घटः। **(शर्करा)** कर्शराऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-शार्करं मधु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सिकताशर्कराभ्याम्) सिकता, शर्करा, प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन् इति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(सिकता)** सिकता=बाळू रेत इसका है वा इसमें यह-सैकत घट=रेतीला घड़ा। **(शर्करा)** शर्करा=मधुरता इसकी है वा इसमें है यह-शार्कर मधु=घणा मीठा शहद।*

*सिद्धि-**सैकतः।** सिकता+सु+अण्। सैकत्+अ। सैकत+सु। सैकतः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'सिकता' शब्द से अस्य (षष्ठी) अर्थ में और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शार्करम्।***

लुप्+इलच्+अण्+मतुप्-

(१२) देशे लुबिलचौ च।१०५।

प०वि०-देशे ७।१ लुप्-इलचौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-लुप् च इलच् च तौ लुबिलचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप्, अण् सिकताशर्कराभ्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सिकताशर्कराभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति च लुबिलचावण् मतुप् च देशे, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां सिकताशर्कराभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे प्रत्ययस्य लुप्, इलच्, अण्, मतुप् च प्रत्यया भवन्ति, देशेऽभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(सिकता) सिकताऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सिकता देशः (लुप्)। सिकतिलो देशः (इलच्)। सैकतो देशः (अण्)। सिकतावान् देशः (मतुप्)। **(शर्करा)** शर्कराऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-शर्करा देशः (लुप्)। शर्करिलो देशः (इलच्)। शार्करो देशः (अण्)। शर्करावान् देशः (मतुप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सिकताशर्कराभ्याम्) सिकता, शर्करा प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (लुप्-इलचौ)*

प्रत्यय का लुप्, इलच् (अण्) अण् और मतुप् प्रत्यय होते हैं (देशे) यदि वहां देश अर्थ अभिधेय हो (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।

उदा०-(**सिकता**) सिकता=बाळू रेत इसका है वा इसमें है यह-सिकता देश (प्रत्यय का लुप्)। सिकतिल देश (इलच्)। सैकत देश (अण्)। सिकतावान् देश (मतुप्)। रेतीला देश=बागड़। (**शर्करा**) शर्करा=कांकर इसकी है या इसमें है यह-शर्करा देश (लुप्)। शर्करिल देश (इलच्)। शार्कर देश (अण्)। शर्करावान् देश (मतुप्) कंकरीला देश।

सिद्धि-(१) सिकता। सिकता+सु+०। सिकता+०। सिकता+सु। सिकता।

यहां प्रथमा-समर्थ 'सिकता' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) के अर्थ में इस सूत्र से प्रत्यय का 'लुप्' है। प्रत्यय-विशेष का कथन न होने से 'प्रत्ययमात्र' का लुप् समझना चाहिये। **'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने'** (१।२।५१) से प्रत्यय के लुप् हो जाने पर व्यक्ति=लिङ्ग और वचन युक्तवत्=पूर्ववत् ही रहते हैं। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है। ऐसे ही-**शर्करा देशः।**

(२) सिकतिलः। सिकता+सु+इलच्। सिकत्+इल। सिकतिल+सु। सिकतिलः।

यहां 'सिकता' शब्द से पूर्ववत् 'इलच्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शर्करिलो देशः।**

(३) सैकतः। सिकता+सु+अण्। सैकत्+अ। सैकत+सु। सैकतः।

यहां 'सिकता' शब्द से पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शार्करो देशः।**

(४) सिकतवान्। यहां 'सिकता' शब्द से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य **'वृक्षवान्'** (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-**शर्करावान् देशः।**

उरच्-

(१३) दन्त उन्नत उरच्।१०६।

प०वि०-दन्तः १।१ (पञ्चम्यर्थे) उन्नते ७।१ उरच् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् दन्ताद् अस्य, अस्मिन्निति च उरच्, उन्नतोऽस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् दन्त-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे उरच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमुन्नतोऽस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-दन्ता उन्नता अस्य, अस्मिन् वा सन्ति-दन्तुरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (दन्तः) दन्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (उरच्) उरच् प्रत्यय होता है (उन्नते, अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'उन्नत है' हो।*

उदा०-दन्त हैं उन्नत=ऊंचे इसके वा इसमें यह-दन्तुर (दांतुआ)।

सिद्धि-दन्तुरः। दन्त+जस्+उरच्। दन्त्+उरच्। दन्तुर+सु। दन्तुरः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'दन्त' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा उन्नत अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'उरच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

रः–

(१४) ऊषसुषिमुष्कमधो रः।१०७।

प०वि०-ऊष-सुषि-मुष्क-मधोः। ५।१ रः १।१।

स०-ऊषश्च सुषिश्च मुष्कश्च मधु च एतेषां समाहार ऊषसुषिमुष्कमधु, तस्मात्-ऊषसुषिमुष्कमधोः (समाहारद्वन्द्वः)। समाहारद्वन्द्वे पुंलिङ्गनिर्देशः सौत्रो वेदितव्यः।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवतति।

अन्वयः-तद् ऊषसुषिमुष्कमधुभ्योऽस्य, अस्मिन्निति च रः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः ऊषसुषिमुष्कमधुभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे रः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमा-समर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(ऊषः)** ऊषा अस्य, अस्मिन् वा सन्ति-ऊषरं क्षेत्रम्। **(सुषिः)** सुषिरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सुषिरं काष्ठम्। **(मुष्कः)** मुष्कावस्य, अस्मिन् वा स्तः-मुष्करः पशुः। **(मधु)** मधु अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-मधुरो गुडः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (ऊषसुषिमुष्कमधोः) ऊष, सुषि, मुष्क, मधु प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (रः) र प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(ऊष) ऊष=धूल इसकी है वा इसमें है यह-ऊषर क्षेत्र, बंजर भूमि। (सुषि) सुषि=छिद्र इसका है वा इसमें है यह-सुषिर काष्ठ (लकड़ी)। (मुष्क) मुष्क=बड़े अण्डकोष इसके हैं वा इसमें हैं यह-मुष्कर पशु। (मधु) मधु=मीठा रस इसका है वा इसमें है यह-मधुर गुड।

सिद्धि-ऊषरः। ऊष+जस्+र। ऊष+र। ऊषर+सु। ऊषरम्।

यहां प्रथमा-समर्थ 'ऊष' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'र' प्रत्यय है। ऐसे ही-सुषिरम्, मुष्करः, मधुरः।

मः-

(१५) द्युद्रुभ्यां मः।१०८।

प०वि०-द्यु-द्रुभ्याम् ५।२ मः १।१।

स०-द्यौश्च द्रुश्च तौ द्युद्रू, ताभ्याम्-द्युद्रुभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् द्युद्रुभ्यामस्य, अस्मिन्निति च मः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्याम् द्युद्रुभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे मः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-द्यौरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-द्युमः। द्रुरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-द्रुमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (द्युद्रुभ्याम्) द्यौ, द्रु प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (मः) म प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(द्यौः) द्यौः=द्युति इसकी है वा इसमें है यह-द्युम (द्युलोक)। (द्रु) द्रु=शाखा इसकी है वा इसमें है यह-द्रुम (वृक्ष)।

सिद्धि-द्युमः। दिव्+सु+म। दिउ+म। द्यु+म। द्युम+सु। द्युमः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'दिव्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'म' प्रत्यय है। 'दिव उत्' (६।१।१३१) से 'दिव्' के वकार को उकार आदेश होता है। ऐसे ही-द्रुमः।

वः+इनि+ठन्+मतुप्–

(१६) केशाद् वोऽन्यतरस्याम्।१०६।

प०वि०–केशात् ५।१ वः १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् केशाद् अस्य, अस्मिन्निति चान्यतरस्यां वः, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् केश-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन वः प्रत्ययो भवति, पक्षे च इनिः, ठन्, मतुप् च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–केशा अस्य, अस्मिन् वा सन्ति–केशवः (वः)। केशी (इनिः)। केशिकः (ठन्)। केशवान् (मतुप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (केशात्) केश प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (वः) व प्रत्यय होता है और पक्ष में इनि, ठन्, मतुप् प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-केश=बाळ इसके हैं वा इसमें हैं यह केशव (व)। केशी (इनि)। केशिक (ठन्)। केशवान् (मतुप्)।

*सिद्धि-(१) **केशवः।** केश+जस्+व। केश+व। केशव+सु। केशवः।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'केश' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'व' प्रत्यय है।

*(२) **केशी।** यहां 'केश' शब्द से विकल्प पक्ष में **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है।*

*(३) **केशिकः।** यहां 'केश' शब्द से विकल्प पक्ष में **'अत इनिठनौ'** (५।२।११५) से 'ठन्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।*

*(४) **केशवान्।** यहां 'केश' शब्द से विकल्प पक्ष में औत्सर्गिक 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'वृक्षवान्' (५।२।९०) के समान है।*

वः–

(१७) गाण्ड्यजगात् संज्ञायाम्।११०।

प०वि०-गाण्डी-अजगात् ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

स०-गाण्डी च अजगश्च एतयोः समाहारो गाण्ड्यजगम्, तस्मात्-गाण्ड्यजगात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, व इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् गाण्ड्यजगाभ्यामस्य, अस्मिन्निति च वः, संज्ञायाम्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां गाण्ड्यजगाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे वः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(गाण्डी) गाण्डी अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति गाण्डीवं धनुः। ह्रस्वादपि भवति-गाण्डिवं धनुः। (अजग) अजगोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-अजगवं धनुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) षष्ठी-समर्थ (गाण्ड्यजगात्) गाण्डी, अजग प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (वः) व प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(गाण्डी) गाण्डी=ग्रन्थिविशेष (गांठ) इसकी है वा इसमें है यह-गाण्डीव धनुष। अर्जुन का लोकप्रसिद्ध धनुष। (अजग) अजग=विष्णु इसका है वा इसमें है यह-अजगव धनुष। शिव का धनुष।

सिद्धि-गाण्डीवः। गाण्डी+सु+व। गाडी+व। गाण्डीव+सु। गाण्डीवः।

यहां प्रथमा-समर्थ, गाण्डी शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा संज्ञा विषय में इस सूत्र से 'व' प्रत्यय है। ह्रस्व इकारवान् 'गाण्डि' शब्द से 'व' प्रत्यय होता है-गाण्डिवः। ऐसे ही-अजगवः।

इरन्+इरच्–

(१८) काण्डाण्डादीरन्निरचौ।१११।

प०वि०-काण्ड-अण्डात् ५।१ ईरन्-इरचौ १।२।

स०-काण्डं च अण्डं च एतयोः समाहारः काण्डाण्डम्, तस्मात्-काण्डाण्डात् (समाहारद्वन्द्वः)। ईरन् च इरच्च तौ ईरन्निरचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् काण्डाण्डाभ्यामस्य, अस्मिन्निति च ईरन्निरचौ, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां काण्डाण्डाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यथासंख्यम् ईरन्निरचौ प्रत्ययौ भवतः, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(काण्डम्)** काण्डमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-काण्डीरः (ईरन्)। **(अण्डम्)** अण्डमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-अण्डीरः (इरच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (काण्डाण्डात्) काण्ड, अण्ड प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति अर्थ में (ईरन्निरचौ) यथासंख्य ईरन् और इरच् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(काण्ड) काण्ड=बड़ा है तणा इसका यह-काण्डीर वृक्ष। (अण्ड) अण्ड=बड़े हैं अण्डकोष इसके वा इसमें यह-अण्डीर वृषभ (साण्ड) पूर्ण आयु को प्राप्त साण्ड।

सिद्धि-(१) काण्डीरः। काण्ड+सु+ईरन्। काण्ड्+ईर। काण्डीर+सु। काण्डीरः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'काण्ड' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ईरन्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(२) अण्डीरः। यहां 'अण्ड' शब्द से पूर्ववत् 'ईरच्' प्रत्यय है।

वलच्–

(१६) रजःकृष्यासुतिपरिषदो वलच्।११२।

प०वि०-रजः-कृषि-आसुति-परिषदः ५।१ वलच् १।१।

स०-रजश्च कृषिश्च आसुतिश्च परिषच्च एतेषां समाहारो रजःकृष्यासुतिपरिषत्, तस्मात्-रजःकृष्यासुतिपरिषदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् रजःकृष्यासुतिपरिषदोऽस्य, अस्मिन्निति च वलच्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो रजःकृष्यासुतिपरिषद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे वलच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(रजः)** रजोऽस्याः, अस्यां वाऽस्ति-रजस्वला स्त्री। **(कृषिः)** कृषिरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-कृषीवलः कुटुम्बी। **(आसुतिः)** आसुतिरस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-आसुतीवलः शौण्डिकः। **(परिषद्)** परिषदस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-परिषद्वलो राजा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (रजःकृष्यासुतिपरिषदः) रजस्, कृषि, आसुति, परिषद् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (वलच्) वलच् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(रजः) रजस्=मासिक रक्तस्राव इसका है वा इसमें है यह-रजस्वला स्त्री। (कृषि) कृषि=खेती इसकी है वा इसमें है यह-कृषीवल कुटुम्बी (किसान)। (आसुति) आसुति=निःसरण इसका है वा इसमें है यह-आसुतीवल शौण्डिक (शराब बेचनेवाला)। (परिषद्) परिषद्=न्यायसभा है इसकी वा इसमें है यह-परिषद्वल राजा।

*सिद्धि-(१) **रजस्वला**। रजस्+सु+वलच्। रजस्+वल। रजस्वल+टाप्। रजस्वला+सु। रजस्वला।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'रजस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'वलच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**परिषद्वलः**।*

*(२) **कृषीवलः**। यहां 'कृषि' शब्द से पूर्ववत् 'वलच्' प्रत्यय है। 'वले' (६।३।११८) से अंग को दीर्घ होता है। ऐसे ही-**आसुतीवलः**।*

वलच्–

(२०) दन्तशिखात् संज्ञायाम्।११३।

प०वि०-दन्त-शिखात् ५।१ संज्ञायाम् ७।१।

स०-दन्तश्च शिखा च एतयोः समाहारो दन्तशिखम्, तस्मात्-दन्तशिखात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, वलच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् दन्तशिखाभ्यामस्य, अस्मिन्निति च वलच्, संज्ञायाम्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां दन्तशिखाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे वलच् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां विषये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(दन्तः) दन्तावस्य, अस्मिन् वा स्तः-दन्तावलो गजः। (शिखा) शिखाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-शिखावलं नगरम्। शिखावला स्थूणा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (दन्तशिखात्) दन्त, शिखा प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (वलच्) वलच् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(दन्त) दन्त=बड़े दांत इसके हैं वा इसमें हैं यह-दन्तावल गज (हाथी)। (शिखा) शिखा=ऊंची चोटी इसकी है वा इसमें है यह-शिखावल नगर। शिखावल स्थूणा (खम्भा)।

सिद्धि-दन्तावलः। दन्त+औ+वलच्। दन्त+वल। दन्तावल+सु। दन्तावलः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'दन्त' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'वलच्' प्रत्यय है। 'वले' (६।३।११८) से अंग को दीर्घ होता है। ऐसे ही-शिखावलः।

निपातनम् (मतुबर्थे)-

(२१) ज्योत्स्नातमिस्राशृङ्गिणोर्जस्विन्नूर्जस्वलगोमिन्मलिनमलीमसाः।११४।

प०वि०-ज्योत्स्ना-तमिस्रा-शृङ्गिण-ऊर्जस्विन्-ऊर्जस्वल-गोमिन्-मलिन-मलीमसाः १।३।

स०-ज्योत्स्ना च तमिस्रा च शृङ्गिणश्च ऊर्जस्विन् च ऊर्जस्वलश्च गोमिन् च मलिनश्च मलीमसश्च ते-ज्योत्स्ना०मलीमसाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, संज्ञायाम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् ज्योत्स्न।०मलीमसा अस्य, अस्मिन्निति च संज्ञायाम्, अस्ति।

अर्थः-तद् प्रथमासमर्था ज्योत्स्नादयः शब्दा अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे निपात्यन्ते, संज्ञायां विषये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(ज्योत्स्ना) ज्योत्स्ना=चन्द्रप्रभा।** अत्र ज्योतिष्-शब्दस्योपधालोपो नः प्रत्ययश्च निपात्यते। **(तमिस्रा) तमिस्रा=रात्रिः।** अत्र तमस्-शब्दस्योपधायां इकारादेशो रः प्रत्ययश्च निपात्यते। स्त्रीलिङ्गमप्रधानम्, अन्यत्रापि प्रयोगदर्शनात्-तमिस्रं नभः। **(शृङ्गिणः) शृङ्गिणः=शृङ्गिणः पशुः।** अत्र शृङ्ग-शब्दाद् इनच् प्रत्ययो निपात्यते। **(ऊर्जस्विन्) ऊर्जस्वी पुरुषः।** अत्र ऊर्ज्-शब्दाद् विनिः प्रत्ययोऽसुगागमश्च निपात्यते। **(ऊर्जस्वलः) ऊर्जस्वलः पुरुषः।** अत्र ऊर्ज्-शब्दाद् वलच् प्रत्ययोऽसुगागमश्च निपात्यते। **(गोमिन्) गोमी पुरुषः।** अत्र गोशब्दाद् मिनिः प्रत्ययो निपात्यते। **(मलिनः) मलिनः पुरुषः।** अत्र मल-शब्दाद् इनच् प्रत्ययो निपात्यते। **(मलीमसः) मलीमसः पुरुषः।** अत्र मल-शब्दाद् ईमसच् प्रत्ययो निपात्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (ज्योत्स्ना०मलीमसाः) ज्योत्स्ना, तमिस्रा, शृङ्गिण, ऊर्जस्विन्, ऊर्जस्वल, गोमिन्, मलिन, मलीमस शब्द (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में निपातित हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(ज्योत्स्ना)** ज्योति इसकी है वा इसमें है यह-ज्योत्स्ना चन्द्रप्रभा (चांदनी)। **(तमिस्रा)** तमस्=अन्धकार इसका है वा इसमें है यह-तमिस्रा रात्रि (रात)। 'तमिस्रा' पद में स्त्रीलिङ्ग गौण है, अन्यत्र भी इसका प्रयोग देखा जाता है-**तमिस्रं नभः।** अन्धकारवाला आकाश। **(शृङ्गिण)** शृङ्ग=सींग इसके है वा इसमें है यह-शृङ्गिण पशु। **(ऊर्जस्विन्)** ऊर्ज्=बल इसका है वा इसमें है यह-ऊर्जस्वी पुरुष। **(ऊर्जस्वल)** ऊर्जस्=बल इसका है वा इसमें है यह-ऊर्जस्वल पुरुष। **(गोमिन्)** गौ इसकी है वा इसमें है यह-गोमी पुरुष गौ का सेवक। **(मलिन)** मल=मैल इसका है वा इसमें है यह-मलिन पुरुष। **(मलीमस)** मल=मैल इसका है वा इसमें है यह-मलीमस पुरुष।*

*सिद्धि-(१) **ज्योत्स्ना।** ज्योतिष्+सु+न। ज्योत्स्+न। ज्योत्स्न+टाप्। ज्योत्स्ना+सु। ज्योत्स्ना।*

यहां 'ज्योतिष्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'न' प्रत्यय और अंग की उपधा (इ) का लोप निपातित है। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'*** *(६।१।६७) से 'सु' का लोप होता है।*

(२) ***तमिस्रा।*** *तमस्+सु+र। तमिस्+र। तमिस्र+टाप्। तमिस्रा+सु। तमिस्रा।*

यहां 'तमस्' शब्द से पूर्ववत् 'र' प्रत्यय और अंग की उपधा को इकार आदेश निपातित है।

(३) ***शृङ्गिणः।*** *यहां 'शृङ्ग' शब्द से पूर्ववत् 'इनच्' प्रत्यय निपातित है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(४) ***ऊर्जस्विन्।*** *यहां 'ऊर्ज्' शब्द से पूर्ववत् 'विनि' प्रत्यय और अंग को 'असुक्' आगम निपातित है।*

(५) ***ऊर्जस्वलः।*** *यहां 'ऊर्ज्' शब्द से पूर्ववत् 'वलच्' प्रत्यय और अंग को 'असुक्' आगम निपातित है।*

(६) ***गोमी।*** *गो+सु+मिन्। गो+मिन्। गोमिन्+सु। गोमीन्+सु। गोमीन+०। गोमी।*

यहां 'गो' शब्द से पूर्ववत् 'मिन्' प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है।

(७) ***मलिनः।*** *यहां 'मल' शब्द से पूर्ववत् 'इनच्' प्रत्यय निपातित है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४.।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(८) ***मलीमसः।*** *यहां 'मल' शब्द से पूर्ववत् 'ईमसच्' प्रत्यय निपातित है। पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।*

इनिः+ठन्+मतुप्–

(२२) अत इनिठनौ।११५।

प०वि०-अतः ५।१ इनिठनौ १।२।

स०-इनिश्च ठँश्च तौ-इनिठनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अतोऽस्य, अस्मिन्निति चान्यतरस्याम् इनिठनौ।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् अकारान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन इनिठनौ प्रत्ययौ भवतः, पक्षे च मतुप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-दण्डोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-दण्डी (इनिः)। दण्डिकः (ठन्)। दण्डवान् (मतुप्)। छत्रमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-छत्री (इनिः)। छत्रिकः (ठन्)। छत्रवान् (मतुप्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (इनिठनौ) इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं और पक्ष में औत्सर्गिक मतुप् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-दण्ड इसका है वा इसमें है यह-दण्डी (इनि)। दण्डिक (ठन्)। दण्डवान् (मतुप्)। छत्र इसका है वा इसमें है यह-छत्री (इनि)। छत्रिक (ठन्)। छत्रवान् (मतुप्)।

सिद्धि-(१) दण्डी। दण्ड+सु+इनि। दण्ड्+इन्। दण्डिन्+सु। दण्डीन्+सु। दण्डीन्+0। दण्डी।

*यहां प्रथमा-समर्थ, अकारान्त 'दण्ड' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-छत्री।*

*(२) दण्डिकः। यहां 'दण्ड' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-छत्रिकः।*

(३) दण्डवान्। यहां 'दण्ड' शब्द से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् औत्सर्गिक 'मतुप्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-छत्रवान्।

इनिः+ठन्+मतुप्–

(२३) व्रीह्यादिभ्यश्च।११६।

प०वि०-व्रीहि-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-व्रीहि आदिर्येषां ते व्रीह्यादयः, तेभ्यः-व्रीह्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप्, इनिठनाविति चानुवतर्ति।

अन्वयः-तद् व्रीह्यादिभ्यश्चास्य, अस्मिन्निति चेनिठनौ मतुप् च, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः व्रीह्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चास्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिठनौ मतुप् च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-व्रीहयोऽस्य, अस्मिन् वा सन्ति-व्रीही (इनिः)। व्रीहिकः (ठन्)। व्रीहिमान् (मतुप्)। मायाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-मायी (इनिः)। मायिकः (ठन्)। मायावान् (मतुप्) इत्यादिकम्।

व्रीहि। माया। शिखा। मेखला। संज्ञा। बलाका। माला। वीणा। वडवा। अष्टका। पताका। कर्मन्। चर्मन्। हंसा। यवखद। कुमारी। नौ। शीर्षान्नञः। अशीर्षी। अशीर्षिका। इति व्रीह्यादयः।।

अत्र-शिखाऽऽदिभ्य इनिरेवष्यते, न तु ठन्, यवखदादिभ्यश्च ठन्नेवेष्यते, शेषाच्चोभौ प्रत्ययावभीष्टौ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (व्रीह्यादिभ्यः) व्रीहि आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिठनौ) इनि, ठन् और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-व्रीहि=चावल है इसका वा इसमें है यह-व्रीही (इनि)। व्रीहिक (ठन्)। व्रीहिमान् (मतुप्)। माया=छल-कपट है इसका वा इसमें यह-मायी (इनि)। मायिक (ठन्)। मायावान् (मतुप्) धोखेबाज, इत्यादि।

*सिद्धि-(१) **व्रीही।** व्रीही+सु+इनि। व्रीह्+इन्। व्रीहिन्+सु। व्रहीन्+सु। व्रीहीन्+०। व्रीही।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'व्रीहि' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'इनि' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-**मायी।***

*(२) **व्रीहिकः।** यहां 'व्रीहि' शब्द से पूर्ववत् 'ठन्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और पूर्ववत् अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मायिकः।***

*(३) **व्रीहिमान्** पद की सिद्धि **'गोमान्'** (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-**मायावान्।***

विशेषः *व्रीहि-आदिगण में पठित 'शिखा' शब्द से लेकर हंसा शब्द तक 'इनि' प्रत्यय अभीष्ट है। यवखद आदि शब्दों से ठन् (इकन्) प्रत्यय अभीष्ट है। शेष-व्रीहि, माया शब्दों से दोनों प्रत्यय **होते हैं।***

इलच्+इनि+ठन्+मतुप्–

(२४) तुन्दादिभ्य इलच् च।११७।

प०वि०-तुन्द-आदिभ्यः ५।३ इलच् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-तुन्द आदिर्येषां ते तुन्दादयः, तेभ्यः-तुन्दादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, मतुप्, इनिठनाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् तुन्दादिभ्योऽस्य, अस्मिन्निति च इलच्, इनिठनौ, मतुप् च, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यस्तुन्दादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इलच्, इनिठनौ, मतुप् च प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-तुन्दमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-तुन्दिलः (इलच्)। तुन्दी (इनिः)। तुन्दिकः (ठन्)। तुन्दवान् (मतुप्)। उदरमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-उदरिलः (इलच्)। उदरी (इनिः)। उदरिकः (ठन्)। उदरवान् (मतुप्) इत्यादिकम्।

तुन्द। उदर। पिचण्ड। घट। यव। व्रीहि। स्वाङ्गाद् विवृद्धौ च। इति तुन्दादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (तुन्दादिभ्यः) तुन्द आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इलच्) इलच् (इनिठनौ) इनि, ठन् (च) और (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-तुन्द=बड़ा तोंद है इसका वा इसमें यह-तुन्दिल (इलच्)। तुन्दी (इनि)। तुन्दिक (ठन्)। उदर=बड़ा पेट है इसका वा इसमें यह-उदरिल (इलच्)। उदरी (इनि)। उदरिल (ठन्)। उदरवान् (मतुप्) इत्यादिक।

सिद्धि-(१) तुन्दिलः। तुद+सु+इलच्। तुन्द्+इल। तुन्दिल+सु। तुन्दिलः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'तुन्द' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में 'इलच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

***(२) तुन्दी, तुन्दिकः, तुन्दवान्** आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

नित्यं ठञ्–

(२५) एकगोपूर्वाट्ठञ् नित्यम्।११८।

प०वि०-एक-गोपूर्वात् ५।१ ठञ् १।१ नित्यम् १।१।

स०-एकश्च गौश्च ते-एकगावौ। एकगावौ पूर्वौ यस्य तद्-एकगोपूर्वम्, तस्मात्-एकगोपूर्वात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते। अत इति चानुवर्तनीयम् (५।२।११५)।

अन्वयः-तद् एकगोपूर्वाद् अतोऽस्य, अस्मिन्निति च नित्यं ठञ्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् एकपूर्वाद् गोपूर्वाच्चाकारान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे नित्यं ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(एकपूर्वम्)** एकशतमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-ऐकशतिकः। ऐकसहस्त्रिकः। **(गोपूर्वम्)** गोशतमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-गौशतिकः। गौसहस्त्रिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (एकगोपूर्वात्) एक शब्द पूर्ववाले तथा गोशब्द पूर्ववाले (अतः) अकारान्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (नित्यम्) सदा (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(एकपूर्व) एकशत=एक सौ कार्षापण (रुपया) इसका है वा इसमें है यह-ऐकशतिक। एकसहस्त्र=एक हजार कार्षापण (रुपया) इसका है वा इसमें है यह-ऐकसाहस्त्रिक। (गोपूर्व) गोशत=सौ गौ इसकी हैं वा इसमें हैं यह-गौशतिक। गोसहस्त्र=हजार गौ इसकी हैं वा इसमें हैं यह-गौसहस्त्रिक।

सिद्धि-(१) ऐकशतिकः। एकशत+सु+ठञ्। ऐकशत्+इक। ऐकशतिक+सु। ऐकशतिकः।

*यहां प्रथमा-समर्थ, एक शब्द पूर्ववाले 'एकशत' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से नित्य 'ठञ्' प्रतयय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश, पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**ऐकसहस्त्रिकः, गौशतिकः, गौसहस्त्रिकः**।*

ठञ्–

(२६) शतसहस्रान्ताच्च निष्कात्।११६।

प०वि०–शत-सहस्रान्तात् ५।१ च अव्ययपदम् निष्कात् ५।१।

स०–शतं च सहस्रं च ते शतसहस्रे, शतसहस्रे अन्ते यस्य तत्-शतसहस्रान्तम्, तस्मात्-शतसहस्रान्तात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अनु०–तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, नित्यम्, ठञ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–तत् शतसहस्रान्ताद् निष्कादस्य, अस्मिन्निति च नित्यं ठञ्, अस्ति।

अर्थः–तद् इति प्रथमासमर्थात् शतान्तात् सहस्रान्ताच्च निष्क-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे नित्यं ठञ् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०–(शतान्तम्) निष्कशतमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-नैष्कशतिकः। **(सहस्रान्तम्)** निष्कसहस्रमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-नैष्कसहस्रिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (शतसहस्रान्तात्) शत और सहस्र शब्द जिसके अन्त में हैं उस (निष्कात्) निष्क प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (नित्यम्) सदा (ठञ्) ठञ् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-(शतान्त) निष्कशत=सौ निष्क इसके हैं वा इसमें हैं यह-नैष्कशतिक। सौ निष्कवाला। (सहस्रान्त) निष्कसहस्र=हजार निष्क इसके हैं वा इसमें हैं यह-नैष्कसहस्रिक। हजार **निष्कवाला**। निष्क=८० रत्ती का सोने का सिक्का।*

सिद्धि-नैष्कशतिकः। *निष्कशत+सु+ठञ्। नैष्कशत्+इक। नैष्कशतिक+सु। नैष्कशतिकः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, शतान्त 'निष्कशत' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से नित्य 'ठञ्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**नैष्कसहस्रिकः।***

यप्–

(२७) रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्।१२०।

प०वि०–रूपात् ५।१ आहत-प्रशंसयोः ७।२ यप् १।१।

स०-आहतं च प्रशंसा च ते आहतप्रशंसे, तयोः-आहतप्रशंसयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् आहत-प्रशंसयो रूपाद् अस्य, अस्मिन्निति च यप्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् आहतप्रशंसयोरर्थयोर्वर्तमानाद् रूप-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे यप् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(आहतम्)** आहतं रूपमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-रूप्यो दीनारः। रूप्यः केदारः। रूप्यं कार्षापणम्। **(प्रशंसा)** प्रशस्तं रूपमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-रूप्यः पुरुषः। निघातिकाताडनादिना दीनारादिषु रूपं यदुत्पद्यते तदाहतमिति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (आहतप्रशंसयोः) आहत और प्रशंसा अर्थ में विद्यमान (रूपात्) रूप प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (यप्) यप् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(आहत)** आहत रूप इसका है वा इसमें है यह-रूप्य दीनार (सोने का सिक्का)। रूप्य केदार (धन)। रूप्य कार्षापण (सोना, चांदी का सिक्का)। **(प्रशंसा)** प्रशस्त रूप इसका है वा इसमें है यह-रूप्य पुरुष। रूपवान् पुरुष। हथोड़ी के ताडन आदि से दीनार आदि पर जो कोई रूप बनाया जाता है उसे 'आहत' कहते हैं।*

सिद्धि-रूप्यः। *रूप+सु+यप्। रूप्+य। रूप्य+सु। रूप्यः।*

यहां प्रथमा-समर्थ, आहत और प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'रूप' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'यप्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग के अकार का लोप होता है।

विनिः-

(२८) अस्मायामेधास्रजो विनिः।१२१।

प०वि०-अस्-माया-मेधा-स्रजः ५।१ विनिः १।१।

स०-अस् च माया च मेधा च स्रक् च एतेषां समाहारः-अस्मायामेधास्रक्, तस्मात्-अस्मायामेधास्रजः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् असमायामेधास्रग्भ्योऽस्य, अस्मिन्निति च विनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्योऽसन्तेभ्यो मायामेधास्रग्भ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(**असन्तः**) यशोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-यशस्वी। तपस्वी। मनस्वी। (**माया**) मायाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-मायावी। (**मेधा**) मेधाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-मेधावी। (**स्रक्**) स्रग् अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-स्रग्वी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (असमायामेधास्रजः) असन्त, माया, मेधा, स्रक् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (विनिः) विनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-(असन्त) यशस् इसका है वा इसमें है यह-यशस्वी। तपस् इसका है वा इसमें है यह-तपस्वी। मनस् इसका है वा इसमें है यह-मनस्वी। **(माया)** माया=छल-कपट इसका है वा इसमें है यह-मायावी। **(मेधा)** मेधा=तीव्रबुद्धि इसकी है वा इसमें है यह-मेधावी। **(स्रक्)** स्रक्=माला इसकी है वा इसमें है यह-स्रग्वी।*

सिद्धि-यशस्वी। *यशस्+सु+विनि। यशस्+विन्। यशस्विन्+सु। यशस्वीन्+सु। यशस्वीन्+०। यशस्वी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, असन्त 'यशस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'विनि' प्रत्यय है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-**मायावी, मेधावी, स्रग्वी।***

बहुलं विनिः-

(२६) बहुलं छन्दसि।१२२।

प०वि०-बहुलम् १।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, विनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तत् प्रातिपदिकाद् अस्य, अस्मिन्निति च बहुलं विनिः, अस्ति।

अर्थः-छन्दसि विषये तद् इति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे बहुलं विनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-तेजोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-तेजस्वी। **अग्ने तेजस्विन्** (तै०सं० ३।३।१।१)। न च भवति-वर्चोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वर्चस्वान्। **सूर्यो** वर्चस्वान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (विनिः) विनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-तेजस् इसका है वा इसमें है यह-तेजस्वी। **अग्ने तेजस्विन्** (तै०सं० ३।३।१।१) और बहुलवचन से विनि प्रत्यय नहीं होता है-वर्चस् इसका है वा इसमें है यह-वर्चस्वान्। सूर्यो वर्चस्वान्।*

*सिद्धि-(१) **तेजस्वी।** यहां प्रथमा-समर्थ 'तेजस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा वेदविषय में इस सूत्र से 'विनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है।*

*(२) **वर्चस्वान्।** यहां 'वर्चस्' शब्द से बहुलवचन से पूर्ववत् 'मतुप्' प्रत्यय है। 'झयः' (८।२।१०) से 'मतुप्' के मकार को वकार आदेश होता है। शेष कार्य 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है।*

युस्-

(३०) ऊर्णाया युस्।१२३।

प०वि०-ऊर्णायाः ५।१ युस् १।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् उर्णाया-अस्य, अस्मिन्निति च युस्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् ऊर्णा-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे युस् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-ऊर्णाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-ऊर्णायुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (उर्णायाः) ऊर्णा प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (युस्) युस् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-ऊर्णा=ऊन इसकी है वा इसमें है यह-ऊर्णायुः (ऊनी)।

सिद्धि-ऊर्णायुः। ऊर्णा+सु+युस्। ऊर्णा+यु। ऊर्णायु+सु। ऊर्णायुः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'ऊर्णा' शब्द से अस्य (षष्ठी) और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में 'युस्' प्रत्यय है। 'युस्' प्रत्यय के सित् होने से 'ऊर्णा' शब्द की ***'सिति च'*** *(१।४।१६) से पद-संज्ञा होने से* ***'यस्येति च'*** *(४।४।१४८) से अंग के आकार का लोप नहीं होता है।*

ग्मिनिः-

(३१) वाचो ग्मिनिः।१२४।

प०वि०-वाचः ५।१ ग्मिनिः १।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वाचोऽस्य, अस्मिन्निति च ग्मिनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् वाच्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे ग्मिनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-वागस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वाग्गमी।। वाग्गमी। वाग्मिनौ। वाग्मिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (वाचः) वाच् प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (ग्मिनिः) ग्मिनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-वाक् इसकी है वा इसमें है यह-वाग्गमी (वाणी का संयमी)।

सिद्धि-वाग्गमी। यहां प्रथमा-समर्थ 'वाच्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ग्मिनि' प्रत्यय है। ***'झलां जशोऽन्ते'*** *(८।२।३९) से* ***'वाच्'*** *के चकार को जश्त्व गकार होता है। शेष कार्य* ***'तपस्वी'*** *(५।२।१०२) के समान है।*

आलच्-आटच्–

(३२) आलजाटचौ बहुभाषिणि।१२५।

प०वि०-आलच्-आटचौ १।२ बहुभाषिणि ७।१।

स०-आलच् च आटच् च तौ-आलजाटचौ (इतरेतरयोग-द्वन्द्वः)। बहुभाषितुं शीलमस्य-बहुभाषी, तस्मिन्-बहुभाषिणि (उपपद-तत्पुरुषः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, वाच इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वाचोऽस्य, अस्मिन्निति चाऽऽलजाटचौ बहुभाषिणि, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् वाच्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे आलजाटचौ प्रत्ययौ भवतः, बहुभाषिणि अभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-वागस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वाचालो बहुभाषी (आलच्)। वाचाटो बहुभाषी (आटच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (वाचः) वाच् प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (आलजाटचौ) आलच् और आटच् प्रत्यय होते हैं (बहुभाषिणि) बहुभाषी अर्थ अभिधेय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-वाक् इसकी है वा इसमें है यह-वाचाल बहुभाषी (आलच्)। वाचाट बहुभाषी (आटच्)।

सिद्धि-(१) वाचालः। वाच्+सु+आलच्। वाच्+आल। वाचाल+सु। वाचालः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'वाच्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा बहुभाषी अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'आलच्' प्रत्यय है।

(२) वाचाटः। यहां 'वाच्' शब्द से पूर्ववत् 'आटच्' प्रत्यय है।

विशेषः *यहां निन्दित बहुभाषी अर्थ में 'वाच्' शब्द से आलच् और आटच् प्रत्यय होते हैं-वाचाल, वाचाट (बकवादी)। प्रशस्त बहुभाषी अर्थ में तो **'वाचो ग्मिनिः'** (५।२।१२४) से ग्मिनि प्रत्यय ही होता है-**वाग्ग्मी**।*

निपातनम्–

(३३) स्वामिन्नैश्वर्ये।१२६।

प०वि०-स्वामिन् (सु-लुक्) ऐश्वर्ये ७।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् स्वामिन् अस्य, अस्मिन्निति निपात्यते, ऐश्वर्ये, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थम् 'स्वामिन्' इति प्रातिपदिकम् अस्येति षष्ठ्यर्थे अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे आमिन्प्रत्ययान्तं निपात्यते, ऐश्वर्ये गम्यमाने, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-स्वम्=ऐश्वर्यमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-स्वामी।। स्वामी। स्वामिनौ। स्वामिनः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) **प्रथमा**-समर्थ (स्वामिन्) स्वामिन् प्रातिपदिक (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में आमिन्-प्रत्ययान्त निपातित है (ऐश्वर्ये) यदि वहां ऐश्वर्य अर्थ की प्रतीति हो (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-स्व=ऐश्वर्य इसका है वा इसमें है यह-स्वामी।

*सिद्धि-**स्वामी।** स्व+सु+आमिन्। स्व्+आमिन्। स्वामिन्+सु। स्वामीन्+सु। स्वामीन्+०। स्वामी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'स्व' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा ऐश्वर्य अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'आमिन्' प्रत्यय निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है।*

अच्–

(३४) अर्शआदिभ्योऽच्।१२७।

प०वि०-अर्शस्-आदिभ्यः ५।३ अच् १।१।

स०-अर्शस् आदिर्येषां ते-अर्शआदयः, तेभ्यः-अर्शआदिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अर्शआदिभ्योऽस्य, अस्मिन्निति अच्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्योऽर्शआदिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थेऽच् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-अर्शांसि अस्य, अस्मिन् वा सन्ति-अर्शसः। उरोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-उरसः, इत्यादिकम्।

अर्शस्। उरस्। तुन्द। चतुर। पलित। जटा। घटा। अभ्र। कर्दम। आम। लवण। स्वाङ्गादधीनात्। वर्णात्। इति अर्शआदयः आकृतिगणोऽयम्।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अर्शआदिभ्यः) अर्शस्-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अच्) अच् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-अर्श=बवासीर इसके है वा इसमें है यह-अर्शस। उरस्=छाती इसके है वा इसमें है यह-उरस, इत्यादि।

सिद्धि-अर्शसः। अर्शस्+जस्+अच्। अर्शस्+अ। अर्शस+सु। अर्शसः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'अर्शस्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-उरसः।

इनिः—

(३५) द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः।१२८।

प०वि०-द्वन्द्व-उपताप-गर्ह्यात् ५।१ प्राणिस्थात् ५।१ इनिः १।१।

स०-द्वन्द्वश्च उपतापश्च गर्ह्यं च एतेषां समाहारो द्वन्द्वोपतापगर्ह्यम्, तस्मात्-द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् (समाहारद्वन्द्वः)। प्राणिनि तिष्ठतीति-प्राणिस्थः, तस्मात्-प्राणिस्थात् (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् प्राणिस्थाद् द्वन्द्वोपतापगर्ह्याद् अस्य, अस्मिन्निति इनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः प्राणिस्थेभ्यो द्वन्द्वसंज्ञकेभ्य उपतापवाचिभ्यो गर्ह्यवाचिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(द्वन्द्वः) कटकश्च वलयं च ते-कटकवलये। कटकवलये अस्याः, अस्यां वा स्तः-कटकवलयिनी नारी। शङ्खश्च नुपूरं च ते-शङ्खनुपूरे। शङ्खनुपूरे अस्याः, अस्यां वा स्तः-शंखनुपूरिणी नारी। **(उपतापः)** कुष्ठोऽस्य, अस्यां वाऽस्ति-कुष्ठी। किलासोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-किलासी। **(गर्ह्यम्)** ककुदावर्तोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-ककुदावर्ती। काकतालुकमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-काकतालुकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (प्राणिस्थात्) प्राणी में अवस्थित (द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्) द्वन्द्वसंज्ञक, उपताप=रोगविशेषवाची और गर्ह्य=निन्दावाची प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(द्वन्द्व) कटक और वलय इसके हैं वा इसमें हैं यह-कटकवलयिनी नारी। कटक=कड़ूला और वलय=कंगण। शङ्ख और नुपूर इसके हैं वा इसमें हैं यह-शङ्खनुपूरिणी नारी। शङ्ख=शंख नामक आभूषण और नुपूर=घुंघरू आभूषण इसके हैं वा इसमें हैं यह-शङ्खनुपूरिणी नारी। (उपताप) कुष्ठ=कोढ़ नामक रोग इसका है वा इसमें है यह-कुष्ठी (कोढ़ी)। किलास=सफेद कोढ़ इसका है वा इसमें है यह-किलासी (सफेद कोढ़वाला)। (गर्ह्य) ककुदावर्त नामक दोष इसका है वा इसमें है यह-ककुदावर्ती बैल। ककुदावर्त=थूही का गोल होना। काकतालुक नामक दोष इसका है वा इसमें है यह-काकतालुकी बैल। काकस्थानीय तालु प्रदेश में विद्यमान दोषविशेष।

सिद्धि-(१) ***कटकवलयिनी।*** *कटकवलय+सु+इनि। कटकवलय्+इन्। कटकवलयिन्+ङीप्। कटकवलयिनी+सु। कटक०वलयी। कटकवलयी।*

यहां प्रथमा-समर्थ, द्वन्द्वसंज्ञक 'कटकवलय' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'ऋन्नेभ्यो ङीप्'*** *(४।१।५) से ङीप् प्रत्यय है। ऐसे ही-**शङ्खनुपूरिणी।***

(२) 'कुष्ठी' आदि पदों की सिद्धि ***'तपस्वी'*** *(५।२।१०२) के समान है।*

इनिः (कुक्)-

(३६) वातातिसाराभ्यां कुक् च।१२६।

प०वि०-वात-अतिसाराभ्याम् ५।२ कुक् १।१ च अव्ययपदम्।

स०-वातश्च अतिसारश्च तौ वातातिसारौ, ताभ्याम्-वातातिसाराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् कुक् च, वातातिसाराभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति वा इनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यामस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, कुक् चाऽऽगमो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(**वातः**) वातोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-वातकी। (**अतिसारः**) अतिसारोऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-अतिसारकी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (वातातिसाराभ्याम्) वात, अतिसार प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (च) और उन्हें कुक् आगम होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(वात) वात=वायु रोग इसका है वा इसमें है यह-वातकी (वातरोगी)। (अतिसार) अतिसार=दस्त रोग इसका है वा इसमें है यह-अतिसारकी (दस्त का रोगी)।

सिद्धि-वातकी। *वात+सु+इनि। वात+कुक्+इक्। वात+क्+इन्। वातकिन्+सु। वातकीन्+सु। वातकीन्+0। वातकी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'वात' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय और उसे 'कुक्' आगम होता है। शेष कार्य **'तपस्वी'** (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-**अतिसारकी**।*

इनिः—

(३६) वयसि पूरणात्।१३०।

प०वि०-वयसि ७।१ पूरणात् ५।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पूरणाद् अस्य, अस्मिन्निति इनिर्वयसि, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थात् पूरण-प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, वयसि गम्यमाने, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-पञ्चमो मासः संवत्सरो वाऽस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-पञ्चमी उष्ट्रः। दशमी उष्ट्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पूरणात्) पूरण-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (वयसि) यदि वहां वयः=आयु अर्थ की प्रतीति हो और (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-पञ्चम=पांचवां मास वा वर्ष इसका है वा इसमें है यह-पञ्चमी उष्ट्र (ऊंट)। दशम=दसवां मास वा वर्ष इसका है वा इसमें है यह-दशमी उष्ट्र। दश मास वा दश वर्ष का ऊंट।

सिद्धि-पञ्चमी। *पञ्चम+सु+इनि। पञ्चम्+इन्। पञ्चमिन्+सु। पञ्चमीन्+सु। पञ्चमीन्+०। पञ्चमी०। पञ्चमी।*

यहां प्रथमा-समर्थ, पूरण-प्रत्ययान्त 'पञ्चम' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में वयः=आयु अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य ***'तपस्वी'*** *(५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-***दशमी।**

इनिः-

(३८) सुखादिभ्यश्च।१३१।

प०वि०-सुख-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-सुखम् आदिर्येषां ते सुखादयः, तेभ्यः-सुखादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् सुखादिभ्यश्चाऽस्य, अस्मिन्निति इनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः सुखादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-सुखमस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-सुखी। दुःखी, इत्यादिकम्।

सुख। दुःख। तृप्र। कृच्छ्र। आम्र। अलीक। करुणा। कृपण। सोढ। प्रमीप। शील। हल। माला क्षेपे। प्रणय। इति सुखादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (सुखादिभ्यः) सुख-आदि प्रातिपदिकों से (च) भी (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-सुख इसका है वा इसमें है यह-सुखी। दुःख इसका है वा इसमें है यह-दुःखी, इत्यादि।

सिद्धि-सुखी। *सुख+सु+इनि। सुख्+इन्। सुखिन्+सु। सुखीन्+सु। सुखीन्+०। सुखी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'सुख' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-दुःखी।

इनिः-

(३६) धर्मशीलवर्णान्ताच्च।१३२।

प०वि०-धर्म-शील-वर्णान्तात् ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-धर्मश्च शीलं च वर्णश्च ते धर्मशीलवर्णाः। धर्मशीलवर्णा अन्ते यस्य तत्-धर्मशीलवर्णान्तम्, तस्मात्-धर्मशीलवर्णान्तात् (इतरेतरयोग-द्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् धर्मशीलवर्णान्ताच्च अस्य अस्मिन्निति इनिः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो धर्मशीलवर्णान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्चास्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(धर्मान्तम्)** वैदिकधर्मोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-वैदिकधर्मी। **(शीलान्तम्)** ब्राह्मणशीलमस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-ब्राह्मणशीली। **(वर्णान्तम्)** क्षत्रियवर्णोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-क्षत्रियवर्णी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (धर्मशीलवर्णान्तात्) धर्म, शील, वर्ण शब्द जिनके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(धर्मान्त)** वैदिकधर्म इसका है वा इसमें है यह-वैदिकधर्मी। **(शीलान्त)** ब्राह्मणशील इसका है वा इसमें है यह-ब्राह्मणशीली। **(वर्णान्त)** क्षत्रियवर्ण इसका है वा इसमें है यह-क्षत्रियवर्णी।*

*सिद्धि-**वैदिकधर्मी।** वैदिकधर्म+सु+इनि। वैदिकधर्म्+इन्। वैदिकधर्मिन्+सु। वैदिकधर्मीन्+सु। वैदिकधर्मिन्०। वैदिकधर्मी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, धर्मान्त 'वैदिकधर्म' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-**ब्राह्मणशीली। क्षत्रियवर्णी।***

इनिः–

(४०) हस्ताज्जातौ।१३३।

प०वि०-हस्तात् ५।१। जातौ ७।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् हस्ताद् अस्याऽस्मिन्निति इनिः, जातौ, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् हस्त-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, जाताावभिधेयायाम्, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-हस्तोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-हस्ती।। हस्ती। हस्तिनौ। हस्तिनः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (हस्तात्) हस्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (जातौ) जाति अर्थ अभिधेय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-हस्त=हाथ इसका है वा इसमें है यह-हस्ती (हाथी)।

*सिद्धि-**हस्ती**। हस्त+सु+इनि। हस्त्+इन्। हस्तिन्+सु। हस्तीन्+सु। हस्तीन्+०। हस्ती।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'हस्त' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा जाति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य '**तपस्वी**' (५।२।१०२) के समान है।*

इनिः–

(४१) वर्णाद् ब्रह्मचारिणि।१३४।

प०वि०-वर्णात् ५।१ ब्रह्मचारिणि ७।१।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् वर्णाद् अस्य अस्मिन्निति इनिः, ब्रह्मचारिणि, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् वर्ण-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, ब्रह्मचारिणि अभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-वर्णोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-वर्णी ब्रह्मचारी।। वर्णी। वर्णिनौ। वर्णिनः। ब्रह्मचारीति चातुर्वर्णिकोऽभिप्रेतः। स हि विद्याग्रहणार्थमुपनीतो ब्रह्म चरति=नियममासेवते इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (वर्णात्) वर्ण प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (ब्रह्मचारिणि) ब्रह्मचारी अर्थ अभिधेय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-वर्ण इसका है वा इसमें है यह-वर्णी ब्रह्मचारी। ब्रह्मचारी का अभिप्राय चातुर्वर्णिक है, क्योंकि वह ब्रह्म=वेदाध्ययन के लिये आचार्य के द्वारा उपनीत होकर तत्सम्बन्धी नियमों का आचरण करता है।

सिद्धि-वर्णी। *वर्ण+सु+इन्। वर्ण्+इन्। वर्णिन्+सु। वर्णीन्+सु। वर्णीन्+०। वर्णी।*

यहां प्रथमा-समर्थ 'वर्ण' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) विभक्ति के अर्थ में ब्रह्मचारी अर्थ अभिधेय में 'इनि' प्रत्यय है। शेष कार्य 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है।

इनिः-

(४२) पुष्करादिभ्यो देशे।१३५।

प०वि०-पुष्कर-आदिभ्यः ५।३ देशे ७।१।

स०-पुष्कर आदिर्येषां ते पुष्करादयः, तेभ्यः-पुष्करादिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् पुष्करादिभ्योऽस्याऽस्मिन्निति इनिः, देशे, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यः पुष्करादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, देशेऽभिधेये, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-पुस्करोऽस्या अस्यां वाऽस्ति-पुष्पकरिणी, पद्मिनी, इत्यादिर्कम्।

पुष्कर। पद्म। उत्पल। तमाल। कुमुद। नड। कपित्थ। बिस। मृणाल। कर्दम। शालूक। विगर्ह। करीष। शिरीष। यवास। प्रवास। हिरण्य। इति पुष्करादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (पुष्करादिभ्यः) पुष्कर आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (देशे) देश अर्थ अभिधेय में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-पुष्कर=कमल इसका है वा इसमें है यह-पुष्करिणी (कमलों का तालाब)। पद्म=कमल इसका है वा इसमें है यह-पद्मिनी (कमलों का सरोवर) इत्यादि।

***सिद्धि-पुष्करिणी।** पुष्कर+सु+इन्। पुष्कर्+इन्। पुष्करिन्+ङीप्। पुष्करिणी+सु। पुष्करिणी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'पुष्कर' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा देश अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'ऋन्नेभ्यो ङीप्'** (४।१।५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**पद्मिनी।***

मतुप्-विकल्पः-

(४३) बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम्।१३६।

प०वि०-बल-आदिभ्यः ५।३ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-बलम् आदिर्येषां ते बलादयः, तेभ्यः-बलादिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् बलादिभ्योऽस्याऽस्मिन्निति अन्यतरस्यां मतुप्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यो बलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे विकल्पेन मतुप् प्रत्ययो भवति, पक्षे च इनिः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-बलमस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-बलवान् (मतुप्)। बली (इनिः)। उत्साहोऽस्याऽस्मिन् वाऽस्ति-उत्साहवान् (मतुप्)। उत्साही (इनिः) इत्यादिकम्।

बल। उत्साह। उद्भाव। उद्वास। उद्वाम। शिखा। पूग। मूल। देश। कुल। आयाम। व्यायाम। उपयाम। आरोह। अवरोह। परिणाह। युद्ध। इति बलादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (बलादिभ्यः) बल-आदि प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (मतुप्) मतुप् प्रत्यय होता है और पक्ष में इनि प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-बल इसका है वा इसमें है यह-बलवान् (मतुप्)। बली (इनि)। उत्साह इसका है वा इसमें है यह-उत्साहवान् (मतुप्)। उत्साही (इनि) इत्यादि।

सिद्धि-(१) बलवान् पद की सिद्धि 'वृक्षवान्' (५।२।९४) के समान है। ऐसे ही-उत्साहवान्।

(२) बली पद की सिद्धि 'तपस्वी' (५।२।१०२) के समान है। ऐसे ही-उत्साही।

इनिः-

(४४) संज्ञायां मन्माभ्याम्।१३७।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ मन्माभ्याम् ५।२।

स०-मन् च मश्च तौ मन्मौ, ताभ्याम्-मन्माभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इनिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् मन्माभ्यामस्य, अस्मिन्निति इनिः, संज्ञायाम्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाद् मन्नन्ताद् मकारान्ताच्च प्रातिपदिकाद् अस्येति षष्ठ्यर्थेऽस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे इनिः प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(मन्नन्तम्) प्रथिमाऽस्या अस्यां वाऽस्ति-प्रथिमिनी। दामाऽस्या अस्यां वाऽस्ति-दामिनी। **(मकारान्तम्)** होमोऽस्या अस्यां वाऽस्ति-होमिनी। सोमोऽस्या अस्यां वाऽस्ति-सोमिनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (मन्माभ्याम्) मन्नन्त और मकारान्त प्रातिपदिक से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति और (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (इनिः) इनि प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(मन्नन्त)** प्रथिमा=जघन-विस्तार इसका है वा इसमें है यह-प्रथिमिनी नारीविशेष। दामा=चमक इसकी है या इसमें है यह-दामिनी विद्युत्। **(मकारान्त)** होम=यज्ञ इसका है वा इसमें है यह-होमिनी। यज्ञ करनेवाली नारीविशेष। सोम=सोमपान इसका है वा इसमें है यह-सोमिनी। सोमपान करनेवाली नारीविशेष।*

*सिद्धि-**प्रथिमिनी**। प्रथिमन्+सु+इनि। प्रथिम्+इन्। प्रथिमिन्+ङीप्। प्रथिमिनी+सु। प्रथिमिनी।*

*यहां प्रथमा-समर्थ, मन्नन्त, 'प्रथिमन्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में तथा संज्ञा विषय में इस सूत्र से 'इनि' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से*

अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' (४।१।५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-दामिनी, होमिनी, सोमिनी।

बादयः सप्तप्रत्ययाः–

(४५) कंशंभ्यां बभयुस्तितुतयसः।१३८।

प०वि०-कम्-शंभ्याम् ५।२ ब-भ-युस्-ति-तु-त-यसः १।३।

स०-कम् च शम् च तौ कंशमौ, ताभ्याम्-कंशंभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। बश्च भश्च युस् च तिश्च तुश्च तश्च यस् च ते-बभयुस्तितुतयसः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् कंशंभ्याम् अस्य, अस्मिन्निति बभयुस्तितुतयसः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्यां कंशंभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे, अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे ब-भ-युस्-ति-तु-त-यसः सप्त प्रत्यया भवन्ति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-**(कम्)** कम्=उदकम् अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-कम्बः (बः)। **कम्भः** (भः)। कंयुः (युस्)। कन्तिः (तिः)। कन्तुः (तुः)। कन्तः (तः)। कंयः (यस्)। **(शम्)** शम्=सुखम् अस्य, अस्मिन् वाऽस्ति-शम्बः (बः)। शम्भः (भः)। शंयुः (युस्)। शन्तिः (तिः)। शन्तुः (तुः)। शन्तः (तः)। शंयः (यस्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (कंशंभ्याम्) कम्, शम् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (बभयुस्तितुतयसः) ब, भ, युस्, ति, तु, त, यस् ये सात प्रत्यय होते हैं (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(कम्) कम्=जल इसका है वा इसमें है यह-कम्ब (ब)। कम्भ (भ)। कंयु (युस्)। कन्ति (ति)। कन्तु (तु)। कन्त (त)। कंय (यस्)। (शम्) शम्=सुख इसका है वा इसमें है यह-शम्ब (ब)। शम्भ (भ)। शंयु (युस्)। शन्ति (ति)। शन्तु (तु)। शन्त (त)। शंय (यस्)।

सिद्धि-(१) कम्बः। कम्+सु+ब। कम्+ब। कं+ब। कम्ब+सु। कम्बः।

यहां प्रथमा-समर्थ 'कम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'ब' प्रत्यय है। 'मोऽनुस्वारः' (८।३।२३) से 'कम्' के मकार को अनुस्वार

*आदेश और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' (८।४।५८) से उसे परसवर्ण आदेश होता है। ऐसे ही-**कम्भः, कन्तिः, कन्तुः, कन्तः।***

*(२) **कंयुः।** यहां 'कम्' शब्द से पूर्ववत् 'युस्' प्रत्यय के सित् होने से **'सिति च'** (१।४।१६) से 'कम्' की पदसंज्ञा होकर **'मोऽनुस्वारः'** (८।३।२३) से मकार को अनुस्वार आदेश होता है और **'वा पदान्तस्य'** (८।४।५९) से अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण अनुनासिक यकार आदेश भी होता है-**कय्ँयुः।** ऐसे ही-**कंयः, कय्ँयः।***

*(३) **शम्बः।** यहां 'शम्' शब्द से पूर्ववत् 'ब' प्रत्यय है। शेष कार्य 'कम्बः' के समान है। ऐसे ही-**शम्भः, शन्तिः, शन्तुः, शन्तः।***

*(४) **शंयुः।** यहां 'शम्' शब्द से पूर्ववत् 'युस्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'कंयुः' के समान है-शय्ँयुः, शंयः, शय्ँयः, पूर्ववत्।*

भः-

(४६) तुन्दिबलिवटेर्भः।१३६।

प०वि०-तुन्दि-बलि-वटेः ५।१ भः १।१।

स०-तुन्दिश्च बलिश्च वटिश्च एतेषां समाहारः-तुन्दिबलिवटिः, तस्मात्-तुन्दिबलिवटेः (समाहारद्वन्द्वः)। समाहारद्वन्द्वे सौत्रं पुंस्त्वं वेदितव्यम्।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत् तुन्दिबलिवटेरस्य अस्मिन्निति भः, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थेभ्यस्तुन्दिबलिवटिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽस्येति षष्ठ्यर्थे अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे भः प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति।

उदा०-(तुन्दिः) तुन्दिरस्य अस्मिन् वाऽस्ति-तुन्दिभः। **(बलिः)** बलिरस्य अस्मिन् वाऽस्ति-बलिभः। **(वटिः)** वटिरस्य अस्मिन् वाऽस्ति-वटिभः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (तुन्दिबलिवटेः) तुन्दि, बलि, **वटि** प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (भः) **भ** प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

उदा०-(तुन्दि) तुन्दि=बढ़ी हुई नाभि इसकी है वा इसमें है यह-तुन्दिभ (सूंडला)। (बलि) बलि=भूतयज्ञ इसका है वा इसमें है यह-बलिभ। प्राणियों को भोजन-दान करनेवाला। (वटि) वटि=गोली इसकी है वा इसमें है यह-वटिभ (गोलीवाला)।

सिद्धि-**तुन्दिभः** *। तुन्दि+सु+भ । तुन्दि+भ । तुन्दिभ+सु । तुन्दिभः ।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'तुन्दि' शब्द से अस्य (षष्ठी) वा अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'भ' प्रत्यय है। ऐसे ही-**बलिभः, वटिभः।***

युस्–

(४७) अहंशुभमोर्युस् ।१४०।

प०वि०-अहम्-शुभमोः ६ ।२ (पञ्चम्यर्थे) युस् १ ।१ ।

स०-अहं च शुभं च तौ-अहंशुभमौ, तयोः-अहंशुभमोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। 'अहम्' इति शब्दोऽत्राहङ्कारेऽर्थे वर्तते। 'शुभम्' इति चाव्ययं शुभपर्यायः=कल्याणवाची वेदितव्यः ।

अनु०-तत्, अस्य, अस्ति, अस्मिन्, इति, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद् अहंशुभम्भ्याम् अस्य अस्मिन्निति च युस्, अस्ति।

अर्थः-तद् इति प्रथमासमर्थाभ्याम् अहंशुभम्भ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् अस्येति षष्ठ्यर्थे अस्मिन्निति च सप्तम्यर्थे युस् प्रत्ययो भवति, यत् प्रथमासमर्थमस्ति चेत् तद् भवति ।

उदा०-**(अहम्)** अहमस्य अस्मिन् वाऽस्ति-अहंयुः=अहङ्कारीत्यर्थः। **(शुभम्)** शुभमस्य अस्मिन् वाऽस्ति-शुभंयुः=कल्याणीत्यर्थः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्) प्रथमा-समर्थ (अहंशुभमोः) अहम्, शुभम् प्रातिपदिकों से (अस्य) षष्ठी-विभक्ति वा (अस्मिन्निति) सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में (युस्) युस् प्रत्यय होता है (अस्ति) जो प्रथमा-समर्थ है यदि वह 'अस्ति' हो।*

*उदा०-**(अहम्)** अहम्=अहंकार इसका है वा इसमें है यह-अहंयु=अभिमानी (घमण्डी)। **(शुभम्)** शुभम्=कल्याण इसका है वा इसमें है यह-शुभंयु=कल्याण करनेवाला (परोपकारी)।*

सिद्धि-अहंयुः। *अहम्+सु+युस्। अहम्+यु। अहं+यु। अहंयु+सु। अहंयुः।*

*यहां प्रथमा-समर्थ 'अहम्' शब्द से अस्य (षष्ठी) और अस्मिन् (सप्तमी) अर्थ में इस सूत्र से 'युस्' प्रत्यय है। प्रत्यय के सित् होने से **'सिति च'** (१।४।१६) से 'अहम्' की पदसंज्ञा होकर **'मोऽनुस्वारः'** (८।३।२३) से 'अहम्' के मकार को अनुस्वार आदेश होता है। **'वा पदान्तस्य'** (८।४।५९) से मकार को विकल्प से परसवर्ण आदेश भी होता है-**अहय्ँयुः**। ऐसे ही-**शुभंयुः, शुभय्ँयुः।***

इति मतुबर्थप्रत्ययप्रकरणम्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने
पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।।

पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः

विभक्तिसंज्ञाप्रकरणम्

विभक्ति-अधिकारः-

(१) प्राग् दिशो विभक्तिः ।१।

प०वि०-प्राक् १।१ दिशः ५।१ विभक्तिः १।१।

अन्वयः-दिशः प्राग् विभक्तिः ।

अर्थः-"**दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः**" (५।३।२७) इति वक्ष्यति, इत्येतस्मात् प्राग् वक्ष्यमाणाः प्रत्यया विभक्तिसंज्ञका भवन्तीत्यधिकारोऽयम् ।

उदा०-वक्ष्यति-'**पञ्चम्यास्तसिल्**' (५।३।७) इति, ततः । कुतः । यतः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिशः) पाणिनि मुनि पढ़ेंगे-'**दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः**' (५।३।२७) इस सूत्र में विद्यमान 'दिक्' शब्द से (प्राक्) पहले विधीयमान प्रत्ययों की (विभक्तिः) विभक्ति संज्ञा होती है।*

उदा०-'पञ्चम्यास्तसिल्' (५।३।७) ततः=वहां से। कुतः=कहां से। यतः=जहां से।

सिद्धि-'ततः' आदि पदों की सिद्धि यथास्थान लिखी जायेगी और प्रत्ययों की विभक्ति-संज्ञा का प्रयोजन भी वहीं बतलाया जायेगा।

विशेषः *अब इससे आगे स्वार्थिक प्रत्ययों का विधान किया जायेगा। '**समर्थानां प्रथमाद् वा**' (४।१।८२) से चला आ रहा '**समर्थानाम्, प्रथमात्**' इन दो पदों का अधिकार निवृत्त होगया है। 'वा' पद का अधिकार विद्यमान है, अतः वा-अधिकार से 'तसिल्' आदि प्रत्यय विकल्प से होते हैं। विकल्प पक्ष में 'पञ्चमी' विभक्ति आदि भी बनी रहती है-**तस्मात्-ततः। कस्मात्-कुतः। यस्मात्-यतः,** इत्यादि।*

प्रत्ययविधानाधिकारः-

(२) किंसर्वनामबहुभ्योऽद्व्यादिभ्यः ।२।

प०वि०-किम्-सर्वनाम-बहुभ्यः ५।३ अद्वि-आदिभ्यः ५।३।

स०-किं च सर्वनाम च बहुश्च ते-किंसर्वनामबहवः, तेभ्यः-किं सर्वनामबहुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। द्वि आदिर्येषां ते द्व्यादयः, न द्व्यादयः-अद्व्यादयः, तेभ्यः-अद्व्यादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-प्राक्, दिशः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यो दिशः प्राग् विभक्तिः प्रत्ययाः।

अर्थः-द्व्यादिवर्जितेभ्यः किं सर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो वक्ष्यमाणाः प्राग्दिशीयाः विभक्तिसंज्ञकाः प्रत्यया भवन्तीत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-**(किम्)** कुतः। कुत्र। **(सर्वनाम)** ततः। तत्र। यतः। यत्र। **(बहु)** बहुतः। बहुत्र।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अद्व्यादि) द्वि-आदि शब्दों से भिन्न (किं सर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम-संज्ञक, बहु प्रातिपदिकों से (प्राक्-दिशः) प्राग्-दिशीय (विभक्तिः) विभक्तिसंज्ञक प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-**(किम्)** कुतः=कहां से। कुत्र=कहां। **(सर्वनाम)** ततः=वहां से। तत्र=वहां। यतः=जहां से। यत्र=जहां। **(बहु)** बहुतः=बहुत स्थानों से। बहुत्र=बहुत स्थानों में।*

सिद्धि-'कुतः' आदि पदों की सिद्धि यथास्थान लिखी जायेगी।

***विशेषः** द्वि-आदि शब्द 'सर्वादिगण' (१।१।२७) में पठित हैं-द्वि। युष्मद्। अस्मद्। भवतु। किम्। इनसे वक्ष्यमाण विभक्ति-संज्ञक प्रत्यय नहीं होते हैं।*

इश्-आदेशः—

(३) इदम इश्।३।

प०वि०-इदमः ६।१ इश् १।१।

अनु०-प्राक्, दिशः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदम इश् प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके प्रत्यये।

अर्थः-इदमः स्थाने इश् आदेशो भवति, प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके प्रत्यये परतः।

उदा०-अस्मिन्-इह।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदमः) इदम् के स्थान में (इश्) इश् आदेश होता है (प्राग्दिशः) प्राग्-दिशीय (विभक्तिः) विभक्ति-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-इसमें-इह (इस स्थान पर) यहां।

सिद्धि-इह। इदम्+ह। इश्+ह। इ+ह। इह+सु। इह+०। इह।

*यहां 'इदम्' शब्द से '**इदमो हः**' (५।३।११) से प्राग्दिशीय, विभक्ति-संज्ञक 'ह' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इदम्' के स्थान में 'इश्' आदेश होता है। आदेश के 'शित्' होने से यह '**अनेकाल्शित् सर्वस्य**' (१।१।५५) से सर्वादेश होता है। 'इह' शब्द की '**तद्धितश्चासर्वविभक्तिः**' (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होकर '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' प्रत्यय का लुक् हो जाता है।*

एत-इदादेशौ–

(४) एतेतौ रथोः।४।

प०वि०-एतश्च इच्च तौ-एतेतौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। रश्च थ् च तौ रथौ, तयोः-रथोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। रेफेऽकार उच्चारणार्थः।

अनु०-प्राक्, दिशः, विभक्तिः, इदम इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इदम एतेतौ प्राग्दिशीययोर्विभक्त्यो रथोः।

अर्थः-इदमः स्थाने यथासंख्यम् एत-इतावादेशौ भवतः प्रागदिशीये विभक्तिसंज्ञके रेफादौ थकारादौ च प्रत्यये परतः।

उदा०-(**रेफादिः**) अस्मिन् काले-एतर्हि। (**थकारादिः**) अनेन प्रकारेण-इत्थम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इदमः) इदम् के स्थान में (एतेतौ) यथासंख्य एत, इत् आदेश होते हैं (प्राग्दिशः) प्राग्दिशीय (विभक्तिः) विभक्ति-संज्ञक प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-(रेफादि) इस काल में-एतर्हि। (**थकारादि**) इस प्रकार से-इत्थम्।*

सिद्धि-(१) एतर्हि। इदम्+र्हिल्। एत+र्हि। एतर्हि+सु। एतर्हि।

*यहां 'इदम्' शब्द से '**इदमो र्हिल्**' (५।३।१६) से रेफादि र्हिल् प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इदम्' के स्थान में 'एत' आदेश होता है। आदेश के अनेकाल् होने से वह '**अनेकाल्शित् सर्वस्य**' (१।१।५) से सर्वादेश किया जाता है। पूर्ववत् अव्ययसंज्ञा और 'सु' का लुक् होता है।*

(२) इत्थम्। इदम्+थमु। इत्+थम्। इत्थम्+सु। इत्थम्।

यहां 'इदम्' शब्द से 'इदमस्थमुः' (५।३।२४) से थकारादि 'थमु' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'इदम्' के स्थान में पूर्ववत् 'इत्' सर्वादेश होता है। पूर्ववत् अव्ययसंज्ञा और 'सु' का लुक् होता है।

अन् आदेशः–

(५) एतदोऽन्।५।

प०वि०-एतदः ६।१ अन् १।१।

अनु०-प्राक्, दिशः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-एतदोऽन् प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके प्रत्यये।

अर्थः-एतदः स्थानेऽन् आदेशो भवति, प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके प्रत्यये परतः।

उदा०-अस्मात्-अतः। अस्मिन्-अत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ-(एतदः) एतद् के स्थान में (अन्) अन् आदेश होता है (प्राग्दिशः) प्राग्दिशीय (विभक्तिः) विभक्तिसंज्ञक प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-इस कारण से-अतः। इस स्थान पर-अत्र (यहां)।

सिद्धि-(१) अतः। एतत्+ङसि+तसिल्। अन्+तस्। अ०+तस्। अतस्+सु। अतस्+०। अतरु। अतर्। अतः।

यहां 'एतत्' शब्द से 'पञ्चम्यास्तसिल्' (५।३।७) से प्राग्दिशीय, विभक्तिसंज्ञक 'तसिल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'एतत्' के स्थान में पूर्ववत् 'अन्' सर्वादेश होता है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'अन्' के नकार का लोप हो जाता है। पूर्ववत् अव्यय संज्ञा होकर 'सु' का लोप हो जाता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से 'स्' को रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है।

(२) अत्र। एतत्+ङि+त्रल्। अन्+त्र। अ०+त्र। अत्र+सु। अत्र।

यहां 'एतत्' शब्द से 'सप्तम्यास्त्रल्' (५।३।१०) से 'त्रल्' प्रत्यय है। इस सूत्र से 'एतत्' के स्थान में 'अन्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

विशेषः *काशिकावृत्ति में 'एतदोऽश्' सूत्रपाठ है। यहां महाभाष्यानुसारी 'एतदोऽन्' सूत्रपाठ स्वीकार किया गया है।*

स-आदेशः–

(६) सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि।६।

प०वि०-सर्वस्य ६।१ सः १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, दि ७।१।

अनु०-प्राक्, दिशः, विभक्तिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-सर्वस्यान्तरस्यां सः, प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके दि प्रत्यये।

अर्थः-सर्वस्य स्थाने विकल्पेन स आदेशो भवति, प्राग्दिशीये विभक्तिसंज्ञके दकारादौ प्रत्यये परतः।

उदा०-सर्वस्मिन् काले-सर्वदा। सदा (स-आदेशः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सर्वस्य) सर्व के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (सः) स आदेश होता है (प्राग्दिशः) प्राग्दिशीय (विभक्तिः) विभक्तिसंज्ञक (दि) दकारादि प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-सब काल में-सर्वदा। सदा। (स-आदेश)।

*सिद्धि-(१) **सर्वदा।** सर्व+ङि+दा। सर्व+दा। सर्वदा+सु। सर्वदा।*

यहां सप्तम्यन्त 'सर्व' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में **'सर्वैकान्यकियत्तदः काले दा'** *(५।३।१५) से 'दा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(२) **सदा।** सर्व+ङि+दा। स+दा। सदा+सु। सदा।*

यहां 'सर्व' शब्द से पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय और इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'सर्व' के स्थान में 'स' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

तसिल्-

(७) पञ्चम्यास्तसिल्।७।

प०वि०-पञ्चम्याः ५।१ तसिल् १।१।

अनु०-किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्य इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-पञ्चम्यन्तेभ्योऽद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यस्तसिल्।

अर्थः-पञ्चम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तसिल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(किम्)** कस्मात्-कुतः। **(सर्वनाम)** यस्मात्-यतः। तस्मात्-ततः। **(बहु)** बहोः-बहुतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से भिन्न (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से (तसिल्) तसिल् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(किम्)** किससे-कुतः। **(सर्वनाम)** जिससे-यतः। उससे-ततः। **(बहु)** बहुत से-बहुतः।*

सिद्धि-(१) कुतः। किम्+ङसि+तसिल्। कु+तस्। कुतस्+सु। कुतस्+०। कुतरु। कुतर्। कुत+सु। कुतः।

*यहां पञ्चम्यन्त 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'तसिल्' प्रत्यय है। 'कु तिहोः' (७।२।१०४) से 'किम्' के स्थान में 'कु' आदेश होता है। **'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः'** (१।१।३८) से अव्ययसंज्ञा होकर **'अव्ययदाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से विसर्जनीय आदेश होता है।*

(२) यतः। यत्+ङि+तसिल्। यअ+तस्। य+तस्। यतस्+सु। यतस्+०। यतरु। यतर्। यतः।

*यहां पञ्चम्यन्त, सर्वनामसंज्ञक 'यत्' शब्द से इस सूत्र से 'तसिल्' प्रत्यय है। 'तसिल्' प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होने से 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से 'यत्' के तकार को अकार आदेश होता है और **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही 'तत्' शब्द से-ततः, और 'बहु' शब्द से-बहुतः।*

तसिल्-आदेशः–

(८) तसेश्च।८।

प०वि०-तसेः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्यः, पञ्चम्याः, तसिल्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पञ्चम्यन्तेभ्योऽद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यस्तसेश्च तसिल्।

अर्थः-पञ्चम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः परस्य तसिप्रत्ययस्य स्थाने च तसिल् आदेशो भवति।

उदा०-**(किम्)** कस्मात्-कुत आगतः। **(सर्वनाम)** यस्मात्-यत आगतः। तस्मात्-तत आगतः। **(बहुः)** बहोः-बहुत आगतः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से रहित (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से विहित (तसेः) तसि प्रत्यय के स्थान में (च) भी (तसिल्) तसिल् आदेश होता है।*

*उदा०-(किम्) **कुत आगतः।** कहां से आया। (सर्वनाम) **यत आगतः।** जहां से आया। **तत आगतः।** वहां से आया। (बहु) **बहुत आगतः।** बहुत स्थानों से आया।*

सिद्धि-कुतः । किम्+ङसि+तसि । किम्+तसिल् । कु+तस् । कुतस्+सु । कुतस्+० । कुतरु । कुतर् । कुतः ।

यहां पञ्चम्यन्त 'किम्' शब्द से 'अपादाने चाहीयरुहोः' (५।४।४५) से 'तसि' प्रत्यय होता है। उस 'तसि' प्रत्यय के स्थान में इस सूत्र से 'तसिल्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-यतः, ततः, बहुतः ।

तसिल्–

(९) पर्यभिभ्यां च ।९।

प०वि०-परि-अभिभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-परिश्च अभिश्च तौ पर्यभी, ताभ्याम्-पर्यभिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः) ।

अनु०-पञ्चम्याः तसिल् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-पञ्चम्यन्ताभ्यां पर्यभिभ्यां च तसिल्।

अर्थः-पञ्चम्यन्ताभ्यां पर्यभिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां च तसिल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(परिः) परितः । सर्वत इत्यर्थः । (अभि) अभितः । उभयत इत्यर्थः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त (पर्यभिभ्याम्) परि, अभि प्रातिपदिकों से (च) भी (तसिल्) तसिल् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(परि) परितः । सब ओर से। (अभि) अभितः । दोनों ओर से।

सिद्धि-परितः । परि+ङसि+तसिल् । परि+तस् । परितस्+सु । परितस्+० । परितरु । परितर् । परितः ।

यहां पञ्चम्यन्त 'परि' शब्द से इस सूत्र से 'तसिल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-अभितः ।

विशेषः *यहां 'सर्व' और 'उभय' अर्थ में वर्तमान 'परि' और 'अभि' शब्दों से 'तसिल्' प्रत्यय अभीष्ट है।*

त्रल्–

(१०) सप्तम्यास्त्रल् ।१०।

प०वि०-सप्तम्याः ५।१ त्रल् १।१।

अनु०-किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्य इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-सप्तम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः-त्रल्।

अर्थः-सप्तम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्त्रल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(किम्)** कस्मिन्-कुत्र। **(सर्वनाम)** यस्मिन्-यत्र। तस्मिन्-तत्र। **(बहुः)** बहौ-बहुत्र।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से रहित (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से (त्रल्) त्रल् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(किम्)** किसमें-कुत्र (कहां)। **(सर्वनाम)** जिसमें-यत्र (जहां)। उसमें-तत्र (वहां)। **(बहु)** बहुतों में-बहुत्र (बहुत स्थानों पर)।*

*सिद्धि-**कुत्र**। किम्+ङि+त्रल्। कु+त्र। कुत्र+सु। कुत्र+०। कुत्र।*

*यहां सप्तम्यन्त 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'त्रल्' प्रत्यय है। **'कुतिहोः'** (७।२।१०४) से 'किम्' के स्थान में 'कु' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**यत्र, तत्र, बहुत्र**।*

हः-

(११) इदमो हः।११।

प०वि०-इदमः ५।१ हः १।१।

अनु०-सप्तम्या इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्या इदमो हः।

अर्थः-सप्तम्यन्ताद् इदम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् हः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अस्मिन् इह।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (हः) ह प्रत्यय होता है।*

उदा०-इसमें-इह (यहां)।

*सिद्धि-**इह**। इदम्+ङि+ह। इश्+ह। इ+ह। इह+सु। इह+०। इह।*

*यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से इस सूत्र से 'ह' प्रत्यय है। **'इदम इश्'** (५।३।३) से 'इदम्' के स्थान में 'इश्' सर्वादेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अत्–

(१२) किमोऽत्।१२।

प०वि०–किमः ५।१ अत् १।१।

अनु०–सप्तम्या इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–सप्तम्याः किमोऽत्।

अर्थः–सप्तम्यन्तात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् अत् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कस्मिन्-क्व। क्व भोक्ष्यसे ? क्वाध्येष्यसे ?

आर्यभाषाः *अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (किमः) किम् प्रातिपदिक से (अत्) अत् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-किसमें-क्व (कहां)। **क्व भोक्ष्यसे** ? तू कहां भोजन करेगा ? **क्वाध्येष्यसे** ? तू कहां पढ़ेगा।*

सिद्धि-क्व। *किम्+ङि+अत्। क्व+अ। क्व+सु। क्व।*

*यहां सप्तम्यन्त 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'अत्' प्रत्यय है। **'क्वाति'** (७।२।१०५) से 'किम्' के स्थान में 'क्व' आदेश होता है। **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पररूप एकादेश (अ+अ=अ) होता है। 'अत्' प्रत्यय में तकार-अनुबन्ध **'तित् स्वरितम्'** (६।१।१८२) से स्वरित स्वर के लिये है, अतः **'हलन्त्यम्'** (१।३।३) से तकार की इत् संज्ञा होकर **'तस्य लोपः'** (१।३।९) से उसका लोप हो जाता है **'न विभक्तौ तुस्माः'** (१।३।४) को अनित्य मानकर तकार की इत्संज्ञा का प्रतिषेध नहीं होता है-**क्व**।*

ह-विकल्पः (छान्दसः)–

(१३) वा ह च च्छन्दसि।१३।

प०वि०–वा अव्ययपदम्, ह १।१ (सु-लुक्), च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–सप्तम्याः, किम इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि सप्तम्यन्तात् किमो वा हः।

अर्थः–छन्दसि विषये सप्तम्यन्तात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन हः प्रत्ययो भवति, पक्षे च यथाप्राप्तं प्रत्ययो भवति।

उदा०–कस्मिन्-कुह (ऋ० ८।७३।४)। क्व। कुत्र। कुत्रचिदस्य सा दूरे क्व ब्राह्मणस्य चावकाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (किमः) किम् प्रातिपदिक से (वा) विकल्प से (हः) ह प्रत्यय होता है और पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-किसमें-कुह (ह) (ऋ० ८।७३।४)। क्व (अत्)। कुत्र (त्रल्)। प्रयोग- ***कुत्रचिदस्य सा दूरे क्व ब्राह्मणस्य चावकाः।***

सिद्धि-(१) कुह। किम्+ङि+ह। कु+ह। कुह+सु। कुह+०। कुह।

यहां वेदविषय में, सप्तम्यन्त 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'ह' प्रत्यय है। ***'कु तिहोः'*** *(७।२।१०४) से 'किम्' के स्थान में 'कु' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(२) क्व, कुत्र पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

तसिलादयः-

(१४) इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते।१४।

प०वि०-इतराभ्यः ५।३ अपि अव्ययपदम्, दृश्यन्ते क्रियापदम्।

अनु०-किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्यः, तसिल्-आदय इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-इतराभ्योऽपि अद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यस्तसिलादयो दृश्यन्ते।

अर्थः-इतराभ्यः=पञ्चमीसप्तमीभिन्नविभक्त्यन्तेभ्योऽपि द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यस्तसिलादयः प्रत्यया दृश्यन्ते।

अत्र दृशिग्रहणं प्रायिकविध्यर्थम्। तेन भवदादिभिर्योगे एवैतद्विधानं वेदितव्यम्। के पुनर्भवदादयः ? भवान्। दीर्घायुः। आयुष्मान्। देवानां प्रिय इति। **उदाहरणम्-**

	विभक्तयः	**तसिल्**	**त्रल्**	**भाषार्थ**
(१)	स भवान्	ततो भवान्	तत्र भवान्।	वह आप।
(२)	तं भवन्तम्	ततो भवन्तम्	तत्र भवन्तम्।	उस आपको।
(३)	तेन भवता	ततो भवता	तत्र भवता।	उस आपके द्वारा।
(४)	तस्मै भवते	ततो भवते	तत्र भवते।	उस आपके लिये।

	विभक्तयः	तसिल्	त्रल्	भाषार्थ
(५)	तस्माद् भवतः	ततो भवतः	तत्र भवतः।	उस आपसे।
(६)	तस्य भवतः	ततो भवतः	तत्र भवतः।	उस आपका।
(७)	तस्मिन् भवति	ततो भवति	तत्र भवति।	उस आपमें।

एवम्-दीर्घायुरादिष्वप्युदाहर्तव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इतराभ्यः) पञ्चमी और सप्तमी विभक्त्यन्त से भिन्न (अपि) भी (अद्वादिभ्यः) द्वि-आदि से रहित (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से (तसिल्-आदयः) तसिल् आदि प्रत्यय (दृश्यन्ते) दिखाई देते हैं।*

उदा०-स भवान्-ततो भवान्, तत्र भवान् इत्यादि उदाहरण और उनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

यहां सूत्रपाठ में 'दृश्यते' पद का ग्रहण प्रायिक-विधि के लिए किया गया है। अतः भवान् आदि शब्दों के योग में ही यह प्रत्यय-विधि समझनी चाहिये। भवान् आदि शब्द कौन-से हैं? भवान्, दीर्घायु, आयुष्मान्, देवनां प्रिय ये भवान् आदि शब्द हैं।

सिद्धि-(१) ततो भवान्। तत्+सु+तसिल्। तत्+तस्। तअ+तस्। ततस्+सु। ततस्+०। ततरु। ततर्। ततः।

यहां प्रथमान्त, सर्वनाम 'तत्' शब्द से इस सूत्र से 'तसिल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) तत्र भवान्। तत्+सु+त्रल्। तत्+त्र। तअ+त्र। तत्र+सु। तत्र+०। तत्र।

यहां प्रथमा-समर्थ 'तत्' शब्द से इस सूत्र से 'त्रल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

इस विधि से शेष सब विभक्त्यन्त पदों की सिद्धि की स्वयं ऊहा कर लेवें।

दा–

(१५) सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा।१५।

प०वि०-सर्व-एक-अन्य-यत्-तदः ५।१ काले ७।१ दा १।१।

स०-सर्वश्च एकश्च अन्यश्च किं च यच्च तच्च एतेषां समाहारः सर्वैकान्यकिंयत्तत्, तस्मात्-सर्वैकान्यकिंयत्तदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-सप्तम्या इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्याः सर्वैकान्यकिंयत्तदो दा काले।

अर्थः-सप्तम्यन्तेभ्यः सर्वैकान्यकिंयत्तद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यो दा प्रत्ययो भवति, कालेऽभिधेये।

उदा०-(**सर्वः**) सर्वस्मिन् काले-सर्वदा, सदा। (**एकः**) एकस्मिन् काले-एकदा। (**अन्यः**) अन्यस्मिन् काले-अन्यदा। (**किम्**) कस्मिन् काले-कदा। (**यत्**) यस्मिन् काले-यदा। (**तत्**) तस्मिन् काले-तदा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (सर्वैकान्ययत्तदः) सर्व, एक, अन्य, यत्, तत् प्रातिपदिकों से (दा) दा प्रत्यय होता है (काले) यदि वहां काल=समय अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(सर्व) सर्व=सब काल में-सर्वदा, सदा। (एक) एक काल में-एकदा। (अन्य) अन्य काल में-अन्यदा। (किम्) किस काल में-कदा (कब)। (यत्) जिस काल में-यदा (जब)। (तत्) उस काल में-तदा (तब)।

सिद्धि-(१) सर्वदा। सर्व+ङि+दा। सर्व+दा। सर्वदा+सु। सर्वदा।

यहां सप्तम्यन्त 'सर्व' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'दा' प्रत्यय है। ऐसे ही-एकदा, अन्यदा।

(२) सदा। यहां 'सर्व' शब्द से पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय है और 'सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि' (५।३।६) से 'सर्व' के स्थान में 'स' आदेश होता है।

(३) कदा। यहां 'किम्' शब्द से पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय है और 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' के स्थान में 'क' आदेश होता है।

(४) यदा। यत्+ङि+दा। यत्+दा। यअ+दा। यदा+सु। यदा।

यहां सप्तम्यन्त 'यत्' शब्द से पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय है। 'दा' प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होकर 'त्यदादीनामः' (७।२।१०२) से 'यत्' के अन्त्य तकार को अकार आदेश होता है और 'अतो गुणे' (६।१।९६) से उसे पररूप एकादेश होता है। ऐसे ही 'तत' शब्द से-तदा।

र्हिल्-

(१६) इदमो र्हिल्।१६।

प०वि०-इदमः ५।१ र्हिल् १।१।

अनु०-सप्तम्याः, काले, इति चानुवर्तति।

अन्वयः-सप्तम्या इदमो र्हिल् काले।

अर्थः-सप्तम्यान्ताद् इदम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् र्हिल् प्रत्ययो भवति, कालेऽभिधेये।

उदा०-अस्मिन् काले-एतर्हि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (र्हिल्) र्हिल् प्रत्यय होता है (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-इस काल में-एतर्हि (अब)।

*सिद्धि-**एतर्हि।** इदम्+ङि+र्हिल्। एत+र्हि। एतर्हि+सु। एतर्हि।*

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'र्हिल्' प्रत्यय है। 'एतेतौ रथोः' (५।३।४) से 'इदम्' के स्थान में 'एत्' आदेश होता है। 'र्हिल्' के 'लित्' होने से 'लिति' (६।१।१९०) से प्रत्यय से पूर्ववर्ती 'अच्' उदात्त होता है-एतर्हि।

निपातनम्-

(१७) अधुना।१७।

वि०-अधुना १।१।

अनु०-सप्तम्याः, काले, इदम इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्या इदमोऽधुना काले।

अर्थः-{१} सप्तम्यन्ताद् इदमः प्रातिपदिकाद् धुना प्रत्ययः, इदमः स्थाने चाऽश्-आदेशो निपात्यते, कालेऽभिधेये।

{२} सप्तम्यन्ताद् इदमः प्रातिपदिकाद् अधुना प्रत्ययः, इदमश्च लोपो निपात्यते, कालेऽभिधेये।

उदा०-अस्मिन् काले-अधुना।

आर्यभाषाः *अर्थ-{१} (सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (धुना) धुना प्रत्यय और इदम् के स्थान में (अश्) अश् आदेश निपातित है (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।*

{२} (सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (अधुना) अधुना प्रत्यय और 'इदम्' का लोप निपातित है (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-इस काल में-अधुना (अब)।

*सिद्धि-(१) **अधुना।** (१) इदम्+ङि+धुना। अश्+धुना। अधुना+सु। अधुना।*

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'धुना' प्रत्यय और 'इदम्' के स्थाने 'अश्' सवदिश निपातित है। अथवा-

(२) इदम्+ङि+अधुना। ०+अधुना। अधुना+सु। अधुना।

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'अधुना' प्रत्यय और 'इदम्' शब्द का सर्वलोप निपातित है।

दानीम्–

(१८) दानीं च।१८।

प०वि०–दानीम् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–सप्तम्याः, काले, इदम इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सप्तम्या इदमो दानीं च काले।

अर्थः–सप्तम्यन्ताद् इदम्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् दानीं प्रत्ययो भवति, कालेऽभिधेये।

उदा०–अस्मिन् काले-इदानीम्, अधुना इत्यर्थः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (दानीम्) दानीम् प्रत्यय होता है (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-इस काल में-इदानीम् (अब)।

***सिद्धि-इदानीम्।** इदम्+ङि+दानीम्। इश्+दानीम्। इदानीम्+सु। इदानीम्।*

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'दानीम्' प्रत्यय है। 'इदम इश्' (५।३।३) से 'इदम्' के स्थान में 'इश्' सवादेश होता है।

दा+दानीम्–

(१६) तदो दा च।१६।

प०वि०–तदः ५।१ दा १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–सप्तम्याः, काले, दानीम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सप्तम्यास्तदो दा दानीं च काले।

अर्थः–सप्तम्यन्तात् तत्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् दा दानीं च प्रत्ययो भवति, कालेऽभिधेये।

उदा०–तस्मिन् काले-तदा (दा)। तदानीम् (दानीम्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (तदः) तत् प्रातिपदिक से (दा) दा (च) और (दानीम्) दानीम् प्रत्यय होते हैं (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-उस काल में-तदा (दा)। तदानीम् (दानीम्) तब।

सिद्धि-(१) तदा। तत्+ङि+दा। तत्+दा। तअ+दा। तदा+सु। तदा।

यहां सप्तम्यन्त 'तत्' शब्द से काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'दा' प्रत्यय है। 'दा' प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होकर **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'तत्' के तकार को अकार आदेश होता है और **'अतो गुणे'** से पूर्व अकार को पररूप एकादेश होता है।

(२) तदानीम्। यहां 'तत्' शब्द से पूर्ववत् 'दानीम्' प्रत्यय है।

विशेषः महाभाष्य के अनुसार **'तदो दा च'** से 'दा' प्रत्यय का कथन अनर्थक है क्योंकि **'सर्वैकान्ययत्तदः काले दा'** (५।३।१५) से 'दा' प्रत्यय सिद्ध ही है।

दा+र्‌हिल्-

(२०) तयोर्दार्‌हिलौ च च्छन्दसि।२०।

प०वि०-तयोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) दा-र्‌हिलौ १।२ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०-दा च र्‌हिल च तौ दार्‌हिलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सप्तम्याः, काले इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि तयोः=इदं तद्भ्यां दार्‌हिलौ दानीं च काले।

अर्थः-छन्दसि विषये तयोः=ताभ्याम् इदं तद्भ्यां प्रातिपदिकाभ्यां यथासंख्यं दार्‌हिलौ दानीं च प्रत्यया भवन्ति, कालेऽभिधेये।

उदा०-(इदम्) अस्मिन् काले-इदा। **इदावत्सरीयः** (का०सं० १३।१५)। (दा)। इदानीम् (दानीम्)। (तत्) तस्मिन् काले-तर्हि (र्‌हिल्)। तदानीम् (दानीम्)।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तयोः) उन इदम्, तत् प्रातिपदिकों से (दार्‌हिलौ) यथासंख्य दा, र्‌हिल् (च) और (दानीम्) दानीम् प्रत्यय होते हैं (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।

उदा०-इस काल में-इदा। इदावत्सरीयः (का०सं० १३।१५) (दा)। इदानीम् (दानीम्) अब। (तत्) उस काल में-तर्हि (र्‌हिल्)। तदानीम् (दानीम्) तब।

सिद्धि-(१) इदा। इदम्+ङि+दा। इश्+दा। इदा+सु। इदा।

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से वेदविषय में तथा काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'दा' प्रत्यय है। **'इदम इश्'** (५।३।३) से 'इदम्' के स्थान में 'इश्' सर्वादेश होता है।

(२) इदानीम्। पूर्ववत् (५ ।३ ।१८)।

(३) तर्हि। तत्+ङि+र्हिल्। तत्+र्हि। तअ+र्हि। तर्हि+सु। तर्हि।

यहां सप्तम्यन्त 'तत्' शब्द से पूर्ववत् 'र्हिल्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) तदानीम्। पूर्ववत् (५ ।३ ।१९)।

र्हिल्–

(२१) अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्।२१।

प०वि०-अनद्यतने ७ ।१ र्हिल् १ ।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-अद्य भवम्-अद्यतनम्, न अद्यतनम्-अनद्यतनम्, तस्मिन्-अनद्यतने (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्यः इति चानुवर्तनीयम्, सप्तम्याः, काले इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सप्तम्यन्तेभ्योऽद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्योऽन्यतरस्यां र्हिल् अनद्यतने काले।

अर्थः-सप्तम्यन्तेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन र्हिल् प्रत्ययो भवति, अनद्यतने कालेऽभिधेये। पक्षे च दा प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(किम्)** कस्मिन् काले-कर्हि (र्हिल्)। कदा (दा)। **(सर्वनाम)** यस्मिन् काले-यर्हि (र्हिल्)। यदा (दा)। तस्मिन् काले-तर्हि (र्हिल्) तदा (दा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से रहित (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (र्हिल्) र्हिल् प्रत्यय होता है (अनद्यतने काले) यदि वहां अनद्यतन काल अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(किम्) किस काल में-कर्हि (र्हिल्) कब। कदा (दा) कब। (सर्वनाम) जिस काल में-यर्हि (र्हिल्) जब। यदा (दा) जब। उस काल में-तर्हि (र्हिल्) तब। तदा (दा) तब।

सिद्धि-(१) कर्हि। किम्+ङि+र्हिल्। क+र्हि। कर्हि+सु। कर्हि।

यहां सप्तम्यन्त 'किम्' शब्द से अनद्यतन काल अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'र्हिल्' प्रत्यय है। 'किमः कः' (७ ।२ ।१०३) से 'किम्' के स्थान में 'क' आदेश होता है।

(२) कदा। यहां 'किम्' शब्द से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् 'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा' (५।३।१५) से 'दा' प्रत्यय है। 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' के स्थान में 'क' आदेश होता है।

(३) यर्हि। यत्+ङि+र्हिल्। यत्+र्हि। यअ+र्हि। यर्हि+सु। यर्हि।

यहां 'यत्' शब्द से 'र्हिल्' प्रत्यय है। शेष कार्य 'तर्हि' (५।३।२०) के समान है।

(४) तदा। यहां 'तत्' शब्द से विकल्प पक्ष में पूर्ववत् 'दा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

निपातनम्–

(२२) सद्यःपरुत्परार्यैषमःपरेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरितरेद्युरपरेद्युरधरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः।२२।

प०वि०–सद्यः अव्ययपदम्, परुत् अ०प०, परारि अ०प०, ऐषमः अ०प०, परेद्यवि अ०प०, अद्य अ०प०, पूर्वेद्युः अ०प०, अन्येद्युः अ०प०, अन्यतरेद्युः अ०प०, इतरेद्युः अ०प०, अपरेद्युः अ०प०, अधरेद्युः अ०प०, उभयेद्युः अ०प०, उत्तरेद्युः अ०प०।

अनु०–सप्तम्याः, काले इति चानुवर्तते।

अन्वयः–सप्तम्यन्ताः सद्यः०उत्तरेद्युः काले।

अर्थः–सप्तम्यन्ताः सद्य आदयः शब्दा निपात्यन्ते कालेऽभिधेये।

उदा०–**(सद्यः)** समानेऽह्नि–सद्यः। **(परुत्)** पूर्वस्मिन् संवत्सरे–परुत्। **(परारि)** पूर्वतरे संवत्सरे–परारि। **(ऐषमः)** अस्मिन् संवत्सरे–ऐषमः। **(परेद्यवि)** परस्मिन्नहनि–परेद्यवि। **(अद्य)** अस्मिन्नहनि–अद्य। **(पूर्वेद्युः)** पूर्वस्मिन्नहनि–पूर्वेद्युः। **(अन्येद्युः)** अन्यस्मिन्नहनि–अन्येद्युः। **(अन्यतरेद्युः)** अन्यतरस्मिन्नहनि–अन्यतरेद्युः। **(इतरेद्युः)** इतरस्मिन्नहनि–इतरेद्युः। **(अपरेद्युः)** अपरस्मिन्नहनि–अपरेद्युः। **(अधरेद्युः)** अधरस्मिन्नहनि–अधरेद्युः। **(उभयेद्युः)** उभयोरह्नोः–उभयेद्युः। **(उत्तरेद्युः)** उत्तरस्मिन्नहनि–उत्तरेद्युः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(सप्तम्याः) सप्तम्यन्त (सद्यः०उत्तरेद्युः) सद्यः, परुत्, परारि, ऐषमः, परेद्यवि, अद्य, पूर्वेद्युः, अन्येद्युः, अन्यतरेद्युः, इतरेद्युः, अपरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः, उत्तरेद्युः शब्द निपातित हैं (काले) यदि वहां काल अर्थ अभिधेय हो।* ***उदाहरण–***

(१)	सद्य	समान (एक) दिन में।
(२)	परुत्	पहले संवत्सर (वर्ष) में।
(३)	परारि	दो में से पहले संवत्सर में।
(४)	ऐषम	इस संवत्सर में।
(५)	परेद्यवि	परवर्ती दिन में।
(६)	अद्य	इस वर्तमान दिन में।
(७)	पूर्वेद्यु	पूर्ववर्ती दिन में।
(८)	अन्येद्यु	अन्य किसी दिन में।
(९)	अन्यतरेद्यु	दो में से किसी एक दिन में।
(१०)	इतरेद्यु	दूसरे दिन में।
(११)	अपरेद्यु	पिछले दिन में।
(१२)	अधरेद्यु	निचले दिन में।
(१३)	उभयेद्यु	दोनों दिनों में।
(१४)	उत्तरेद्यु	अगले दिन में।

सिद्धि-(१) सद्यः। समान+ङि+द्यस्। स+द्यस्। स+द्यर। स+द्यर्। सद्यर्+सु। सद्यर्+०। सद्यः।

यहां सप्तम्यन्त 'समान' शब्द से काल (दिन) अभिधेय में 'द्यस्' प्रत्यय और 'समान' को 'स' आदेश निपातित है।

(२) परुत्। पूर्व+ङि+उत्। पर्+उत्। परुत्+सु। परुत्।

यहां सप्तम्यन्त 'पूर्व' शब्द से काल (संवत्सर) अर्थ अभिधेय में उत् प्रत्यय और 'पूर्व' को 'पर' आदेश निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(३) परारि। पूर्वतर+ङि+आरि। पर्+आरि। परारि+सु। परारि।

यहां सप्तम्यन्त 'पूर्वतर' शब्द से काल (संवत्सर) अर्थ अभिधेय में 'आरि' प्रत्यय और 'पूर्वतर' को 'पूर्व' आदेश निपातित है।

(४) ऐषमः। इदम्+ङि+समसण्। इश्+समस्। ऐ+षमस्। ऐषमस्+सु। ऐषमस्+० ऐषमरु। ऐषमर्। ऐषमः।

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से काल (संवत्सर) अर्थ अभिधेय में समसण् प्रत्यय और 'इदम्' को 'इश्' सवदिश निपातित है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'आदेशप्रत्यययोः'** (८।३।५९) से षत्व होता है।

(५) परेद्यविः। पर+ङि+एद्यवि। पर्+एद्यवि। परेद्यवि+सु। परेद्यवि+०। परेद्यवि।

यहां सप्तम्यन्त 'पर' शब्द से 'एद्यवि' प्रत्यय निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।

(६) अद्य। इदम्+ङि+द्य। अश्+द्य। अद्य+सु। अद्य+०। अद्य।

यहां सप्तम्यन्त 'इदम्' शब्द से 'द्य' प्रत्यय और 'इदम्' को 'अश्' सवदिश निपातित है।

(७) पूर्वेद्युः। पूर्व+ङि+एद्युस्। पूर्व्+एद्युस्। पूर्वेद्युस्+सु। पूर्वेद्युस्+०। पूर्वेद्युरु। पूर्वेद्युर्। पूर्वेद्युः।

*यहां सप्तम्यन्त 'पूर्व' शब्द से 'एद्युस्' प्रत्यय निपातित है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अन्येद्युः, अन्यतरेद्युः, अपरेद्युः, अधरेद्युः, उभयेद्युः, उत्तरेद्युः।***

*यहां सर्वत्र **'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः'** (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

थाल्–

(२३) प्रकारवचने थाल्।२३।

प०वि०–प्रकारवचने ७।१ थाल् १।१।

स०–सामान्यस्य विशेषो भेदकः=प्रकारः। प्रकारस्य वचनम्-प्रकारवचनम्, तस्मिन्-प्रकारवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०–किंसर्वनामबहुभ्यः, अद्व्यादिभ्य इति चानुवर्तते। सप्तम्याः, काले इति च निवृत्तम्।

अन्वयः–प्रकारवचनेऽद्व्यादिभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यस्थाल्।

अर्थः–प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानेभ्यो द्व्यादिवर्जितेभ्यः किंसर्वनामबहुभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे थाल् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(किम्)** केन प्रकारेण-कथा। **(सर्वनाम)** येन प्रकारेण-यथा। तेन प्रकारेण-तथा। सर्वेण प्रकारेण-सर्वथा **(बहु)** बहुना प्रकारण-बहुथा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रकारवचने) प्रकार के कथन में विद्यमान (अद्व्यादिभ्यः) द्वि-आदि से भिन्न (किंसर्वनामबहुभ्यः) किम्, सर्वनाम, बहु प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (थाल्) थाल् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(किम्)** किस प्रकार से-कथा (कैसे)। **(सर्वनाम)** जिस प्रकार से-यथा (जैसे)। उस प्रकार से-तथा (वैसे)। सब प्रकार से-सर्वथा (बिल्कुल)। बहुत प्रकार से-बहुथा।*

सिद्धि-(१) कथा। किम्+टा+थाल्। क+था। कथा+सु। कथा+०। कथा।

*यहां तृतीयान्त 'किम्' शब्द से प्रकार-वचन में इस सूत्र से 'थाल्' प्रत्यय है। **'किमः कः'** (७।२।१०३) से 'किम्' 'क' आदेश होता है।*

(२) यथा। यत्+टा+थाल्। यअ+था। यथा+सु। यथा+०। यथा।

*यहां तृतीयान्त 'यत्' शब्द से प्रकार वचन में इस सूत्र से 'थाल्' प्रत्यय है। थाल् प्रत्यय की विभक्ति संज्ञा होकर **'त्यदादीनामः'** (७।२।१०२) से 'यत्' के तकार को अकार आदेश और **'अतो गुणे'** (६।१।९६) से पूर्ववर्ती अकार को पररूप एकादेश होता है। ऐसे ही-तथा, सर्वथा, बहुथा।*

थमुः-

(२४) इदमस्थमुः।२४।

प०वि०-इदमः ५।१ थमुः।

अनु०-प्रकारवचने इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रकारवचने इदमस्थमुः।

अर्थः-प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानाद् इदम्-शब्दात् प्रातिपदिकात् थमुः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अनेन प्रकारेण-इत्थम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(प्रकारवचने) प्रकार-वचन अर्थ में विद्यमान (इदमः) इदम् प्रातिपदिक से (थमुः) थमु प्रत्यय होता है।*

उदा०-इस प्रकार से-इत्थम् (ऐसे)।

***सिद्धि-इत्थम्।** इदम्+टा+थमु। इत्+थम्। इत्थम्+सु। इत्थम्+०। इत्थम्।*

*यहां तृतीयान्त 'इदम्' शब्द से प्रकार-वचन में इस सूत्र से 'थमु' प्रत्यय है। **'एतेतौ रथोः'** (५।३।४) से 'इदम्' को 'इत्' आदेश होता है। 'थमु' का उकार मकार की रक्षा के लिये है।*

थमुः-

(२५) किमश्च।२५।

प०वि०-किमः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-प्रकारवचने, थमुरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रकारवचने किमश्च थमुः।

अर्थः-प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकाच्च थमुः प्रत्ययो भवति ।

उदा०-केन प्रकारेण-कथम् ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रकारवचने) प्रकारवचन अर्थ में विद्यमान (किमः) किम् प्रातिपदिक से (च) भी (थमुः) थमु प्रत्यय होता है।*

उदा०-किस प्रकार से-कथम् (कैसे)।

सिद्धि-कथम्। *किम्+टा+थमु। क+थम्। कथम्+सु। कथम्+०। कथम्।*

यहां तृतीयान्त 'किम्' शब्द से प्रकार-वचन में इस सूत्र से 'थमु' प्रत्यय है। 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' को 'क' आदेश होता है।

था-

(२६) था हेतौ च च्छन्दसि।२६।

प०वि०-था १।१ हेतौ ७।१ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०-प्रकारवचने, किम इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि हेतौ प्रकारवचने च किमस्था।

अर्थः-छन्दसि विषये हेतौ प्रकारवचने चार्थे वर्तमानात् किम्-शब्दात् प्रातिपदिकात् था प्रत्ययो भवति।

उदा०-(हेतुः) **कथा ग्रामं न पृच्छसि** (ऋ० १०।१४६।१)। केन हेतुना न पृच्छसीत्यर्थः। (प्रकारवचनम्) कथा देवा आसन् पुराविदः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (हेतौ) हेतु=कारण (च) और (प्रकारवचने) प्रकार-वचन अर्थ में विद्यमान (किमः) किम् प्रातिपदिक से (था) था प्रत्यय होता है।*

उदा०-(हेतु) कथा ग्रामं न पृच्छसि (ऋ० १०।१४६।१)। तू किस कारण से ग्राम को नहीं पूछता है। (प्रकारवचन) कथा देवा आसन् पुराविदः। पुरावेत्ता विद्वान् किस प्रकार के थे।

सिद्धि-कथा। *किम्+टा+था। क+था। कथा+सु। कथा+०। कथा।*

*यहां तृतीयान्त 'किम्' शब्द से हेतु और प्रकारवचन में इस सूत्र से 'था' प्रत्यय **है।** 'किमः कः' (७।२।१०३) से 'किम्' को 'क' आदेश होता है।*

इति विभक्तिसंज्ञाप्रकरणम्।

स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

अस्तातिः-

(१) दिक्शब्देभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्तातिः।२७।

प०वि०-दिक्शब्देभ्यः ५।३ सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमाभ्यः ५।३ दिक्-देश-कालेषु ७।३ अस्तातिः १।१।

स०-दिशां शब्दाः-दिक्शब्दाः, तेभ्यः-दिक्शब्देभ्यः (षष्ठीतत्पुरुषः)। सप्तमी च पञ्चमी च प्रथमा च ताः सप्तमीपञ्चमीप्रथमाः, ताभ्यः-सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। दिक् च देशश्च कालश्च ते दिग्देशकालाः, तेषु-दिग्देशकालेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्यः स्वार्थेऽस्तातिः।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिक्शब्देभ्यः=दिशावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽस्तातिः प्रत्ययो भवति।

उदाहरणम्-

(१) **दिक्**-पूर्वस्यां दिशि वसति-पुरस्ताद् वसति (सप्तमी)। पूर्वस्या दिश आगतः-पुरस्तादागतः (पञ्चमी)। पूर्वा दिग् रमणीया-पुरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः**-पूर्वस्मिन् देशे वसति-पुरस्ताद् वसति (सप्तमी)। पूर्वस्माद् देशादागतः-पुरस्तादागतः (पञ्चमी)। पूर्वो देशो रमणीयः-पुरस्ताद् रमणीयः (प्रथमा)।

(३) **कालः**-पूर्वस्मिन् काले वसति-पुरस्ताद् वसति (सप्तमी)। पूर्वस्मात् कालादागतः-पुरस्तादागतः (पञ्चमी)। पूर्वः कालो रमणीयः-पुरस्ताद् रमणीयः (प्रथमा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिशा, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमी-पञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अस्तातिः) अस्ताति प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(१) **दिक्**-पूर्व दिशा में रहता है-पुरस्तात् रहता है (सप्तमी)। पूर्व दिशा से आया-पुरस्तात् आया (पञ्चमी)। पूर्व दिशा रमणीया-पुरस्तात् रमणीया (प्रथमा)।*

*(२) **देश**-पूर्व देश में रहता है-पुरस्तात् रहता है (सप्तमी)। पूर्व देश से आया-पूरस्तात् आया (पञ्चमी)। पूर्व काल रमणीय-पुरस्तात् रमणीय (प्रथमा)।*

*(३) **काल**-पूर्वकाल में रहता है-पुरस्तात् रहता है (सप्तमी)। पूर्वकाल से आया-पुरस्तात् आया (पञ्चमी)। पूर्वकाल रमणीय-पुरस्तात् रमणीय (प्रथमा)।*

सिद्धि-पुरस्तात्। *पूर्व+ङि+ङसि+सु+अस्ताति। पुर्+अस्तात्। पुरस्तात्+सु। पुरस्तात्+०। पुरस्तात्।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिक्शब्द=दिशावाची 'पूर्व' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अस्ताति' प्रत्यय है। **'अस्ताति च'** (५।३।४०) से 'पूर्व' के स्थान में 'पुर' आदेश होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। **'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः'** (१।१।३८) से अव्यय-संज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् हो जाता है।*

अतसुच्-

(२) दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्।२८।

प०वि०-दक्षिण-उत्तराभ्याम् ५।२ अतसुच् १।१।

स०-दक्षिणश्च उत्तरश्च तौ दक्षिणोत्तरौ, ताभ्याम्-दक्षिणोत्तराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यां दिक्शब्दाभ्यां दक्षिणोत्तराभ्याम् अतसुच्।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानाभ्यां सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताभ्यां दिक्शब्दाभ्यां दक्षिणोत्तराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थेऽतसुच् प्रत्ययो भवति।

उदाहरणम्-

(१) **दिक्-(दक्षिणः)**-दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणतो वसति (सप्तमी)। दक्षिणस्या दिश आगतः-दक्षिणत आगतः (पञ्चमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणतो रमणीया (प्रथमा)। **(उत्तरः)** उत्तरस्यां दिशि

वसति-उत्तरतो वसति (सप्तमी)। उत्तरस्या दिश आगतः-उत्तरत आगतः (पञ्चमी)। उत्तरा दिग् रमणीया-उत्तरतो रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः-(दक्षिणः)**-दक्षिणस्मिन् देशे वसति-दक्षिणतो वसति (सप्तमी)। दक्षिणस्माद् देशादागतः-दक्षिणत आगतः (पञ्चमी)। दक्षिणो देशो रमणीयः-दक्षिणतो रमणीयः (प्रथमा)। **(उत्तरः)** उत्तरस्मिन् देशे वसति-उत्तरतो वसति (सप्तमी)। उत्तरस्माद् देशादागतः-उत्तरत आगतः (पञ्चमी)। उत्तरो देशो रमणीयः-उत्तरतो रमणीयः (प्रथमा)।

(३) **कालः-(दक्षिणः)**-दक्षिणशब्दः काले न सम्भवति, तस्मान्नोदाह्रियते। **(उत्तरः)** उत्तरस्मिन् काले वसति-उत्तरतो वसति (सप्तमी)। उत्तरस्मात् कालादागतः-उत्तरत आगतः (पञ्चमी)। उत्तरः कालो रमणीयः-उत्तरतो रमणीयः (प्रथमा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिशा, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (दक्षिणोत्तराभ्याम्) दक्षिण, उत्तर प्रातिपदिकों से (अतसुच्) स्वार्थ में अतसुच् प्रत्यय होता है।*

उदाहरण-

(१) दिक्-(दक्षिण) *दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षितः रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा से आया-दक्षिणतः आया (पञ्चमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणतः रमणीया (प्रथमा)।* ***(उत्तर)*** *उत्तर दिशा में रहता है-उत्तरतः रहता है (सप्तमी)। उत्तर दिशा से आया-उत्तरतः आया (पञ्चमी)। उत्तर दिशा रमणीया-उत्तरतः रमणीया (प्रथमा)।*

(२) देश-(दक्षिण) *दक्षिण देश में रहता है-दक्षिणतः रहता है (सप्तमी)। दक्षिण देश से आया-दक्षिणतः आया (पञ्चमी)। दक्षिण देश रमणीय-दक्षिणतः रमणीय (प्रथमा)।* ***(उत्तर)*** *उत्तर देश में रहता है-उत्तरतः रहता है (सप्तमी)। उत्तर देश से आया-उत्तरतः आया (पञ्चमी)। उत्तर देश रमणीय-उत्तरतः रमणीय (प्रथमा)।*

(३) काल-(दक्षिण) *दक्षिण शब्द काल अर्थ में सम्भव नहीं अतः उसका उदाहरण नहीं है।* ***(उत्तर)*** *उत्तर काल में रहता है-उत्तरतः रहता है (सप्तमी)। उत्तर देश से आया-उत्तरतः आया (पञ्चमी)। उत्तर देश रमणीय उेत्तरतः रमणीय (प्रथमा)।*

सिद्धि-दक्षिणतः। *दक्षिण+ङि+ङसि+सु+अतसुच्। दक्षिण्+अतस्। दक्षिणतस्+सु। दक्षिणतस्+०। दक्षिणतरु। दक्षिणतर्। दक्षिणतः।*

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'दक्षिण' शब्द से स्वार्थ में 'अतसुच्' प्रत्यय है। ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-उत्तरतः।*

अतसुच्-विकल्पः–

(३) विभाषा परावराभ्याम्।२६।

प०वि०–विभाषा १।१ पर-अवराभ्याम् ५।२।

स०–परश्च अवरश्च तौ परावरौ, ताभ्याम्-परावराभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तति।

अन्वयः–दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यां दिक्शब्दाभ्यां परावराभ्यां विभाषाऽतसुच्।

अर्थः–दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानाभ्यां सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताभ्यां दिक्शब्दाभ्यां परावराभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे विकल्पेनाऽतसुच् प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽस्तातिः प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्**–

(१) दिक्-(परः) परस्यां दिशि वसति-परतो वसति (अतसुच्)। परस्ताद् वसति (अस्तातिः) (सप्तमी)। परस्या-दिश आगतः-परत आगतः। परस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। परा दिक् रमणीया-परतो रमणीया। परस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(अवरः)** अवरस्यां दिशि वसति-अवरतो वसति। अवरस्ताद् वसति (सप्तमी)। अवरस्या दिश आगतः-अवरत आगतः। अवरस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवरतो रमणीया। अवरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देशः-(परः) परस्मिन् देशे वसति-परतो वसति। परस्ताद् वसति (सप्तमी)। परस्माद् देशाद् आगतः-परत आगतः। परस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। परा दिग् रमणीया-परतो रमणीया। परस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(अवरः)** अवरस्मिन् देशे वसति-अवरतो वसति। अवरस्ताद् वसति (सप्तमी)। अवरस्माद् देशाद् आगतः-अवरत आगतः। अवरस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवरतो रमणीया। अवरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

(३) कालः-(परः) परस्मिन् काले वसति-परतो वसति। परस्ताद् वसति (सप्तमी)। परस्माद् देशाद् आगतः-परत आगतः। परस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। परा दिग् रमणीया-परतो रमणीया। परस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिशा, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (परावराभ्याम्) पर, अवर प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (विभाषा) विकल्प से (अतसुच्) अतसुच् प्रत्यय होता है और पक्ष में 'अस्ताति' प्रत्यय होता है। उदाहरण-*

(१) दिक्-(पर) पर दिशा में रहता है-परतः रहता है (अतसुच्)। परस्तात् रहता है (अस्ताति)। पर देश से आया-परतः आया। परस्तात् आया (पञ्चमी)। पर दिशा रमणीया-परतः रमणीया। परस्तात् रमणीया (प्रथमा)। (अवर) अवर दिशा में रहता है-अवरतः रहता है। अवरस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर दिशा से आया-अवरतः आया। अवरस्तात् आया (पञ्चमी) अवर दिशा रमणीया-अवरतः रमणीया। अवरस्तात् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-(पर) पर देश में रहता है-परतः रहता है। परस्तात् रहता है (सप्तमी)। पर देश से आया-परतः आया। परस्तात् आया (पञ्चमी)। पर देश रमणीय-परतः रमणीय। परस्तात् रमणीय (प्रथमा)। (अवर) अवर देश में रहता है-अवरतः रहता है। अवरस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर देश से आया-अवरतः आया। अवरस्तात् आया (पञ्चमी)। अवर देश रमणीय-अवरतः रमणीय। अवरस्तात् रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल-(पर) पर काल में रहता है-परतः रहता है। परस्तात् रहता है (सप्तमी)। पर काल से आया-परतः आया। परस्तात् आया (पञ्चमी)। पर काल रमणीय-परतः रमणीय। परस्तात् रमणीय (प्रथमा)। (अवर) अवर काल में रहता है-अवरतः रहता है। अवरस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर काल से आया-अवरतः आया। अवरस्तात् आया (पञ्चमी)। अवर काल रमणीय-अवरतः रमणीय। अवरस्तात् रमणीय (प्रथमा)।

सिद्धि-(१) परतः। *पर+ङि+ङसि+सु+अतसुच्। पर्+अतस्। परतस्+सु। परतस्+०। परतस्। परतरु। परतर्। परतः।*

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'पर' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'अतसुच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- ***अवरतः।***

(२) परस्तात्। *यहां पूर्वोक्त 'पर' शब्द से विकल्प पक्ष में 'अस्ताति' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अस्ताति-लुक्–

(४) अञ्चेर्लुक्।३०।

प०वि०-अञ्चेः ५।१ लुक् १।१।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, अस्तातिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्योऽञ्चति-अन्तेभ्योऽस्तातेर्लुक्।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिक्शब्देभ्योऽञ्चति-अन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्य उत्तरस्यास्तातिप्रत्ययस्य लुग् भवति। **उदाहरणम्–**

(१) **दिक्**-प्राच्यां दिशि वसति-प्राग् वसति (सप्तमी)। प्राच्या दिश आगतः-प्राग् आगतः (पञ्चमी)। प्राची दिग् रमणीया-प्राग् रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः**-प्राचि देशे वसति-प्राग् वसति (सप्तमी)। प्राचो देशादागतः-प्राग् आगतः (पञ्चमी)। प्राग् देशो रमणीयः-प्राग् रमणीयः (प्रथमा)।

(३) **कालः**-प्राचि काले वसति-प्राग् वसति (सप्तमी)। प्राचः कालादागतः-प्राग् आगतः (पञ्चमी)। प्राक् कालो रमणीयः-प्राग् रमणीयः (प्रथमा)।

इत्थमेव-प्रत्यग् वसति। प्रत्यग् आगतः। प्रत्यग् रमणीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिशा, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (अञ्चेः) अञ्चि-अन्त प्रातिपदिकों से उत्तर (अस्तातिः) अस्ताति प्रत्यय का (लुक्) लोप होता है।* ***उदाहरण–***

(१) दिक्-प्राची दिशा में रहता है-प्राक् रहता है (सप्तमी)। प्राची दिशा से आया-प्राक् आया (पञ्चमी)। प्राची दिशा रमणीया-प्राक् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-प्राक् देश में रहता है-प्राक् रहता है (सप्तमी)। प्राक् देश से आया-प्राक् आया (पञ्चमी)। प्राक् देश रमणीय-प्राक् रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल-प्राक् काल में रहता है-प्राक् रहता है (सप्तमी)। प्राक् काल से आया-प्राक् आया (पञ्चमी)। प्राक् काल रमणीय-प्राक् रमणीय (प्रथमा)।

ऐसे ही-प्रत्यक् रहता है। प्रत्यक् आया। प्रत्यक् रमणीय। प्रत्यक्=पश्चिम।

सिद्धि- *प्राक्। प्राची+ङि+ङसि+सु+अस्ताति। प्राच्+०। प्राक्।*

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'प्राची' शब्द से ***'दिक्शब्देभ्यः०'*** *(५।३।२७) से 'अस्ताति' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से उसका 'लुक्' हो जाता है।* ***'लुक् तद्धितलुकि'*** *(१।२।४९) से तद्धित-प्रत्यय के लुक् हो जाने पर स्त्री-प्रत्यय (ङीप्) का भी लुक् हो जाता है। ऐसे ही-* ***प्रत्यक्*** *आदि।*

निपातनम्-

(५) उपर्युपरिष्टात्।३१।

प०वि०-उपरि अव्ययपदम्, उपरिष्टात् अव्ययपदम्।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिक्शब्दात् ऊर्ध्वाद् रिल्-रिष्टातिलौ, उपश्च।

अर्थः-उपरि, उपरिष्टाद् इत्येतौ शब्दौ निपात्यते। दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिग्वाचिन ऊर्ध्वशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे रिल्-रिष्टातिलो प्रत्ययौ, ऊर्ध्वस्य स्थाने च उप आदेशो निपात्यते, इत्यर्थः। **उदाहरणम्-**

(१) **दिक्-**ऊर्ध्वायां दिशि वसति-उपरि वसति। उपरिष्टाद् वसति (सप्तमी)। ऊर्ध्वाया दिश आगतः-उपरि आगतः। उपरिष्टाद् आगतः(पञ्चमी)। ऊर्ध्वा दिग् रमणीया-उपरि रमणीया। उपरिष्टाद् रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः-**ऊर्ध्वे देशे वसति-उपरि वसति। उपरिष्टाद् वसति। (सप्तमी)। ऊर्ध्वाद् देशाद् आगतः-उपरि आगतः। उपरिष्टाद् आगतः (पञ्चमी)। ऊर्ध्वा दिग् रमणीया-उपरि रमणीया। उपरिष्टाद् रमणीया। (प्रथमा)।

(३) कालः-ऊर्ध्वे देशे वसति-उपरि वसति। उपरिष्टाद् वसति। (सप्तमी)। ऊर्ध्वाद् कालाद् आगतः-उपरि आगतः। उपरिष्टाद् आगतः (पञ्चमी)। ऊर्ध्वः कालो रमणीयः-उपरि रमणीयः। उपरिष्टाद् रमणीयः। (प्रथमा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपरि-उपरिष्टात्) उपरि और उपरिष्टात् ये शब्द निपातित हैं अर्थात् (दिक्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (ऊर्ध्वात्) ऊर्ध्व प्रातिपदिक **से** (रिल्रिष्टातिलौ) रिल् और रिष्टातिल् प्रत्यय और (उपः) 'ऊर्ध्व' को 'उप' आदेश निपातित है। उदाहरण-*

(१) दिक्-ऊर्ध्व दिशा में रहता है-उपरि रहता है। उपरिष्टात् रहता है (सप्तमी)। ऊर्ध्व दिशा से आया-उपरि आया। उपरिष्टात् आया (पञ्चमी)। ऊर्ध्व दिशा रमणीया-उपरि रमणीया। उपरिष्टात् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-ऊर्ध्व देश में रहता है-उपरि रहता है। उपरिष्टात् रहता है (सप्तमी)। ऊर्ध्व देश से आया-उपरि आया। उपरिष्टात् आया (पञ्चमी)। ऊर्ध्व दिशा रमणीय-उपरि रमणीया। उपरिष्टात् रमणीया (प्रथमा)।

*(३) काल-ऊर्ध्व काल में रहता है-**उपरि** रहता है। उपरिष्टात् रहता **है** (सप्तमी)। ऊर्ध्व काल से आया-उपरि आया। **उपरिष्टात्** आया (पञ्चमी)। ऊर्ध्व काल रमणीय-उपरि रमणीय। उपरिष्टात् रमणीय (**प्रथमा**)।*

*सिद्धि-(१) उपरि। ऊर्ध्व+ङि+ङसि+**सु+रिल्**। उप+रि। उपरि+सु। उपरि+०। उपरि।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, **सप्त**मी-पञ्चमी-सप्तम्यन्त, दिशावाची 'ऊर्ध्व' शब्द से स्वार्थ में 'रिल्' प्रत्यय और '**ऊर्ध्व**' को 'उप' आदेश निपातित है।*

(२) उपरिष्टात्। यहां पूर्वोक्त 'ऊर्ध्व' शब्द से 'रिष्टातिल्' प्रत्य और 'ऊर्ध्व' को 'उप' आदेश निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

निपातनम्-

(६) पश्चात्।३२।

वि०-पश्चात् अव्ययपदम्।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिक्शब्दाद् अपराद् आतिः, पश्चश्च।

अर्थः-पश्चाद् इत्येष शब्दो निपात्यते। दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिशावाचिनोऽपरशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आतिः प्रत्ययो भवति, अपरस्य स्थाने च पश्च आदेशो भवतीत्यर्थः। **उदाहरणम्**-

(१) **दिक्**-अपरस्यां दिशि वसति-पश्चाद् वसति (सप्तमी)। अपरस्या दिश आगतः-पश्चाद् आगतः (पञ्चमी)। अपरा दिग् रमणीया-पश्चाद् रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः**-अपरस्मिन् देशे वसति-पश्चाद् वसति (सप्तमी)। अपरस्माद् देशाद् आगतः-पश्चाद् आगतः (पञ्चमी)। अपरो देशो रमणीयः-पश्चाद् रमणीयः (प्रथमा)।

(३) **कालः**-अपरस्मिन् काले वसति-पश्चाद् वसति (सप्तमी)। अपरस्माद् कालाद् आगतः-पश्चाद् आगतः (पञ्चमी)। अपरः कालो रमणीयः-पश्चाद् रमणीयः (प्रथमा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पश्चात्) पश्चात् यह शब्द निपातित है अर्थात् (दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (अपरात्) अपर प्रातिपदिक से (आतिः) आति प्रत्यय और अपर को (पशंच) पश्च आदेश निपातित है। उदाहरण-*

(१) दिक्-अपर दिशा में रहता है-पश्चात् रहता है (सप्तमी)। अपर दिशा से आया-पश्चात् आया (पञ्चमी)। अपर दिशा रमणीया-पश्चात् रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-अपर देश में रहता है-पश्चात् रहता है (सप्तमी)। अपर देश से आया-पश्चात् आया (पञ्चमी)। अपर देश रमणीय-पश्चात् रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल। अपर काल में रहता है-पश्चात् रहता है (सप्तमी)। अपर काल से आया-पश्चात् आया (पञ्चमी)। अपर काल रमणीय-पश्चात् रमणीय (प्रथमा)।

सिद्धि-पश्चात्। *अपर+ङि+ङसि+सु+आति। पश्च्+आत्। पश्चात्+सु। पश्चात्+०। पश्चात्।*

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची ***'अपर'*** *शब्द से स्वार्थ में 'आति' प्रत्यय और 'अपर' को 'पश्च' आदेश होता है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

निपातनम्–

(७) पश्च पश्चा च च्छन्दसि।३३।

प०वि०–पश्च अव्ययपदम्, पश्चा अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः दिग्देशकालेषु पश्चात् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि दिग्देशकालेषु, सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिक्शब्दात् अपरात् स्वार्थे अः, आः, अतिश्च, पश्चश्च।

अर्थः–छन्दसि विषये पश्च, पश्चा, पश्चादिति च शब्दा निपात्यन्ते। छन्दसि विषये दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिशावाचिनोऽपरशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽकार आकार आतिश्च प्रत्यया भवन्ति, अपरस्य स्थाने च पश्च आदेशो भवतीत्यर्थः। **उदाहरणम्**- पुरा व्याघ्रो जायते पश्च सिंहः, पश्चा सिंहः, पश्चात् सिंहः।

दिक्–अपरस्यां दिशि वसति–पश्च वसति। पश्चा वसति। पश्चाद् वसति (सप्तमी)। अपरस्या दिश आगतः–पश्च आगतः। पश्चा आगतः। पश्चाद् आगतः (पञ्चमी)। अपरा दिग् रमणीया–पश्च रमणीया। पश्चा रमणीया। पश्चाद् रमणीया। इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चाद्वद् उदाहार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(छन्दसि) वेदविषय में (पश्च) पश्च (पश्चा) पश्चा (च) और (पश्चात्) पश्चात् ये शब्द निपातित हैं, अर्थात् (छन्दसि) वेदविषय में (दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (अपरात्) अपर प्रातिपदिक से (अः) अ (आः) आ (आतिः) आति प्रत्यय और अपर को (पश्च) पश्च आदेश निपातित है।*

उदा०–पुरा व्याघ्रो जायते पश्च सिंहः, पश्चा सिंहः, पश्चात् सिंहः।

दिक्–अपर दिशा में रहता है-पश्च रहता है। पश्चा रहता है। पश्चात् रहता है (सप्तमी)। अपर दिशा से आया-पश्च आया। पश्चा आया। पश्चात् आया (पञ्चमी)। अपर दिशा रमणीया-पश्च रमणीया। पश्चा रमणीया। पश्चात् रमणीया।

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में भी पूर्वोक्त 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों की स्वयं ऊहा कर लेवें।

सिद्धि-(१) पश्च। अपर+ङि+ङसि+सु+अ। पश्च्+अ। पश्च+सु। पश्च+०। पश्च।

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'अपर' शब्द से छन्दोविषय में 'अ' प्रत्यय और 'अपर' को 'पश्च' आदेश निपातित है।

(२) पश्चा। यहां पूर्वोक्त 'अपर' शब्द से 'आ' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) पश्चात्। पूर्ववत् (५।३।३२)।

आतिः-

(८) उत्तराधरदक्षिणादातिः।३४।

प०वि०-उत्तर-अधर-दक्षिणात् ५।१ आतिः १।१।

स०-उत्तरश्च अधरश्च दक्षिणश्च एतेषां समाहार उत्तराधरदक्षिणम्, तस्मात्-उत्तरधरदक्षिणात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिक्शब्देभ्य उत्तराधरदक्षिणेभ्य आतिः।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिशावाचिभ्य उत्तराधरदक्षिणेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे आतिः प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्-**

दिक्-(उत्तरः) उत्तरस्यां दिशि वसति-उत्तराद् वसति (सप्तमी)। उत्तरस्या दिश आगतः-उत्तराद् आगतः (पञ्चमी)। उत्तरा दिग् रमणीया-उत्तराद् रमणीया (प्रथमा)। **(अधरः)** अधरस्यां दिशि वसति-अधराद् वसति (सप्तमी)। अधरस्या दिश आगतः-अधराद् आगतः (पञ्चमी)। अधरा दिग् रमणीया-अधराद् रमणीया (प्रथमा)। **(दक्षिणः)** दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणाद् आगतः (सप्तमी)। दक्षिणस्या दिश आगतः-दक्षिणाद् आगतः (पञ्चमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणाद् रमणीया (प्रथमा)।

इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चाद्वद् उदाहार्यम्।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (उत्तराधरदक्षिणात्) उत्तर, अधर, दक्षिण प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (आतिः) आति प्रत्यय होता है। उदाहरण-

दिक्-(उत्तर) उत्तर दिशा में रहता है-उत्तरात् रहता है (सप्तमी)। उत्तर दिशा से आया-उत्तरात् आया (पञ्चमी) उत्तर दिशा रमणीया-उत्तरात् रमणीया (प्रथमा)। (अधर) अधर दिशा में रहता है-अधरात् रहता है (सप्तमी)। अधर दिशा से आया-अधरात् आया (पञ्चमी)। अधर दिशा रमणीया-अधरात् रमणीया (प्रथमा)। (दक्षिण) दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षिणात् रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा से आया-दक्षिणात् आया (पञ्चमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणात् रमणीया (प्रथमा)।

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में भी पूर्वोक्त 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहारणों की स्वयं ऊहा कर लेवें।

__सिद्धि-__उत्तरात्। उत्तर+ङि+ङसि+सु+आति। उत्तर्+आत्। उत्तरात्+सु। उत्तरात्+०। उत्तरात्।

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'उत्तर' शब्द से स्वार्थ में 'आति' प्रत्यय है। __'यस्येति च'__ (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-__अधरात्, दक्षिणात्।__

एनप्-विकल्पः–

(६) एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः।३५।

प०वि०-एनप् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्, अदूरे ७।१ अपञ्चम्याः ५।१।

स०-न दूरम्-अदूरम्, तस्मिन्-अदूरे (नञ्तत्पुरुषः)। न पञ्चमी-अपञ्चमी, तस्या अपञ्चम्याः (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, उत्तराधरदक्षिणाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु अपञ्चमीभ्यः सप्तमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्य उत्तराधरदक्षिणेभ्योऽन्यतरस्याम् एनप्, अदूरे।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः पञ्चमीवर्जितेभ्यः सप्तमी-प्रथमान्तेभ्यो दिशावाचिभ्य उत्तराधरदक्षिणेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे

विकल्पेन एनप् प्रत्ययो भवति, अदूरेऽभिधेये। पक्षे च यथाप्राप्तं प्रत्यया भवन्ति। **उदाहरणम्-**

दिक् (उत्तरः)-उत्तरस्यां दिशि वसति-उत्तरेण वसति (एनप्)। उत्तराद् वसति (आतिः)। उत्तरतो वसति (अतसुच्) (सप्तमी)। उत्तरा दिग् रमणीया-उत्तरेण रमणीया। उत्तराद् रमणीया। उत्तरतो रमणीया। **(अधरः)** अधरस्यां दिशि वसति-अधरेण वसति। अधराद् वसति। अधस्ताद् वसति (अस्तातिः) (सप्तमी)। अधरा दिग् रमणीया-अधरेण रमणीया। अधस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(दक्षिणः)** दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणेन वसति। दक्षिणाद् वसति। दक्षिणतो वसति (सप्तमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणेन रमणीया। दक्षिणाद् रमणीया। दक्षिणतो रमणीया (प्रथमा)।

इत्थम्-देशकालयोरपि पश्चाद्वद् उदाहार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान (अपञ्चम्याः) पञ्चमी-अन्त से रहित सप्तमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (उत्तराधरदक्षिणात्) उत्तर, अधर, दक्षिण प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (एनप्) एनप् प्रत्यय होता है (अदूरे) यदि वहां अदूर=समीप अर्थ अभिधेय हो और पक्ष में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं। उदाहरण-*

*दिक्-**(उत्तर)** उत्तर दिशा में रहता है-उत्तरेण रहता है (एनप्)। उत्तरात् रहता है (आति)। उत्तरतः रहता है (अतसुच्) (सप्तमी)। उत्तर दिशा रमणीया-उत्तरेण रमणीया। उत्तरात् रमणीया। उत्तरतः रमणीया (प्रथमा)। **(अधर)** अधर दिशा में रहता है-अधरेण रहता है। अधरात् रहता है। अधरस्तात् रहता है (अस्ताति) (सप्तमी)। अधर दिशा रमणीया-अधरेण रमणीया। अधरात् रमणीया। अधस्तात् रमणीया (प्रथमा)। **(दक्षिण)** दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षिणेन रहता है। दक्षिणात् रहता है। दक्षिणतः रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणेन रमणीया। दक्षिणात् रमणीया। दक्षिणतः रमणीया (प्रथमा)।*

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में भी पूर्वोक्त 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों की स्वयं ऊहा कर लेवें।

***सिद्धि-(१) उत्तरेण।** उत्तर+ङि+ङसि+सु+एनप्। उत्तर्+एन। उत्तरेण+सु। उत्तरेण+०। उत्तरेण।*

*यहां दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान सप्तमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'उत्तर' शब्द से अदूर अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'एनप्' प्रत्यय है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**अधरेण, दक्षिणेन।***

*(२) **उत्तरात्।** यहां पूर्वोक्त 'उत्तर' शब्द से विकल्प पक्ष में **'उत्तराधरदक्षिणादातिः'** (५।३।३४) से 'आति' प्रत्यय है। ऐसे ही-**अधरात्, दक्षिणात्।***

*(३) **उत्तरतः।** यहां पूर्वोक्त 'उत्तर' शब्द से विकल्प पक्ष में **'दक्षिणोत्तराभ्यामतसुच्'** (५।३।२८) से 'अतसुच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दक्षिणतः।***

*(४) **अधस्तात्।** यहां पूर्वोक्त 'अधर' शब्द से विकल्प पक्ष में 'अस्ताति' प्रत्यय और 'अस्ताति च' (५।३।४०) से 'अधर' को 'अध' आदेश होता है।*

आच्-

(१०) दक्षिणादाच्।३६।

प०वि०-दक्षिणात् ५।१ आच् १।१।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, अपञ्चम्या इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु अपञ्चम्यान्तात् सप्तमीप्रथमान्ताद् दिक्-शब्दाद् दक्षिणाद् आच्।

अर्थः-दिक्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् पञ्चमीवर्जितात् सप्तमी-प्रथमान्तात् दिशावाचिनो दक्षिणशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आच् प्रत्ययो भवति। **उदाहरणम्-**

(१) **दिक्-**दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणा वसति (सप्तमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।

(२) **देशः-**दक्षिणे देशे वसति-दक्षिणा वसति (सप्तमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।

(३) **कालः-**दक्षिणशब्दो काले न सम्भवति, तस्मान्नोदाह्रियते।

आर्यभाषाः** अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान (अपञ्चम्याः) पञ्चमी से रहित (सप्तमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (दक्षिण) दक्षिण प्रातिपदिक से स्वार्थ में (आच्) आच् प्रत्यय होता है। **उदाहरण-

*(१) **दिक्-**दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षिणा रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।*

(२) देश-दक्षिण देश में रहता है-दक्षिणा रहता है (सप्तमी)। दक्षिण देश रमणीय-दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।

(३) काल-दक्षिण शब्द काल अर्थ में सम्भव नहीं अतः उसका उदाहरण नहीं है।

सिद्धि-दक्षिणा। *दक्षिण+ङि+सु+आच्। दक्षिण+आ। दक्षिणा+सु। दक्षिणा+०। दक्षिणा।*

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'दक्षिण' शब्द से 'आच्' प्रत्यय है। ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'आच्' प्रत्यय में चकार अनुबन्ध* ***'अन्यारादितरर्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते'*** *(२।३।२९) में विशेषण के लिये है।*

आहिः+आच्–

(११) आहि च दूरे।३७।

प०वि०-आहि १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम् १।१ दूरे ७।१।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, अपञ्चम्याः, दक्षिणात्, आच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु अपञ्चम्यन्तात् सप्तमीप्रथमान्तात् दिक्शब्दाद् दक्षिणाद् आहिराच् च दूरे।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् पञ्चमीवर्जितात् सप्तमी-प्रथमान्ताद् दिशावाचिनो दक्षिणशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आहिराच् च प्रत्ययो भवति, दूरेऽभिधेये। **उदाहरणम्–**

(१) दिक्-दक्षिणस्यां दिशि वसति-दक्षिणाहि वसति। दक्षिणा वसति (सप्तमी)। दक्षिणा दिग् रमणीया-दक्षिणाहि रमणीया। दक्षिणा रमणीया।

(२) देशः-दक्षिणे देशे वसति-दक्षिणाहि वसति। दक्षिणा वसति (सप्तमी)। दक्षिणो देशो रमणीयः-दक्षिणाहि रमणीयः। दक्षिणा रमणीयः।

(३) कालः-दक्षिणशब्दः काले न सम्भवति, तस्मान्नोदाह्रियते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान (अपञ्चम्याः) पञ्चमी से रहित (सप्तमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (दक्षिणात्) दक्षिण प्रातिपदिक से स्वार्थ में (आहिः) आहि (च) और (आच्) आच् प्रत्यय होते हैं (दूरे) यदि वहां दूर अर्थ अभिधेय हो।* ***उदाहरण–***

(१) दिक्-दक्षिण दिशा में रहता है-दक्षिणाहि रहता है। दक्षिणा रहता है (सप्तमी)। दक्षिण दिशा रमणीया-दक्षिणाहि रमणीया। दक्षिणा रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-दक्षिण देश में रहता है-दक्षिणाहि रहता है। दक्षिणा रहता है (सप्तमी)। दक्षिण देश रमणीय-दक्षिणाहि रमणीय। दक्षिणा रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल-दक्षिण शब्द काल अर्थ में सम्भव नहीं अतः उसका उदाहरण नहीं है।

सिद्धि-(१) दक्षिणाहि। *दक्षिण+ङि+सु+आहि। दक्षिण्+आहि। दक्षिणाहि+सु। दक्षिणाहि+०। दक्षिणाहि।*

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'दक्षिण' शब्द से स्वार्थ में दूर अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'आहि' प्रत्यय है। ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है।*

(२) ***दक्षिणा।*** *यहां पूर्वोक्त 'दक्षिण' शब्द से 'आच्' प्रत्यय है।*

आहिः+आच्–

(१२) उत्तराच्च।३८।

प०वि०–उत्तरात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, अपञ्चम्याः, आच्, आहिः, दूरे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–दिग्देशकालेषु अपञ्चम्यन्तात् सप्तमी-प्रथमान्ताद् दिक्शब्दाद् उत्तराच्चाऽऽहिरांच् च दूरे।

अर्थः–दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् पञ्चमीवर्जितात् सप्तमीप्रथमान्ताद् दिशावाचिन उत्तरशब्दात् प्रातिपदिकाच्च स्वार्थे आहिराच् च प्रत्ययो भवति, दूरेऽभिधेये। **उदाहरणम्–**

(१) दिक्–उत्तरस्यां दिशि वसति–उत्तराहि वसति। उत्तरा वसति (सप्तमी)। उत्तरा दिग् रमणीया–उतराहि–रमणीया। उत्तरा रमणीया (प्रथमा)।

(२) देशः–उत्तरस्मिन् देशे वसति–उत्तराहि वसति। उत्तरा वसति (सप्तमी)। उत्तरो देशो रमणीयः–उतराहि–रमणीयः। उत्तरा रमणीयः (प्रथमा)।

(३) **कालः**-उत्तरस्मिन् काले वसति-उत्तराहि वसति। उत्तरा वसति (सप्तमी)। उत्तरः कालो रमणीयः-उतराहि-रमणीयः। उत्तरा रमणीयः (प्रथमा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान, (अपञ्चम्याः) पञ्चमी से रहित (सप्तमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-प्रथमान्त, (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (उत्तरात्) उत्तर प्रातिपदिक से (च) भी स्वार्थ में (आहिः) आहि और (आच्) आच् प्रत्यय होते हैं (दूरे) यदि वहां दूर अर्थ अभिधेय हो।* **उदाहरण-**

(१) दिक्-उत्तर दिशा में रहता है-उत्तराहि रहता है। उत्तरा रहता है (सप्तमी)। उत्तर दिशा रमणीया-उत्तराहि रमणीया। उत्तरा रमणीया (प्रथमा)।

(२) देश-उत्तर देश में रहता है-उत्तराहि रहता है। उत्तरा रहता है (सप्तमी)। उत्तर देश रमणीय-उत्तराहि रमणीय। उत्तरा रमणीय (प्रथमा)।

(३) काल-उत्तर काल में रहता है-उत्तराहि रहता है। उत्तरा रहता है (सप्तमी)। उत्तर काल रमणीय-उत्तराहि रमणीय। उत्तरा रमणीय (प्रथमा)।

सिद्धि-उत्तराहि और उत्तरा पदों की सिद्धि दक्षिणाहि और दक्षिणा पदों के समान है (५।३।३७)।

असिः-

(१३) पूर्वाधरावराणामसि पुरधवश्चैषाम्।३९।

प०वि०-पूर्व-अधर-अवराणाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) असि १।१ (सु-लुक्) पुर्-अध्-अवः १।३ च अव्ययपदम्, एषाम् ६।३।

स०-पूर्वश्च अधरश्च अवरश्च ते पूर्वाधरावराः, तेषाम्-पूर्वापराधरावराणाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। पुर् च अध् च अव् च ते-पुरधवः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु इति चानुवर्तति, अपञ्चम्या इति निवृत्तम्।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्यः पूर्वाधरावरेभ्योऽसिः, एषां च पुरधवः।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्यो दिशावाचिभ्यः पूर्वाधरावरेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽसिः प्रत्ययो भवति, एषां च स्थाने यथासंख्यं पुर्-अध्-अव आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्-**

दिक्- **(पूर्वः)**-पूर्वस्यां दिशि वसति-पुरो वसति (सप्तमी)। पूर्वस्या दिश आगतः-पुर आगतः (पञ्चमी)। पूर्वा दिग् रमणीया-पुरो रमणीया (प्रथमा। **(अधरः)** अधरस्यां दिशि वसति-अधो वसति (सप्तमी)। अधरस्या दिश आगतः-अध आगतः (पञ्चमी)। अधरा दिग् रमणीया-अधो रमणीया (प्रथमा)। **(अवरः)** अवरस्यां दिशि वसति-अवो वसति (सप्तमी)। अवरस्या दिश आगतः-अव आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवो रमणीया (प्रथमा)।

इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चाद्वद् उदाहार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान, (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (पूर्वाधरावराणाम्) पूर्व, अधर, अवर प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (असिः) असि प्रत्यय होता है और (एषाम्) पूर्व आदि शब्दों के स्थान में (पुरधवः) यथासंख्य पुर्, अध्, अव् **आदेश** होते हैं। उदाहरण-*

*दिक् **(पूर्व)** पूर्व दिशा में रहता है-पुरः रहता है (सप्तमी)। पूर्व दिशा से आया-पुरः आया (पञ्चमी)। पूर्व दिशा रमणीया-पुरः रमणीया (प्रथमा)। **(अधर) अधर** दिशा में रहता है-अधः रहता है (सप्तमी)। अधर दिशा से आया-अधः आया (पञ्चमी)। अधर दिशा रमणीया-अधः रमणीया (प्रथमा)। **(अवर)** अवर दिशा में रहता है-अवः रहता है (सप्तमी)। अवर दिशा से आया-अवः आया (पञ्चमी)। अवर दिशा रमणीया-अवः रमणीया (प्रथमा)।*

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों की स्वयं ऊहा कर लेवें।

सिद्धि-(१) पुरः। *पूर्व+ङि+ङसि+सु+असि। पुर्+अस्। पुरस्+सु। पुरस्+०। पुररु। पुरर्। पुरः।*

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'पूर्व' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से असि प्रत्यय है और 'पूर्व' को 'पुर्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) अधः। *यहां पूर्ववत् 'अधर' शब्द से इस सूत्र से 'असि' प्रत्यय है और 'अधर' को 'अध्' आदेश होता है।*

(३) अवः। *यहां पूर्ववत् 'अवर' शब्द से इस सूत्र से 'असि' प्रत्यय है और 'अवर' को 'अव्' आदेश होता है।*

पुरादय आदेशाः-

(१४) अस्ताति च।४०।

प०वि०-अस्ताति ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, पूर्वाधरावराणाम्, पुराधवः इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिक्शब्देभ्यः पूर्वाधरावरेभ्योऽस्ताति च पुरधवः।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानेभ्यः सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्तेभ्योऽस्तातिप्रत्यये परतो यथासंख्यं पुरधव आदेशा भवन्ति। **उदाहरणम्**-

दिक्-(पूर्वः) पूर्वस्यां दिशि वसति-पुरस्ताद् वसति (सप्तमी)। पूर्वस्या दिश आगतः-पुरस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। पूर्वा दिग् रमणीया-पुरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(अधरः)** अधरस्यां दिशि वसति-अधस्ताद् वसति (सप्तमी)। अधरस्या दिश आगतः-अधस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अधरा दिग् रमणीया-अधस्ताद् रमणीया (प्रथमा)। **(अवरः)** अवरस्यां दिशि वसति-अवस्ताद् वसति (सप्तमी)। अवरस्या दिश आगतः-अवस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चावद् उदाहार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिक्, देश, काल अर्थों में विद्यमान, (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (पूर्वाधरावराणाम्) पूर्व, अधर, अवर प्रातिपदिकों से (अस्ताति) अस्तात् प्रत्यय परे होने पर (च) भी (पुरधवः) यथासंख्य पुर्, अध्, अव् आदेश होते हैं। उदाहरण-*

दिक्-(पूर्व) पूर्व दिशा में रहता है-पुरस्तात् रहता है (सप्तमी)। पूर्वदिशा से आया-पुरस्तात् आया (पञ्चमी)। पूर्व दिशा रमणीया-पुरस्तात् रमणीया (प्रथमा)। (अधर) अधर दिशा में रहता है-अधस्तात् रहता है (सप्तमी)। अधर दिशा से आया-अधस्तात् आया (पञ्चमी)। अधर दिशा रमणीया-अधस्तात् रमणीया (प्रथमा)। (अवर) अवर दिशा में रहता है-अवस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर दिशा से आया-अवस्तात् आया (पञ्चमी)। अवर दिशा रमणीया-अवस्तात् रमणीया (प्रथमा)।

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों की ऊहा कर लेवें।

सिद्धि-(१) पुरस्तात्। पूर्व+ङि/ङसि+सु+अस्तात्। पुर्+अस्तात्। पुरस्तात्+सु। पुरस्तात्+०। पुरस्तात्।

यहां दिक्, देश, काल अर्थ में विद्यमान, सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त, दिशावाची 'पूर्व' शब्द से इस सूत्र से 'अस्तात्' प्रत्यय के परे होने पर 'पूर्व' शब्द को 'पुर्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) अधस्तात्। यहां 'अधर' शब्द के स्थान में 'अध्' आदेश है।

(३) अवस्तात्। यहां 'अवर' शब्द के स्थान में 'अव्' आदेश है।

अवादेश-विकल्पः–

(१५) विभाषाऽवरस्य।४१।

प०वि०-विभाषा १।१ अवरस्य ६।१।

अनु०-दिक्शब्देभ्यः, सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः, दिग्देशकालेषु, अस्ताति, अव्, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-दिग्देशकालेषु सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिक्शब्दात् अवराद् अस्ताति विभाषा (अव्)।

अर्थः-दिग्देशकालेष्वर्थेषु वर्तमानात् सप्तमीपञ्चमीप्रथमान्ताद् दिशवाचिनोऽवरात् प्रतिपदिकाद् अस्तातिप्रत्यये परतो विकल्पेनाव्-आदेशो भवति। **उदाहरणम्-**

दिक्-अवरस्यां दिशि वसति-अवस्ताद् वसति। अवरस्ताद् वसति (सप्तमी)। अवरस्या दिश आगतः-अवस्ताद् आगतः। अवरस्ताद् आगतः (पञ्चमी)। अवरा दिग् रमणीया-अवस्ताद् रमणीया। अवरस्ताद् रमणीया (प्रथमा)।

इत्थम्-देशे काले चार्थे पश्चाद्वद् उदाहार्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(दिग्देशकालेषु) दिग्, देश, काल अर्थों में विद्यमान (सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यः) सप्तमी-पञ्चमी-प्रथमान्त (दिक्शब्देभ्यः) दिशावाची (अवरस्य) अवर प्रातिपदिक से (अस्ताति) अस्तात् प्रत्यय परे होने पर (विभाषा) विकल्प से (अव्) अव् आदेश होता है। उदाहरण-*

दिक्-अवर दिशा में रहता है-अवस्तात् रहता है। अवरस्तात् रहता है (सप्तमी)। अवर दिशा से आया-अवस्तात् आया। अवरस्तात् आया (पञ्चमी)। अवर दिशा रमणीया-अवस्तात् रमणीया। अवरस्तात् रमणीया (प्रथमा)।

इसी प्रकार देश और काल अर्थ में 'पश्चात्' शब्द के सहाय से शेष उदाहरणों की ऊह्या कर लेवें।

सिद्धि-(१) अवस्तात्। *यहां पूर्वोक्त 'अवर' शब्द से 'अस्तात्' प्रत्यय करने पर 'अवर' के स्थान में 'अव्' आदेश है।*

(२) अवरस्तात्। *यहां पूर्वोक्त 'अवर' शब्द से 'अस्तात्' प्रत्यय करने पर विकल्प पक्ष में 'अवर' शब्द के स्थान में 'अव्' नहीं होता है।*

इति स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्।

विधार्थ-अधिकरणविचालविशिष्टार्थप्रत्ययप्रकरणम्

धा:-

(१) संख्याया विधार्थे धा।४२।

प०वि०-संख्याया: ५।१ विधा-अर्थे ७।१ धा १।१ (सु-लुक्)।

स०-विधाशब्दस्यार्थ:-विधार्थ:, तस्मिन्-विधार्थे (षष्ठीतत्पुरुष:)। विधा=प्रकार:।

अन्वय:-विधार्थे संख्याया धा:।

अर्थ:-विधार्थे=क्रियाप्रकारेऽर्थे वर्तमानेभ्य: संख्यावाचिभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो धा: प्रत्ययो भवति।

उदा०-एकया विधया भुङ्क्ते-एकधा भुङ्क्ते। द्वाभ्यां विधाभ्यां गच्छति-द्विधा गच्छति। त्रिधा गच्छति। चतुर्धा गच्छति। पञ्चधा गच्छति।

आर्यभाषा: *अर्थ-(विधार्थे) क्रिया-प्रकार अर्थ में विद्यमान (संख्याया:) संख्यावाची प्रातिपदिकों से (धा:) प्रत्यय होता है।*

उदा०-एक प्रकार से खाता-पीता है-एकधा खाता-पीता है। दो प्रकार से जाता है-द्विधा जाता है। तीन प्रकार से जाता है-त्रिधा जाता है। चार प्रकार से जाता है-चतुर्धा जाता है। पांच प्रकार से जाता है-पंचधा जाता है।

सिद्धि-एकधा। एक+टा+धा। एकधा+सु। एकधा+०। एकधा।

*यहां 'विधा' अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'एक' शब्द से 'धा' प्रत्यय है। ऐसे ही-**द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, पञ्चधा।***

धाः–

(२) अधिकरणविचाले च।४३।

प०वि०-अधिकरण-विचाले ७।१ च अव्ययपदम् १।१।

स०-अधिकरणम्=द्रव्यम्। विचालः=संख्यान्तरापादनम्, एकस्यानेकीकरणम्, अनेकस्य वा एकीकरणम्। अधिकरणस्य विचालः-अधिकरणविचालः, तस्मिन्-अधिकरणविचाले (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-संख्यायाः, धा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अधिकरणविचाले च संख्याया धाः।

अर्थः-अधिकरणविचाले=द्रव्यस्य संख्यान्तरापादनेऽर्थे च वर्तमानेभ्यः संख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे धाः प्रत्ययो भवति।

उदा०-एकं राशिं पञ्च राशीन् करोति-पञ्चधा करोति। अष्टधा करोति। अनेकं राशि मेकं करोति-अनेकधा करोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अधिकरणविचाले) द्रव्य को संख्यान्तर बनाने अर्थ में (च) भी विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (धाः) धा प्रत्यय होता है।*

उदा०-एक राशि को पांच राशि बनाता है-पञ्चधा बनाता है। एक राशि को आठ राशि बनाता है-अष्टधा बनाता है। अनेक राशि को एक राशि बनाता है-अनेकधा बनता है।

सिद्धि-पञ्चधा। *पञ्च+शस्+धा। पञ्च+धा। पञ्चधा+सु। पञ्चधा+०। पञ्चधा।*

*यहां अधिकरणविचाल अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'पञ्च' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'धा' प्रत्यय है। ऐसे ही-**अष्टधा, अनेकधा।***

ध्यमुञादेश-विकल्पः–

(३) एकाद् धो ध्यमुञन्यतरस्याम्।४४।

प०वि०-एकात् ५।१ धः ६।१ ध्यमुञ् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-संख्यायाः, विधार्थे, अधिकरणविचाले, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्याया एकाद् विधार्थेऽधिकरणविचाले च धोऽन्यतरस्यां ध्यमुञ्।

अर्थः-संख्यावाचिन एक-शब्दात् परस्य विधार्थेऽधिकरणविचाले चार्थे विहितस्य धा-प्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन ध्यमुञ्-आदेशो भवति।

उदा०-अनेकं राशिम् एकं करोति-एकधा करोति (धा)। ऐकध्यं करोति (ध्यमुञ्)। एकया विधया भुङ्क्ते-एकधा भुङ्क्ते (धा)। ऐकध्यं भुङ्क्ते (ध्यमुञ्)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(संख्यायाः) संख्यावाची (एकात्) एक प्रातिपदिक से परे (विधार्थे) विधा-अर्थ (च) और (अधिकरणविचाले) अधिकरणविचाल अर्थ में विहित धा प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ध्यमुञ्) ध्यमुञ् आदेश होता है।*

उदा०-एक राशि को अनेक राशि बनाता है-एकधा बनाता है (धा)। ऐकध्य बनाता है (ध्यमुञ्)। एक प्रकार से खाता-पीता है-एकधा खाता-पीता है (धा)। ऐकध्य खाता-पीता है (ध्यमुञ्)।

*सिद्धि-(१) **एकधा।** एक+अम्+धा। एक+धा। एकधा+सु। एकधा+०। एकधा।*

यहां विधा अर्थ में तथा अधिकरणविचाल अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'एक' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'धा' प्रत्यय को 'ध्यमुञ्' आदेश नहीं है।

*(२) **ऐकध्यम्।** यहां पूर्वोक्त 'एक' शब्द से विहित 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'ध्यमुञ्' आदेश है। '**तद्धितेष्वचामादेः**' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है।*

धमुञादेश-विकल्पः-

(४) द्वित्र्योश्च धमुञ्।४५।

प०वि०-द्वि-त्र्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्, धमुञ् १।१।

स०-द्विश्च त्रिश्च तौ द्वित्री, तयोः-द्वित्र्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, विधार्थे, अधिकरणविचाले, च, धः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्यायाः=संख्यावाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां च विधार्थेऽधिकरणविचाले च धो धमुञ्।

अर्थः-संख्यावाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां च परस्य विधार्थेऽधिकरणविचाले चार्थे विहितस्य धा-प्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन धमुञ् आदेशो भवति।

उदा०-(द्विः) द्वाभ्यां विधाभ्यां भुङ्क्ते-द्विधा भुङ्क्ते (धाः)। द्वैधं भुङ्क्ते (धमुञ्)। एकं राशिं द्वौ राशी करोति-द्विधा करोति (धाः)। द्वैधं करोति (धमुञ्)। **(त्रिः)** तिसृभिर्विधाभिर्भुङ्क्ते-त्रिधा भुङ्क्ते (धाः)। त्रैधं भुङ्क्ते (धमुञ्)। एकं राशिं त्रीन् राशीन् करोति-त्रिधा करोति (धाः)। त्रैधं करोति (धमुञ्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्यायाः) संख्यावाची (द्वित्र्योः) द्वि, त्रि प्रातिपदिकों से (च) भी परे (विधार्थे) विधा-अर्थ में (च) और (अधिकरणविचाले) द्रव्य को संख्यान्तर बनाने अर्थ में विहित (धः) धा प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (धमुञ्) धमुञ् आदेश होता है।*

*उदा०-**(द्वि)** दो प्रकार से खाता-पीता है-द्विधा खाता-पीता है (धा)। द्वैध खाता-पीता है (धमुञ्)। एक राशि को दो राशि बनाता है-द्विधा बनाता है (धा)। द्वैध बनाता है (धमुञ्)। **(त्रि)** तीन प्रकार से खाता-पीता है-त्रिधा खाता-पीता है (धा)। त्रैध खाता-पीता है (धमुञ्)। एक राशि को तीन राशि बनाता है-त्रिधा बनाता है (धा)। त्रैध बनाता है (धमुञ्)।*

सिद्धि-(१) द्विधा। *यहां विधा-अर्थ में तथा अधिकरणविचाल अर्थ में 'द्वि' शब्द से विहित 'धा' प्रत्यय को 'धमुञ्' आदेश नहीं है। ऐसे ही-**त्रिधा।***

(२) द्वैधम्। *द्वि+औ+धा। द्वि+धमुञ्। द्वै+धम्। द्वैधम्+सु। द्वैधम्+०। द्वैधम्।*

*यहां विधा-अर्थ तथा अधिकरणविचाल अर्थ में विद्यमान 'द्वि' शब्द से विहित 'धा' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में 'धमुञ्' आदेश है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**त्रैधम्।***

एधाच्-आदेशः-

(५) एधाच् च।४६।

प०वि०-एधाच् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संख्यायाः, विधार्थे, अधिकरणविचाले, च, धः, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-संख्यायाः=संख्यावाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां विधार्थेऽधिकरणविचाले च धोऽन्यतरस्याम् एधाच् च।

अर्थः-संख्यवाचिभ्यां द्वित्रिभ्यां परस्य विधार्थेऽधिकरणविचाले चार्थे विहितस्य धा-प्रत्ययस्य स्थाने विकल्पेन **एधाच्** आदेशो भवति।

उदा०- (द्विः) द्वाभ्यां विधाभ्यां भुङ्क्ते-द्विधा भुङ्क्ते (धा)। द्वेधा भुङ्क्ते (एधाच्)। एकं राशिं द्वौ राशी करोति-द्विधा करोति (धा)। द्वेधा करोति (एधाच्)। (त्रिः) तिसृभिर्विधाभिर्भुङ्क्ते-त्रिधा भुङ्क्ते (धा)। त्रेधा भुङ्क्ते (एधाच्)। एकं राशिं त्रीन् राशीन् करोति-त्रिधा करोति (धा)। त्रेधा करोति (एधाच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्यायाः) संख्यावाची (द्वित्र्योः) द्वि, त्रि प्रातिपदिकों से (विधार्थे) विधा-अर्थ में (च) और (अधिकरणविचाले) द्रव्य को संख्यान्तर बनाने अर्थ में विहित (धः) धा-प्रत्यय के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (एधाच्) एधाच् आदेश (च) भी होता है।*

उदा०-(द्वि) दो प्रकार से खाता-पीता है-द्विधा खाता-पीता है (धा)। द्वेधा खाता-पीता है (एधाच्)। एक राशि को दो राशि बनाता है-द्विधा बनाता है (धा)। द्वेधा बनाता है (एधाच्)। (त्रि) तीन प्रकार से खाता-पीता है-त्रिधा खाता-पीता है (धा)। त्रेधा खाता-पीता है (एधाच्)। एक राशि को तीन राशि बनाता है-त्रिधा बनाता है (धा)। त्रेधा बनाता है (एधाच्)। प्रयोग-

द्वेधा वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च।
तासु तेष्वनासक्तः साक्षाद् भर्गो नराकृतिः।।

सिद्धि-(१) द्विधा। पूर्ववत्।

(२) द्वेधा। द्वि+औ+धा। द्वि+एधाच्। द्व्+एधा। द्वेधा+सु। द्वेधा+०। द्वेधा।

यहां विधा-अर्थ तथा अधिकरण-विचाल अर्थ में विद्यमान 'द्वि' शब्द से विहित 'ध' प्रत्यय के स्थान में विकल्प पक्ष में एधाच् आदेश है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

याप्यविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

पाशप्–

(१) याप्ये पाशप्।४७।

प०वि०-याप्ये ७।१ पाशप् १।१।

अन्वयः-याप्ये प्रातिपदिकात् पाशप्।

अर्थः-याप्ये=कुत्सितेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे पाशप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-याप्य:=कुत्सितो वैयाकरण:-वैयाकरणपाश:। याप्यो याज्ञिक:=याज्ञिकपाश:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(याप्ये) कुत्सित=निन्दित अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में (पाशप्) पाशप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-याप्य=कुत्सित (निन्दित) वैयाकरण-वैयाकरणपाश। याप्य=निन्दित याज्ञिक-याज्ञिकपाश।

सिद्धि-वैयाकरणपाश:। वैयाकरण+सु+पाशप्। वैयाकरण+पाश। वैयाकरणपाश+सु। वैयाकरणपाश:।

यहां याप्य अर्थ में विद्यमान वैयाकरण शब्द से स्वार्थ में 'पाशप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-याज्ञिकपाश:।

भागविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

अन्–

(१) पूरणाद् भागे तीयादन्।४८।

प०वि०-पूरणात् ५।१ भागे ७।१ तीयात् ५।१ अन् १।१।

अन्वय:-भागे पूरणात् तीयाद् अन्।

अर्थ:-भागेऽर्थे वर्तमानात् पूरणार्थात् तीय-प्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वितीयो भाग:-द्वितीय:। तृतीयो भाग:-तृतीय:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भागे) भाग अर्थ में विद्यमान (पूरणात्) पूरणार्थक तीयात् तीय-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्) अन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-द्वितीय (दूसरा) भाग-द्वितीय। तृतीय (तीसरा) भाग-तृतीय।

सिद्धि-द्वितीय:। द्वितीय+सु+अन्। द्वितीय्+अ। द्वितीय+सु। द्वितीय:।

यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक, तीय-प्रत्ययान्त 'द्वितीय' शब्द से स्वार्थ में 'अन्' प्रत्यय है। 'अन्' प्रत्यय के 'नित्' होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-द्वितीय:। ऐसे ही-तृतीय:।

अन्–

(२) प्रागेकादशभ्योऽच्छन्दसि।४९।

प०वि०-प्राक् १।१ एकादशभ्य: ५।३ अच्छन्दसि ७।१।

स०-न छन्द:-अच्छन्द:, तस्मिन्-अच्छन्दसि (नञ्तत्पुरुष:)।

अनु०-पूरणात्, भागे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्छन्दसि भागे पूरणेभ्यः प्राग् एकादशभ्यः स्वार्थेऽन्।

अर्थः-अच्छन्दसि विषये भागेऽर्थे वर्तमानेभ्यः पूरणार्थेभ्यः प्राग् एकादशभ्यः संख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थेऽन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्चमो भागः-पञ्चमः। सप्तमः। नवमः। दशमः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अच्छन्दसि) छन्द विषय को छोड़कर (भागे) भाग अर्थ में विद्यमान (पूरणात्) पूरणार्थक (प्राग्-एकादशभ्यः) एकादश से पहले-पहले संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अन्) अन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पांचवां भाग-पञ्चम। सातवां भाग-सप्तम। नववां भाग-नवम। दशवां भाग-दशम।

सिद्धि-पञ्चमः। *पञ्चम+सु+अन्। पञ्चम्+अ। पञ्चम+सु। पञ्चमः।*

*यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक, एकादश संख्या से पूर्ववर्ती 'पञ्चम' शब्द से स्वार्थ में तथा अच्छन्द विषय में इस सूत्र से 'अन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**पञ्च॑म॒ः।** ऐसे ही-**सप्त॑म॒ः। नव॑म॒ः। दश॑म॒ः।***

ञः+अन्-

(३) षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च।५०।

प०वि०-षष्ठ-अष्टमाभ्याम् ५।२ ञ १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

स०-षष्ठश्च अष्टमश्च तौ षष्ठाष्टमौ, ताभ्याम्-षष्ठाष्टमाभ्याम् (इतरेतयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पूरणात्, भागे, अन्, अच्छन्दसि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अच्छन्दसि भागे पूरणाभ्यां षष्ठाष्टमाभ्यां ञोऽन् च।

अर्थः-अच्छन्दसि विषये भागेऽर्थे वर्तमानाभ्यां पूरणार्थाभ्यां षष्ठाष्टमाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे ञोऽन् च प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(षष्ठः)** षष्ठो भागः-षाष्ठः (ञः)। षष्ठः (अन्)। **(अष्टमः)** अष्टमो भागः-आष्टमः (ञः)। अष्टमः (अन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अच्छन्दसि) छन्द विषय को छोड़कर (भागे) भाग अर्थ में विद्यमान (पूरणात्) पूरणार्थक (षष्ठाष्टमाभ्याम्) षष्ठ, अष्टम प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (ञः) ञ (च) और (अन्) अन् प्रत्यय होते हैं।*

*उदा०-(**षष्ठ**) छठा भाग-षाष्ठ (ञ)। षष्ठ (अन्)। (**अष्टम**) आठवां भाग-आष्टम (ञ)। अष्टम (अन्)।*

सिद्धि-षाष्ठः। *षष्ठी+सु+ञ। षाष्ठ्+अ। षाष्ठ+सु। षाष्ठः।*

*यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक 'षष्ठ' शब्द से स्वार्थ में तथा अच्छन्द विषय में इस सूत्र से 'ञ' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**आष्टमः।***

*(२) षष्ठः। यहां पर्वोक्त 'षष्ठ' शब्द से पूर्ववत् 'अन्' प्रत्यय है। प्रत्यय के नित् होने से **'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'** (६।१।१९४) से आद्युदात्त स्वर होता है-**षष्ठः।** ऐसे ही-**अष्टमः।***

कन्+लुक्+अन्+ञः-

(४) मानपश्वङ्गयोः कन्लुकौ च।५१।

प०वि०-मान-पश्वङ्गयोः ७।२ कन्-लुकौ १।१ च अव्ययपदम्।

स०-पशोरङ्गम्-पश्वङ्गम्, मानं च पश्वङ्गं च ते मानपश्वङ्गे, तयोः-मानपश्वङ्गयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। कन् च लुक् च तो कन्लुकौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-पूरणात्, भागे, अन्, षष्ठाष्टमाभ्याम्, ञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-भागे पूरणाभ्यां षष्ठाष्टमाभ्यां कन्लुकावन् ञश्च।

अर्थः-भागेऽर्थे वर्तमानाभ्यां पूरणार्थाभ्यां षष्ठाष्टमाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे यथासंख्यं कन्लुकौ भवतो यथाप्राप्तं-चान्ञौ प्रत्ययौ भवतः, तयोरेव च लुग् भवति, यथासंख्यं मानपश्वङ्गयोरभिधेययोः।

उदा०-(**षष्ठः**) षष्ठो भागः-षष्ठकं मानम् (कन्)। षष्ठं मानम् (अन्)। षाष्ठं मानम् (ञः)। (**अष्टमः**) अष्टमो भागः-अष्टमं पश्वङ्गम् (लुक्)। अष्टमं पश्वङ्गम् (अन्)। आष्टमं पश्वङ्गम् (ञः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(भागे) भाग अर्थ में विद्यमान (पूरणात्) पूरणार्थक (षष्ठीष्टमाभ्याम्) षष्ठ, अष्ट प्रतिपदिकों से स्वार्थ में (कन्लुकौ) यथासंख्य कन् प्रत्यय और प्रत्यय का लुक् होता है (च) और यथाप्राप्त (अन्) अन् तथा (ञः) ञ प्रत्यय होते हैं और उन्हीं का लुक् होता है (मानपश्वङ्गयोः) यदि वहां यथासंख्य मान और पशु अङ्ग अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-(षष्ठ) छठा भाग-षष्ठक मान (कन्)। षष्ठमान (अन्)। षाष्ठ मान (ञ)। (अष्टम) आठवां भाग-अष्टम पशु-अङ्ग (अन्-ञ लुक्) । अष्टम पशु-अङ्ग (अन्) आष्टम पशु-अङ्ग (ञ)।

*सिद्धि-(१) **षष्ठकम्।** षष्ठ+सु+कन्। षष्ठ+क। षष्ठक+सु। षष्ठकम्।*

यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक, 'षष्ठ' शब्द से मान अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

*(२) **षष्ठम्।** यहां पूर्वोक्त 'षष्ठ' शब्द से '**षष्ठाष्टमाभ्यां ञ च**' (५।३।५०) से यथाप्राप्त 'अन्' प्रत्यय है। ऐसे ही पशु-अङ्ग अभिधेय में-**अष्टमम्।***

*(३) **षाष्ठम्।** यहां पूर्वोक्त 'षष्ठ' शब्द से पूर्ववत् 'ञ' प्रत्यय है। ऐसे ही पशु-अङ्ग अभिधेय में-**अष्टमम्।***

*(४) **अष्टमम्।** यहां भाग अर्थ में विद्यमान, पूरणार्थक 'अष्टम' शब्द से पशु-अङ्ग अभिधेय में '**षष्ठाष्ठमाभ्यां ञ च**' (५।३।५०) से प्राप्त ञ और अन् प्रत्यय का इस सूत्र से लुक् होता है।*

असहायविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

आकिनिच्+कन्+लुक्–

(१) एकादाकिनिच्चासहाये।५२।

प०वि०-एकात् ५।१ आकिनिच् १।१ च अव्ययपदम्, असहाये ७।१।

स०-न सहायः-असहायः, तस्मिन्-असहाये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कन्लुकौ इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-असहाये एकाद् आकिनिच् कन्लुकौ।

अर्थः-असहायेऽर्थे वर्तमानाद् एक-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आकिनिच् कन् च प्रत्ययो भवति, तयोश्च लुग् भवति।

उदा०-एकः=असहाय एव-एकाकी (आकिनिच्)। एककः (कन्)। एकः (लुक्)।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(असहाये) असहाय अर्थ में विद्यमान (एकात्) एक प्रातिपदिक से स्वार्थ में (आकिनिच्) आकिनिच् (च) और (कन्लुकौ) कन् प्रत्यय होते हैं और उनका लुक् भी होता है।

उदा०-एक=असहाय ही-एकाकी (आकिनिच्)। एकक (कन्)। एक (आकिनिच् कन् का लुक्) अकेला।

सिद्धि-एकाकी। एक+सु+आकिनिच्। एक्+आकिन्। एकाकिन्+सु। एकाकीन्+सु। एकाकीन्+०। एकाकी०। एकाकी।

यहां असहाय अर्थ में विद्यमान 'एक' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'आकिनिच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। 'सौ च' (६।४।१३) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार का लोप होता है।

(२) एककः। यहां पूर्वोक्त 'एक' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।

(३) एकः। यहां पूर्वोक्त 'एक' शब्द से इस सूत्र से आकिनिच् और कन् प्रत्यय का लुक् है।

भूतपूर्वार्थप्रत्ययविधिः

चरट्–

(१) भूतपूर्वे चरट्।५३।

प०वि०-भूतपूर्वे ७।१ चरट् १।१।

स०-पूर्वं भूत इति-भूतपूर्वः ('सुप् सुपा' इति केवलसमासः)। भूतपूर्वशब्दोऽतीतकालवचनः।

अन्वयः-भूतपूर्वे प्रातिपदिकाच्चरट्।

अर्थः-भूतपूर्वेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे चरट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-आढ्यो भूतपूर्वः-आढ्यचरः। स्त्री चेत्-आढ्यचरी। सुकुमारो भूतपूर्वः-सुकुमारचरः। स्त्री चेत्-सुकुमारचरी।

आर्यभाषाः अर्थ-(भूतपूर्वे) अतीत-काल अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में (चरट्) चरट् प्रत्यय होता है।

उदा०-आढ्य=धनवान् भूतपूर्व-आढ्यचर। यदि स्त्री है तो-आढ्यचरी। सुकुमार=कोमलशील भूतपूर्व-सुकुमारचर। यदि स्त्री है तो-सुकुमारचरी।

सिद्धि-आढ्यचरः। आढ्य+सु+चरट्। आढ्य+चर। आढ्यचर+सु। आढ्यचरः।

यहां भूतपूर्व अर्थ में विद्यमान 'आढ्य' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'चरट्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'टित्' होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है-आढ्यचरी। ऐसे ही-सुकुमारचरः, सुकुमारचरी।

रूप्यः+चरट्–

(२) षष्ठ्या रूप्य च।५४।

प०वि०-षष्ठ्याः ५।१ रूप्य १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-भूतपूर्वे, चरट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-षष्ठ्याः प्रातिपदिकाद् भूतपूर्वे रूप्यश्चरट् च।

अर्थः-षष्ठ्यन्तात् प्रातिपदिकाद् भूतपूर्वेऽर्थे रूप्यश्चरट् च प्रत्ययो भवति। अत्र भूतपूर्वपदं प्रत्ययार्थविशेषणं न तु प्रकृत्यर्थविशेषणम्।

उदा०-देवदत्तस्य भूतपूर्वो गौः-देवदत्तरूप्यः (रूप्यः)। देवदत्तचरः (चरट्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(षष्ठ्याः) षष्ठी-अन्त प्रातिपदिक से (भूतपूर्वे) भूतपूर्व अर्थ में (रूप्यः) रूप्य (च) और (चरट्) चरट् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-देवदत्त का भूतपूर्व गौः=बैल-देवदत्तरूप्य (रूप्य)। देवदत्तचर (चरट्)।

सिद्धि-(१) देवदत्तरूप्यः। देवदत्त+ङस्+रूप्य। देवदत्तरूप्य+सु। देवदत्तरूप्यः। यहां षष्ठ्यन्त देवदत्त' शब्द से भूतपूर्व अर्थ में इस सूत्र से 'रूप्य' प्रत्यय है।

(२) देवदत्तचरः। यहां षष्ठ्यन्त देवदत्त' शब्द से भूतपूर्व अर्थ में इस सूत्र से 'चरट्' प्रत्यय है।

अतिशायनविशिष्टार्थप्रत्ययप्रकरणम्

तमप्-इष्ठन्–

(१) अतिशायने तमबिष्ठनौ।५५।

प०वि०-अतिशायने ७।१ तमप्-इष्ठनौ १।२।

स०-तमप् च इष्ठन् च तौ तमबिष्ठनौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अतिशायने प्रातिपदिकात् तमबिष्ठनौ।

अर्थः-अतिशायने=प्रकर्षेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे तमबिष्ठनौ प्रत्ययौ भवतः। अतिशयनमेव-अतिशायनम्, अत्र निपातनाद्दीर्घत्वम्, प्रकृत्यर्थविशेषणं चैतत्।

उदा०-सर्वे इमे आढ्याः, अयमेषामतिशयेनाऽऽढ्यः-आढ्यतमः। दर्शनीयतमः। सुकुमारतमः (तमप्)। सर्वे इमे पटवः, अयमेषामतिशयेन पटुः-पटिष्ठः। लघिष्ठः। गरिष्ठः (इष्ठन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतिशायने) प्रकर्ष=आधिक्य अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से स्वार्थ में (तमबिष्ठनौ) तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-ये सब आढ्य (धनवान्) हैं-यह इनमें अतिशय=प्रकृष्टता से आढ्य है-आढ्यतम है। ये सब दर्शनीय (सुन्दर) हैं-यह इनमें अतिशय से दर्शनीय है-दर्शनीयतम है। ये सब सुकुमार=कोमलशील हैं-यह इनमें अतिशय से सुकुमार है-सुकुमारतम है (तमप्)। ये सब पटु=चतुर हैं-यह इनमें अतिशय से पटु है-पटिष्ठ है। ये सब लघु=छोटे हैं-यह इनमें अतिशय से लघु है-लघिष्ठ है। ये सब गुरु=बड़े हैं-यह इनमें अतिशय से गुरु है-गरिष्ठ है।

सिद्धि-(१) आढ्यतमः। *आढ्य+सु+तमप्। आढ्य+तम। आढ्यतम+सु। आढ्यतमः।*

*यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'आढ्य' शब्द से स्वार्थ में 'तमप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**दर्शनीयतमः, सुकुमारतमः।***

(२) पटिष्ठः। *पटु+सु+इष्ठन्। पट्+इष्ठ। पटिष्ठ+सु। पटिष्ठः।*

*यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'पटु' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'इष्ठन्' प्रत्यय है। यहां **'तुरिष्ठेमेयस्सु'** (६।४।१५४) की अनुवृत्ति में 'टेः' (६।४।१५५) से अंग के टि-भाग (उ) का लोप होता है। ऐसे ही-**लघिष्ठः।***

(३) गरिष्ठः। *यहां 'गुरु' शब्द से पूर्ववत् 'इष्ठन्' प्रत्यय है। **'प्रियस्थिर०'** (६।४।१५७) से 'गुरु' के स्थान में 'गर्' आदेश होता है।*

विशेषः *जब प्रकर्षवानों का पुनः प्रकर्ष विवक्षित होता है तब आतिशायिकान्त प्रातिपदिक से पुनः आतिशायिक प्रत्यय होता है जैसे **देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे** (यजु० १।१)। **युधिष्ठिरः श्रेष्ठतमः कुरूणाम्।***

तमप्–

(२) तिङश्च।५६।

प०वि०-तिङः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अतिशायने इत्यनुवर्तति। 'तमबिष्ठनौ' इत्येतस्मात् पदाच्च 'तमप्' इत्यनुवर्तनीयं न इष्ठन्, सम्बन्धासम्भवात्। **'एकयोगनिर्दिष्टानामप्येकदेशानुवृत्तिर्भवति'** (पारिभाषिक १८ अष्टा० ४।१।२७)।

अन्वयः-अतिशायने तिङश्च मतुप्।

अर्थः-अतिशायनेऽर्थे वर्तमानात् तिङन्ताच्च स्वार्थे तमप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सर्वे इमे पचन्ति-अयमेषामतिशयेन पचति-पचतितमाम्। पठतितमाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतिशायने) प्रकर्ष अर्थ में विद्यमान (तिङः) तिङन्त शब्द से (च) भी स्वार्थ में (तमप्) तमप् प्रत्यय होता है। यहां 'तमबिष्ठनौ' पद में से 'तमप्' की ही अनुवृत्ति की जाती है, इष्ठन् की नहीं क्योंकि 'अजादी गुणवचनादेव' (५।३।५८) से इष्ठन् प्रत्यय गुणवाची शब्द से ही होता है, तिङन्त पद गुणवाची नहीं है।*

उदा०-ये सब पकाते हैं-यह इनमें अतिशय से पकाता है-पचतितमाम्। ये सब पढ़ते हैं-यह इनमें अतिशय से पढ़ता है-पठतितमाम्।

सिद्धि-पचतितमाम्। पचति+तमप्। पचति+तम। पचतितम+आमु। पचतितम+आम्। पचतितमाम्+सु। पचतितमाम्।

*यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान तिङन्त 'पचति' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'तमप्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात्- '**किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे**' (५।४।११) से 'आमु' प्रत्यय होता है। '**स्वरादिनिपातमव्ययम्**' (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा होकर '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-पठतितमाम्।*

तरप्-ईयसुन्-

(३) द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ।५७।

प०वि०-द्विवचन-विभज्योपपदे ७।१ तरप्-ईयसुनौ १।१।

स०-द्वयोर्वचनम्-द्विवचनम्, विभक्तुं योग्यम्-विभज्यम्। -द्विवचनं च विभज्यं च एतयोः समाहारो द्विवचनविभज्यम्। द्विवचनविभज्यं च तद् उपपदम्-द्विवचनविभज्योपपदम्, तस्मिन्-द्विवचनविभज्योपपदे (षष्ठीतत्पुरुष-समाहारद्वन्द्वगर्भितकर्मधारयः)।

अनु०-अतिशायने, तिङ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विवचनविभज्योपपदेऽतिशायने प्रातिपदिकात् तिङश्च तरबीयसुनौ।

अर्थः-द्विवचने विभज्ये चोपपदेऽतिशायने चार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च स्वार्थे तरबीयसुनौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(द्विवचने प्रातिपदिकात्) द्वाविमावाढ्यौ-अयमनयोरतिशयेनाऽऽढ्यः-आढ्यतरः। सुकुमारतरः (तरप्)। (द्विवचने तिङन्तात्) द्वाविमौ पचतः-अयमनयोरतिशयेन पचति- पचतितराम्। पठतितराम्

(तरप्)। (द्विवचने प्रातिपदिकात्) द्वाविमौ पटू-अयमनयोरतिशयेन पटुः-पटीयान्। लघीयान् (ईयसुन्)। (द्विवचने तिङन्तात्) अत्र ईयसुन् प्रत्ययो न सम्भवति, गुणवचनाभावात्। (विभज्योपपदे) माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः। दर्शनीयतराः (तरप्)। पटीयांसः। लघीयांसः (ईयसुन्)।

आर्यभाषाः अर्थ-(द्विवचनविभज्योपपदे) द्विवचन और विभज्य शब्द उपपद होने पर (अतिशायने) प्रकर्ष अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से तथा (तिङः) तिङन्त शब्द से भी (तरबीयसुनौ) तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(द्विवचन प्रातिपदिक) ये दोनों आढ्य (धनवान्) हैं-यह इन दोनों में अतिशय से आढ्य है-आढ्यतर है। ये दोनों सुकुमार हैं-यह इन दोनों में अतिशय से सुकुमार है-सुकुमारतर है। (द्विवचन तिङन्त)। ये दोनों पकाते हैं-इन दोनों में यह अतिशय से पकाता है-पचतितराम्। ये दोनों पढ़ते हैं-यह दोनों में अतिशय से पढ़ता है-पठतितराम् (तरप्)। (द्विवचन प्रातिपदिक) ये दोनों पटु=चतुर हैं-यह इन दोनों में अतिशय पटु है-पटीयान् है। ये दोनों लघु=छोटे हैं-इन दोनों में यह अतिशय से लघु है-लघीयान् है (ईयसुन्)। (द्विवचन तिङन्त) यहां 'ईसुन्' प्रत्यय सम्भव नहीं है क्योंकि तिङन्त पद गुणवाची नहीं होते हैं। (विभज्य-उपपद) मथुरा के लोग पटना के लोगों से 'आढ्यतर' हैं। दर्शनीयतर हैं (तरप्)। पटीयान् हैं। लघीयान् हैं (ईयसुन्)।

सिद्धि-(१) **आढ्यतरः।** यहां द्विवचन उपपद होने पर अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'आढ्य' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'तरप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**सुकुमारतरः।**

(२) **पचतितराम्।** यहां द्विवचन उपपद होने पर अतिशायन अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'तरप्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् '**किमेत्तिङ्व्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे**' (५।४।११) से 'आमु' प्रत्यय होता है।

(३) **पटीयान्।** पटु+सु+ईयसुन्। पट्+ईयस्। पटीयस्+सु। पटीयनुम्स्+सु। पटीयन्स्+सु। पटीयान्स्+०। पटीयान्०। पटीयान्।

यहां द्विवचन उपपद होने पर, अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'पटु' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से 'ईयसुन्' प्रत्यय है। यहां '**तुरिष्ठेमेयस्सु**' (६।४।१५४) की अनुवृत्ति में '**टेः**' (६।४।१५५) से अंग के टि-भाग (उ) का लोप होता है। 'ईयसुन्' प्रत्यय के उगित् होने से '**उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः**' (७।१।७०) से 'नुम्' आगम, '**सान्तमहतः संयोगस्य**' (६।४।१०) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, '**हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०**' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और '**संयोगान्तस्य लोपः**' (८।२।२३) से संयोगान्त सकार का लोप होता है। ऐसे ही-**लघीयान्।**

इष्ठन्+ईयसुन्–

(४) अजादी गुणवचनादेव।५८।

प०वि०–अजादी १।२ गुणवचनात् ५।१ एव अव्ययपदम्।

स०–अच् आदिर्ययोस्तौ–अजादी (बहुव्रीहिः) इष्ठन्–ईयसुनावित्यर्थः।

अन्वयः–अजादी गुणवचनात् प्रातिपदिकाद् एव।

अर्थः–अजादी=इष्ठन्–ईयसुनौ प्रत्ययौ गुणवचनात् प्रातिपदिकादेव भवतः, नान्यस्मात्।

उदा०–सर्वे इमे पटवः–अयमेषामतिशयेन पटुः–पटिष्ठः। लघिष्ठः। गरिष्ठः (इष्ठन्)। द्वाविमौ पटू–अयमनयोरतिशयेन पटुः–पटीयान्। लघीयान्। गरीयान्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अजादी) अच् जिनके आदि में है वे इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय (गुणवचनात्) गुणवाची प्रातिपदिक से (एव) ही होते हैं, अन्य द्रव्य, जाति तथा क्रियावाची से नहीं होते हैं।*

उदा०–ये सब पटु हैं–यह इनमें अतिशय से पटु है–पटिष्ठ है। ये सब लघु हैं–यह इन सबमें लघु है–लघिष्ठ है। ये सब गुरु हैं–यह इन सब में गुरु है–गरिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों पटु=चतुर हैं–यह इन दोनों में पटु है–पटीयान् है। ये दोनों लघु हैं–यह इन दोनों में लघु है–लघीयान् है। ये दोनों गुरु हैं–यह इन दोनों में गुरु है–गरीयान् है (ईयसुन्)।

सिद्धि–'पटिष्ठ' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

इष्ठन्+ईयसुन्–

(५) तुश्छन्दसि।५९।

प०वि०–तुः ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०–अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि तुः=तृ–अन्ताद् अजादी=इष्ठन्–ईयसुनौ।

अर्थः–छन्दसि विषये तुः=तृ–अन्तात् प्रातिपदिकादपि अजादी= इष्ठन्–ईयसुनौ प्रत्ययौ भवतः। 'तुः' इत्यनेन तृन्–तृचोः सामान्येन ग्रहणं क्रियते।

उदा०-सर्वे इमे कर्तारः, अयमेषामतिशयेन कर्ता-करिष्ठः (तृन्)। **'आसुतिं करिष्ठः'** (ऋ० ७।९७।७)। द्वे इमे द्रोग्ध्र्यौ, इयमनयोरतिशयेन द्रोग्ध्री-दोहीयसी। दोहीयसी धेनुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (तुः) तृ-अन्त प्रातिपदिक से भी (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-ये सब कर्ता हैं, यह इनमें अतिशय कर्ता है-करिष्ठ है (तृन्)। आसुतिं करिष्ठः' (ऋ० ७।९७।७) ये दोनों द्रोग्ध्री=दुधारू गौवें हैं, इन दोनों में यह अतिशय दोग्ध्री गौ है-दोहीयसी है। दोहीयसी धेनुः।

सिद्धि-(१) **करिष्ठः।** *कर्तृ+सु+इष्ठन्। कर्+इष्ठ। करिष्ठ+सु। करिष्ठः।*

यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान, तृन्-अन्त 'कर्तृ' शब्द से छन्द विषय में इस सूत्र से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय है। **'तुरिष्ठेमेयस्सु'** *(६।४।१५४) से 'कर्तृ' के 'तृ' भाग का लोप होता है।*

(२) **दोहीयसी।** *दोग्ध्री+सु+ईयसु। दोह्+ईयस्। दोहीयस्+ङीप्। दोहीयसी+सु। दोहीयसी।*

यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान, तृच्-अन्त 'दोग्ध्री' शब्द से छन्द विषय में इस सूत्र से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय है। वा० **'भस्याढे तद्धिते'** *(६।३।३५) से पुंवद्भाव करने पर* **'तुरिष्ठेमेयस्सु'** *(६।४।१५४) से 'तृच्' के 'तृ' का लोप हो जाता है। 'तृ' शब्द के लोप हो जाने पर निमित्त के अभाव से नैमित्तिक घत्व आदि भी निवृत्त हो जाता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में* **'उगितश्च'** *(४।१।६) से ङीप् प्रत्यय होता है।*

श्र-आदेशः-

(६) प्रशस्यस्य श्रः।६०।

प०वि०-प्रशस्यस्य ६।१ श्रः १।१।

अनु०-अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रशस्यस्य श्रोऽजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः-प्रशस्यशब्दस्य स्थाने श्र आदेशो भवति, अजाद्योः=इष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०-सर्वे इमे प्रशस्याः, अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः-श्रेष्ठः। उभाविमौ प्रशस्यौ, अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः-श्रेयान्। अयमस्मात् श्रेयान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रशस्यस्य) प्रशस्य शब्द के स्थान में (श्रः) श्र आदेश होता है (अजादी) अजादि=इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-ये सब प्रशस्य=प्रशंसनीय हैं, यह इनमें अतिशय प्रशस्य है-श्रेष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों प्रशस्य हैं, यह इन दोनों में अतिशय प्रशस्य है-श्रेयान् है।

सिद्धि-(१) श्रेष्ठः। प्रशस्य+सु+इष्ठन्। श्र+इष्ठ। श्रेष्ठ+सु। श्रेष्ठः।

यहां अतिशायन अर्थ में विद्यमान 'प्रशस्य' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से 'प्रशस्य' के स्थान में 'श्र' आदेश होता है। 'श्र' शब्द के एकाच् होने से 'प्रकृत्यैकाच्' (६।४।१६३) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् 'तुरिष्ठेमेयस्सु' (६।४।१५४) की अनुवृत्ति में 'टेः' (६।४।१५५) से प्राप्त अंग के टि-भाग (अ) का तथा 'यस्येति च' (६।४।१४८) से प्राप्त अंग के अकार का लोप नहीं होता है। अतः 'आद्गुणः' (६।१।८६) से गुणरूप एकादेश होता है।

(२) श्रेयान्। यहां पूर्वोक्त 'प्रशस्य' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय करने पर 'प्रशस्य' के स्थान में 'श्र' आदेश होता है। प्रकृतिभाव आदि कार्य पूर्ववत् है। शेष कार्य 'पटीयान्' (५।३।५७) के समान है।

ज्य-आदेशः-

(७) ज्य च।६१।

प०वि०-ज्य १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-अजादी, प्रशस्यस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-प्रशस्यस्य ज्योऽजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः-प्रशस्यशब्दस्य स्थाने ज्य आदेशश्च भवति, अजाद्योः= इष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०-सर्वे इमे प्रशस्याः, अयमेषामतिशयेन प्रशस्यः-ज्येष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमौ प्रशस्यौ, अयमनयोरतिशयेन प्रशस्यः-ज्यायान् (ईयसुन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रशस्यस्य) प्रशस्य शब्द के स्थान में (ज्यः) ज्य आदेश (च) भी होता है (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-ये सब प्रशस्य=प्रशंसनीय हैं, यह इनमें अतिशय से प्रशस्य है-ज्येष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों प्रशस्य हैं, यह इन दोनों में अतिशय से प्रशस्य है-ज्यायान् है (ईयसुन्)।

सिद्धि-(१) ज्येष्ठः। प्रशस्य+सु+इष्ठन्। ज्य+इष्ठ। ज्येष्ठ+सु। ज्येष्ठः।

यहां 'प्रशस्य' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'ज्य' आदेश होता है। शेष कार्य **'श्रेष्ठः'** (५।३।६०) के समान है।

(२) ज्यायान्। प्रशस्य+सु+ईयसुन्। ज्य+आयस्। ज्यायस्+सु। ज्याय+नुम्+स्+सु। ज्यायान्स्+सु। ज्यायान्स्+०। ज्यायान्०। ज्यायान्।

यहां 'प्रशस्य' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'ज्य' आदेश होता है। **'ज्यादादीयसः'** (६।४।१६०) से 'ज्य' से परे 'ईयसुन्' के ईकार को आकार आदेश होता है। शेष कार्य **'पटीयान्'** (५।३।५७) के समान है।

ज्य-आदेशः-

(८) वृद्धस्य च।६२।

प०वि०-वृद्धस्य ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-अजादी, ज्य इति चानुवर्तते। वृद्धस्य च ज्य अजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः-वृद्धशब्दस्य च स्थाने ज्य आदेशो भवति, अजाद्योः=इष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०-सर्वे इमे वृद्धाः, अयमेषामतिशयेन वृद्धः-ज्येष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमौ वृद्धौ, अयमनयोरतिशयेन वृद्धः-ज्यायान्।

आर्यभाषाः अर्थ-(वृद्धस्य) वृद्ध शब्द के स्थान में (च) भी (ज्यः) ज्य आदेश होता है (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।

उदा०-ये सब वृद्ध हैं, यह इनमें अतिशय से वृद्ध है-ज्येष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों वृद्ध हैं, यह इन दोनों में अतिशय से वृद्ध है-ज्यायान् है (ईयसुन्)।

सिद्धि-ज्येष्ठः। वृद्ध+सु+इष्ठन्। ज्य+इष्ठ। ज्येष्ठ+सु। ज्येष्ठः।

यहां 'वृद्ध' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'ज्य' आदेश होता है। शेष कार्य 'श्रेष्ठः' (५।३।६०) के समान है।

(२) **ज्यायान्।** यहां 'वृद्ध' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'ज्य' आदेश होता है। **'ज्यादादीयसः'** (६।४।१६०) से 'ज्य' से परे 'ईयसुन्' के ईकार को आकार आदेश होता है। शेष कार्य **'पटीयान्'** (५।३।५७) के समान है।

नेद-साधावादेशौ–

(६) अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ।६३।

प०वि०-अन्तिक-बाढयोः ६।२ नेद-साधौ १।२।

स०-अन्तिकं च बाढं च ते-अन्तिकबाढे, तयोः-अन्तिकबाढयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। नेदश्च साधश्च तौ-नेदसाधौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अन्तिकबाढयोर्नेदसाधावजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः-अन्तिकबाढयोः शब्दयोः स्थाने यथासंख्यं नेदसाधावादेशौ भवतः, अजाद्योः=इष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०-**(अन्तिकम्)** सर्वाणीमान्यन्तिकानि, इदमेषामतिशयेनान्तिकम्-नेदिष्ठम् (इष्ठन्)। उभे इमे अन्तिके, इदमनयोरतिशयेनान्तिकम्-नेदीयः। इदमस्माद् नेदीयः। **(बाढम्)** सर्वे इमे बाढमधीयते, अयमेषामतिशयेन बाढमधीते-साधिष्ठमधीते (इष्ठन्)। उभाविमौ बाढमधीयाते, अयमनयोरतिशयेन बाढमधीते-साधीयोऽधीते। अयमस्मात् साधीयोऽधीते (ईयसुन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अन्तिकबाढयोः) अन्तिक, बाढ शब्दों के स्थान में (नेदसाधौ) यथासंख्य नेद, साध आदेश होते हैं (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-(अन्तिक) ये सब अन्तिक (पास) हैं, यह इनमें अतिशय से अन्तिक है-नेदिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों अन्तिक हैं, यह इन दोनों में अतिशय से अन्तिक है-नेदीय है (ईयसुन्)। ***(बाढम्)*** *ये सब ठीक पढ़ते हैं, यह इनमें अतिशय से ठीक पढ़ता है-साधिष्ठ पढ़ता है (इष्ठन्)। ये दोनों ठीक पढ़ते हैं, यह इन दोनों में अतिशय से ठीक पढ़ता है-साधीय पढ़ता है (ईयसुन्)।*

सिद्धि-(१) ***नेदिष्ठम्।*** *अन्तिक+सु+इष्ठन्। नेद्+इष्ठ। नेदिष्ठ+सु। नेदिष्ठम्।*

यहां 'अन्तिक' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'नेद' आदेश होता है।

(२) ***नेदीयः।*** *अन्तिक+सु+ईयसुन्। नेद्+ईयसुन्। नेदीयस्+सु। नेदीयस्+०। नेदीयरु। नेदीयर्। नेदीयः।*

यहां अन्तिक शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय करने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'नेद' आदेश होता है। नपुंसकत्व-विवक्षा में ***'स्वमोर्नपुंसकात्'*** *(७।१।२३) से 'सु' प्रत्यय का लुक् होता है।*

(३) ***साधिष्ठम्।*** *बाढ+सु+इष्ठन्। साध्+इष्ठ। साधिष्ठ+सु। साधिष्ठम्।*

यहां 'बाढ' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'साध' आदेश होता है।

(४) ***साधीयः।*** *बाढ+सु+ईयसुन्। साध्+ईयस्। साधीयस्+सु। साधीयस्+०। साधीयरु। साधीयर्। साधीयः।*

यहां 'बाढ' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान *में 'साध' आदेश होता है। नपुंसकत्व-विवक्षा में* ***'स्वमोर्नपुंसकात्'*** *(७।१।२३) से 'सु' प्रत्यय का लुक् होता है।*

कन्-आदेशविकल्पः–

(१०) युवाल्पयोः कनन्यतरस्याम्।६४।

प०वि०–युव-अल्पयोः ६।२ कन् १।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०–युवा च अल्पश्च तौ युवाल्पौ, तयोः–युवाल्पयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–युवाल्पयोरन्यतरस्यां कन्, अजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः–युवाल्पयोः शब्दयोः स्थाने विकल्पेन कन् आदेशो भवति, अजाद्योरिष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०–**(युवा)** सर्वे इमे युवानः, अयमेषामतिशयेन युवा-कनिष्ठः, यविष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमौ युवानौ, अयमनयोरतिशयेन युवा-कनीयान्, यवीयान् (ईयसुन्)। **(अल्प)** सर्वे इमे अल्पाः, अयमेषामतिशयेनाऽल्पः-कनिष्ठः, अल्पिष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमावल्पौ, अयमनयोरतिशयेनाऽल्पः-कनीयान्, अल्पीयान् (ईयसुन्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(युवाल्पयोः) युवा, अल्प शब्दों के स्थान में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (कन्) कन् आदेश होता है (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन्* ***प्रत्यय परे*** *होने पर।*

उदा०-(युवा) ये सब युवा (जवान) हैं, यह इनमें अतिशय से युवा है-कनिष्ठ है, यविष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों युवा हैं, यह इन दोनों में अतिशय से युवा है-कनीयान् है, यवीयान् है (ईयसुन्)। (अल्प) ये सब अल्प=तुच्छ हैं, यह इनमें अतिशय अल्प है-कनिष्ठ है, अल्पिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों अल्प=तुच्छ हैं, यह इन दोनों में अतिशय से अल्प है-कनीयान् है।, अल्पीयान् है (ईयसुन्)।

सिद्धि-(१) कनिष्ठः। युवन्+सु+इष्ठन्। कन्+इष्ठ। कनिष्ठ+सु। कनिष्ठः।

यहां 'युवन्' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान में 'कन्' आदेश है। ऐसे ही अल्प शब्द से भी-कनिष्ठः।

(२) यविष्ठः। यहां 'युवन्' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर विकल्प पक्ष में कन् आदेश नहीं होता है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही अल्प शब्द से-अल्पिष्ठः।

(३) कनीयान्। युवन्+सु+ईयसुन्। कन्+ईयस्। कनीयस्+सु। कनीया+नुम्+स्+सु। कनीयान्+सु। कनीयान्+०। कनीयान्।

यहां 'युवन्' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से उसके स्थान पर 'कन् आदेश होता है। शेष कार्य 'पटीयान्' ५।३।५७) के समान है। ऐसे ही-अल्प शब्द से भी-कनीयान्।

(४) यवीयान्। यहां 'युवन्' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर विकल्प पक्ष में 'कन्' आदेश नहीं होता है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही 'अल्प' शब्द से-अल्पीयान्।

प्रत्यय-लुक्–

(११) विन्मतोर्लुक्।६५।

प०वि०-विन्-मतोः ६।२ लुक् १।१।

स०-विन् च मत् च तौ विन्मतौ, तयोः-विन्मतोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अजादी इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-विन्मतोः प्रत्यययोर्लुग् अजाद्योः (इष्ठन्-ईयसुनोः)।

अर्थः-विनो मतुपश्च प्रत्ययस्य लुग् भवति, अजाद्योः=इष्ठन्-ईयसुनोः प्रत्यययोः परतः।

उदा०-(विन्) सर्वे इमे स्रग्विणः, अयमेषामतिशयेन स्रग्वी-स्रजिष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमौ स्रग्विणौ, अयमनयोरतिशयेन स्रग्वी-स्रजीयान्

(ईयसुन्)। **(मतुप्)** सर्वे इमे त्वग्वन्तः, अयमेषामतिशयेन त्वग्वान्-त्वचिष्ठः (इष्ठन्)। उभाविमौ त्वग्वन्तौ, अयमनयोरतिशयेन त्वग्वान्-त्वचीयान्। अयमस्मात् त्वचीयान्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विन्मतोः) विन् और मतुप् का (लुक्) लुक् होता है (अजादी) अजादि इष्ठन् और ईयसुन् प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-**(विन्)** ये सब स्रग्वी=मालाधारी हैं, यह इन सब में अतिशय से स्रग्वी है-स्रजिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों स्रग्वी=मालाधारी हैं, यह इन दोनों में अधिक स्रग्वी है-स्रजीयान् है (ईयसुन्)। **(मतुप्)** ये सब त्वग्वन्त=उत्तम त्वचावाले हैं, यह इनमें अतिशय से त्वग्वान् है-त्वचिष्ठ है (इष्ठन्)। ये दोनों त्वग्वन्त=उत्तम त्वचावाले हैं, यह इन दोनों में अतिशय से त्वग्वान् है-त्वचीयान् है (ईयसुन्)।*

*सिद्धि-(१) **स्रजिष्ठः।** स्रग्विन्+सु+इष्ठन्। स्रज्+इष्ठ। स्रजिष्ठ+सु। स्रजिष्ठः।*

*यहां 'स्रज्' प्रातिपदिक से **'अस्मायामेधास्रजो विनिः'** (५।२।१२१) से 'विनि' प्रत्यय है। विनि-प्रत्ययान्त 'स्रग्विन्' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'विन्' प्रत्यय का लुक् होता है।*

*(२) **स्रजीयान्।** यहां पूर्वोक्त विनि-प्रत्ययान्त 'स्रग्विन्' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'विन्' प्रत्यय का लुक् होता है। शेष कार्य **'पटीयान्'** (५।३।५७) के समान है।*

*(३) **त्वचिष्ठः।** त्वग्वत्+सु+इष्ठन्। त्वच्+इष्ठ। त्वचिष्ठ+सु। त्वचिष्ठः।*

*यहां प्रथम 'त्वच्' शब्द से **'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्'** (५।२।९४) से 'मतुप्' प्रत्यय है। मतुप्-प्रत्ययान्त 'त्वग्वत्' शब्द से अजादि 'इष्ठन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् होता है।*

*(४) **त्वचीयान्।** यहां पूर्वोक्त 'मतुप्' प्रत्ययान्त 'त्वग्वत्' शब्द से अजादि 'ईयसुन्' प्रत्यय परे होने पर इस सूत्र से 'मतुप्' प्रत्यय का लुक् होता है। शेष कार्य 'पटीयान्' (५।३।५७) के समान है।*

प्रशंसाविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

रूपप्–

(१) प्रशंसायां रूपप्।६६।

प०वि०-प्रशंसायाम् ७।१ रूपप् १।१।

अनु०-'तिङश्च' (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-प्रशंसायां प्रातिपदिकात् तिङश्च रूपप्।

अर्थः-प्रशंसार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च रूपप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(प्रातिपदिकम्) प्रशस्तो वैयाकरणः-वैयाकरणरूपः। याज्ञिकरूपः। **(तिङन्तम्)** प्रशस्तं पचति-पचतिरूपम्। प्रशस्तं लिखति-लिखतिरूपम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रशंसायाम्) प्रशंसा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (च) और (तिङः) तिङन्त शब्द से (रूपप्) रूपप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(प्रातिपदिक) प्रशस्त वैयाकरण-वैयाकरणरूप। प्रशस्त याज्ञिक याज्ञिकरूप। (तिङन्त) वह प्रशस्त पकाता है-पचतिरूप। वह प्रशस्त लिखता है-लिखतिरूप।

सिद्धि-(१) ***वैयाकरणरूपः।*** *वैयाकरण+सु+रूपप्। वैयाकरण+सु। वैयाकरणरूपः।*

*यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'वैयाकरण' शब्द से इस सूत्र से 'रूपप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-***याज्ञिकरूपः।***

(२) ***पचतिरूपम्।*** *यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति' शब्द से इस सूत्र से 'रूपप्' प्रत्यय है।* ***'भावप्रधानमाख्यातम्'*** *(निरुक्त) आख्यात क्रियाप्रधान होता है। 'पचतिरूपम्' यहां पाक क्रिया एक है अतः इस रूपप्-प्रत्ययान्त शब्द से द्विवचन और बहुवचन नहीं होता है।* ***'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य'*** *इस परिभाषा से लिङ्ग के लोकाश्रित होने से नपुंसकलिङ्ग होता है।*

ईषदसमाप्तिविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

कल्पप्+देश्यः+देशीयर्-

(१) ईषदसमाप्तौ कल्पप्देश्यदेशीयरः।६७।

प०वि०-ईषद्-असमाप्तौ ७।१ कल्पप्-देश्य-देशीयरः १।३।

स०-न समाप्तिः-असमाप्तिः। ईषच्चासावसमाप्तिः-ईषदसमाप्तिः, तस्याम्-ईषदसमाप्तौ (नञ्तत्पुरुषगर्भितकर्मधारयः)। पदार्थानां सम्पूर्णता समाप्तिरिति कथ्यते। स्तोकेनासम्पूर्णता=ईषदसमाप्तिः=किञ्चिन्न्यूनता इत्यर्थः। कल्पप् च देश्यश्च देशीयर् च ते-कल्पप्देश्यदेशीयरः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-'तिङश्चः' (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-ईषदसमाप्तौ प्रातिपदिकात् तिङश्च कल्पब्देश्यदेशीयरः।

अर्थः-ईषदसमाप्तौ=स्तोकेनाऽसम्पूर्णतार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च कल्पब्देश्यदेशीयरः प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-**(प्रातिपदिकम्)** ईषदसमाप्त ऋषिः-ऋषिकल्पः (कल्पप्)। ऋषिदेश्यः (देश्यः)। ऋषिदेशीयः (देशीयर्)। **(तिङन्तम्)** ईषदसमाप्तं पचति-पचतिकल्पम् (कल्पप्)। पचतिदेश्यम् (देश्यः)। पचतिदेशीयम् (देशीयर्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ईषदसमाप्तौ) थोड़ीसी असम्पूर्णता=न्यूनता अर्थ में विद्यमान (प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से (च) और (तिङः) तिङन्त शब्द से (कल्पब्देश्यदेशीयरः) कल्पप्, देश्य, देशीयर् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(प्रातिपदिक) ईषद् असमाप्त=थोड़ा-सा कम ऋषि-ऋषिकल्प (कल्पप्)। ऋषिदेश्य (देश्य)। ऋषिदेशीय (देशीयर्)। (तिङन्त) ईषद् असमाप्त=थोड़ा-सा कम पकाता है-पचतिकल्प (कल्पप्)। पचतिदेश्य (देश्य)। पचतिदेशीय (देशीयर्)।

सिद्धि-(१) ***ऋषिकल्पः।*** *ऋषि+सु+कल्पप्। ऋषिकल्प+सु। ऋषिकल्पः।*

यहां ईषद्-असमाप्ति अर्थ में विद्यमान 'ऋषि' शब्द से इस ***सूत्र*** *से 'कल्पप्'* ***प्रत्यय*** *है। ऐसे ही-**ऋषिदेश्य, ऋषिदेशीय।***

(२) ***पचतिकल्पम्।*** *यहां ईषद्-असमाप्ति अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति'* ***शब्द*** *से इस सूत्र से 'कल्पप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**पचतिदेश्यम्, पचतिदेशीयम्।***

बहुच्-

(२) विभाषा सुपो बहुच् पुरस्तात् तु।६८।

प०वि०-विभाषा १।१ सुपः ५।१ बहुच् १।१ पुरस्तात् अव्ययपदम्, तु अव्ययपदम्।

अनु०-ईषदसमाप्तावित्यनुवर्तते, 'सुप्' इति वचनात् 'तिङश्च' इति नानुवर्तते।

अन्वयः-ईषदसमाप्तौ सुपो विभाषा बहुच्, तु पुरस्तात्।

अर्थः-ईषदसमाप्तौ=स्तोकेनासम्पूर्णतार्थे वर्तमानात् सुबन्ताद् विकल्पेन बहुच् प्रत्ययो भवति, स तु सुबन्तात् पुरस्ताद् भवति, **पक्षे च** कल्पब्देश्यदेशीरः **प्रत्यया** भवन्ति।

उदा०-ईषदसमाप्तः पण्डितः-बहुपण्डितः। बहुपटुः। बहुमृदुः (बहुच्)। पण्डितकल्पः (कल्पप्)। पण्डितदेश्यः (देश्यः)। पण्डितदेशीयः (देशीर्)। पटुकल्पः। पटुदेश्यः। पटुदेशीयः। मृदुकल्पः। मृदुदेश्यः। मृदुदेशीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ईषदसमाप्तौ) थोड़ीसी असम्पूर्णता=न्यूनता अर्थ में विद्यमान (सुपः) सुबन्त शब्द से (विभाषा) विकल्प से (बहुच्) बहुच् प्रत्यय होता है और वह (तु) तो उस सुबन्त से (पुरस्तात्) पूर्व होता है, पर नहीं और पक्ष में कल्पप्, देश्य, देशीयर् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-ईषद्-असमाप्त=थोड़ा-सा कम पण्डित-बहुपण्डित। ईषद्-असमाप्त पटु-बहुपटु। ईषद्-असमाप्त मृदु=कोमल-बहुमृदु (बहुच्)। ईषद्-असमाप्त पण्डित-पण्डितकल्प (कल्पप्)। पण्डितदेश्य (देश्य)। पण्डितदेशीय (देशीयर्)। ईषद्-असमाप्त पटु=चतुर-पटुकल्प। पटुदेश्य। पटुदेशीय। ईषद्-असमाप्त मृदु=कोमल-मृदुकल्प। मृदुदेश्य। मृदुदेशीय।

सिद्धि-(१) बहुपण्डितः। बहुच्+पण्डित+सु। बहु+पण्डितः। बहुपण्डितः।

यहां ईषद्-असमाप्ति अर्थ में विद्यमान, सुबन्त 'पण्डित' शब्द से इस सूत्र से सुबन्त से पूर्व 'बहुच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-बहुपटुः, बहुमृदुः।

(२) पण्डितकल्पः आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

प्रकारविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

जातीयर्-

(१) प्रकारवचने जातीयर्।६६।

प०वि०-प्रकार-वचने ७।१ जातीयर् १।१।

स०-सामान्यस्य भेदकः (विशेषः) प्रकारः। प्रकारस्य वचनम् (द्योतनम्) प्रकारवचनम्, तस्मिन्-प्रकारवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-सुप इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रकारवचने सुपो जातीयर्।

अर्थः-प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानात् सुबन्तात् स्वार्थे जातीयर् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पण्डितप्रकारः=पण्डितविशेषः-पण्डितजातीयः। पटुजातीयः। मृदुजातीयः। दर्शनीयजातीयः।

आर्यभाषाः अर्थ-(प्रकारवचने) प्रकार के प्रकाशन अर्थ में विद्यमान (सुपः) सुबन्त शब्द से (जातीयर्) जातीयर् प्रत्यय होता है।

*उदा०-पण्डितप्रकार (**पण्डितविशेष**)-पण्डितजातीय। पटुप्रकार-पटुजातीय। मृदुप्रकार-मृदुजातीय। दर्शनीयप्रकार-दर्शनीयजातीय।*

सिद्धि-पण्डितजातीयः। *पण्डित+सु+जातीयर्। पण्डित+जातीय। पण्डितजातीय+सु। पण्डितजातीयः।*

यहां प्रकारवचन अर्थ में विद्यमान, सुबन्त 'पण्डित' शब्द से स्वार्थ में इस सूत्र से जातीयर् प्रत्यय है। ऐसे ही-पटुजातीयः, मृदुजातीयः, दर्शनीयजातीयः।

प्रागिवीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्

क-अधिकारः-

(१) प्रागिवात् कः।७०।

प०वि०-प्राक् १।१ इवात् ५।१ कः १।१।

अन्वयः-इवात् प्राक् कः।

अर्थः- **'इवे प्रतिकृतौ'** (५।३।९६) इति वक्ष्याति, एस्माद् इवशब्दात् प्राक् कः प्रत्ययो भवति, इत्यधिकारोऽयम्। वक्ष्यति-**'अज्ञाते'** (५।३।७३) इति। अज्ञातोऽश्वः-अश्वकः। गर्दभकः। उष्ट्रकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवात्) **'इवे प्रतिकृतौ'** (५।३।९६) इस सूत्र में **पठित** 'इव' शब्द से (प्राक्) पहले-पहले (कः) क प्रत्यय होता है, यह अधिकार सूत्र है।*

उदा०-जैसे पाणिनिमुनि कहेंगे 'अज्ञाते' (५।३।७३) अर्थात् अज्ञात अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से 'क' प्रत्यय होता है। अज्ञात अश्व-अश्वक। अज्ञात गर्दभ (गधा)-गर्दभक। अज्ञात उष्ट्र (ऊंट)-ऊष्ट्रक।

सिद्धि-अश्वकः। *अश्व+सु+क। अश्व+क। अश्वक्+सु। अश्वकः।*

*यहां **'अज्ञाते'** (५।३।७३) से प्रागिवीय अज्ञात अर्थ में विद्यमान 'अश्व' शब्द से 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-**गर्दभकः। उष्ट्रकः।***

अकच्-अधिकारः-

(२) अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः।७१।

प०वि०-अव्यय-सर्वनाम्नाम् ६।३ अकच् १।१ प्राक् १।१ टेः ५।१।

स०-अव्ययानि च सर्वनामानि च तानि-अव्ययसर्वनामानि, तेषाम्-अव्ययसर्वनाम्नाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-सुप इत्यनुवर्तति। **'तिङश्च'** (५।३।५६) इति चानुवर्तनीयम्।

अन्वयः-अव्ययसर्वनामभ्यः, प्रातिपदिकेभ्यः सुबन्तेभ्यस्तिङन्तेभ्यश्च प्राग् इवात् प्राक् टेरकच्।

अर्थः-अव्ययेभ्यः सर्वनामभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सुबन्तेभ्यस्तिङन्तेभ्यश्च शब्देभ्यः प्रागिवीयेष्वर्थेषु प्राक् टेरकच् प्रत्ययो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

अस्मिन् सूत्रे प्रातिपदिकात्, सुप इति द्वयमप्यनुवर्तति। तेन-क्वचित् प्रातिपदिकस्य 'टेः' प्राक् प्रत्ययो भवति, क्वचिच्च सुबन्तस्य 'टेः' प्राक् प्रत्ययो विधीयते। तत्राभिधानतो व्यवस्था भवति।

उदा०-**(अव्ययम्)** अल्पमुच्चैः-उच्चकैः। अल्पं नीचैः-नीचकैः। अल्पं शनैः-शनकैः। **(सर्वनाम)** अल्पे सर्वे-सर्वके। अल्पे विश्वे-विश्वके। अल्पे उभये-उभयके। **(सुबन्तम्)** अल्पेन त्वया-त्वयका। अल्पेन मया-मयका। अल्पे त्वयि-त्वयकि। अल्पे मयि-मयकि। **(तिङन्तम्)** अल्पं पचति-पचतकि। अल्पं पठति-पठतकि।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अव्ययसर्वनामभ्यः) अव्यय, सर्वनाम प्रातिपदिकों से (सुपः) सुबन्तों से तथा (तिङः) तिङन्तों से (च) भी (प्राग् इवात्) प्राग्-इवीय अर्थों में (टेः) टि-भाग से (प्राक्) पहले (अकच्) अकच् प्रत्यय होता है।*

इस सूत्र से 'प्रातिपदिकात्' और 'सुपः' इन दोनों की अनुवृत्ति है। अतः कहीं प्रातिपदिक के टि-भाग से पहले अकच् प्रत्यय होता है और कहीं सुबन्त के टि-भाग से पहले अकच् प्रत्यय किया जाता है। यह सब अभिधान (अर्थ-कथन) के सामर्थ्य से व्यवस्था होती है।

*उदा०-**(अव्ययम्)** अल्प उच्चैः (ऊंचा)-उच्चकैः। अल्प नीचैः (नीचा)-नीचकैः। अल्प शनैः (धीरे)-शनकैः। **(सर्वनाम)** अल्प सर्व (सब)-सर्वके। अल्प विश्व (समस्त)-विश्वके। अल्प उभय (दोनों)-उभयके। **(सुबन्त)** अल्प तुझ से-त्वयका। अल्प मुझ में-मयका। अल्प तुझ में-त्वयकि। अल्प मुझ में-मयकि। **(तिङन्त)** अल्प पकाता है-पचतकि। अल्प पढ़ता है-पठतकि।*

सिद्धि-(१) उच्चकैः। उच्चैस्+सु। उच्च्+अकच्+ऐस्+०। उच्चक+ऐस्+०। उच्चकैस्। उच्चकैः।

*यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, अव्यय-संज्ञक 'उच्चैः' शब्द से इस सूत्र से उसके टि-भाग (ऐस्) से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**नीचकैः। शनकैः।***

*(२) **सर्वके।** सर्व+जस्। सर्व्+अकच्+अ+अस्। सर्व्+अक्+अ+शी। सर्वक+ई। सर्वके।*

*यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, सर्वनाम-संज्ञक 'सर्व' शब्द से इस सूत्र से उसके टि-भाग (अ) से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय है। 'अकच्' प्रत्यय का द्वितीय अकार उच्चारणार्थ है और चकार 'चितः' (६।१।१६०) से अन्तोदात्त स्वर के लिये है। 'जसः शी' (७।१।१७) से 'जस्' के स्थान में 'शी' आदेश होता है। ऐसे ही-**विश्वके, उभयके।***

*(३) **त्वयका।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, तृतीयान्त, सुबन्त 'त्वया' शब्द से 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मयका।***

*(४) **त्वयकि।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, सप्तम्यन्त, सुबन्त 'त्वयि' शब्द से 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मयकि।***

*(५) **पचतकि।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति' शब्द से 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**पठतकि।***

अकच्-

(३) कस्य च दः।७२।

प०वि०-कस्य ६।१ (पञ्चम्यर्थे) च अव्ययपदम्, दः १।१।

अनु०-अव्ययम्, अकच्, प्राक्, टेरिति चानुवर्तते। सर्वनामेति च नानुवर्तति तस्य ककारान्ताऽभावात्।

अन्वयः-अव्ययात् कात् प्राग्-इवात् प्राक् टेरकच्, दश्च।

अर्थः-अव्ययसंज्ञकात् ककारान्तात् प्रातिपदिकात् प्रागिवीयेष्वर्थेषु प्राक् टेरकच् प्रत्ययो भवति, दकारश्चान्तादेशो भवति, इत्यधिकारोऽयम्।

उदा०-अल्पं धिक्-धकित्। अल्पं हिरुक्-हिरकुत्। अल्पं पृथक्-पृथकत्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अव्ययात्) अव्ययसंज्ञक (कस्य) ककारान्त प्रातिपदिक से (प्राग् इवात्) प्राग्-इवीय अर्थों में (टेः) टि-भाग से (प्राक्) पहले (अकच्) अकच् प्रत्यय होता है (च) और (दः) दकार अन्तादेश होता है।*

उदा०-अल्प धिक् (धिक्कार)-धकित्। अल्प हिरुक् (समीप)-हिरकुत्। अल्प पृथक् (अलग)-पृथकत्।

*सिद्धि-**धकित्।** धिक्+सु। ध्+अकच्+इक्+०। ध्+अक्+इद्+०। धकिद्। धकित्।*

यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, अव्यय-संज्ञक, ककारान्त 'धिक्' शब्द से उसके टि-भाग से पूर्व इस सूत्र से 'अकच्' प्रत्यय है और 'धिक्' के ककार को दकार आदेश होता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५६) से 'द्' को 'चर्' तकार आदेश होता है। ऐसे ही-हिरकुत्, पृथकत्।

अज्ञातविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) अज्ञाते।७३।

वि०-अज्ञाते ७।१।

अनु०-**'तिङश्च'** (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-अज्ञाते प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-अज्ञातेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च स्वार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति (कः/अकच्)।

स्वेन रूपेण ज्ञाते पदार्थे विशेषरूपेण चाज्ञाते प्रत्ययविधानमिदं क्रियते। कस्यायमश्व इति स्वस्वामिसम्बन्धेनाऽज्ञातेऽश्वे प्रत्ययो भवतीत्यर्थः। एवं सर्वत्राज्ञतता विज्ञातव्या।

उदा०-अज्ञातोऽश्वः-अश्वकः। गर्दभकः। उष्ट्रकः। अज्ञातमुच्चैः-उच्चकैः। नीचकैः। अज्ञाताः सर्वे-सर्वके। विश्वके। अज्ञातं पचति-पचतकि। पठतकि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अज्ञाते) अज्ञात अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त शब्द से (च) भी स्वार्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (क/अकच्)।*

स्वरूप से ज्ञात पदार्थ के विषय में विशेष रूप से अज्ञात होने पर यह प्रत्ययविधि की जाती है। यह तो ज्ञात है कि यह एक अश्व है किन्तु यह अज्ञात है कि यह अश्व किसका है, इस अज्ञात अर्थ में यह प्रत्यय होता है। इस प्रकार सर्वत्र 'अज्ञात' शब्द का अभिप्राय समझ लेवें।

उदा०-अज्ञात अश्व (घोड़ा)-अश्वक। अज्ञात गर्दभ (गधा)-गर्दभक। अज्ञात उष्ट्र (ऊंट)-उष्ट्रक। अज्ञात उच्चैः (ऊंचा)-उच्चकैः। अज्ञात नीचैः (नीचा)-नीचकैः। अज्ञात सर्व (सब)-सर्वके। अज्ञात विश्व (समस्त)-विश्वके। अज्ञात पकाता है-पचतकि। अज्ञात पढ़ता है-पठतकि (पता नहीं कि वह क्या पढ़ता है)।

सिद्धि-'अश्वकः' *आदि पदों की सिद्धि अज्ञात अर्थ में पूर्ववत् है।*

कुत्सितविशिष्टार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः–

(१) कुत्सिते।७४।

वि०–कुत्सिते ७।१।

अनु०–**'तिङश्च'** (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः–कुत्सिते प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः–कुत्सितेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च स्वार्थे यथाविहितं प्रत्ययो भवति (कः/अकच्)। कुत्सितम्=गर्हितम्, निन्दितमित्यर्थः।

उदा०–कुत्सितोऽश्वः–अश्वकः। गर्दभकः। उष्ट्रकः।। कुत्सितमुच्चैः–उच्चकैः। नीचकैः।। कुत्सिताः सर्वे–सर्वके। विश्वके।। कुत्सितं पचति–पचतकि। पठतकि।

आर्यभाषाः *अर्थ–(कुत्सिते) निन्दित अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त से (च) भी स्वार्थ में यथाविहित प्रत्यय होता है (क/अकच्)।*

उदा०–कुत्सित=निन्दित अश्व–अश्वक। कुत्सित गर्दभ–गर्दभक। कुत्सित उष्ट्र–उष्ट्रक। कुत्सित सर्व–सर्वके। कुत्सित विश्व–विश्वके। कुत्सित पकाता है–पचतकि। कुत्सित पढ़ता है–पठतकि।

सिद्धि–'अश्वक' आदि पदों की कुत्सित अर्थ में सिद्धि पूर्ववत् है।

कन्–

(२) संज्ञायां कन्।७५।

प०वि०–संज्ञायाम् ७।१ कन् १।१।

अनु०–कुत्सिते इत्यनुवतति। **'तिङश्च'** इति नानुवतति, संज्ञाऽभावात्।

अन्वयः–कुत्सिते प्रातिपदिकात् कन् संज्ञायाम्।

अर्थः–कुत्सितेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–कुत्सितः शूद्रः–शूद्रकः। कुत्सितो धारः–धारकः। कुत्सितः पूर्णः–पूर्णकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कुत्सिते) निन्दित अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-कुत्सित=निन्दित शूद्र-शूद्रक (विदिशा नगरी का एक राजा और मृच्छकटिक नामक काव्य का रचयिता महाकवि)। कुत्सित धार-धारक (कलश आदि)। कुत्सित पूर्ण-पूर्णक (पाचक)।

सिद्धि-शूद्रकः। शूद्र+सु+कन्। शूद्र+क। शूद्रक+सु। शूद्रकः।

*यहां कुत्सित अर्थ में विद्यमान 'शूद्र' शब्द से संज्ञा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। यह 'क' प्रत्यय का अपवाद है। ऐसे ही-**धारकः**, **पूर्णकः**।*

अनुकम्पार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) अनुकम्पायाम्।७६।

वि०-अनुकम्पायाम् ७।१।

अनु०-**'तिङश्च'** (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययोऽनुकम्पायाम्।

अर्थः-प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति, अनुकम्पायां गम्यमानायाम्। कारुण्येन परस्यानुग्रहः=उपकारोऽनुकम्पेति कथ्यते।

उदा०-अनुकम्पितः पुत्रः-पुत्रकः। वत्सकः। दुर्बलकः। बुभुक्षितकः। अनुकम्पितः स्वपिति-स्वपितकि। पठतकि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रातिपदिकात्) प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त से (च) भी यथाविहित प्रत्यय होता है (अनुकम्पायाम्) यदि वहां अनुकम्पा अर्थ की प्रतीति हो। करुणापूर्वक दूसरे का उपकार करना-'अनुकम्पा' कहाती है।*

उदा०-अनुकम्पित पुत्र-पुत्रक। करुणापूर्वक उपकृत पुत्र। लाडला बेटा। अनुकम्पित वत्स-वत्सक। लाडला बच्चा। अनुकम्पित सोता है-स्वपितकि। माता के द्वारा लोरी देकर बड़े प्यार से सुलाया हुआ बच्चा जो सो रहा है, वह। अनुकम्पित पढ़ता है-पठतकि। करुणापूर्वक प्रदान की गई छात्रवृत्ति आदि से जो पढ़ रहा है, वह।

यथाविहितं प्रत्ययः–

(२) नीतौ च तद्युक्तात् ।७७।

प०वि०–नीतौ ७ ।१ च अव्ययपदम्, तद्युक्तात् ५ ।१ ।

स०–तया {अनुकम्पया} युक्तः–तद्युक्तः, तस्मात्–तद्युक्तात् (तृतीयातत्पुरुषः) ।

अनु०–**'तिङश्च'** (५ ।३ ।५६) इत्यनुवर्तनीयम् ।

अन्वयः–तद्युक्तात् प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययो नीतौ च ।

अर्थः–तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्तात् ,प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति, नीतौ च गम्यमानायाम् । सामदानदण्डभेदात्मक उपायो नीतिरिति कथ्यते ।

उदा०–अनुकम्पिता धानाः–धानकाः । हन्त ! ते धानका देवदत्त ! अनुकम्पितास्तिलाः–तिलकाः । हन्त ते तिलका यज्ञदत्त ! ।। अनुकम्पित एहि–एहकि । अनुकम्पितोऽद्धि–अद्धकि ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(तद्युक्तात्) अनुकम्पा से युक्त प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त से (च) भी यथाविहित प्रत्यय होता है (क/अकच्), (नीतौ) यदि वहां नीति अर्थ की (च) भी प्रतीति हो । साम, दान, दण्ड, भेद आत्मक उपाय नीति कहाता है ।*

*उदा०–**हन्त ! ते धानका देवदत्त ।** हे देवदत्त ! ये धान तेरे लिये हैं । कोई धान-दान की नीति से देवदत्त को अपने पक्ष में करता है । 'हन्त' शब्द यहां अनुकम्पा-अर्थ का द्योतक है । **हन्त ! ते तिलका यज्ञदत्त ।** हे यज्ञदत्त ! ये तिल तेरे लिये हैं कोई यज्ञदत्त को तिल-दान की नीति से अपना पक्षधर बनाता है । **एहि–एहकि देवदत्त !** हे देवदत्त ! आइये । कोई साम-नीति से देवदत्त को अनुकम्पापूर्वक बुलाता है । **अद्धि–अद्धकि यज्ञदत्त !** हे यज्ञदत्त ! भोजन कीजिये । कोई साम-नीति से यज्ञदत्त को अनुकम्पापूर्वक भोजन के लिये निमन्त्रित करता है ।*

*सिद्धि–(१) **धानकाः ।** धान+जस्+क । धान+क । धानक+जस् । धानकाः ।*

*यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त 'धान' शब्द से नीति-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित 'क' प्रत्यय है । ऐसे ही–**तिलकाः ।***

*(२) **एहकि ।** एहि । एह अकच्+इ । एह्+अक्+इ । एहकि ।*

यहां अनुकम्पा-अर्थ से युक्त, तिङन्त 'एहि' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यथाविहित 'अकच्' प्रत्यय है। 'एहि' पद में आङ् उपसर्ग पूर्वक ***'इण् गतौ'*** *(अदा०प०) धातु से लोट् लकार मध्यमपुरुष एकवचन है। ऐसे ही* ***'अद भक्षणे'*** *(अदा०प०) धातु से 'अद्धि' और उससे 'अकच्' प्रत्यय करने पर-**अद्धकि**।*

ठच् विकल्पः–

(३). बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज् वा।७८।

प०वि०-बह्वचः ५।१ मनुष्यनाम्नः ५।१ ठच् १।१ वा अव्ययपदम्।

स०-बहवोऽचो यस्मिन् स बह्वच्, तस्मात्-बह्वचः (बहुव्रीहिः)। मनुष्यस्य नाम-मनुष्यनाम, तस्मात्-मनुष्यनाम्नः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-नीतौ, तद्युक्ताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्युक्ताद् बह्वचो मनुष्यनाम्नो वा ठच्, नीतौ।

अर्थः-तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताद् बह्वचो मनुष्यनामवाचिनः प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ठच् प्रत्ययो भवति, नीतौ गम्यमानायाम्।

उदा०-अनुकम्पितो देवदत्तः-देविकः (ठच्)। देवदत्तकः (कः)। अनुकम्पितो यज्ञदत्तः-यज्ञिकः (ठच्)। यज्ञदत्तकः (कः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्युक्तात्) अनुकम्पा से युक्त (बह्वचः) बहुत अचोंवाले (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यनामवाची प्रातिपदिक से (वा) विकल्प से (ठच्) ठच् प्रत्यय होता है (नीतौ) यदि वहां साम आदि रूप नीति अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-अनुकम्पित देवदत्त-देविक (ठच्)। देवदत्तक (क)। साम आदि नीति से अनुकम्पा द्वारा अपने अनुकूल किया हुआ देवदत्त। अनुकम्पित यज्ञदत्त-यज्ञिक (ठच्)। यज्ञदत्तक। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) ***देविकः।*** *देवदत्त+सु+ठच्। देवदत्त+इक। देव०+इक। देव्+इक। देविक+सु। देविकः।*

यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, बहुत अचोंवाले, मनुष्यनामवाची देवदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'ठच्' प्रत्यय है। ***'ठस्येकः'*** *(७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक' आदेश होता है।* ***'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः'*** *(५।३।७८) से देवदत्त' शब्द के द्वितीय अच् से ऊर्ध्व विद्यमान 'दत्त' शब्द का लोप होता है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही 'यज्ञदत्त' शब्द से-**यज्ञिकः।***

(२) ***देवदत्तकः।*** *यहां पूर्वोक्त देवदत्त' शब्द से विकल्प पक्ष में यथाविहित 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-**यज्ञदत्तकः।***

घनं+इलच्–

(४) घनिलचौ च।७६।

प०वि०-घन-इलचौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-घन् च इलच् च तौ-घनिलचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-नीतौ, तद्युक्तात्, बह्वचः, मनुष्यनाम्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्युक्ताद् बह्वचो मनुष्यनाम्नो घनिलचौ च नीतौ।

अर्थः-तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताद् बह्वचो मनुष्यनामवाचिनः प्रातिपदिकाद् घनिलचौ च प्रत्ययौ भवतः, नीतौ गम्यमानायाम्।

उदा०-अनुकम्पितो देवदत्तः-देवियः (घन्)। देविलः (इलच्)। अनुकम्पितो यज्ञदत्तः-यज्ञियः (घन्)। यज्ञिलः (इलच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्युक्तात्) अनुकम्पा अर्थ से युक्त (बह्वचः) बहुत अचोंवाले (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यनामवाची प्रातिपदिक से (घनिलचौ) घन् और इलच् प्रत्यय (च) भी होते हैं (नीतौ) यदि वहां साम आदि नीति अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-अनुकम्पित देवदत्त-देविय (घन्)। देविल (इलच्)। साम आदि नीति से अनुकम्पा द्वारा अपने अनुकूल किया हुआ देवदत्त। अनुकम्पित यज्ञदत्त-यज्ञिय (घन्)। यज्ञिल (इलच्)। अर्थ पूर्ववत् है।

सिद्धि-(१) देवियः। देवदत्त+सु+घन्। देव०+इय। देव्+इय। देविय+सु। देवियः।

*यहां अनुकम्पा से युक्त, बहुत अचोंवाले, मनुष्यनामवाची देवदत्त' शब्द से नीति-अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः' (५।३।७८) से देवदत्त' शब्द के द्वितीय अच् से ऊर्ध्व विद्यमान 'दत्त' शब्द का लोप होता है। ऐसे ही-**यज्ञियः।***

(२) देविलः। यहां पूर्वोक्त देवदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'इलच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-यज्ञिलः।

अडच्+वुच्–

(५) प्राचामुपादेरडज्वुचौ च।८०।

प०वि०-प्राचाम् ६।३ उपादेः ५।१ अडच्-वुचौ १।२ च अव्ययपदम्।

स०-उप आदिर्यस्य स उपादिः, तस्मात्-उपादेः (बहुव्रीहिः)। अडच् च वुच् च तौ-अडज्वुचौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-नीतौ, तद्युक्तात्, बह्वचः, मनुष्यनाम्नः, घनिलचौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्युक्ताद् उपादेर्बह्वचो मनुष्यनाम्नोऽडज्वुचौ घनिलचौ च नीतौ प्राचाम्।

अर्थः-तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताद् उपादेर्बह्वचो मनुष्यनामवाचिनः प्रातिपदिकाद् अडज्वुचौ घनिलचौ च प्रत्ययौ भवतः, नीतौ गम्यमानायाम्, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तः-उपडः (अडच्)। उपकः (वुच्)। उपियः (घन्)। उपिलः (इलच्) प्राचां मते। उपिकः (ठच्)। उपेन्द्रदत्तकः (कः) पाणिनिमते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्युक्तात्) अनुकम्पा अर्थ से युक्त (उपादेः) उप शब्द जिसके आदि में है उस (बह्वचः) बहुत अचोंवाले (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यनामवाची प्रातिपदिक से (अडज्वुचौ) अडच्, वुच् और (घनिलचौ) घन् तथा इलच् प्रत्यय (च) भी होते हैं (नीतौ) यदि वहां नीति अर्थ की प्रतीति हो (प्राचाम्) प्राक्-देशीय आचार्यों के मत में।*

उदा०-अनुकम्पित उपेन्द्रदत्त-उपड (अडच्)। उपक (वुच्)। उपिय (घन्)। उपिल (इलच्)। प्राक्-देशीय आचार्यों के मत में। पाणिनिमुनि के मत में यथाप्राप्त प्रत्यय होते हैं-उपिक (ठच्)। उपेन्द्रदत्तक (क)।

सिद्धि-(१) उपडः। उपेन्द्रदत्त+सु+अडच्। उप०+अड। उप्+अड। उपड+सु। उपडः।

यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, उप-आदिमान्, बहुत अचोंवाले, मनुष्यनामवाची 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में तथा प्राक्-देशीय आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'अडच्' प्रत्यय है। 'ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः' (५।३।८३) से 'उपेन्द्रदत्त' के द्वितीय अच् से ऊर्ध्व विद्यमान 'इन्द्रदत्त' शब्द का लोप होता है।

(२) उपकः। यहां पूर्वोक्त 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'वुच्' प्रत्यय है। 'युवोरनाकौ' (७।१।१) से 'वु' के स्थान में 'अक' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) उपियः। यहां पूर्वोक्त 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'घन्' प्रत्यय होता है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'इय्' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) उपिलः। यहां पूर्वोक्त 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से इस सूत्र से 'इलच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) पाणिनिमुनि के मत में 'उपेन्द्रदत्त' शब्द से 'बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज् वा' (५।३।७८) से विकल्प से 'ठच्' प्रत्यय होता। विकल्प पक्ष में यथाविहित 'क' प्रत्यय होता है। उपिकः (ठच्)। उपेन्द्रदत्तकः (कः)। इन पदों की सिद्धि देविकः और देवदत्तकः के समान है (५।३।७८)।

कन्–

(६) जातिनाम्नः कन्।८१।

प०वि०-जातिनाम्नः ५।१ कन् १।१।

स०-जातेर्नाम-जातिनाम, तस्मात्-जातिनाम्नः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-नीतौ, तद्युक्तात्, मनुष्यनाम्न इति चानुवर्तति, बह्वच इति च नानुवर्तति।

अन्वयः-तद्युक्ताज्जातिनाम्नो मनुष्यनाम्नः कन्, नीतौ।

अर्थः-तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताज्जातिवचिनो मनुष्यनाम्नः प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, नीतौ गम्यनायाम्।

उदा०-अनुकम्पितो व्याघ्रो नाम मनुष्यः-व्याघ्रकः। अनुकम्पितः सिंहो नाम मनुष्यः-सिंहकः। अनुकम्पितः शरभो नाम मनुष्य-शरभकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्युक्तात्) अनुकम्पा अर्थ से युक्त (जातिनाम्नः) जातिवाची (मनुष्यनाम्नः) मनुष्य-वाचक प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (नीतौ) यदि वहां साम आदि नीति अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-अनुकम्पित व्याघ्र (बाघ) नामक मनुष्य-व्याघ्रक। अनुकम्पित सिंह नामक मनुष्य-सिंहक। अनुकम्पित शरभ (टिड्डी) नामक मनुष्य-शरभक।

सिद्धि-व्याघ्रकः। व्याघ्र+सु+कन्। व्याघ्र+क। व्याघ्रक+सु। व्याघ्रकः।

यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, जातिवाची, मनुष्यवाचक 'व्याघ्र' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-सिंहकः, शरभकः।

कन्–

(७) अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च।८२।

प०वि०-अजिनान्तस्य ६।१ उत्तरपदलोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-अजिनोऽन्ते यस्य सः-अजिनान्तः, तस्य-अजिनान्तस्य (बहुव्रीहिः)। उत्तरपदस्य लोपः-उत्तरपदलोपः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-नीतौ, तद्युक्तात्, मनुष्यनाम्नः, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तद्युक्ताद् मनुष्यनाम्नोऽजिनान्तात् कन्, उत्तरपदलोपश्च, नीतौ।

अर्थः-तद्युक्तात्=अनुकम्पायुक्ताद् मनुष्यवाचिनोऽजिनान्तात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, तस्य उत्तरपदस्य च लोपो भवति, नीतौ गम्यमानायाम्।

उदा०-अनुकम्पितो व्याघ्राजिनो नाम मनुष्यः-व्याघ्रकः। सिंहकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्युक्तात्) अनुकम्पा अर्थ से युक्त (मनुष्यनाम्नः) मनुष्य-वाचक (अजिनान्तस्य) अजिन शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (च) और (उत्तरपदलोपः) उसके उत्तरपद का लोप होता है (नीतौ) यदि वहां साम आदि नीति अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-अनुकम्पित व्याघ्राजिन नामक मनुष्य-व्याघ्रक। अनुकम्पित सिंहाजिन नामक मनुष्य-सिंहक। व्याघ्राजिन=व्याघ्रचर्म धारण करनेवाला।

*सिद्धि-**व्याघ्रकः**। व्याघ्राजिन+सु+कन्। व्याघ्र०+क। व्याघ्रक+सु। व्याघ्रकः।*

*यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, अजिनशब्दान्त, मनुष्यवाचक 'व्याघ्राजिन' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय और उसके उत्तरपद 'अजिन' शब्द का लोप होता है। ऐसे ही-**सिंहकः**।*

लोप-विधिः-

(८) ठाजादावूर्ध्वं द्वितीयादचः।८३।

प०वि०-ठ-अजादौ ७।१ ऊर्ध्वम् १।१ द्वितीयात् ५।१ अचः ५।१।

स०-अच् आदिर्यस्य सः-अजादि, ठश्च अजादिश्च एतयोः समाहारः-ठाजादिः, तस्मिन्-ठाजादौ (बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-मनुष्यनाम्नः, लोप इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मनुष्यनाम्नः प्रातिपदिकस्य द्वितीयादच ऊर्ध्वं लोपष्ठाजादौ।

अर्थः-**'नीतौ च तद्युक्तात्'** (५।३।७७) इत्यस्मिन् प्रकरणे मनुष्यनाम्नः प्रातिपदिकस्य द्वितीयादच ऊर्ध्वं यच्छब्दरूपं तस्य लोपो भवति, ठ-अजादौ प्रत्यये परतः।

उदा०-अनुकम्पितो देवदत्तः-देविकः (ठच्)। देवियः (घन्)। देविलः (इलच्)। अनुकम्पित उपेन्द्रदत्तः-उपडः (अडच्)। उपकः (वुच्)। उपियः (घन्)। उपिलः (इलच्)। उपिकः (ठच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-'नीतौ च तद्युक्तात्' (५।३।७७) इस प्रकरण में (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यवाचक प्रातिपदिक के (द्वितीयात्) दूसरे (अचः) अच् से (ऊर्ध्वम्) आगे जो शब्द है उसका (लोपः) लोप होता है (ठाजादौ) ठ और अजादि प्रत्यय परे होने पर।*

उदा०-अनुकम्पित देवदत्त-देविक (ठच्)। देविय (घन्)। देविल (इलच्)। अनुकम्पित-उपेन्द्रदत्त-उपड (अडच्) उपक (वुच्)। उपिय (घन्)। उपिल (इलच्)। उपिक (ठच्)।

सिद्धि- 'देविकः' आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

लोप-विधिः-

(६) शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां तृतीयात्।८४।

प०वि०- शेवल-सुपरि-विशाल-वरुण-अर्यमादीनाम् ६।३ तृतीयात् ५।१।

स०-शेवलश्च सुपरिश्च विशालश्च वरुणश्च अर्यमा च ते-शेवल-सुपरिविशालवरुणार्यमाणः। शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमाण आदौ येषां ते-शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादयः, तेषाम्-शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-मनुष्यनाम्नः, लोपः, ठाजादौ, ऊर्ध्वम्, अचः, इति चानुवर्तते।

अन्वयः-'नीतौ च तद्युक्तात्' (५।३।७७) इत्यस्मिन् प्रकरणे शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां मनुष्यनाम्नां तृतीयादच ऊर्ध्वं लोपष्ठाजादौ।

अर्थः-'नीतौ च तद्युक्तात्' (५।३।७७) इत्यस्मिन् प्रकरणे शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनां मनुष्यवाचिनां प्रातिपदिकानां तृतीयादच ऊर्ध्वं यच्छब्दरूपं तस्य लोपो भवति, ठाजादौ प्रत्यये परतः।

उदा०-(शेवलादिः) अनुकम्पितः शेवलदत्तः-शेवलिकः (ठच्)। शेवलियः (घन्)। शेवलिलः (इलच्)। **(सुपर्यादिः)** अनुकम्पितः

सुपरिदत्तः-सुपरिकः। सुपरियः। सुपरिलः। **(विशालादिः)** अनुकम्पितो **विशालदत्तः**-विशालिकः। विशालियः। विशालिलः। **(वरुणादिः)** अनुकम्पितो **वरुणदत्तः**-वरुणिकः। वरुणियः। वरुणिलः। **(अर्यमादिः)** अनुकम्पितोऽर्यमदत्तः-अर्यमिकः। अर्यमियः। अर्यमिलः।

आर्यभाषाः *अर्थ-'नीतौ च तद्युक्तात्' (५।३।७७) इस प्रकरण में (शेवलसुपरिविशालवरुणार्यमादीनाम्) शेवल, सुपरि, विशाल, वरुण, अयर्मा शब्द जिनके आदि में है उन (मनुष्यनाम्नः) मनुष्यवाची प्रातिपदिकों के (तृतीयात्) तीसरे (अचः) अच् से (ऊर्ध्वम्) आगे जो शब्द है उसका (लोपः) लोप होता है (ठाजादौ) ठ और अजादि प्रत्यय परे होने पर।*

*उदा०-(शेवलादि) अनुकम्पित शेवलदत्त-शेवलिक (ठच्)। शेवलिय (घन्)। शेवलिल (इलच्)। (सुपर्यादि) अनुकम्पित सुपरिदत्त-सुपरिक। सुपरिय। सुपरिल। **(विशालादि)** अनुकम्पित विशालदत्त-विशालिक। विशालिय। विशालिल। **(वरुणादि)** अनुकम्पित वरुणदत्त-वरुणिक। वरुणिय। वरुणिल। **(अर्यमादि)** अनुकम्पित अर्यमदत्त-अर्यमिक। अर्यमिय। अर्यमिल।*

सिद्धि-(१) शेवलिकः। शेवलदत्त+सु+ठच्। शेवल०+इक। शेवलिक+सु। शेवलिकः।

*यहां अनुकम्पा अर्थ से युक्त, मनुष्यवाची 'शेवलदत्त' शब्द से नीति अर्थ अभिधेय में **'बह्वचो मनुष्यनाम्नष्ठज् वा'** (५।३।७८) 'ठच्' प्रत्यय करने पर 'शेवलदत्त' के तृतीय अच् से ऊर्ध्व विद्यमान 'दत्त' शब्द का इस सूत्र से लोप होता है। ऐसे ही-**सुपरिकः** आदि।*

*(२) शेवलियः। यहां पूर्वोक्त 'शेवलदत्त' शब्द से **'घनिलचौ च'** (५।३।७९) से घन् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**सुपरियः** आदि।*

*(३) शेवलिलः। यहां पूर्वोक्त 'शेवलदत्त' शब्द से **'घनिलचौ च'** (५।३।७९) से 'इलच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**सुपरिलः** आदि।*

अल्पार्थप्रत्ययविधिः

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) अल्पे।८५।

वि०-अल्पे ७।१।

अनु०-**'तिङश्च'** (५।३।५६) इत्यनुवर्तनीयम्।

अन्वयः-अल्पे प्रातिपदिकात् तिङश्च यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-अल्पेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् तिङन्ताच्च यथाविहितं प्रत्ययो भवति। अत्र परिमाणापचयेऽर्थेऽल्पशब्दो वर्तते।

उदा०-**(प्रातिपदिकम्)** अल्पं तैलम्-तैलकम्। घृतकम्। **(अव्ययम्)** अल्पमुच्चैः-उच्चकैः। नीचकैः। **(सर्वनाम)** अल्पं सर्वम्-सर्वकम्। विश्वकम्। **(तिङन्तम्)** अल्पं पचति-पचतकि। पठतकि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अल्पे) अल्प=परिमाण की न्यूनता अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से और (तिङः) तिङन्त से भी यथाविहित प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(प्रातिपदिक)** अल्प तैल-तैलक। अल्प घृत-घृतक। **(अव्यय)** अल्प उच्चैः (ऊंचा)-उच्चकैः। अल्प नीचैः (नीचा)-नीचकैः। **(सर्वनाम)** अल्प सर्व (सब)-**सर्वक**। अल्प विश्व (समस्त)-विश्वक। **(तिङन्त)** वह अल्प पकाता है-पचतकि। वह अल्प **पढ़ता** है-पठतकि।*

*सिद्धि-(१) **तैलकम्।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान 'तैल' प्रातिपदिक से **'प्रागिवात् कः'** (५।३।७०) से यथाविहित 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-**घृतकम्।***

*(२) **उच्चकैः।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, अव्ययसंज्ञक 'उच्चैस्' शब्द से **'अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः'** (५।३।७१) से यथाविहित 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**नीचकैः।***

*(३) **सर्वकम्।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, सर्वनाम-संज्ञक 'सर्वशब्द' से पूर्ववत् यथाविहित 'अकच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**विश्वकम्।***

*(४) **पचतकि।** यहां अल्प अर्थ में विद्यमान, तिङन्त 'पचति' शब्द से पूर्ववत् 'अकच्' प्रत्यय है।*

ह्रस्वार्थप्रत्ययप्रकरणम्

यथाविहितं प्रत्ययः-

(१) ह्रस्वे।८६।

वि०-ह्रस्वे ७।१।

अन्वयः-ह्रस्वे प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययः।

अर्थः-ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् यथाविहितं प्रत्ययो भवति। अत्र ह्रस्वशब्दो दीर्घप्रतियोगी वर्तते।

उदा०-ह्रस्वो वृक्षः-वृक्षकः। प्लक्षकः। स्तम्भकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) छोटे अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से यथाविहित प्रत्यय होता है।*

उदा०-ह्रस्व=छोटा वृक्ष-वृक्षक। ह्रस्व प्लक्ष=पिलखण-प्लक्षक। ह्रस्व स्तम्भ=खम्भा-स्तम्भक।

सिद्धि-वृक्षकः। यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'वृक्ष' शब्द से ***'प्रागिवात् कः'*** *(५।३।७०) से यथाविहित 'क' प्रत्यय है। ऐसे ही-प्लक्षकः, स्तम्भकः।*

कन्–

(२) संज्ञायां कन्।८७।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ कन् १।१।

अनु०-ह्रस्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वे प्रातिपदिकात् कन्, संज्ञायाम्।

अर्थः-ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-ह्रस्वो वंशः-वंशकः। ह्रस्वो वेणुः-वेणुकः। ह्रस्वो दण्डः-दण्डकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) ह्रस्व अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-ह्रस्व वंश=बांस=वंशक (बांस की एक पोरी)। ह्रस्व वेणु=वेणुक (बांस की मूठवाला अंकुश)। ह्रस्व दण्ड=दण्डक (सोटा)।

सिद्धि-वंशकः। वंश+सु+कन्। वंश+क। वंशक+सु। वंशकः।

यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'ह्रस्व' शब्द से संज्ञा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-वेणुकः, दण्डकः।

रः–

(३) कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः।८८।

प०वि०-कुटी-शमी-शुण्डाभ्यः ५।३ रः १।१।

स०-कुटी च शमी च शुण्डा च ताः कुटीशमीशुण्डाः, ताभ्यः-कुटीशमीशुण्डाभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-ह्रस्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वे कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः।

अर्थः-ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानेभ्यः कुटीशमीशुण्डाशब्देभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो रः प्रत्ययो भवति।

उदा०-ह्रस्वा कुटी-कुटीरः। ह्रस्वा शमी-शमीरः। ह्रस्वा शुण्डा-शुण्डारः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) ह्रस्व अर्थ में विद्यमान (कुटीशमीशुण्डाभ्यः) कुटी, शमी, शुण्डा प्रातिपदिकों से (रः) र प्रत्यय होता है।*

उदा०-ह्रस्व कुटी=झोंपड़ी-कुटीर। ह्रस्व शमी=जांटी-शमीर। ह्रस्व शुण्डा=हाथी का सूंड-शुण्डार।

सिद्धि-कुटीरः। कुटी+सु+र। कुटी+र। कुटीर+सु। कुटीरः।

यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'कुटी' शब्द से इस सूत्र से 'र' प्रत्यय है। ऐसे ही-शमीरः, शुण्डारः।

डुपच्–

(४) कुत्वा डुपच्।८६।

प०वि०-कुत्वाः ५।१ डुपच् १।१।

अनु०-ह्रस्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ह्रस्वे कुतूशब्दाड्डुपच्।

अर्थः-ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानात् कुतूशब्दात् प्रातिपदिकाड्डुपच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-ह्रस्वा कुतूः-कुतूपम्। कुतूपम्=चर्ममयं तैलपात्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) ह्रस्व अर्थ में विद्यमान (कुत्वाः) कुतू प्रातिपदिक से (डुपच्) डुपच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-ह्रस्व कुतू=कुप्पी-कुतुप। चमड़े का बना तैलपात्र।

सिद्धि-कुतुपम्। कुतू+सु+डुपच्। कुत्+उप। कुतुप+सु। कुतुपम्।

यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'कुतू' शब्द से इस सूत्र से 'डुपच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (ऊ) का लोप होता है।

ष्टरच्–

(५) कासूगोणीभ्याम् ५।२ ष्टरच् १।१।

प०वि०–कासूगोणीभ्याम् '१।२ ष्टरच् १।१।

स०–कासूश्च गोणी च ते कासूगोण्यौ, ताभ्याम्–कासूगोणीभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ह्रस्वे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–ह्रस्वे कासूगोभ्यां ष्टरच्।

अर्थः–ह्रस्वेऽर्थे वर्तमानाभ्यां कासूगोणीशब्दाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां ष्टरच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(कासूः)** ह्रस्वा कासूः–कासूतरी। कासूः=शक्तिः (आयुधविशेषः)। **(गोणी)** ह्रस्वा गोणी–गोणीतरी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ह्रस्वे) ह्रस्व अर्थ में विद्यमान (कासूगोणीभ्याम्) कासू, गोणी प्रातिपदिकों से ष्टरच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(कासू) ह्रस्व कासू=शक्ति (भाला) कासूतरी। ह्रस्व गोणी=बोरी (गूण)-गोणीतरी।

सिद्धि-कासूतरी। कासू+सु+ष्टरच्। कासू+तर। कासूतर+ङीष्। कासूतर्+ई। कासूतरी+सु। कासूतरी।

यहां ह्रस्व अर्थ में विद्यमान 'कासू' शब्द से इस सूत्र से 'ष्टरच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के षित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'षिद्गौरादिभ्यश्च' (४।१।४१) से ङीष् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-गोणीतरी।

तनुत्वार्थप्रत्ययविधिः

ष्टरच्–

(१) वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यस्तनुत्वे।६१।

प०वि०–वत्स-उक्ष-अश्व-ऋषभेभ्यः ५।३ तनुत्वे ७।१।

स०–वत्सश्च उक्षा च अश्वश्च ऋषभश्च ते वत्सोक्षाश्वर्षभाः, तेभ्यः–वत्सोक्षाश्वर्षभ्येभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–ष्टरच् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-तनुत्वे वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यः ष्टरच्।

अर्थः-तनुत्वे=अल्पत्वेऽर्थे वर्तमानेभ्यो वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः ष्टरच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**वत्सः**) तनुर्वत्सः-वत्सतरः। (**उक्षा**) तनुरुक्षा-उक्षतरः। (**अश्वः**) तनुरश्वः-अश्वतरः। (**ऋषभः**) तनुर्ऋषभः-ऋषभतरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तनुत्वे) अल्पता अर्थ में विद्यमान (वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यः) वत्स, उक्षा, अश्व, ऋषभ प्रातिपदिकों से (ष्टरच्) ष्टरच् प्रत्यय होता है। जिस गुण से शब्द का प्रयोग हो रहा है उसके तनुत्व=अल्पता (कमी) अर्थ में यह प्रत्ययविधि होती है।*

*उदा०-(**वत्स**) तनु वत्स-वत्सतर (बछड़ा)। जिसकी प्रथम आयु तनु=अल्प शेष है और जो द्वितीय आयु को प्राप्त होगया है। (**उक्षा**) तनु उक्षा-उक्षतर। जिसकी द्वितीय (जवानी) अल्प शेष है और जो तृतीय आयु को प्राप्त होगया है। ढलती जवानीवाला बैल। (**अश्व**) तनु अश्व-अश्वतर (खच्चर)। जिसमें अश्वभाव अल्प है अर्थात् अश्व से गर्दभी में अथवा गर्दभ से वडवा में उत्पन्न हुआ। (**ऋषभ**) तनु ऋषभ=ऋषभतर। मन्दशक्तिवाला सांड।*

सिद्धि-वत्सतरः। वत्स+सु+ष्टरच्। वत्स+तर। वत्सतर+सु। वत्सतरः।

यहां तनुत्व=अल्पता अर्थ में विद्यमान 'वत्स' शब्द से इस सूत्र से 'ष्टरच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-उक्षतरः, अश्वतरः, ऋषभतरः।

निर्धारणार्थप्रत्ययप्रकरणम्

डतरच्–

(१) किंयत्तदो निर्धारणे द्वयोरेकस्य डतरच्।६२।

प०वि०-किम्-यत्-तदः ५ ।१ निर्धारणे ७ ।१ द्वयोः ६ ।२ एकस्य ६ ।१ डतरच् १ ।१ ।

स०-किं च यच्च तच्च एतेषां समाहारः किंयत्तत्, तस्मात्-किंयत्तदः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-द्वयोरेकस्य निर्धारणे किंयत्तद्भ्यो डतरच्।

अर्थः-द्वयोरेकस्य निर्धारणेऽर्थे वर्तमानेभ्यः किंयत्तद्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यो डतरच् प्रत्ययो भवति। जात्या, क्रियया, गुणेन संज्ञया समुदायादेकदेशस्य पृथक्करणं निर्धारणमित्युच्यते।

उदा०-**(किम्)** कतरो भवतो: कठ: (जाति:)। कतरो भवतो: कारक: (क्रिया)। कतरो भवतो: पटु: (गुण:)। कतरो भवतोर्देवदत्त: (संज्ञा)। **(यत्)** यतरो भवतो: कठ:। यतरो भवत: कारक:। यतरो भवतो: पटु:। यतरो भवतोर्देवदत्त:, (तत्) ततर आगच्छतु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्वयो:) दो में से (एकस्य) एक के (निर्धारणे) पृथक् करने अर्थ में विद्यमान (किंयत्तद:) किम्, यत्, तत् प्रातिपदिकों से (डतरच्) डतरच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(किम्) आप दोनों में कठ कतर=कौनसा है (जाति)। आप दोनों में करनेवाला कतर=कौनसा है (क्रिया)। आप दोनों में पटु=चतुर कतर=कौनसा है (गुण)। आप दोनों में देवदत्त कतर=कौनसा है (संज्ञा)। (यत्) आप दोनों में यतर=जौनसा कठ है। आप दोनों में यतर=जौनसा करनेवाला है। आप दोनों में यतर=जौनसा पटु=चतुर है। आप दोनों में यतर=जौनसा देवदत्त है, (तत्) ततर=दोनों में से वह-आजावे।

सिद्धि-कतर:। किम्+सु+डतरच्। क्+अतर। कतर+सु। कतर:।

यहां दो में से एक के निर्धारण=पृथक्करण अर्थ में विद्यमान 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'डतरच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा- 'डित्यभस्यापि टेर्लोप:' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (इम्) का लोप होता है। ऐसे ही-यतर:, ततर:।

डतमच्-

(२) वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्।६३।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, जातिपरिप्रश्ने ७।१ डतमच् १।१।

स०-जाते: परिप्रश्न:-जातिपरिप्रश्न:, तस्मिन्-जातिपरिप्रश्ने (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अनु०-किंयत्तद:, निर्धारणे, एकस्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:-बहूनामेकस्य निर्धारणे जातिपरिप्रश्ने च विषये किंयत्तदो वा डतमच्।

अर्थ:-बहूनामेकस्य निर्धारणेऽर्थे जातिपरिप्रश्ने च विषये वर्तमानेभ्य: किंयत्तदभ्य: प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन डतमच् प्रत्ययो भवति, पक्षे चाऽकच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**किम्**) कतमो भवतां कठः। (**यत्**) यतमो भवतां कठः। (**तत्**) ततम आगच्छतु (डतमच्)। (**किम्**) कको भवतां कठः। (**यत्**) यको भवतां कठः। (**तत्**) सक आगच्छतु (अकच्)।

'समर्थानां प्रथमाद् वा' (४।१।८२) इत्यस्माद् महाविभाषाया अनुवर्तनाद् वाक्यमपि भवति-(**किम्**) को भवतां कठः। (**यत्**) यो भवतां कठः। (**तत्**) स आगच्छतु।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहूनाम्) बहुतों में से (एकस्य) एक के (निर्धारणे) पृथक् करने अर्थ में और (जातिपरिप्रश्ने) जाति के पूछने विषय में विद्यमान (किंयत्तदः) किम्, यत्, तत् प्रातिपदिकों से (वा) विकल्प से (डतमच्) डतमच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(**किम्**) आप सब में कतम=कौनसा कठ है। (**यत्**) आप सब में यतम=जौनसा कठ है। (**तत्**) ततम=सब में से वह-आजावे (डतमच्)। (**किम्**) आप में से कक=कौनसा कठ है। (**यत्**) आप सब में से यक=जौनसा कठ है। (**तत्**) सब में से सक=वह आजावे।*

*'**समार्थानां प्रथमाद् वा**' (४।१।८२) से महाविभाषा की अनुवृत्ति से वाक्य भी होता है-(**किम्**) आप सब में से कः=कौन कठ है। (**यत्**) आप सब में से यः=जो कठ है। (**तत्**) आप सब में से सः=वह आजावे।*

*सिद्धि-**कतमः।** किम्+सु+डतमच्। क्+अतम। कतम+सु। कतमः।*

*यहां बहुतों में से एक के निर्धारण=पृथक्करण अर्थ में विद्यमान तथा जातिपरिप्रश्न विषयक 'किम्' शब्द से इस सूत्र से 'डतमच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के 'डित्' हेने से वा-'**डित्यभस्यापि टेर्लोपः**' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (इम्) का लोप होता है। ऐसे ही-**यतमः, ततमः।***

*(२) **ककः।** क+सु+अकच्+ :। क्+अक+0+ :। ककः।*

*यहां सुबन्त 'कः' शब्द से विकल्प पक्ष में '**अव्ययसर्वनाम्नामकच् प्राक् टेः**' (५।३।७१) से टि-भाग से पूर्व 'अकच्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**यकः। सकः।***

डतरच्+डतमच्-

(३) एकाच्च प्राचाम्।६४।

प०वि०-एकात् ५।१ च अव्ययपदम्, प्राचाम् ६।३।

अनु०-निर्धारणे, द्वयोः, एकस्य, डतरच्, बहूनाम्, डतमच् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-द्वयोर्बहूनां वा एकस्य निर्धारणे एकाच्च डतरच् डतमच्च प्राचाम्।

अर्थ:-द्वयोर्बहूनां वा एकस्य निर्धारणेऽर्थे वर्तमानाद् एक-शब्दाच्च यथासंख्यं डतरच् डतमच्च प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-एकतरो भवतोर्देवदत्त: (डतरच्)। एकतमो भवतां देवदत्त: (डतमच्)।

आर्यभाषा: *अर्थ-(द्वयो:) दो में से अथवा (बहूनाम्) बहुतों में से (एकस्य) एक के (निर्धारणे) पृथक् करने अर्थ में विद्यमान (एकात्) एक प्रातिपदिक से (च) भी यथासंख्य (डतरच्) डतरच् और (डतमच्) डतमच् प्रत्यय होते हैं (प्राचाम्) प्राग्देशीय आचार्यों के मत में।*

उदा०-आप दोनों में एकतर=कोई एक देवदत्त है (डतरच्)। आप सब में एकतम=कोई एक देवदत्त है (डतमच्)।

सिद्धि-(१) एकतर:। एक+सु+डतरच्। एक्+अतर। एकतर+सु। एकतर:। यहां निर्धारण अर्थ में विद्यमान 'एक' शब्द से प्राग्देशीय आचार्यों के मत में इस सूत्र से 'डतरच्' प्रत्यय है। वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोप:' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अ) का लोप होता है।

(२) एकतम:। यहां पूर्वोक्त 'एक' शब्द से पूर्ववत् 'डतमच्' प्रत्यय है।

अवक्षेपणार्थप्रत्ययविधि:

कन्-

(१) अवक्षेपणे कन्।६५।

प०वि०-अवक्षेपणे ७।१ कन् १।१।

अन्वय:-अवक्षेपणे प्रातिपदिकात् कन्।

अर्थ:-अवक्षेपणे=कुत्सार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अवक्षिप्तं व्याकरणम्-व्याकरणकम्। व्याकरणकेन त्वं गर्वित:। अवक्षिप्तं याज्ञिक्यम्-याज्ञिक्यकम्। याज्ञिक्यकेन त्वं गर्वित:।

आर्यभाषा: *अर्थ-(अवक्षेपणे) कुत्सा=निन्दा अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अवक्षिप्त व्याकरण=व्याकरणक। तू व्याकरणक=व्याकरण के अवक्षिप्त (अधकचरा) ज्ञान से घमण्ड में चूर है। अवक्षिप्त याज्ञिक्य=याज्ञिक्यक। तू याज्ञिक्यक=कर्मकाण्ड के अवक्षिप्त (अधकचरा) ज्ञान से घमण्ड में चूर है।

*सिद्धि-**व्याकरणकम्।** व्याकरण+सु+कन्। व्याकरण+क। व्याकरण+सु। व्याकरणकम्।*

*यहां अवक्षेपण अर्थ में 'व्याकरण' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**याज्ञिक्यकम्।***

इति प्रागिवीयार्थप्रत्ययप्रकरणम्।

इवार्थप्रत्ययप्रकरणम्

कन्–

(१) इवे प्रतिकृतौ।६६।

प०वि०-इवे ७।१ प्रतिकृतौ ७।१।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे प्रतिकृतौ च प्रातिपदिकात् कन्।

अर्थः-इवार्थे प्रतिकृतौ च विषये वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति। इवार्थः=सादृश्यम्।

उदा०-अश्व इवायमश्वप्रतिकृतिः-अश्वकः। उष्ट्रकः। गर्दभकः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इवे) सदृशता अर्थ में और (प्रतिकृतौ) चित्र अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अश्व के समान यह प्रतिकृति रूप अश्व-अश्वक। उष्ट्र के समान यह प्रकृति रूप उष्ट्र-उष्ट्रक। गर्दभ के समान यह प्रतिकृति रूप गर्दभ-गर्दभक।

*सिद्धि-**अश्वकः।** अश्व+सु+कन्। अश्व+क। अश्वक+सु। अश्वकः।*

*यहां इव-अर्थ में तथा प्रतिकृति विषय में विद्यमान 'अश्व' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**उष्ट्रकः। गर्दभकः।***

कन्–

(२) संज्ञायां च।६७।

प०वि०-संज्ञायाम् ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-कन्, इवे इति चानुवर्तते।

अन्वय:-इवे प्रातिपदिकात् कन् संज्ञायां च।

अर्थ:-इवार्थे वर्तमानात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, संज्ञायां च गम्यमानायाम्।

उदा०-अश्व इव-अश्वक:। उष्ट्रक:। गर्दभक:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की (च) भी प्रतीति हो।*

उदा०-अश्व के सदृश-अश्वक (घोड़ा-सा)। उष्ट्र के सदृश-उष्ट्रक (ऊंट-सा)। गर्दभ के सदृश-गर्दभक (गधा-सा)।

सिद्धि-अश्वक:। अश्व+सु+कन्। अश्व+क। अश्वक+सु। अश्वक:।

यहां इव-अर्थ तथा संज्ञा विषय में विद्यमान 'अश्व' शब्द से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-उष्ट्रक:। गर्दभक:।

प्रत्ययस्य लुप्-

(३) लुम्मनुष्ये।९८।

प०वि०-लुप् १।१ मनुष्ये ७।१।

अनु०-इवे, संज्ञायाम्, कन् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-इवे संज्ञायां प्रातिपदिकात् कनो लुप्, मनुष्ये।

अर्थ:-इवार्थे संज्ञायां च विषये वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् विहितस्य कन्-प्रत्ययस्य लुब् भवति, मनुष्येऽभिधेये।

उदा०-चञ्चा इव मनुष्य:-चञ्चा। दासी इव मनुष्य:-दासी। खरकुटी इव मनुष्य:-खरकुटी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में और (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में विद्यमान प्रातिपदिक से विहित (कन्) कन् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है (मनुष्ये) यदि वहां मनुष्य अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-चञ्चा=तृण-पुरुष के समान निर्बल मनुष्य-चञ्चा। दासी के समान गरीब मनुष्य-दासी। खरकुटी=गर्दभशाला के समान मलिन मनुष्य-खरकुटी।

सिद्धि-चञ्चा। चञ्चा+सु+कन्। चञ्चा+०। चञ्चा+सु। चञ्चा+०। चञ्चा।

यहां इव-अर्थ में तथा संज्ञाविषय में विद्यमान 'चञ्चा' शब्द से विहित 'कन्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुप्=लोप होता है। 'लुपि युक्तवद् व्यक्तिवचने' (१।२।५१) से प्रत्यय का लुप् हो जाने पर शब्द के व्यक्ति=लिङ्ग और वचन युक्तवत्=पूर्ववत् रहते हैं। ऐसे ही-दासी, खरकुटी।

प्रत्ययस्य लुप्–

(४) जीविकार्थे चापण्ये।९९।

प०वि०–जीविकार्थे ७।१ च अव्ययपदम्, अपण्ये ७।१।

स०–जीविकायै इदम्-जीविकार्थम्, तस्मिन्-जीविकार्थे (चतुर्थी-तत्पुरुषः)। पणितुं योग्यम्-पण्यम्, न पण्यम्-अपण्यम्, तस्मिन्-अपण्ये। **'अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्यानिरोधेषु'** (३।१।१०१) इत्यत्र पणितव्येऽर्थे पण्यशब्दो निपात्यते। यद् विक्रीयते तत् पण्यमुच्यते।

अनु०–कन्, प्रतिकृतौ, लुप्, मनुष्ये इति चानुवर्तते।

अन्वयः–जीविकार्थेऽपण्ये मनुष्यस्य प्रतिकृतौ च प्रातिपदिकात् कनो लुप्।

अर्थः–जीविकार्था याऽपण्या मनुष्यप्रतिकृतिस्तस्यामभिधेयायां च प्रातिपदिकाद् विहितस्य कन्-प्रत्ययस्य लुब् भवति।

उदा०–वासुदेवस्य जीविकार्था याऽपण्या प्रतिकृतिः–वासुदेवः। शिवः। स्कन्दः। विष्णुः। आदित्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जीविकार्थे) जीविका के लिये (अपण्ये) न बेचने योग्य (मनुष्ये, प्रतिकृतौ) मनुष्य की प्रतिमा=मूर्ति अर्थ अभिधेय में (च) भी प्रातिपदिक से विहित (कन्) कन् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है।*

उदा०-जीविका के लिये जो न बेचने योग्य वासुदेव=कृष्ण की प्रतिकृति=प्रतिमा है वह-वासुदेव। शिव की उक्त प्रतिकृति-शिव। स्कन्द की उक्त प्रतिकृति-स्कन्द। विष्णु की उक्त प्रतिकृति-विष्णु। आदित्य की उक्त प्रतिकृति-आदित्य।

*अत्र पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः प्राह- **"याः प्रतिमाः प्रतिगृह्य गृहाद् गृहं भिक्षमाणा अटन्ति ता एवमुच्यन्ते, ता हि जीविकार्था भवन्ति।"** जिन प्रतिमाओं को लेकर लोग घर-घर भिक्षा के लिये घूमते हैं, वे प्रतिमायें **'वासुदेवः'** इत्यादि कहाती हैं क्योंकि वे जीविका के लिये होती हैं और बेची नहीं जाती हैं।*

*सिद्धि-**वासुदेवः।** वासुदेव+सु+कन्। वासुदेव+०। वासुदेव+सु। वासुदेवः।*

*यहां जीविकार्थ, अपण्य, मनुष्य-प्रतिकृति अर्थ में विद्यमान 'वासुदेव' शब्द से विहित 'कन्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुप्=लोप होता है। ऐसे ही-**शिवः, स्कन्दः, विष्णुः, आदित्यः।***

प्रत्ययस्य लुप्–

(५) देवपथादिभ्यश्च।१००।

प०वि०-देवपथ-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-देवपथ आदिर्येषां ते देवपथादयः, तेभ्यः-देवपथादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-कन्, इवे, प्रतिकृतौ, संज्ञायाम्, लुप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इवे प्रतिकृतौ संज्ञायां च देवपथादिभ्यश्च कनो लुप्।

अर्थः-इवार्थे प्रतिकृतौ संज्ञायां च विषये देवपथादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विहितस्य कन्-प्रत्ययस्य लुब् भवति।

उदा०-देवपथ इवेयं प्रतिकृतिः-देवपथः। हंसपथः, इत्यादिकम्।

अर्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु च।
इवे प्रतिकृतौ लोपः कनो देवपथादिषु॥

उदा०-अर्चासु-शिव इवेयं प्रतिकृतिः-शिवः। विष्णुः। चित्रकर्मणि-अर्जुन इवेदं चित्रम्-अर्जुनः। दुर्योधनः। ध्वजेषु-कपिरिवायं ध्वजः-कपिः। गरुडः। सिंहः।

देवपथ। हंसपथ। वारिपथ। जलपथ। राजपथ। शतपथ। सिंहगति। उष्ट्रग्रीवा। चामरज्जु। रज्जु। हस्त। इन्द्र। दण्ड। पुष्प। मत्स्य। इति देवपथादयः। आकृतिगणोऽयम्॥

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश तथा (प्रतिकृतौ) प्रतिमा अर्थ में और (संज्ञायाम्) संज्ञाविषय में विद्यमान (देवपथादिभ्यः) देवपथ आदि प्रातिपदिकों से विहित (कन्) कन् प्रत्यय का (लुप्) लोप होता है।*

उदा०-देवपथ के समान प्रतिकृति-देवपथ। हंसपथ के समान प्रतिकृति-हंसपथ इत्यादि।

अर्चासु पूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु च।
इवे प्रतिकृतौ लोपः कनो देवपथादिषु॥

*अर्थ-देवपथ आदि शब्दों से '**इवे प्रतिकृतौ**' अर्थ में विहित कन् प्रत्यय का लोप पूजा के लिये अर्चा=प्रतिमा, चित्रकर्म और ध्वज अर्थ में जानना चाहिये। **जैसे अर्चा-शिव***

के समान यह प्रतिकृति-शिव। विष्णु के समान यह प्रतिकृति-विष्णु। चित्रकर्म-अर्जुन के समान यह चित्र-अर्जुन। दुर्योधन के समान यह चित्र-दुर्योधन। ध्वज-कपि के समान यह ध्वज-कपि। गरुड के समान यह ध्वज-गरुड। सिंह के समान यह ध्वज-सिंह। कपि आदि की आकृति के ध्वज (झण्डे)।

सिद्धि-देवपथः। *देवपथ+सु+कन्। देवपथ+०। देवपथ+सु। देवपथः।*

*यहां इव-अर्थ तथा प्रतिकृति अर्थ में विद्यमान 'देवपथ' शब्द से विहित 'कन्' प्रत्यय का इस सूत्र से लुप् होता है। ऐसे ही-**हंसपथः** आदि।*

ढञ्–

(६) वस्तेर्ढञ्।१०१।

प०वि०-वस्तेः ५।१ ढञ् १।१।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे वस्तेर्ढञ्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानाद् वस्तिशब्दात् प्रातिपदिकाड्ढञ् प्रत्ययो भवति।

इतः प्रभृति इवार्थे प्रतिकृतौ चाप्रतिकृतौ च सामान्येन प्रत्यया विधीयन्ते।

उदा०-वस्तिरिवायम्-वास्तेयः। स्त्री चेत्-वास्तेयी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (वस्तेः) वस्ति प्रातिपदिक से (ढञ्) ढञ् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वस्ति=दृति (मशक) के समान आकृतिवाला पुरुष-वास्तेय। यदि स्त्री हो तो-वास्तेयी।

सिद्धि-वास्तेयः। *वस्ति+सु+ढञ्। वास्त्+एय। वास्तेय+सु। वास्तेयः।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'वस्ति' शब्द से इस सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश होता है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है।*

ढः–

(७) शिलाया ढः।१०२।

प०वि०-शिलायाः ५।१ ढः १।१।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे शिलाया ढः।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानाच्छिला-शब्दात् प्रातिपदिकाड्ढः प्रत्ययो भवति।

उदा०-शिला इवेदम्-शिलेयं दधि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (शिलायाः) शिला प्रातिपदिक से (ढः) ढ प्रत्यय होता है।*

उदा०-शिला=पत्थर के समान कठोर यह-शिलेय दधि (दही)।

सिद्धि-शिलेयम्। *शिला+सु+ढ। शिल्+एय। शिलेय+सु। शिलेयम्।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'शिला' शब्द से इस सूत्र से 'ढ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'ढ्' के स्थान में 'एय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।*

यत्-

(८) शाखादिभ्यो यत्।१०३।

प०वि०-शाखा-आदिभ्यः ५।३ यत् १।१।

स०-शाखा आदिर्येषां ते शाखादयः, तेभ्यः-शाखादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तति।

अन्वयः-इवे शाखादिभ्यो यत्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानेभ्यः शाखादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शाखा इव-शाख्यः। मुखमिव-मुख्यः जघन इव-जघन्यः, इत्यादिकम्।

शाखा। मुख। जघन। शृङ्ग। मेघ। चरण। स्कन्ध। शिरस्। उरस्। अग्र। शरण। इति शाखादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (शाखादिभ्यः) शाखा-आदि प्रातिपदिकों से (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शाखा के समान (गौण)-शाख्य। मुख के समान (प्रधान)-मुख्य। जघन के समान (नीच)-जघन्य, इत्यादि।

सिद्धि-शाख्यः। *शाखा+सु+यत्। शाख्+य। शाख्य+सु। शाख्यः।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'शाखा' शब्द से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मुख्यः**, **जघन्यः**।*

यत् (निपातनम्)–

(९) द्रव्यं च भव्ये।१०४।

प०वि०-द्रव्यम् १।१ च अव्ययपदम्, भव्ये ७।१।

अनु०-इवे, यद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-इवे द्रव्यं च यत् भव्ये।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानं द्रव्यमिति च पदं यत्प्रत्ययान्तं निपात्यते, भव्येऽभिधेये।

उदा०-द्रव्योऽयं राजपुत्रः। द्रव्योऽयं माणवकः, भव्य इत्यर्थः। अभिप्रेतार्थानां पात्रभूत इति भावः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इवे) अर्थ में विद्यमान (द्रव्यम्) द्रव्य पद (यत्) यत्-प्रत्ययान्त निपातित है (भव्य) यदि वहां भव्य=होनहार अर्थ अभिधेय हो।*

*उदा०-यह राजकुमार द्रव्य=भव्य (होनहार) है। आशाओं का पात्र है। यह माणवक=बालक द्रव्य=भव्य (होनहार) है। **'भव्यगेयप्रवचनीय०'** (३।४।६८) से 'भव्य' शब्द कर्ता अर्थ में निपातित है-**भवत्यसौ भव्यः**।*

***सिद्धि-द्रव्यः**। द्रु+सु+यत्। द्रो+य। द्रव्+य। द्रव्य+सु। द्रव्यः।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'द्रु' शब्द से भव्य अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से यत् प्रत्यय निपातित है। **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण और **'वान्तो यि प्रत्यये'** (६।१।७८) से वान्त (अव्) आदेश होता है। द्रु=काष्ठमय पात्र। काष्ठमय पात्र में दधि आदि पदार्थ विकृत नहीं होता है।*

छः–

(१०) कुशाग्राच्छः।१०५।

प०वि०-कुशाग्रात् ५।१ छः १।१।

स०-कुशाया अग्रम्-कुशाग्रम्, तस्मात्-कुशाग्रात् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे कुशाग्रात् छः।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानात् कुशाग्रशब्दात् प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-कुमाग्रमिव सूक्ष्मा कुशाग्रीया बुद्धिः। कुशाग्रमिव तीक्ष्णम्-कुशाग्रीयं शस्त्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (कुशाग्रात्) कुशाग्र प्रातिपदिक से (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-कुशाग्र=दर्भ के अग्रभाग के समान सूक्ष्म-कुशाग्रीया बुद्धि। कुशाग्र=दर्भ के अग्रभाग के समान तीक्ष्ण-कुशाग्रीय शस्त्र।

सिद्धि-कुशाग्रीया। *कुशाग्र+सु+छ। कुशाग्र्+ईय। कुशाग्रीय+टाप्। कुशाग्रीया+सु। कुशाग्रीया+०। कुशाग्रीया।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'कुशाग्र' शब्द से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

छः-

(११) समासाच्च तद्विषयात्।१०६।

प०वि०-समासात् ५।१ च अव्ययपदम्, तद्विषयात् ५।१।

स०-सः=इवार्थो विषयो यस्य सः-तद्विषयः, तस्मात्-तद्विषयात् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे तद्विषयात् समासाच्छः।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानात् तद्विषयात्=इवार्थविषयकात् समासात् प्रातिपदिकाच्छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-काकतालमिव-काकतालीयम्। अजाकृपाणमिव-अजाकृपाणीयम्। अन्धकवर्तिकमिव-अन्धकवर्तीयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश में विद्यमान (तद्विषयात्) इवार्थ-विषयक (समासात्) समस्त प्रातिपदिक से (च) भी (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-काकताल के समान-काकतालीय। काक=कौवे के उड़ने और ताड-वृक्ष के पके हुये फल के गिरने के समान जहां दो बातें संयोगवश एक साथ होती हैं, उसे 'काकतालीय' कहते हैं।

अजाकृपाण के समान-अजाकृपाणीय। लटकती हुई तलवार के नीचे अजा का आना और तलवार के अकस्मात् गिरने से अजा के गले का कट जाने के समान जो कार्य होता है उसे 'अजाकृपाणीय' कहते हैं।

अन्धकवर्तिक के समान-अन्धकवर्तिकीय। अन्धे व्यक्ति के द्वारा हाथ का फैलाना और वर्तिका=बटेर का उसके हाथ में आ जाने के समान जो कार्य है वह 'अन्धकवर्तिकीय' कहाता है।

***सिद्धि-काकतालीयम्।** काकताल+सु+छ। काकताल्+इय। काकतालीय+सु। काकतालीयम्।*

*यहां प्रथम काकागमनं तालपतनमिव-काकतालम्, इस प्रकार काक और ताल शब्दों का **'सुप् सुपा'** से इव-अर्थ में केवलसमास होता है। तत्पश्चात् इवार्थ-विषयक, समस्त 'काकताल' शब्द से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय होता है। **'आयनेय०'** (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अजाकृपाणीयम्, अन्धकवर्तिकीयम्।***

अण्-

(१२) शर्करादिभ्योऽण्।१०७।

प०वि०-शर्करा-आदिभ्यः ५।३ अण् १।१।

स०-शर्करा आदिर्येषां ते शर्करादयः, तेभ्यः-शर्करादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे शर्करादिभ्योऽण्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानेभ्यः शर्करादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शर्करा इव-शार्करम्। कपालिका इव-कापालिकम्, इत्यादिकम्।

शर्करा। कपालिका। पिष्टिक। पुण्डरीक। शतपत्र। गोलोमन्। गोपुच्छ। नरालि। नकुला। सिकता। इति शर्करादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (शर्करादिभ्यः) शर्करा-आदि प्रातिपदिकों से (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शर्करा=शक्कर के समान मीठा-शार्कर। कपालिका=खोपड़ी के समान गोलाकार-कापालिक।

***सिद्धि-शार्करम्।** शर्करा+सु+अण्। शार्कर्+अ। शार्कर+सु। शार्करम्।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'शर्करा' शब्द से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-**कापालिकम्**।*

ठक्–

(१३) अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्।१०८।

प०वि०-अङ्गुलि-आदिभ्यः ५।३ ठक् १।१।

स०-अङ्गुलिरादिर्येषां ते-अङ्गुल्यादयः, तेभ्यः-अङ्गुल्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवेऽङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानेभ्योऽङ्गुल्यादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यष्ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अङ्गुलिरिव-आङ्गुलिकः। भरुज इव-भारुजिकः।

अङ्गुलि। भरुज। बभ्रु। वल्गु। मण्डर। मण्डल। शष्कुल। कपि। उदश्वित्। गोणी। उरस्। शिखा। कुलिश। इति अङ्गुल्यादयः।।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (अङ्गुल्यादिभ्यः) अङ्गुलि आदि प्रातिपदिकों से (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अङ्गुलि के समान पतला-आङ्गुलिक। भरुज=भड़भूजा के समान आकृतिवाला-भारुजिक।

***सिद्धि-आङ्गुलिकः।** अङ्गुलि+सु+ठक्। आङ्गुल्+इक। आङ्गुलिक+सु। आङ्गुलिकः।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'अङ्गुलि' शब्द से इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'ठस्येकः'** (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश होता है। **'किति च'** (७।२।११८)*

से अंग को आदिवृद्धि और 'यस्येति च' (६ ।४ ।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-भारुजिकः ।

ठच्-विकल्पः–

(१४) एकशालायाष्ठजन्यतरस्याम्।१०६।

प०वि०-एकशालायाः ५ ।१ ठच् १ ।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-एका चासौ शाला-एकशाला, तस्याः-एकशालायाः (कर्मधारयः)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-इवे एकशालाया अन्यतरस्यां ठच्।

अर्थः-इवार्थे वर्तमानाद् एकशालाशब्दात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन ठच् प्रत्ययो भवति, पक्षे चानन्तरष्ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-एकशाला इव एकशालिकं गृहम् (ठच्)। ऐकशालिकं गृहम् (ठक्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (एकशालायाः) एकशाला प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (ठच्) ठच् प्रत्यय होता है और पक्ष में अनन्तर=समीपस्थ ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-एकशाला=एक कमरे के समान-एकशालिक घर (ठच्)। ऐकशालिक घर (ठक्)।

सिद्धि-(१) एकशालिकम्। एकशाला+सु+ठच्। एकशाल्+इक। एकशालिक+सु। एकशालिकम्।

यहां इव अर्थ में विद्यमान 'एकशाला' शब्द से इस सूत्र से 'ठच्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७ ।३ ।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और 'यस्येति च' (६ ।४ ।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है।

(२) ऐकशालिकम्। यहां पूर्वोक्त 'एकशाला' शब्द से विकल्प पक्ष में 'ठक्' प्रत्यय है। 'किति च' (७ ।२ ।११८) से अंग को आदिवृद्धि होती है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ईकक्–

(१५) कर्कलोहितादीकक्।११०।

प०वि०-कर्क-लोहितात् ५ ।१ ईकक् १ ।१ ।

स०-कर्कश्च लोहितश्च एतयो: समाहार: कर्कलोहितम्, तस्मात्-कर्कलोहितात् (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-इवे कर्कलोहिताद् ईकक्।

अर्थ:-इवार्थे वर्तमानाभ्यां कर्कलोहिताभ्यां प्रातिपदिकाभ्याम् ईकक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(कर्क:)** कर्क:=श्वेताश्व इव=कार्कीकोऽश्व:। **(लोहित:)** लोहित:=रक्त इव=लौहितीक: स्फटिक:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (कर्कलोहितात्) कर्क, लोहित प्रातिपदिकों से (ईकक्) ईकक् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(कर्क)** कर्क=इन्द्र के श्वेत घोड़े के समान जो घोड़ा है वह-कार्कीक। **(लोहित)** जो स्फटिक मणि, उपाश्रय से लोहित=रक्तवर्ण के समान है वह-लौहितीक।*

सिद्धि-कार्कीक:। *कर्क+सु+ईकक्। कार्क्+इक। कार्कीक+सु। कार्कीक:।*

*यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'कर्क' शब्द से इस सूत्र से 'ईकक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-लौहितीक:।*

थाल्-

(१६) प्रत्नपूर्वविश्वेमात् थाल् छन्दसि।१११।

प०वि०-प्रत्न-पूर्व-विश्व-इमात् ५।१ थाल् १।१ छन्दसि ७।१।

स०-प्रत्नश्च पूर्वश्च विश्वश्च इमश्च एतेषां समाहार: प्रत्नपूर्वविश्वेमम्, तस्मात्-प्रत्नपूर्वविश्वेमात् (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-इवे इत्यनुवर्तते।

अन्वय:-छन्दसि इवे प्रत्नपूर्वविश्वेमात् थाल्।

अर्थ:-छन्दसि विषये इवार्थे वर्तमानेभ्य: प्रत्नपूर्वविश्वेमेभ्य: प्रातिपदिकेभ्यस्थाल् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(प्रत्नः) प्रत्न इव-प्रत्नथा। (पूर्वः) पूर्व इव-पूर्वथा। (विश्वः) विश्व इव-विश्वथा। (इमः) इम इव-इमथा।। तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा (ऋ० ५।४४।१)।

__आर्यभाषाः__ अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (इवे) सदृश अर्थ में विद्यमान (प्रत्नपूर्वविश्वेमात्) प्रत्न, पूर्व, विश्व, इम प्रातिपदिकों से (थाल्) थाल् प्रत्यय होता है।

उदा०-(प्रत्न) प्रत्न=पुराने के समान-प्रत्नथा। (पूर्व) पूर्व के समान-पूर्वथा। (विश्व) सबके समान-विश्वथा। (इम) इस के समान-इमथा।। "इम-शब्दः इदमा समानार्थः प्रकृत्यन्तरम्" इति पदमञ्जर्यां पण्डितहरदत्तमिश्रः। तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा (ऋ० ५।४४।१)।

सिद्धि-__प्रत्नथा।__ प्रत्न+सु+थाल्। प्रत्न+था। प्रत्नथा+सु। प्रत्नथा+०। प्रत्नथा।

यहां इव-अर्थ में विद्यमान 'प्रत्न' शब्द से छन्दविषय में इस सूत्र से 'थाल्' प्रत्यय है। 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-__पूर्वथा, विश्वथा, इमथा।__

इति इवार्थप्रत्ययप्रकरणम्।

तद्राजसंज्ञकप्रत्ययप्रकरणम्

ञ्यः–

(१) पूगाञ्ञ्योऽग्रामणीपूर्वात्।११२।

प०वि०-पूगात् ५।१ ञ्यः १।१ अग्रामणी-पूर्वात् ५।१।

स०-ग्रामणीः पूर्वः=अवयवो यस्य तद् ग्रामणीपूर्वम्, न ग्रामणीपूर्वम्-अग्रामणीपूर्वम्, तस्मात्-अग्रामणीपूर्वात् (बहुव्रीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)। पूर्वशब्दोऽत्रावयववचनो गृह्यते।

अनु०-'इवे' इति निवृत्तम्।

अन्वयः-अग्रामणीपूर्वात् पूगाद् ञ्यः।

अर्थः-अग्रामणीपूर्वात्=ग्रामणी-अवयववर्जितात् पूगवाचिनः प्रातिपदिकात् स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

नानाजातीया अनियतवृत्तयोऽर्थकामप्रधानाः सङ्घा पूगा इति कथ्यन्ते।

उदा०-लोहध्वज एव-लौहध्वज्यः। लौहध्वज्यौ। लोहध्वजाः। शिबिरेव-शैब्यः, शैब्यौ, शिबयः। चातक एव-चातक्यः। चातक्यौ। चातकाः।

अग्रामणीपूर्वादिति किम् ? देवदत्तः ग्रामणीरेषां ते इमे-देवदत्तकाः। यज्ञदत्तकाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अग्रामणीपूर्वात्) ग्रामणी=ग्राम का नायक पूर्व=अवयव नहीं है जिसका उस (पूगात्) संघवाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

नाना जातिवाले, अनिश्चित जीविकावाले, अर्थ और काम की प्रधानतावाले सङ्घों को 'पूग' कहते हैं।

उदा०-लोहध्वज ही-लौहध्वज्य। शिबि ही-शैब्य। चातक ही-चातक्य।

*इस 'ञ्य' प्रत्यय की **'ञ्यादयस्तद्राजाः'** (५।३।११९) से तद्राज-संज्ञा है अतः **'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२) से बहुवचन में इस तद्राजसंज्ञक 'ञ्य' प्रत्यय का लुक् हो जाता है-बहुत लोहध्वज ही-लोहध्वज। बहुत शिवि ही-शिवि। बहुत चातक ही-चातक।*

*यहां **'अग्रामणीपूर्वात्'** पद का ग्रहण इसलिये किया गया है कि यहां 'ञ्य' प्रत्यय न हो-देवदत्त है ग्रामणी इनका वे ये-देवदत्तक। यज्ञदत्त है ग्रामणी इनका वे ये-यज्ञदत्तक। यहां **'स एषां ग्रामणीः'** (५।२।७८) से 'कन्' प्रत्यय होता है।*

*सिद्धि-**लौहध्वज्यः**। लोहध्वज+सु+ञ्य। लौहध्वज्+य। लौहध्वज्य+सु। लौहध्वज्यः।*

*यहां अग्रामणीपूर्वक, पूगवाची 'लोहध्वज' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**शैब्यः, चातक्यः**।*

ञ्यः-

(२) व्रातच्फञोरस्त्रियाम्।११३।

प०वि०-व्रात-च्फञोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अस्त्रियाम् ७।१।

स०-व्रातश्च च्फञ् च तौ व्रातच्फञौ, तयोः-व्रातच्फञोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न स्त्री-अस्त्री, तस्याम्-अस्त्रियाम् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-ञ्य इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-व्रातच्फञ्भ्यां ञ्योऽस्त्रियाम्।

अर्थः-व्रातवाचिनश्च्फञ्प्रत्ययान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति, अस्त्रियामभिधेयायाम्।

नानाजातीया अनियतवृत्तय उत्सेधजीविनः सङ्घा व्राता इति कथ्यन्ते।

उदा०-(**व्रात:**) कपोतपाक एव-कापोतपाक्य:, कापोतपाक्यौ, कपोतपाका:। व्रीहिमत एव-व्रैहिमत्य:, व्रैहिमत्यौ, व्रीहिमता:। (**च्फञन्तम्**) कौञ्जायन एव-कौञ्जायन्य:, कौञ्जायन्यौ, कौञ्जायना:। ब्राध्नायन एव-ब्राध्नायन्य:, ब्राध्नायन्यौ, ब्राध्नायना:।

अस्त्रियामिति किम्-कपोतकी। व्रीहिमती। कौञ्जायनी। ब्राध्नायनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(व्रातच्फञो:) व्रातवाची और च्फञ्प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (ञ्य:) ञ्य प्रत्यय होता है (अस्त्रियाम्) यदि वहां स्त्री अर्थ अभिधेय न हो।*

नाना जातिवाले, अनिश्चित जीविकावाले, उत्सेधजीवी=शस्त्र से प्राणियों को मारकर जीवन-निर्वाह करनेवाले संघ 'व्रात' कहाते हैं।

*उदा०-(**व्रात**) कपोतपाक ही-कापोतपाक्य। व्रीहिमत ही-व्रैहिमत्य। यहां इस तद्राजसंज्ञक 'ञ्य' प्रत्यय का बहुवचन में पूर्ववत् लुक् हो जाता है-बहुत कपोतपाक ही-कपोतपाक। बहुत व्रीहिमत ही-व्रीहिमत। कपोतपाक=कबूतर पकानेवाले। व्रीहिमत=जंगली चावलों को ही बहुत माननेवाले। (**च्फञन्त**) कौञ्जायन ही-कौञ्जायन्य। ब्राध्नायन ही-ब्राध्नायन्य। यहां बहुवचन में 'ञ्य' प्रत्यय का पूर्ववत् लुक् हो जाता है-बहुत कौञ्जायन ही-कौञ्जायन। बहुत ब्राध्नायन ही-ब्रध्नायन। स्त्रीलिङ्ग में 'ञ्य' प्रत्यय नहीं होता है-कपोतपाकी, व्रीहिमती, कौञ्जायनी, ब्राध्नायनी।*

*सिद्धि-(१) **कापोतपाक्य:।** कपोतपाक+सु+ञ्य। कापोतपाक्+य। कापोतपाक्य+सु। कापोतपाक्य:।*

*यहां व्रातवाची 'कपोतपाक' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**व्रैहिमत्य:।***

*(२) **कौञ्जायन्य:।** कौञ्जायन+सु+ञ्य। कौञ्जयन्+य। कौञ्जायन्य+सु। कौञ्जायन्य:।*

*यहां प्रथम 'कुञ्ज' शब्द से '**गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्**' (४।१।९८) से गोत्रापत्य अर्थ में 'च्फञ्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् च्फञ्-प्रत्ययान्त 'कौञ्जायन' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् आदिवृद्धि (पर्जन्यवत्) और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**ब्राध्नायन्य:।***

ञ्यट्-

(३) आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यड्वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्।११४।

प०वि०-आयुधजीवि-सङ्घात् ५।१ ञ्यट् १।१ वाहीकेषु ७।३ **अब्राह्मणराजन्यात्** ५।१।

स०-आयुधजीविनां सङ्घ इति आयुधजीविसङ्घः, तस्मात्-आयुधजीविसङ्घात् (षष्ठीतत्पुरुषः)। ब्राह्मणश्च राजन्यश्च एतयोः समाहारो ब्राह्मणराजन्यम्, न ब्राह्मणराजन्यम्-अब्राह्मणराजन्यम्, तस्मात्-अब्राह्मणराजन्यात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अन्वयः-वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्याद् आयुधजीविसङ्घाद् ञ्यट्।

अर्थः-वाहीकेषु वर्तमानाद् ब्राह्मणराजन्यवर्जिताद् आयुधसङ्घवाचिनः प्रातिपदिकात् स्वार्थे ञ्यट् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कौण्डीबृस एव-कौण्डीबृस्यः, कौण्डीबृस्यौ, कौण्डीबृसाः। क्षुद्रक एव-क्षौद्रक्यः, क्षौद्रक्यौ, क्षुद्रकाः। मालव एव-मालव्यः, मालव्यौ, मालवाः। स्त्री चेत्-कौण्डीबृसी। क्षौद्रकी। मालवी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वाहीकेषु) वाहीक देश में रहनेवाले (अब्राह्मणराजन्यात्) ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण से रहित (आयुधजीविसङ्घात्) शस्त्रजीवी संघवाची प्रातिपदिक से स्वार्थ में (ञ्यट्) ञ्यट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कौण्डीबृस ही-कौण्डीबृस्य। क्षुद्रक ही-क्षौद्रक्य। मालव ही-मालव्य। यहां बहुवचन में 'ञ्यट्' प्रत्यय का पूर्ववत् लुक् हो जाता है-बहुत कौण्डीबृस ही-कौण्डीबृस। बहुत क्षुद्रक ही-क्षुद्रक। बहुत मालव ही-मालव। यदि स्त्री हो तो-कौण्डीबृसी। क्षौद्रकी। मालवी।

सिद्धि-कौण्डीबृस्यः। कौण्डीबृस+सु+ञ्यट्। कौण्डीबृस्+य। कौण्डीबृस्य+सु। कौण्डीबृस्यः।

*यहां वाहीक देशनिवासी ब्राह्मण और राजन्य=क्षत्रिय वर्ण से भिन्न आयुजीवी संघवाची 'कौण्डीबृस' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्यट्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-कौण्डीबृसी। **'हलस्तद्धितस्य'** (६।४।१५०) से यकार का लोप हो जाता है। ऐसे ही-**क्षौद्रक्यः मालव्यः।** यदि स्त्री हो तो-क्षौद्रकी, मालवी।*

विशेषः वाहीक-*सिन्धु से शतद्रु तक का प्रदेश वाहीक था जिसके अन्तर्गत मद्र, उशीनर और त्रिगर्त ये मुख्य भाग थे। पांच नदियोंवाला 'पंजाब' प्रदेश।*

टेण्यण्–

(४) वृकाट् टेण्यण्।११५।

प०वि०–वृकात् ५।१ टेण्यण् १।१।

अनु०–आयुधजीविसङ्घाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–आयुधजीविसङ्घाद् वृकाट् टेण्यण्।

अर्थः–आयुधजीविसङ्घवाचिनो वृक-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे टेण्यण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–वृक एव-वार्केण्यः, वार्केण्यौ, वृकाः। स्त्री चेत्-वार्केणी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आयुधजीविसङ्घात्) शस्त्रजीवी सङ्घवाची (वृकात्) वृक प्रातिपदिक से स्वार्थ में (टेण्यण्) टेण्यण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वृक ही-वार्केण्य। यहां बहुवचन में टेण्यण्' प्रत्यय का पूर्ववत् लुक् हो जाता है। बहुत वृक ही-वृक। यदि स्त्री हो तो-वार्केणी।

सिद्धि-वार्केण्यः। वृक+सु+टेण्यण्। वार्क्+एण्य। वार्केण्य+सु। वार्केण्यः।

यहां आयुधजीवी संघवाची 'वृक' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'टेण्यण्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है। 'हलस्तद्धितस्य' (६।४।१५०) से यकार का लोप हो जाता है-वार्केणी।

छः–

(५) दामन्यादित्रिगर्तषष्ठाच्छः।११६।

प०वि०–दामन्यादि-त्रिगर्तषष्ठात् ५।१ छः १।१।

स०–दामनी आदिर्येषां ते दामान्यादयः। येषामायुधजीविनां सङ्घानां षड् अन्तर्वर्गाः सन्तिः, तेषु च त्रिगर्तः षष्ठो वर्तते, त्रिगर्तः षष्ठो येषां ते-त्रिगर्तषष्ठाः। दामन्यादयश्च त्रिगर्तषष्ठाश्च एतेषां समाहारो दामन्यादित्रिगर्तषष्ठम्, तस्मात्-दामन्यादित्रिगर्तषष्ठात् (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०–आयुधजीविसङ्घाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आयुधजीविसङ्घाद् दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्तषष्ठाच्च छः।

अर्थः-आयुधजीविसङ्घवाचिभ्यो दामन्यादिभ्यस्त्रिगर्तषष्ठेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(दामन्यादिः) दामनी एव-दामनीयः, दामनीयौ, दामन्यः। औलपिरेव-औलपीयः, औलपीयौ, औलपयः, इत्यादिकम्। **(त्रिगर्तषष्ठाः)** कौण्डोपरथ एव-कौण्डोपरथीयः, कौण्डौपरथीयौ, कौण्डोपरथाः। दाण्डकी एव-दाण्डकीयः, दाण्डकीयौ, दाण्डक्यः। क्रौष्टकिरेव-क्रौष्टकीयः, कौष्टकीयौ, कौष्टकयः। जालमानिरेव-जालमानीयः, जालमानीयौ, जालमानयः। ब्राह्मगुप्त एव-ब्राह्मगुप्तीयः, ब्राह्मगुप्तीयौ, ब्राह्मगुप्ताः। जानकिरेव-जानकीयः, जानकीयौ, जानकयः।

आहुस्त्रिगर्तषष्ठाँस्तु कौण्डोपरथदाण्डकी।
क्रौष्टकिर्जालमानिश्च ब्राह्मगुप्तोऽथ जानकिः।।

दामनी। औलपि। आकिदन्ती। काकरन्ति। काकदन्ति। शत्रुन्तपि। सार्वसेनि। बिन्दु। मौञ्जायन। उलभ। सावित्रीपुत्र। इति दामन्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आयुधजीविसङ्घात्) शस्त्रजीवी-संघवाची (दामन्यादि-त्रिगर्तषष्ठात्) दामनी आदि और जिन शस्त्रजीवी संघों में छः आन्तरिक वर्ग हैं तथा उनमें त्रिगर्त छठा है, उन शस्त्रजीवी-संघवाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-(दामनी आदि) दामनी ही-दामनीय। औलपि ही-औलपीय। यहां बहुवचन में पूर्ववत् 'छ' प्रत्यय का लुक् हो जाता है-बहुत दामनी ही-दामनी। बहुत औलपि ही-औलपि, इत्यादि। ***(त्रिगर्तषष्ठ)*** *कौण्डोपरथ ही-कौण्डोपरथीय। दाण्डकी ही-दाण्डकीय। कौष्टकि ही क्रौष्टकीय। जालमानि ही-जालमानीय। ब्राह्मगुप्त ही-ब्राह्मगुप्तीय। जानकि ही-जानकीय। यहां बहुवचन में पूर्ववत् 'छ' प्रत्यय का लुक् हो जाता है-बहुत कौण्डोपरथ ही-कौण्डोपरथ। बहुत दाण्डकी ही-दाण्डकि। बहुत क्रौष्टकि ही-क्रौष्टकि। बहुत जालमानि ही-जालमानि। बहुत ब्राह्मगुप्त ही-ब्राह्मगुप्त। बहुत जानकि ही-जानकि।*

कौण्डोपरथ, दाण्डकि, क्रौष्टकि, जालमानि, ब्राह्मगुप्त और जानकि ये आयुधजीवी सङ्घ 'त्रिगर्तषष्ठ' कहाते हैं।

सिद्धि-दामनीयः। *दामनी+सु+छ। दामन्+ईय। दामनीय+सु। दामनीयः।*

यहां आयुधजीवी संघवाची 'दामनी' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'छ' प्रत्यय है। ***'आयनेय०'*** *(७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-औलपीयः, आदि।*

अण्-अञ्-

(६) पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ।११७।

प०वि०-पर्श्वादि-यौधेयादिभ्यः ५।३ अण्-अञौ १।२।

स०-पर्शुरादिर्येषां ते पर्श्वादयः, यौधेय आदिर्येषां ते यौधेयादयः, पर्श्वादयश्च यौधेयादयश्च ते पर्श्वादियौधेयादयः, तेभ्यः-पर्श्वादियौधेयादिभ्यः (बहुव्रीहिगर्भितइतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अण् च अञ् च तौ अणञौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-आयुधजीविसङ्घाद् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-आयुधजीविसङ्घेभ्यः पर्श्वादियौधेयादिभ्योऽणञौ।

अर्थः-आयुधजीतिसङ्घवाचिभ्यः पर्श्वादिभ्यो यौधेयादिभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे यथासंख्यमणञौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०-(पर्श्वादिः) पशुरिव-पार्शवः, पार्शवौ, पर्शवः। असुर एव-आसुरः, आसुरौ, असुराः, (अण्) इत्यादिकम्। **(यौधेयादिः)** यौधेय एव-यौधेयः, यौधेयौ, यौधेयाः। कौशेय एव-कौशेयः, कौशेयौ, कौशेयाः (अञ्) इत्यादिकम्।

(१) पर्शु। असुर। रक्षस्। वाल्हीक। वयस्। मरुत्। दशार्ह। पिशाच। विशाल। अशनि। कार्षापण। सत्वत्। वसु। इति पर्श्वादयः।।

(२) योधेय। कौशेय। क्रोशेय। शौक्रेय। शौभ्रेय। धार्तेय। वार्तेय। जाबालेय। त्रिगर्त। भरत। उशीनर। इति यौधेयादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(आयुधजीविसङ्घात्) शस्त्रजीवी-संघवाची (पर्श्वादि-यौधेयादिभ्यः) पर्शु-आदि और यौधेय-आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अणञौ) यथासंख्य अण् और अञ् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(पर्श्वादि) पर्शु ही-पार्शव। असुर ही-आसुर (अण्) इत्यादि। यहां बहुवचन में पूर्ववत् 'अण्' प्रत्यय का लुक् होता है-बहुत पर्शु ही-पर्शु। बहुत असुर ही-असुर। (यौधेयादि) यौधेय ही-यौधेय। शौक्रेय ही-शौक्रेय (अञ्) इत्यादि। यहां बहुवचन में पूर्ववत् 'अञ्' प्रत्यय का लुक् होता है-बहुत यौधेय ही-यौधेय। बहुत शौक्रेय ही-शौक्रेय।

सिद्धि-(१) पार्श्वः। पर्शु+सु+अण्। पार्शो+अ। पार्शव्+अ। पार्शव+सु। पार्शवः।

*यहां आयुजीवी-संघवाची 'पर्शु' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि तथा **'ओर्गुणः'** (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है। ऐसे ही-आसुरः।*

(२) यौधेयः। यौधेय+सु+अञ्। यौधेय्+अ। यौधेय+सु। यौधेयः।

यहां आयुधजीवी-संघवाची 'यौधेय' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-शौक्रेयः।

यञ्-

(७) अभिजिद्विदभृच्छालावच्छिखावच्छमीवदूर्णावच्छ्रुमदणो यञ्।११८।

प०वि०- अभिजित्-विदभृत्-शालावत्-शिखावत्-शमीवत्- ऊर्णावत्-श्रुमत्-अणः ५।१। यञ् १।१।

स०-अभिजिच्च विदभृच्च शालावच्च शिखावच्च शमीवच्च ऊर्णावच्च श्रुमच्च ते-अभिजित्०श्रुमतः, तेभ्यः-अभिजित्०श्रुमद्भ्यः, अभिजित्०श्रुमद्भ्यो योऽण्-अभिजित्०श्रीमदण्, तस्मात्-अभिजित्०श्रुमदणः (इतरेतरयोगद्वन्द्व-गर्भितपञ्चमीतत्पुरुषः)।

अनु०-आयुधजीविसङ्घाद् इति निवृत्तम्।

अन्वयः-अभिजित्०श्रुमद्भ्योऽणन्तेभ्यो यञ्।

अर्थः-अभिजिदादिभ्योऽण्प्रत्ययान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे यञ् प्रत्ययो भवति। अत्र गोत्रापत्येऽर्थे विहितस्याण्प्रत्ययस्य ग्रहणमिष्यते।

उदा०-(अभिजित्) अभिजितो गोत्रापत्यम्-आभिजितः। आभिजित एव-आभिजित्यः, आभिजित्यौ, आभिजिताः। **(विदभृत्)** विदभृतो गोत्रापत्यम्-वैदभृतः। वैदभृत एव-वैदभृत्यः, वैदभृत्यौ, वैदभृताः। **(शालावत्)** शालावतो गोत्रापत्यम्-शालवतः। शालावत एव-शालावत्यः, शालावत्यौ, शालावताः। **(शिखावत्)** शिखावतो गोत्रापत्यम्-शैखावतः। शैखावत एव-शैखावत्यः, शैखावत्यौ, शैखावता। **(शमीवत्)** शमीवतो

गोत्रापत्यम्-शामीवतः। शामीवत एव-शामीवत्यः शामीवत्यौ, शामीवताः। **(ऊर्णावत्)** ऊर्णावतो गोत्रापत्यम्-और्णावतः। और्णावत एव-और्णावत्यः, और्णावत्यौ, और्णावताः। **(श्रुमत्)** श्रुमतो गोत्रापत्यम्-श्रौमत्। श्रौमत् एव श्रौमत्यः। श्रौमत्यौ, श्रौमताः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अभिजित्०श्रुमदणः) अभिजित्, विदभृत्, शालावत्, शिखावत्, शमीवत्, ऊर्णावत्, श्रुमत् इन अण्-प्रत्ययान्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (यञ्) यञ् प्रत्यय होता है। यहां* ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) से गोत्रापत्य अर्थ में विहित 'अण्' प्रत्यय का ग्रहण किया जाता है।*

*उदा०-**(अभिजित्)** अभिजित् का गोत्रापत्य=पौत्र-आभिजित। आभिजित ही-आभिजित्य। **(विदभृत्)** विदभृत् का गोत्रापत्य-वैदभृत। वैदभृत ही-वैदभृत्य। **(शालावत्)** शालावत् का गोत्रापत्य-शालवत। शालवत ही-शालावत्य। **(शिखावत्)** शिखावत् का गोत्रापत्य-शैखावत। शैखावत ही-शैखावत्य। **(शमीवत्)** शमीवत् का गोत्रापत्य-शामीवत। शामीवत ही-शामीवत्य। **(ऊर्णावत्)** ऊर्णावत् का गोत्रापत्य-और्णावत। और्णावत ही-और्णावत्यः। **(श्रुमत्)** श्रुमत् का गोत्रापत्य-श्रौमत। श्रौमत ही श्रौमत्य।*

यहां बहुवचन में पूर्ववत् 'यञ्' का लुक् होता है। बहुत आभिजित ही-आभिजित। बहुत वैदभृत ही-वैदभृत। बहुत शालावत ही-शालावत। बहुत शैखावत ही-शैखावत। बहुत शामीवत ही-शामीवत। बहुत और्णावत ही-और्णावत। बहुत श्रौमत ही-श्रौमत।

सिद्धि-आभिजित्यः। *अभिजित्+ङस्+अण्। आभिजित्+अ। आभिजित।। आभिजित्+सु+यञ्। आभिजित्+य। आभिजित्य+सु। आभिजित्यः।*

यहां प्रथम 'अभिजित्' शब्द से ***'तस्यापत्यम्'*** *(४।१।९२) गोत्रापतय अर्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है।* ***'तद्धितेष्वचामादेः'*** *(७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होकर 'आभिजित' शब्द सिद्ध होता है। तत्पश्चात् अण्-प्रत्ययान्त 'आभिजित' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'यञ्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-वैदभृत्यः आदि।*

तद्राजसंज्ञा–

(८) ञ्यादयस्तद्राजाः।११६।

प०वि०-ञ्य-आदयः १।३ तद्राजाः १।३।

स०-ञ्य आदिर्येषां ते-ञ्यादयः (बहुव्रीहिः)। तेषां राजा-तद्राजः, ते तद्राजाः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अर्थः- 'पूगाञ्ज्योऽग्रामणीपूर्वात्' (५।३।११२) इत्यस्मात् प्रभृति ये ञ्यादयः प्रत्ययास्ते तद्राजसंज्ञका भवन्ति।

उदा०-लोहध्वज एव-लौहध्वज्यः, लौहध्वज्यौ, लोहध्वाजाः, इत्यादिकमुदाहृतमेव।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ञ्यादयः) 'पूगाञ्ज्योऽग्रामणीपूर्वात्' (५।३।११२) इस सूत्र से लेकर यहां तक जो ञ्य-आदि प्रत्यय विधान किये हैं उनकी (तद्राजाः) तद्राज संज्ञा होती है।*

उदा०-लोहध्वज ही-लौहध्वज्य इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

*तद्राज संज्ञा का फल यह है कि **'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२) से तद्राजसंज्ञक प्रत्यय का बहुवचन में लुक् हो जाता है, जैसे-लौहध्वज्यः, लौहध्वज्यौ, **लोहध्वजाः।** इस प्रकार इस प्रकरण में सर्वत्र दर्शाया गया है।*

सिद्धि-लोहध्वजाः। *लोहध्वज+जस्+ञ्य। लोहध्वज+०। लोहध्वज+जस्। लोहध्वजाः।*

*यहां पूगवाची 'लोहध्वज' शब्द से **'पूगाञ्ज्योऽग्रामणीपूर्वात्'** (५।३।११२) से 'ञ्य' प्रत्यय है। इस सूत्र से उसकी 'तद्राज' संज्ञा होकर बहुवचन में **'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्'** (२।४।६२) से 'ञ्य' प्रत्यय का लुक् हो जाता है। ऐसे ही-शिबयः आदि।*

इति तद्राजसंज्ञकप्रत्ययप्रकरणम्।

इति पण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।।

पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

वीप्सार्थप्रत्ययविधिः

वुन्–

(१) पादशतस्य संख्यादेर्वीप्सायां वुन् लोपश्च।१।

प०वि०-पाद-शतस्य ६।१ संख्यादेः ६।१ वीप्सायाम् ७।१ लोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-पादश्च शतं च एतयोः समाहारः पादशतम्, तस्य-पादशतस्य (समाहारद्वन्द्वः)। संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिः, तस्य-संख्यादेः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-संख्यादेः पादशताद् वुन् लोपश्च वीप्सायाम्।

अर्थः-संख्यादेः पादान्तात् शतान्ताच्च प्रातिपदिकाद् वुन् प्रत्ययो भवति, अन्त्यस्य च लोपो भवति, वीप्सायां गम्यमानायाम्।

उदा०-**(पादान्तम्)** द्वौ द्वौ पादौ ददाति-द्विपदिकां ददाति। **(शतान्तम्)** द्वे द्वे शते ददाति-द्विशतिकां ददाति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्यादेः) संख्या जिसके आदि में है उस (पादशतस्य) पादान्त और शतान्त प्रातिपदिक से (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (च) और (लोपः) अन्त्य अकार का लोप होता है (वीप्सायाम्) यदि वहां वीप्सा=व्याप्ति अर्थ की प्रतीति हो।*

*उदा०-**(पादान्त)** दो-दो पाद (कार्षापण का चौथा भाग) प्रदान करता है-द्विपदिका प्रदान करता है। **(शतान्त)** दो-दो शत=सौ कार्षापण प्रदान करता है-द्विशतिका प्रदान करता है।*

*सिद्धि-**द्विपदिका**। द्वि+औ+पाद+औ। द्विपाद+सु+ वुन्। द्विपाद्+अक। द्विपद्+अक। द्विपदक+टाप्। द्विपदिका+सु। द्विपदिका।*

*यहां प्रथम 'द्वि' और 'पाद' सुबन्तों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से तद्धितार्थ विषय में समानाधिकरण (कर्मधारय) तत्पुरुष समास होता है। तत्पश्चात्-संख्यादि तथा पादान्त 'द्विपाद' शब्द से वीत्सा अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'वुन्' प्रत्यय और अन्त्य अकार का लोप होता है। यहां **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से भी अन्त्य अकार का लोप सिद्ध था पुनः यहां लोप-विधान इसलिये किया है कि **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से विहित लोप पर-निमित्तक है, वह लोपादेश **'पादः पत्'** (६।४।१३०) से पाद के स्थान में पद्-आदेश करते समय **'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ'** (१।१।५७) से*

स्थानिवत् होकर उक्त पद्-आदेश करने में बाधक न हो। इस प्रकार 'पाद' को पद्-आदेश होकर स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय और* ***'प्रत्ययस्थात्०'*** *(७।३।४४) से अकार को इकार आदेश होता है।* ***'स्वभावाच्च वुन्प्रत्ययान्तं स्त्रियामेव भवति'*** *वुन्-प्रत्ययान्त शब्द स्वभावत: स्त्रीलिङ्ग में ही होते हैं। ऐसे ही-द्विशतिका।*

दण्ड-व्यवसगार्थप्रत्ययविधि:

वुन्–

(१) दण्डव्यवसर्गयोश्च।२।

प०वि०-दण्ड-व्यवसर्गयो: ७।२ च अव्ययपदम्।

स०-दण्डश्च व्यवसर्गश्च तौ दण्डव्यवसर्गौ, तयो:-दण्डव्यवसर्गयो: (इतरेतरयोगद्वन्द्व:)।

अनु०-पादशतस्य, संख्यादे:, वुन्, लोप:, च इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संख्यादे: पादशताद् वुन् लोपश्च, दण्डव्यवसर्गयोश्च।

अर्थ:-संख्यादे: पादान्तात् शतान्ताच्च प्रातिपदिकाद् वुन् प्रत्ययो भवति, अन्त्यस्य च लोपो भवति, दण्डव्यवसर्गयोश्च गम्यमानयो:। दण्ड:=दमनम्। व्यवसर्ग:=दानम्।

उदा०-**(पादान्त)** द्वौ पादौ दण्डित:-द्विपदिकां दण्डित: (दण्ड:)। द्वौ पादौ व्यवसृजति-द्विपदिकां व्यवसर्जीति (व्यवसर्ग:)। **(शतान्तम्)** द्वे शते दण्डित:-द्विशतिकां दण्डित: (दण्ड:)। द्वे शते व्यवसृजति-द्विशतिकां व्यवसृजति (व्यवसर्ग:)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्यादे:) संख्या जिसके आदि में है उस (पादशतस्य) पादान्त और शतान्त प्रातिपदिक से (वुन्) वुन् प्रत्यय होता है (च) और (लोप:) अन्त्य अकार का लोप होता है* ***(दण्डव्यवसर्गयो:) यदि*** *वहां दण्ड=दमन और व्यवसर्ग=दान अर्थ की (च) भी प्रतीति हो।*

उदा०-(पादान्त) दो पाद ***(कार्षापण का चतुर्थ-भाग)*** *से दण्डित किया गया-द्विपदिका* ***दण्डित*** *(दण्ड)। दो पाद प्रदान करता है-द्विपदिका प्रदान करता है (व्यवसर्ग)। (शतान्त)* ***दो*** *शत=सौ कार्षापण से दण्डित किया गया-द्विशतिका दण्डित (दण्ड)। दो शत=सौ कार्षापण प्रदान करता है-द्विशतिका प्रदान करता है (व्यवसर्ग)।*

सिद्धि-द्विपदिका और द्विशतिका पदों की सिद्धि पूर्ववत् है, यहां केवल दण्ड और व्यवसर्ग अर्थ अभिधेय विशेष है।

प्रकारार्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) स्थूलादिभ्यः प्रकारवचने कन्।३।

प०वि०–स्थूल-आदिभ्यः ५।३ प्रकारवचने ७।१ कन् १।१।

स०–स्थूल आदिर्येषां ते स्थूलादयः, तेभ्यः–स्थूलादिभ्यः (बहुव्रीहिः)। प्रकारस्य वचनम्–प्रकारवचनम्, तस्मिन्–प्रकारवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)। प्रकारः=विशेषः।

अन्वयः–प्रकारवचने स्थूलादिभ्यः कन्।

113919

अर्थः–प्रकारवचनेऽर्थे वर्तमानेभ्यः स्थूलादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–स्थूलप्रकारः–स्थूलकः। अणुकः। माषकः, इत्यादिकम्।

स्थूल। अणु। माष। इषु। कृष्ण तिलेषु। यव व्रीहिषु। पाद्यकालावदाताः सुरायाम्। गोमूत्र आच्छादने। सुराया अहौ। जीर्ण शालिषु। पत्रमूले समस्त-व्यस्ते। कुमारीपुत्र। कुमार। श्वशुर। मणिक। इति स्थूलादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रकारवचने) प्रकार-वचन अर्थ में विद्यमान (स्थूलादिभ्यः) स्थूल-आदि प्रातिपदिकों से (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-स्थूल प्रकारवाला-स्थूलक। अणु=सूक्ष्म प्रकारवाला-अणुक। माष=उड़द (काला) प्रकारवाला-माषक, इत्यादि।

सिद्धि-स्थूलकः। स्थूल+सु+कन्। स्थूल+क। स्थूलक+सु। स्थूलकः।

यहां प्रकार अर्थ में विद्यमान 'स्थूल' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-अणुकः, माषकः।

अनत्यन्तगत्यर्थप्रत्ययविधिः

कन्–

(१) अनत्यन्तगतौ क्तात्।४।

प०वि०–अनत्यन्त-गतौ ७।१ क्तात् ५।१।

स०–अत्यन्ता चासौ गतिः–अत्यन्तगतिः, न अत्यन्तगतिः–अनत्यन्तगतिः, तस्याम्–अनत्यन्तगतौ (कर्मधारयगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अनत्यन्तगतौ क्तात् कन्।

अर्थः-अनत्यन्तगतौ=अशेषसम्बन्धाभावेऽर्थे वर्तमानात् क्तप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अनत्यन्तं भिन्नः-भिन्नको घटः। अनत्यन्तं छिन्नः-छिन्नको वृक्षः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनत्यन्तगतौ) अशेष-सम्बन्ध के अभाव अर्थ में विद्यमान (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अनत्यन्त भिन्न=सर्वथा न फूटा हुआ-भिन्नक घट। अनत्यन्त छिन्न=सर्वथा न कटा हुआ-छिन्नक वृक्ष।

*सिद्धि-**भिन्नकः**। भिन्न+सु+कन्। भिन्न+क। भिन्नक+सु। भिन्नकः।*

*यहां अनत्यन्त गति अर्थ में विद्यमान, क्त-प्रत्ययान्त 'भिन्न' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**छिन्नकः**।*

कन्-प्रतिषेधः-

(२) न सामिवचने।५।

प०वि०-न अव्ययपदम्, सामिवचने ७।१।

अनु०-कन्, अनत्यन्तगतौ क्ताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-सामिवचनेऽनत्यन्तगतौ क्तात् कन् न।

अर्थः-सामिवचने उपपदेऽनत्यन्तगतौ=अशेषसम्बन्धाभावेऽर्थे वर्तमानात् क्तप्रत्ययान्तात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-सामि कृतमिति-सामिकृतम्। सामि भुक्तमिति-सामिभुक्तम्। वचनग्रहणं पर्यायार्थम्। अर्धं कृतमिति-अर्धकृतम्। नेमं कृतिमिति-नेमकृतम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(सामिवचने) सामिवाची शब्द उपपद होने पर (अनत्यन्तगतौ) अशेष सम्बन्ध के अभाव अर्थ में विद्यमान (क्तात्) क्त-प्रत्ययान्त प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-सामि=आधा किया-सामिकृत। सामि=आधा खाया-सामिभुक्त। सूत्र में वचन शब्द के पाठ से पर्यायवाची शब्दों का भी ग्रहण होता है-अर्ध=आधा किया-अर्धकृत। नेम=आधा किया-नेमकृत।

सिद्धि-सामिकृतम्। सामि+सु+कृत+सु। सामि+कृत। सामिकृत+सु। सामिकृतम्।

*यहां सामि शब्द उपपद होने पर क्त-प्रत्ययान्त 'कृत' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'सामि' (२।१।२७) से तत्पुरुष समास होता है। ऐसे ही- **सामिभुक्तम्, अर्धकृतम्, नेमकृतम्।***

कन्-

(३) बृहत्या आच्छादने।६।

प०वि०-बृहत्याः ५।१ आच्छादने ७।१।

अनु०-कन् अनत्यन्तगतौ इति चानुवर्तते। 'न' इति च नानुवर्तते।

अन्वयः-अनत्यन्तगतौ बृहत्याः कन्, आच्छादने।

अर्थः-अनत्यन्तगतौ=अशेषसम्बन्धाभावेऽर्थे वर्तमानाद् बृहती-शब्दात् प्रातिपदिकात् कन् प्रत्ययो भवति, आच्छादनेऽभिधेये।

उदा०-अनत्यन्ता बृहती-बृहतिका।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनत्यन्तगतौ) अशेष-सम्बन्ध के अभाव अर्थ में विद्यमान (बृहत्याः) बृहती प्रातिपदिक से (कन्) कन् प्रत्यय होता है (आच्छादने) यदि वहां आच्छादन=वस्त्र अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-अनत्यन्त बृहती-बृहतिका (चदरिया)।

सिद्धि-बृहतिका। बृहती+सु+कन्। बृहति+क। बृहतिक+टाप्। बृहतिका+सु। बृहतिका।

यहां अनत्यन्तगति अर्थ में विद्यमान 'बृहती' शब्द से आच्छादन अर्थ अभिधेय में इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है। 'केऽणः' (७।४।१३) से अंग के अण् (ई) को ह्रस्व होता है।

स्वार्थिकप्रत्ययप्रकरणम्

खः-

(१) अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मालम्पुरु षाध्युत्तरपदात् खः।७।

प०वि०- अषडक्ष-आशितङ्गु-अलङ्कर्म-अलम्पुरुष-अध्युत्तर-पदात् ५।१ खः १।१।

स०-अधि उत्तरपदं यस्य तत्-अध्युत्तरपदम्। अषडक्षश्च आशितङ्गु च अलङ्कर्मा च अलम्पुरुषश्च अध्युत्तरपदं च एतेषां समाहारः-

अषडक्ष०अध्युत्तरपदम्, तस्मात्-अषडक्ष०अध्युत्तरपदात् (बहुव्रीहिगर्भित-समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अषडक्ष०अध्युत्तरपदात् स्वार्थे खः।

अर्थः-अषडक्ष-आशितङ्गु-अलङ्कर्म-अलम्पुरुषेभ्योऽध्युत्तरपदेभ्यश्च प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अषडक्षः)** अविद्यमानानि षडक्षीणि यस्मिन् सः-अषडक्षः। अषडक्ष एव-अषडक्षीणो मन्त्रः। यो द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रियते, न बहुभिः। **(आशितङ्गुः)** आशिता गावो यस्मिँस्तत्-आशितङ्गवीनमरण्यम्। **(अलङ्कर्मा)** अलङ्कर्मणे-अलङ्कर्मीणः। **(अलम्पुरुषः)** अलम्पुरुषाय-अलम्पुरुषीणः। **(अध्युत्तरपदम्)** राजनि अधि-राजाधीनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अषडक्ष०अध्युत्तरपदात्) अषडक्ष, आशितङ्गु, अलङ्कर्मन्, अलम्पुरुष तथा अधि-उत्तरपदवाले* ***प्रातिपदिकों*** *से स्वार्थ में (खः) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अषडक्ष) जहां छः आंख विद्यमान नहीं है वह अषडक्ष, अषडक्ष ही-अषडक्षीण मन्त्र। दो पुरुषों के द्वारा किया गया गुप्त विचार। (आशितङ्गु) जिसमें गौवें सब घास को चर चुकी हैं वह-आशितङ्गु, आशितङ्गु ही-आशितङ्गवीन अरण्य (जंगल)। (अलङ्कर्मा) कर्म करने के लिये जो समर्थ है वह-अलङ्कर्मा, अलङ्कर्मा ही-अलङ्कर्मीण। (अलम्पुरुष) जो पुरुष प्रति संघर्ष के लिये पर्याप्त है वह-अलम्पुरुष, अलम्पुरुष ही-अलम्पुरुषीण। (अध्युत्तरपद) जो राजा के अधिकार में है वह-राजाधि, राजाधि ही-राजाधीन।

सिद्धि-(१) अषडक्षीणः। अषडक्ष+सु+ख। अषडक्ष्+ईन। अषडक्षीण+सु। अषडक्षीणः।

यहां 'अषडक्ष' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ख' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'ख्' के स्थान में 'ईन्' आदेश, 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप और 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

(२) आशितङ्गवीनम्। यहां 'आशितङ्गु' शब्द से 'ख' प्रत्यय करने पर 'ओर्गुणः' (६।४।१४६) से अंग को गुण होता है और निपातन से पूर्वपद को 'मुम्' आगम होता है।

(३) अलङ्कर्मीणः। यहां 'अलङ्कर्मन्' शब्द से 'ख' प्रत्यय करने पर 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है और पूर्ववत् णत्व होता है। 'अलङ्कर्मा' शब्द में वा०- 'पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या' (२।२।१८) से प्रादि समास है।

(४) अलम्पुरुषीणः। यहां 'अलम्पुरुष' शब्द से 'ख' प्रत्यय करने पर पूर्ववत् णत्व होता है।

(५) राजाधीनः। राजन्+ङि+अधि+सु। राज+अधि। राजाधि+सु+ख। राजाध्+ईन। राजाधीन+सु। राजाधीनः।

*यहां प्रथम राजन् और अधि सुबन्तों का **'सप्तमी शौण्डैः'** (२।१।४०) से सप्तमीतत्पुरुष होता है। 'अधि' शब्द शौण्डादिगण में पठित है। तत्पश्चात् 'राजाधि' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ख' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

ख-विकल्पः–

(२) विभाषाऽञ्चेरदिक्स्त्रियाम्।८।

प०वि०-विभाषा १।१ अञ्चेः ५।१ अदिक्-स्त्रियाम् ७।१।

स०-दिक् चासौ स्त्री-दिक्स्त्री, न दिक्स्त्री-अदिक्स्त्री, तस्याम्-अदिक्स्त्रियाम् (कर्मधारयगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-ख इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-अदिक्स्त्रियाम् अञ्चेर्विभाषा खः।

अर्थः-अदिक्स्त्रियां वर्तमानाद् अञ्चति-अन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन खः प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्राक्, प्राचीनम्। अर्वाक्, अर्वाचीनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अदिक्स्त्रियाम्) दिशावाची स्त्रीलिङ्ग से भिन्न विषय में विद्यमान (अञ्चेः) अञ्चति-अन्तवाले प्रातिपदिक से स्वार्थ में (विभाषा) विकल्प से (ख) ख प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्राक्, प्राचीन (पुराना)। अर्वाक्, अर्वाचीन (नया)।

सिद्धि-*(१) **प्राक्**। प्र उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से **'ऋत्विक्दधृक्०'** (३।२।५९) से 'क्विन्' प्रत्यय करने पर 'प्राक्' शब्द सिद्ध होता है। इसकी समस्त सिद्धि वहां देख लेवें। यहां दिशावाची, स्त्रीलिङ्ग से भिन्न अञ्चति-अन्त 'प्राक्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ख' प्रत्यय नहीं होता है।*

*(२) **प्राचीनम्**। प्र+अञ्चु+क्विन्। प्र+अच्+वि। प्र+अच्+०। प्र+अच्+ख। प्र+अच्+ईन। प्र+वच्+ईन। प्रा+च्+ईन। प्राचीन+सु। प्राचीनम्।*

*यहां प्र उपसर्गपूर्वक **'अञ्चु गतौ'** (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विन्' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् दिशावाची, स्त्रीलिङ्ग से भिन्न अञ्चति-अन्त 'प्र+०अच्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ख' प्रत्यय करने पर 'अचः' (६।४।१३८) से अञ्चति के अकार का लोप और 'चौ' (६।३।१२२) से उपसर्ग को दीर्घ होता है।*

(३) अर्वाक्। यहां अवर पूर्वक 'अञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विन्' प्रत्यय है। 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६।३।१०९) से अवर को 'अर्व' आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) अर्वाचीनम्। यहां अवर पूर्वक 'अञ्चु गतौ' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत् 'क्विन्' प्रत्यय और तत्पश्चात् 'अवर+अच्' शब्द से इस सूत्र से 'ख' प्रत्यय होता है। 'अवर' शब्द को पूर्ववत् 'अर्व' आदेश होता है। शेष कार्य 'प्राचीन' के समान है।

छः-

(३) जात्यन्ताच्छ बन्धुनि।६।

प०वि०-जाति-अन्तात् ५।१ छ १।१ (सु-लुक्) बन्धुनि ७।१।

स०-जतिरन्ते यस्य तत्-जात्यन्तम्, तस्मात्-जात्यन्तात् (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-बन्धुनि जात्यन्ताच् छः।

अर्थः-बन्धुनि अर्थे वर्तमानाज् जात्यन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे छः प्रत्ययो भवति।

बध्यतेऽस्मिञ्जातिरिति बन्धु। येन ब्राह्मणत्वादिजातिर्व्यज्यते तद् बन्धु द्रव्यम् (व्यक्तिः) उच्यते।

उदा०-ब्राह्मणजातिरेव-ब्राह्मणजातीयः। क्षत्रियजातीयः। वैश्यजातीयः। पशुजातीयः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बन्धुनि) द्रव्य=व्यक्ति अर्थ में विद्यमान (जात्यन्तात्) जाति शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से स्वार्थ में (छः) छ प्रत्यय होता है।*

उदा०-ब्राह्मणजाति ही-ब्राह्मणजातीय (ब्राह्मण)। क्षत्रियजाति ही-क्षत्रियजातीय (क्षत्रिय)। वैश्यजाति ही-वैश्यजातीय (वैश्य)। पशुजाति ही-पशुजातीय (पशु)।

सिद्धि-ब्राह्मणजातीयः। यहां बन्धु (व्यक्ति) अथ र्श में विद्यमान जात्यन्त 'ब्राह्मणजाति' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'छ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-क्षत्रियजातीयः आदि।

छ-विकल्पः-

(४) स्थानान्ताद् विभाषा सस्थानेनेति चेत्।१०।

प०वि०-स्थान-अन्तात् ५।१ विभाषा १।१ सस्थानेन ३।१ इति अव्ययपदम्, चेत् अव्ययपदम्।

स०-स्थानमन्ते यस्य तत्-स्थानान्तम्, तस्मात्-स्थानान्तात् (बहुव्रीहिः)। समानं स्थानं यस्य तत्-सस्थानम्, तेन-सस्थानेन (बहुव्रीहिः)।

अनु०-छ इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-स्थानान्ताद् विभाषा छः, सस्थानेन इति चेत्।

अर्थः-स्थानान्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन छः प्रत्ययो भवति, सस्थानेन=तुल्यशब्देन सह चेत् तत् स्थानान्तं पदमर्थवद् भवति।

उदा०-पित्रा सस्थानः (तुल्यः)-पितृस्थानीयः (छः)। पितृस्थानः (छो न)। मात्रा सस्थानः-मातृस्थानीयः, मातृस्थानः। राज्ञा सस्थानः-राजस्थानीयः, राजस्थानः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(स्थानान्तात्) स्थान शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से स्वार्थ में (बिभाषा) विकल्प से (छः) छ प्रत्यय होता है, (चेत्) यदि वह स्थानान्त पद (सस्थानेन) तुल्य (इति) अर्थ के साथ सार्थक होता है।*

उदा०-पिता का सस्थान (तुल्य)-पितृस्थानीय (छ)। पितृस्थान (छ नहीं)। माता का सस्थान-मातृस्थानीय, मातृस्थान। राजा का संस्थान-राजस्थानीय, राजस्थान।

*सिद्धि-**पितृस्थानीयः।** पितृस्थान+सु+छ। पितृस्थान्+ईय। पितृस्थानीय+सु। पितृस्थानीयः।*

*यहां तुल्य शब्द के साथ अर्थवान्, स्थानान्त 'पितृस्थान' शब्द से इस सूत्र से 'छ' प्रत्यय है। 'आयनेय०' (७।१।२) से 'घ्' के स्थान में 'ईय्' आदेश और 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**मातृस्थानीयः, राजस्थानीयः।***

*(२) **पितृस्थानः।** यहां 'पितृस्थान' शब्द से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'छ' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-**मातृस्थानः, राजस्थानः।***

आमु–

(५) किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे।११।

प०वि०-किम्-एत्-तिङ्-अव्ययघात् ५।१ आमु १।१ अद्रव्यप्रकर्षे ७।१।

स०-किम् च एच्च तिङ् च अव्ययं च तानि-किमेत्तिङव्ययानि, तेभ्यः-किमेत्तिङव्ययेभ्यः, किमेत्तिङव्ययेभ्यो यो घः सः-किमेत्तिङव्ययघः, तस्मात्-किमेत्तिङव्ययघात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितपञ्चमीतत्पुरुषः)।

द्रव्यस्य प्रकर्षः-द्रव्यप्रकर्षः, न द्रव्यप्रकर्षः-अद्रव्यप्रकर्षः, तस्मिन् अद्रव्यप्रकर्षे (षष्ठीगर्भितनञतत्पुरुषः)।

अन्वयः-अद्रव्यप्रकर्षे किमेत्तिङ्व्ययघाद् आमु।

अर्थः-अद्रव्यप्रकर्षेऽर्थे वर्तमानेभ्यः किमेत्तिङ्व्ययेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यो विहितो घः प्रत्ययस्तदन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे आमु प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(किम्)** किंतर एव-कितराम्। किंतम एव-किंतमाम्। **(एत्)** पूर्वाह्णेतर एव-पूर्वाह्णेतराम्। पूर्वाह्णेतम एव-पूर्वाह्णेतमाम्। **(तिङ्)** पचतितर एव-पचतितराम्। पचतितम एव-पचतितमाम्। **(अव्ययम्)** उच्चैस्तर एव-उच्चैस्तराम्। उच्चैस्तम एव-उच्चैस्तमाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अद्रव्यप्रकर्षे) द्रव्य के प्रकर्ष=अतिशय अर्थ में अविद्यमान (किमेत्तिङ्व्ययघात्) किम्, एत्=एकारान्त, तिङन्त, अव्यय शब्दों से जो घ प्रत्यय विहित है तदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (आमु) आमु प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(किम्)** दोनों में से कौन एक प्रकृष्ट-किंतर। किंतर ही-किंतराम्। बहुतों में से कौन एक प्रकृष्ट-किंतम। कितम ही-किंतमाम्। **(एकारान्त)** दो पूर्वाह्णों में से एक में प्रकृष्ट-पूर्वाह्णेतर। पूर्वाह्णेतर ही-पूर्वाह्णेतराम्। बहुत पूर्वाह्णों में से एक में प्रकृष्ट-पूर्वाह्णेतमाम्। **(तिङन्त)** दोनों में से एक प्रकृष्ट पकाता है-पचतितर। पचतितर ही-पचतितराम्। बहुतों में से एक प्रकृष्ट पकाता है-पचतितम। पचतितम ही-पचतितमाम्। **(अव्यय)** दोनों में से एक प्रकृष्ट उच्चैः (ऊंचा)-उच्चैस्तर। उच्चैस्तर ही-उच्चैस्तराम्। बहुतों में एक प्रकृष्ट उच्चैः (ऊंचा)-उच्चैस्तम। उच्चैस्तम ही-उच्चैस्तमाम्।*

सिद्धि-(१) किंतराम्। *किम्+सु+तरप्। किम्+तर। किंतर+सु+आमु। किंतर्+आम्। कितराम्+सु। कितराम्+०। कितराम्।*

*यहां प्रथम 'किम्' शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से 'तरप्' प्रत्यय है। 'तरप्तमपौ घः' (१।१।२२) से 'तरप्' प्रत्यय की 'घ' संज्ञा है। घ-प्रत्ययान्त, अद्रव्यप्रकर्ष अर्थ में विद्यमान 'किंतर' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'आमु' प्रत्यय है। 'किंतराम्' की **'स्वरादिनिपातव्ययम्'** (१।१।३७) से अव्ययसंज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।*

(२) किंतमाम्। *यहां प्रथम 'किम्' शब्द से **'अतिशायने तमबिष्ठनौ'** (५।३।५६) से 'तमप्' प्रत्यय है। 'तमप्' प्रत्यय की पूर्ववत् 'घ' संज्ञा है। घ-प्रत्ययान्त 'किंतम' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'आमु' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) पूर्वाह्णेतराम्। *पूर्वाह्ण+ङि+तरप्। पूर्वाह्णे+तर। पूर्वाह्णेतर+आमु। पूर्वाह्णेतराम्+सु। पूर्वाह्णेतराम्+०। पूर्वाह्णेतराम्।*

यहां एकारान्त (सप्तम्यन्त) पूर्वाह्णे शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय है। **'घकालतनेषु कालनाम्नः'** (६।३।१७) से सप्तमी का अलुक् होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) **पूर्वाह्णेतमाम्।** यहां एकारान्त (सप्तम्यन्त) पूर्वाह्णे शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तमप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(५) **पचतितराम्।** यहां तिङन्त 'पचति' शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(६) **पचतितमाम्।** यहां तिङन्त 'पचति' शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तमप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) **उच्चैस्तराम्।** यहां अव्यय-संज्ञक 'उच्चैस्' शब्द पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(८) **उच्चैस्तमाम्।** यहां अव्यय-संज्ञक 'उच्चैस्' शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तमप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अमु+आमु–

(६) अमु च च्छन्दसि।१२।

प०वि०–अमु १।१ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

अनु०–किमेत्तिङव्ययघात्, आमु, अद्रव्यप्रकर्षे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि अद्रव्यप्रकर्षे किमेत्तिङव्ययघाद् अमु आमु च।

अर्थः–छन्दसि विषयेऽद्रव्यप्रकर्षेऽर्थे वर्तमानेभ्यः किमेत्तिङव्ययेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो यो घः प्रत्ययो विहितस्तदन्तात् प्रातिपदिकाद् अमु आमु च प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–(अमु) प्रतरं न आयुः (ऋ० ४।१२।६)। (आमु) प्रतरां नय (यजु० १७।५१)।

आर्यभाषाः अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (अद्रव्यप्रकर्षे) द्रव्य के प्रकर्ष=अतिशय अर्थ में अविद्यमान (किमेत्तिङव्ययघात्) किम्, एत्=एकारान्त, तिङन्त, अव्यय शब्दों से जो घ प्रत्यय विहित है तदन्त प्रातिपदिक से (अमु) अमु (च) और (आमु) आमु प्रत्यय होते हैं।

उदा०-(अमु) प्रतरं न आयुः (ऋ० ४।१२।६)। हमारी आयु प्रकृष्टतर हो। (आमु) प्रतरां नय (यजु० १७।५१)। हे ईश्वर ! आप मुझे प्रकृष्टता को प्राप्त कराइये।

सिद्धि-(१) प्रतरम्। प्र+सु+तरप्। प्र+तर। प्रतर+अमु। प्रतर्+अम्। प्रतरम्+सु। प्रतरम्+०। प्रतरम्।

यहां अव्ययसंज्ञक 'प्र' शब्द से पूर्ववत् घ-संज्ञक 'तरप्' प्रत्यय है। तरप्-प्रत्ययान्त 'प्रतर' शब्द से छन्द विषय में इस सूत्र से 'अमु' प्रत्यय होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) प्रतराम्। यहां पूर्वोक्त 'प्रतर' शब्द से इस सूत्र से छन्द विषय में 'आमु' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

ठक्-

(७) अनुगादिनष्ठक्।१३।

प०वि०-अनुगादिनः ५।१ ठक् १।१।

अन्वयः-अनुगादिनः प्रातिपदिकाट्ठक्।

अर्थः-अनुगादिन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अनुगदतीति अनुगादी। अनुगादी एव-आनुगादिकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनुगादिनः) अनुगादिन् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अनुगादी=पीछे बोलनेवाला ही-आनुगादिक।

सिद्धि-आनुगादिकः। अनुगादिन्+सु+ठक्। आगाद्+इक। आनुगादिक+सु। आनुगादिकः।

यहां 'अनुगादिन्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। 'ठस्येकः' (७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश और 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है।

अञ्-

(८) णचः स्त्रियामञ्।१४।

प०वि०-णचः ५।१ स्त्रियाम् ७।१ अञ् १।१।

अन्वयः-स्त्रियां णचोऽञ्।

अर्थः-स्त्रियां विषये णचः='कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्' (३।३।४३) इति यो णच् प्रत्ययो विहितस्तदन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽञ् प्रत्ययो भवति।

उदा०-व्यावक्रोशी वर्तते। व्यावहासी वर्तते।

आर्यभाषाः अर्थ-(स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग विषय में (णचः) **'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्'** (३।३।४३) से जो णच् प्रत्यय विहित है, तदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अञ्) अञ् प्रत्यय होता है।

उदा०-व्यावक्रोशी वर्तते। परस्पर आह्वान चल रहा है। व्यावहासी वर्तते। परस्पर हास्य चल रहा है।

सिद्धि-(१) व्यवक्रोशी। वि+अव+क्रुश्+णच्। वि+अव+क्रोश्+अ। व्यावक्रोश+सु+अञ्। व्यावक्रोश्+अ। व्यावक्रोश+ङीप्। व्यावक्रोशी+सु। व्यावक्रोशी।

यहां वि, अव उपसर्गपूर्वक **'क्रुश आह्वाने'** (भ्वा०प०) धातु से **'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्'** (३।३।४३) से 'णच्' प्रत्यय है। तत्पश्चात् स्त्रीलिङ्ग विषय में णजन्त 'व्यवक्रोश' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अञ्' प्रत्यय है। **'न कर्मव्यतिहारे'** (७।३।६) से ऐच्-आगम का प्रतिषेध होकर **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि होती है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से 'ङीप्' प्रत्यय होता है।

(२) व्यावहासी। 'हस हसने' (भ्वा०प०) धातु से पूर्ववत्।

अण्-

(६) अणिनुणः।१५।

प०वि०-अण् १।१ इनुणः ५।१।

अन्वयः-इनुणः प्रातिपदिकाद् अण्।

अर्थः-इनुणः='अभिविधौ भाव इनुण्' (३।३।४४) इति य इनुण् प्रत्ययो विहितस्तदन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे इनुण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सांराविणं वर्तते। सांकूटिनं वर्तते।

आर्यभाषाः अर्थ-(इनुणः) **'अभिविधौ भाव इनुण्'** (३।३।४४) से जो 'इनुण्' प्रत्यय विहित है, तदन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।

उदा०-सांराविणं वर्तते। सब ओर शोर हो रहा है। सांकूटिनं वर्तते। सब ओर दहन हो रहा है (आग लगी हुई है)।

सिद्धि-(१) सांराविणम्। सम्+रु+इनुण्। सम्+रौ+इन्। संराविन्+अण्। सांराविन्+अ। सांराविण+सु। सांराविणम्।

यहां प्रथम 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'रु शब्दे' (अदा०प०) धातु से **'अभिविधौ भाव इनुण्'** (३।३।४४) से इनुण् प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् इनुण्-प्रत्ययान्त 'संराविण' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग

को आदिवृद्धि होती है। 'इनण्यनपत्ये' (६।४।१६४) से प्रकृतिभाव होने से 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग (इन्) का लोप नहीं होता है।

(२) सांकूटिनम्। 'कूट परितापे, परिदाह इत्येके' (चु०आ०) धातु से पूर्ववत्।

अण्–

(१०) विसारिणो मत्स्ये।१६।

प०वि०–विसारिणः ५।१ मत्स्ये ७।१।

अनु०–अण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–विसारिणः प्रातिपदिकाद् अण् मत्स्ये।

अर्थः–विसारिन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति, मत्स्येऽभिधेये।

उदा०–विसरतीति-विसारी। विसारी एव-वैसारिणो मत्स्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विसारिणः) विसारिन् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है (मत्स्ये) यदि वहां मच्छली अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-विसारी ही-वैसारिण मत्स्य (मछली)।

सिद्धि-वैसारिणः। विसारिन्+सु+अण्। वैसारिन्+अ। वैसारिण+सु। वैसारिणः।

यहां 'विसारिन्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय होता है। 'तद्धितेष्वचामादेः' (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और 'इनण्यनपत्ये' (६।४।१६४) से पूर्ववत् प्रकृतिभाव होता है।

कृत्वसुच्–

(११) संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्।१७।

प०वि०–संख्यायाः ५।१ क्रिया-अभ्यावृत्ति-गणने ७।१। कृत्वसुच् १।१।

स०–अभ्यावृत्तिः=पौनःपुन्यम्। क्रियाया अभ्यावृत्तिः क्रियाभ्यावृत्तिः, क्रियाभ्यावृत्तेर्गणनम्, क्रियाभ्यावृत्तिगणनम्, तस्मिन्-क्रियाभ्यावृत्तिगणने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः–क्रियाभ्यावृत्तिगणने संख्यायाः कृत्वसुच्।

अर्थः-क्रियाया अभ्यावृत्तिगणनेऽर्थे वर्तमानेभ्यः संख्यावाचिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कृत्वसुच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-पञ्च वारान् भुङ्क्ते-पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते देवदत्तः। सप्त वारान् भुङ्क्ते-सप्तकृत्वो भुङ्क्ते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्रियाभ्यावृत्तिगणने) क्रिया की पुनरावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (कृत्वसुच्) कृत्वसुच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पांच बार खाता है-देवदत्त पञ्चकृत्वः खाता है। सात बार खाता है-यज्ञदत्त सप्तकृत्वः खाता है।

सिद्धि-पञ्चकृत्वः। पञ्चन्+शस्+कृत्वसुच्। पञ्च+कृत्वस्। पञ्चकृत्वस्+सु। पञ्चकृत्व्+०। पञ्चकृत्वस्। पञ्चकृत्वर्। पञ्चकृत्वः।

*यहां क्रियाभ्यावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'पञ्चन्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'कृत्वसुच्' प्रत्यय है। **'स्वरादिनिपातनमव्ययम्'** (१।१।३७) से अव्ययसंज्ञा होकर **'अव्ययादाप्सुपः'** (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। **'ससजुषो रुः'** (८।२।६६) से सकार को रुत्व और **'खरवसानयोर्विसर्जनीयः'** (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-**सप्तकृत्वः**।*

सुच्-

(१२) द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्।१८।

प०वि०-द्वि-त्रि-चतुर्भ्यः ५।३ सुच् १।१।

स०-द्विश्च त्रिश्च चतुर् च ते द्वित्रिचतुरः, तेभ्यः-द्वित्रिचतुर्भ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-संख्यायाः, क्रियाभ्यावृत्तिगणने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्रियाभ्यावृत्तिगणने संख्याभ्यो द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्।

अर्थः-क्रियाभ्यावृत्तिगणनेऽर्थे वर्तमानेभ्यः संख्यावाचिभ्यो द्वित्रिचतुर्भ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे सुच् प्रत्ययो भवति। कृत्वसुचोऽपवादः।

उदा०-(द्विः) द्वौ वारान् भुङ्क्ते-द्विर्भुङ्क्ते देवदत्तः। (त्रिः) त्रीन् वारान् भुङ्क्ते-त्रिर्भुङ्क्ते यज्ञदत्तः। (चतुर्) चतुरो वारान् भुङ्क्ते-चतुर्भुङ्क्ते ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्रियाभ्यावृतिगणने) क्रिया की अभ्यावृत्ति=पुनरावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान (द्वित्रिचतुर्भ्यः) द्वि, त्रि, चतुर् प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (सुच्) सुच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(द्विः) दो बार खाता है-देवदत्त द्विः खाता है। (त्रिः) तीन बार खाता है-यज्ञदत्त त्रिः खाता है। (चतुर्) चार बार खाता है-ब्रह्मदत्त चतुः खाता है।

सिद्धि-(१) द्विः। द्वि+औट्+सुच्। द्वि+स्। द्विस्+सु। द्विस्+०। द्विरु। द्विर्। द्विः।

यहां क्रियाभ्यावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'द्वि' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'सुच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-द्विः, त्रिः।

(२) चतुः। चतुर्+शस्+सुच्। चतुर्+स्। चतुर्+०। चतुर्+सु। चतुर्+०। चतुः।

यहां 'रात्सस्य' (८।२।२४) से 'सुच्' के सकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। प्रत्यय के 'चित्' होने से 'चितः' (६।१।१६०) से अन्तोदात्त स्वर होता है-चतुः।

सुच्–

(१३) एकस्य सकृच्च।१६।

प०वि०-एकस्य ६।१ सकृत् १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-संख्यायाः, क्रियागणने, सुच् इति चानुवर्तति। अभ्यावृत्तिश्चात्र न सम्बध्यतेऽर्थासम्भवात्।

अन्वयः-क्रियागणने संख्याया एकात् सुच्, सकृच्च।

अर्थः-क्रियागणनेऽर्थे वर्तमानात् संख्यावाचिन एक-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे सुच् प्रत्ययो भवति, एकस्य स्थाने च सकृत्-आदेशो भवति।

उदा०-एकं वारं भुङ्क्ते-सकृद् भुङ्क्ते देवदत्तः। एकं वारमधीते-सकृद् अधीते यज्ञदत्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्रियागणने) क्रिया की गणना अर्थ में विद्यमान (एकस्य)* ***एक*** *प्रातिपदिक से स्वार्थ में (सुच्) सुच् प्रत्यय हो और एक के स्थान में (सकृत्) सकृत्* ***आदेश*** *(च) भी होता है।*

उदा०-एक बार खाता है-देवदत्त सकृत् खाता है। एक बार पढ़ता है-यज्ञदत्त ***सकृत्*** *पढ़ता है।*

सिद्धि-सकृत्। एक+अम्+सुच्। सकृत्+स्। सकृत्+०। सकृत्+सु। सकृत्+०। सकृत्।

यहां क्रिया की गणना अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'एक' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'सुच्' प्रत्यय और 'एक' के स्थान में 'सकृत्' आदेश है। 'संयोगान्तस्य लोपः' (८।२।२३) से संयोगान्त 'सुच्' के सकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

धा–

(१४) विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले।२०।

प०वि०-विभाषा १।१ बहोः ५।१ धा १।१ (सु-लुक्) अविप्रकृष्टकाले ७।१।

स०-विप्रकृष्टः=दूरम्। न विप्रकृष्टः-अविप्रकृष्टः, अविप्रकृष्टः कालो यस्य तत्-अविप्रकृष्टकालम्, तस्मिन्-अविप्रकृष्टकाले (नञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-संख्यायाः, क्रियाभ्यावृत्तिगणने इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अविप्रकृष्टकाले क्रियाभ्यावृत्तिगणने संख्याया बहोर्विभाषा धाः।

अर्थः-अविप्रकृष्टकालविषयके क्रियाभ्यावृत्तिगणनेऽर्थे वर्तमानात् संख्यावाचिनो बहु-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन स्वार्थे धाः प्रत्ययो भवति, पक्षे च कृत्वसुच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बहून् वारान् दिवसस्य भुङ्क्ते-बहुधा दिवसस्य भुङ्क्ते देवदत्तः (धाः)। बहुकृत्वो दिवसस्य भुङ्क्ते देवदत्तः (कृत्वसुच्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अविप्रकृष्टकाले)=अविप्रकृष्ट निकटकालविषयक (क्रियाभ्यावृत्तिगणने) क्रिया की पुनरावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान (संख्यायाः) संख्यावाची (बहोः) बहु प्रातिपदिक से (विभाषा) विकल्प से स्वार्थ में (धाः) धा प्रत्यय होता है। पक्ष में कृत्वसुच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दिन में बहुत बार खाता है-देवदत्त दिन में बहुधा खाता है (धा)। देवदत्त दिन में बहुकृत्वः खाता है (कृत्वसुच्)।

सिद्धि-(१) बहुधा। बहु+शस्+धा। बहु+धा। बहुधा+सु। बहुधा+०। बहुधा।

यहां अविप्रकृष्टकालविषयक, क्रिया-अभ्यावृत्ति की गणना अर्थ में विद्यमान, संख्यावाची 'बहु' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'धा' प्रत्यय है। 'तद्धितश्चासर्वविभक्तिः' (१।१।३८) से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है।

(२) बहुकृत्वः। यहां पूर्वोक्त 'बहु' शब्द से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में 'कृत्वसुच्' प्रत्यय है।

मयट्–

(१५) तत् प्रकृतवचने मयट्।२१।

प०वि०–तत् १।१ प्रकृतवचने ७।१ मयट् १।१।

स०–प्राचुर्येण कृतम्=प्रकृतम्, प्रस्तुतमित्यर्थः। प्रकृतस्य वचनम्-प्रकृतवचनम्, तस्मिन्-प्रकृतवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अन्वयः–प्रकृतवचने तदिति प्रथमासमर्थाद् मयट्।

अर्थः–प्रकृतवचनेऽर्थे वर्तमानात् तदिति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे मयट् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अन्नं प्रकृतम्-अन्नमयं दानम्। अपूपः प्रकृतः-अपूपमयं भोजनम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रकृतवचने) प्रकृत=प्रधानता कथन अर्थ में विद्यमान (तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से स्वार्थ में (मयट्) मयट् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जहां अन्न प्रकृत=प्रधान है वह-अन्नमय दान। जहां अपूप=मालपूवा प्रकृत=प्रधान है वह-अपूपमय भोजन।

*सिद्धि-**अन्नमयम्**। अन्न+सु+मयट्। अन्न+मय। अन्नमय+सु। अन्नमयम्।*

*यहां प्रकृत-वचन अर्थ में विद्यमान, प्रथमा-समर्थ 'अन्न' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'मयट्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**अपूपमयम्**। प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है-**अपूपमयी पौर्णमासी**।*

समूहवत्-प्रत्ययाः+मयट्–

(१६) समूहवच्च बहुषु।२२।

प०वि०–समूहवत् अव्ययपदम्, च अव्ययपदम्, बहुषु ७।३।

अनु०–तत्, प्रकृतवचने, मयट् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रकृतवचनेषु बहुषु तद् इति प्रथमासमर्थात् समूहवद् मयट् च।

अर्थः–प्रकृतवचनेषु बहुष्वर्थेषु वर्तमानात् तदिति प्रथमासमर्थात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे समूहवद् मयट् च प्रत्यया भवन्ति।

उदा०-मोदकाः प्रकृताः-मौदकिकं भोजनम् (ठक्)। मोदकमयं भोजनम् (मयट्)। शष्कुल्यः प्रकृताः-शाष्कुलिकम् (ठक्)। शष्कुलीमयम् (मयट्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रकृतवचने) प्रधानता कथन अर्थ में तथा (बहुषु) बहुवचन में विद्यमान (तत्) प्रथमा-समर्थ प्रातिपदिक से स्वार्थ में (समूहवत्) समूह अर्थ के समान (च) और (मयट्) मयट् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-जहां मोदक=लड्डू प्रकृत=प्रधान हैं वह-मौदकिक भोजन (ठक्)। मोदकमय भोजन (मयट्)। जहां शष्कुली=पूरी/कचोरी प्रकृत=प्रधान हैं वह-शाष्कुलिक भोजन (ठक्)। शष्कुलीमय भोजन (मयट्)।

सिद्धि-(१) **मौदकिकम्।** *मोदक+जस् ठक्। मौदक्+इक। मौदकिक+सु। मौदकिकम्।*

यहां प्रकृतवचन तथा बहुवचन में विद्यमान, प्रथमा-समर्थ 'मोदक' शब्द से स्वार्थ में ***'अचित्तहस्तिधेनोष्ठक्'*** *(४।२।४७) से समूहवत् 'ठक्' प्रत्यय है।* ***'ठस्येकः'*** *(७।३।५०) से 'ठ्' के स्थान में 'इक्' आदेश* ***'किति च'*** *(७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-***शाष्कुलिकम्।**

(२) **मोदकमयम्।** *यहां प्रकृत वचन तथा बहुवचन में विद्यमान पूर्वोक्त 'मोदक' शब्द से मयट् प्रत्यय है। ऐसे ही-***शष्कुलीमयम्।**

ञ्यः-

(१७) अनन्तावसथभेषजाञ् ञ्यः।२३।

प०वि०-अनन्त-आवसथ-भेषजात् ५।१ ञ्यः १।१।

स०-अनन्तश्च आवसथश्च भेषजं च एतेषां समाहारः-अनन्तावसथभेषजम्, तस्मात्-अनन्तावसथभेषजात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अन्वयः-अनन्तावसथभेषजात् स्वार्थे ञ्यः।

अर्थः-अनन्तावसथभेषजेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अनन्तः) अनन्त एव-आनन्त्यम्। **(आवसथः)** आवसथ एव-आवसथ्यम्। **(भेषजम्)** भेषजमेव-भैषज्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनन्तावसथभेषजात्) अनन्त, आवसथ, भेषज प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अनन्तः) अनन्त ही-आनन्त्य। (आवसथः) आवसथ=गृह ही-आवसथ्य। ***(भेषजम्)*** *भेषज=औषध ही-भैषज्य।*

सिद्धि-आनन्त्यम्। अनन्त+सु+ञ्य। आनन्त्+य। आनन्त्य+सु। आनन्त्यम्।

यहां अनन्त शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-आवसथ्यम्, भैषज्यम्।

यत्–

(१८) देवतान्तात् तादर्थ्ये यत्।२४।

प०वि०-देवता-अन्तात् ५।१ तादर्थ्ये ७।१ यत् १।१।

स०-तस्मै इदम्-तदर्थम्, तदर्थ एव-तादर्थ्यम्, तस्मिन्-तादर्थ्ये (चतुर्थीतत्पुरुषः)। **वा-'चातुर्वर्ण्यादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम्'** (५।१।१२४) इति स्वार्थे ष्यञ् प्रत्ययः।

अन्वयः-तादर्थ्ये देवदतान्ताद् यत्।

अर्थः-तादर्थ्येऽर्थे वर्तमानाद् देवतान्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अग्निदेवतायै इदम्-अग्निदेवत्यं हविः। पितृदेवत्यं हविः। वायुदेवत्यं हविः।

आर्यभाषाः *अर्थः-(तादर्थ्ये) उसके लिये अर्थ में विद्यमान (देवतान्तात्) देवता शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से स्वार्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अग्निदेवता के लिये यह-अग्निदेवता हवि। पितृदेवता के लिये यह-पितृदेवत्य हवि। वायुदेवता के लिये यह-वायुदेवत्य हवि।

सिद्धि-अग्निदेवत्यम्। अग्निदेवता+ङे+यत्। अग्निदेवत्+य। अग्निदेवत्य+सु। अग्निदेवत्यम्।

यहां तदर्थ अर्थ में विद्यमान, देवतान्त 'अग्निदेवता' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के आकार का लोप होता है। ऐसे ही-पितृदेवत्यम्, वायुदेवत्यम्।

यत्–

(१९) पादार्घाभ्यां च।२५।

प०वि०-पाद-अर्घाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-पादश्च अर्घश्च तौ पादार्घौ, ताभ्याम्-पादार्घाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-तादर्थ्ये, यद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तादर्थ्येऽर्थे पादार्घाभ्यां च यत्।

अर्थः-तादर्थ्ये वर्तमानाभ्यां पादार्घाभ्यां च प्रातिपदिकाभ्यां **स्वार्थे** यत् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(पादः) पादार्थमिदम्-पाद्यमुदकम्। अर्घार्थमिदम्-अर्घ्यमुदकम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तादर्थ्ये) उसके लिये अर्थ में विद्यमान (पादार्घाभ्याम्) पाद, अर्घ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (यत्) यत् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(पाद) पांव धोने के लिये यह-पाद्य जल। (अर्घ) मुंह धोने के लिये यह-अर्घ्य जल।

सिद्धि-पाद्यम्। पाद+भ्याम्+यत्। पाद्+य। पाद्य+सु। पाद्यम्।

*यहां तदर्थ अर्थ में विद्यमान 'पाद' शब्द से इस सूत्र से 'यत्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**अर्घ्यम्।***

ञ्यः—

(२०) अतिथेर्ञ्यः।२६।

प०वि०-अतिथेः ५।१ ञ्यः १।१।

अनु०-तादर्थ्ये, यत् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तादर्थ्येऽतिथिशब्दाद् ञ्यः।

अर्थः-तादर्थ्येऽर्थे वर्तमानाद् अतिथि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे ञ्यः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अतिथये इदम्-आतिथ्यं दुग्धम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तादर्थ्ये) उसके लिये अर्थ में विद्यमान (अतिथेः) अतिथि प्रातिपदिक से स्वार्थ में (ञ्यः) ञ्य प्रत्यय होता है।*

उदा०-अतिथि के लिये यह-आतिथ्य दुग्ध।

सिद्धि-आतिथ्यम्। अतिथि+ङे+ञ्य। आतिथ्+य। आतिथ्य+सु। आतिथ्यम्।

यहां तदर्थ अर्थ में विद्यमान 'अतिथि' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ञ्य' प्रत्यय है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के इकार का लोप होता है।

तल्–

(२१) देवात् तल्।२७।

प०वि०–देवात् ५।१ तल् १।१।

अन्वयः–देव-शब्दात् स्वार्थे तल्।

अर्थः–देव-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे तल् प्रत्ययो भवति।

उदा०–देव एव-देवता।

आर्यभाषाः *अर्थ-(देवात्) देव प्रातिपदिक से स्वार्थ में (तल्) तल् प्रत्यय होता है।*

उदा०–देव=विद्वान् ही-देवता।

सिद्धि-देवता। देव+सु+तल्। देव+त। देवत+टाप्। देवता+सु। देवता+०। देवता।

*यहां देव' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तल्' प्रत्यय है। **'तलन्तः'** (लिङ्गा० १।१७) से तल्-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं अतः स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

कः–

(२२) अवेः कः।२८।

प०वि०–अवेः ५।१ कः १।१।

अन्वयः–अवि-शब्दात् स्वार्थे कः।

अर्थः–अवि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कः प्रत्ययो भवति।

उदा०–अविरेव-अविकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अवेः) अवि प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कः) क प्रत्यय होता है।*

उदा०–अवि=भेड़ ही-अविक।

सिद्धि-अविकः। अवि+सु+क। अवि+क। अविक+सु। अविकः।

यहां 'अवि' शब्द से स्वार्थ में 'क' प्रत्यय है।

कन्–

(२३) यावादिभ्यः कन्।२६।

प०वि०–याव-आदिभ्यः ५।३ कन् १।१।

स०–याव आदिर्येषां ते यावादयः, तेभ्यः-यावादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अन्वयः-यावादिभ्यः स्वार्थे कन्।

अर्थः-यावादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-याव एव-यावकः। मणिरेव-मणिकः, इत्यादिकम्।

याव। मणि। अस्थि। चण्ड। पीतस्तम्ब। ऋतावुष्णशीते। पशौ लूनवियाते। अणु निपुणे। पुत्र कृत्रिमे। स्नात वेदसमाप्तौ। शून्य रिक्ते। दान कुत्सिते। तनु सूत्रे। ईयसश्च-श्रेयस्कः। ज्ञात। कुमारीक्रीडनकानि च। इति यावादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(यावादिभ्यः) याव आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-याव=(जौ का सत्तू) ही-यावक। मणि (रत्न) ही-मणिक, इत्यादि।

*सिद्धि-**यावकः।** याव+सु+कन्। याव+क। यावक+सु। यावकः।*

*यहां 'याव' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**मणिकः।***

कन्-

(२४) लोहितान्मणौ।३०।

प०वि०-लोहितात् ५।१ मणौ ७।१।

अनु०-कन् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-मणौ लोहित-शब्दात् स्वार्थे कन्।

अर्थः-मणावर्थे वर्तमानाल्लोहित-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-लोहितो मणिः-लोहितकः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(मणौ) मणि=रत्न अर्थ में विद्यमान (लोहितात्) लोहित प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कन्) 'कन्' प्रत्यय होता है।*

उदा०-लोहित मणि ही-लोहितक (रत्नविशेष)।

*सिद्धि-**लोहितकः।** लोहित+सु+कन्। लोहितक+सु। लोहितकः।*

यहां मणि अर्थ में विद्यमान 'लोहित' शब्द से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है।

कन्-

(२५) वर्णे चानित्ये।३१।

प०वि०-वर्णे ७।१ च अव्ययपदम्, अनित्ये ७।१।

स०-न नित्यम्-अनित्यम्, तस्मिन्-अनित्ये (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कन्, लोहिताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अनित्ये वर्णे च लोहितात् स्वार्थे कन्।

अर्थः-अनित्ये वर्णे चार्थे वर्तमानाल्लोहितशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-लोहित एव-लोहितकः कोपेन। लोहितकः पीडनेन।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनित्ये) अध्रुव=अस्थायी (वर्णे) रंग अर्थ में (च) भी विद्यमान (लोहितात्) लोहित प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-लोहित=लाल वर्ण ही-लोहितक (क्रोध से)। लोहित वर्ण ही-लोहितक (पीटने से)।

सिद्धि-लोहितकः। *लोहित+सु+कन्। लोहित+क। लोहित+सु। लोहितकः।*

यहां अनित्य वर्ण अर्थ में विद्यमान 'लोहित' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है।

कन्-

(२६) रक्ते।३२।

वि०-रक्ते ७।१।

अनु०-कन्, लोहिताद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-रक्ते लोहित-शब्दात् स्वार्थे कन्।

अर्थः-रक्तेऽर्थे वर्तमानाल्लोहितशब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति।

उदा०-लोहितः=लाक्षादिना रक्त एव-लोहितकः कम्बलः। लोहितकः पटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(रक्ते) रंगा हुआ अर्थ में विद्यमान (लोहितात्) लोहित प्रातिपदिक से स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है।*

उदा०-लोहित=लाख आदि से रंगा हुआ-लोहितक कम्बल। लोहितक पट (कपड़ा)।

सिद्धि-लोहितकः। *यहां रक्त अर्थ में विद्यमान 'लोहित' शब्द से इस सूत्र से 'कन्' प्रत्यय है।*

कन्–

(२७) कालाच्च ।३३।

प०वि०–कालात् ५ ।१ च अव्ययपदम् ।

अनु०–कन्, वर्णे, च, अनित्ये, रक्ते इति चानुवर्तति ।

अन्वयः–अनित्ये वर्णे रक्ते च कालाच्च कन् ।

अर्थः–अनित्ये वर्णे रक्ते चार्थे वर्तमानात् काल-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे कन् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–**(अनित्ये वर्णे)** कालमेव-कालकं मुखं वैलक्ष्येण । **(रक्ते)** काल एव-कालकः पटः । कालिका शाटी ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अनित्ये) अस्थिर (वर्णे) रंग अर्थ में और (रक्ते) रंगा हुआ अर्थ में विद्यमान (कालात्) काल प्रातिपदिक से (च) भी स्वार्थ में (कन्) कन् प्रत्यय होता है ।*

*उदा०-**(अनित्य वर्ण)** काल ही-कालक मुख वैलक्ष्य=लज्जा से । **(रक्त)** काल ही-कालक पट (काले रंग से रंगा हुआ) । काल ही-कालिका शाटी (काले रंग से रंगी हुई साड़ी) ।*

सिद्धि-कालकम् । *काल+सु+कन् । काल+क । कालक+सु । कालकः ।*

*यहां अनित्य वर्ण अर्थ में विद्यमान काल शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'कन्' प्रत्यय है । ऐसे ही रक्त अर्थ में-**कालकः पट ।** स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४ ।१ ।४) से 'टाप्' प्रत्यय और 'प्रत्ययस्थात्०' (७ ।३ ।४४) से इत्त्व होता है-**कालिका शाटी ।***

ठक्–

(२८) विनयादिभ्यष्ठक् ।३४।

प०वि०–विनय-आदिभ्यः ५ ।३ ठक् १ ।१ ।

स०–विनय आदिर्येषां ते विनयादयः, तेभ्यः-विनयादिभ्यः (बहुव्रीहिः) ।

अन्वयः–विनयादिभ्यः स्वार्थे ठक् ।

अर्थः–विनयादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–विनय एव-वैनयिकः । समय एव-सामयिकः, इत्यादिकम् ।

विनय । समय । उपायाद् ह्रस्वत्वं च । सङ्गति । कथञ्चित् । अकस्माद् । समयाचार । उपचार । समाचार । व्यवहार । सम्प्रदान । समुत्कर्ष । समूह । विशेष । अत्यय । इति विनयादयः ।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(विनयादिभ्यः) विनय आदि प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-विनय ही-वैनयिक। समय ही-सामयिक, इत्यादि।

सिद्धि-वैनयिकः। *विनय+सु+ठक्। वैनय्+इक। वैनयिक+सु। वैनयिकः।*

*यहां 'विनय' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'ठक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**सामयिकः।***

ठक्-

(२६) वाचो व्याहृतार्थायाम्।३५।

प०वि०-वाचः ५।१ व्याहृतार्थायाम् ७।१।

स०-व्याहृतः=प्रकाशितोऽर्थो यस्याः सा-व्याहृतार्था, तस्याम्-व्याहृतार्थायाम् (बहुव्रीहिः)।

अनु०-ठक् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-व्याहृतार्थायां वाचः स्वार्थे ठक्।

अर्थः-व्याहृतार्थे=प्रकाशितार्थे वर्तमानाद् वाक्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे ठक् प्रत्ययो भवति। पूर्वमन्येनोक्तात्वात् सन्देशवाग् 'व्याहृतार्था' इति कथ्यते।

उदा०-वाचमेव-वाचिकं कथयति। वाचिकं श्रद्दधे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(व्याहृतार्थायाम्) व्याहृत=पहले किसी अन्य के द्वारा कही हुई सन्देशात्मक वाणी अर्थ में विद्यमान (वाचः) वाक् शब्द से स्वार्थ में (ठक्) ठक् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वाक् (व्याहृत) ही-वाचिक को कहता है। वाचिक पर श्रद्धा (विश्वास) करता है। पहले किसी अन्य के द्वारा कही हुई सन्देशात्मक वाणी को कहता है अथवा उस पर विश्वास करता है।

सिद्धि-वाचिकम्। *वाच्+सु+ठक्। वाच्+इक। वाचिक+सु। वाचिकम्।*

*यहां व्याहृत अर्थ में विद्यमान 'वाक्' शब्द से इस सूत्र से 'ठक्' प्रत्यय है। **'किति च'** (७।२।११८) से अंग को पर्जन्यवत् आदिवृद्धि होती है।*

अण्–

(३०) तद्युक्तात् कर्मणोऽण् ।३६।

प०वि०–तद्युक्तात् ५ ।१ कर्मणः ५ ।१ अण् १ ।१।

स०–तया (व्याहृतार्थया वाचा) युक्तः-तद्युक्तः, तस्मात्-तद्युक्तात् (तृतीयातत्पुरुषः)।

अन्वयः–तद्युक्तात् कर्मणः स्वार्थेऽण्।

अर्थः–तद्युक्तात्-व्याहृतार्थया वाचा युक्तात् कर्मन्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०–कर्मैव-कार्मणम्। व्याहृतार्थां वाचम्-वाचिकं श्रुत्वा यत् कर्म क्रियते तत् 'कार्मणम्' इति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तद्युक्तात्) उस व्याहृतार्थक वाणी से युक्त (कर्मणः) कर्मन् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०–कर्म ही-कार्मण। व्याहृतार्थक वाणी को सुनकर जो कर्म किया जाता है उसे 'कार्मण' कहते हैं।

सिद्धि-कार्मणम्। *कर्मन्+सु+अण्। कार्मन्+अ। कार्मण+सु। कार्मणम्।*

यहां व्याहृतार्थक वाणी से युक्त 'कर्मन्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है। यहां 'अन्' (६।४।१६७) से प्रकृतिभाव होता है अर्थात् 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग (अन्) का लोप नहीं होता है। 'अट्कुप्वाङ्०' (८।४।२) से णत्व होता है।

अण्–

(३१) ओषधेरजातौ ।३७।

प०वि०–ओषधेः ५ ।१ अजातौ ७ ।१।

स०–न जातिः- अजातिः, तस्याम्-अजातौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–अण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–अजातावोषधेः स्वार्थेऽण्।

अर्थः–अजातौ=जातिवर्जितेऽर्थे वर्तमानाद् ओषधि-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-ओषधिरेव-औषधं पिबति रोगी। औषधं ददाति वैद्यः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अजातौ) जाति अर्थ से भिन्न (ओषधेः) ओषधि प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-ओषधि ही-औषध। रोगी **औषध** पीता है। वैद्य **औषध** देता है।*

सिद्धि-औषधम्। *ओषधि+सु+अण्। औषध्+अ। औषध+सु। औषधम्।*

*यहां अजाति अर्थ में विद्यमान 'ओषधि' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है। **'तद्धितेष्वचामादेः'** (७।२।११७) से अंग को आदिवृद्धि और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। जहां ओषधि' शब्द जातिवाची है वहां 'अण्' प्रत्यय नहीं होता है-**ओषधयः क्षेत्रे रूढा भवन्ति।***

अण्-

(३२) प्रज्ञादिभ्यश्च।३८।

प०वि०-प्रज्ञ-आदिभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-प्रज्ञ आदिर्येषां ते प्रज्ञादयः, तेभ्यः-प्रज्ञादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-अण् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रज्ञादिभ्यश्च स्वार्थेऽण्।

अर्थः-प्रज्ञादिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यश्च स्वार्थेऽण् प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रज्ञ एव-प्राज्ञः। वणिगेव-वाणिजः, इत्यादिकम्।

प्रज्ञ। वणिक्। उशिक्। उष्णिक्। प्रत्यक्ष। विद्वस्। विदन्। षोडन्। षोडश। विधा। मनस्। श्रोत्र शारीरे-श्रौत्रम्। जुह्वत् कृष्णमृगे। चिकीर्षत्। चोर। शक। योध। वक्षस्। धूर्त। वस्। एत्। मरुत्। क्रुङ्। राजा। सत्वन्तु। दशार्ह। वयस्। आतुर। रक्षस्। पिशाच। अशनि। कार्षापण। देवता। बन्धु। इति प्रज्ञादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रज्ञादिभ्यः) पज्ञ आदि प्रातिपदिकों से (च) भी स्वार्थ में (अण्) अण् प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रज्ञ ही-प्राज्ञ (विद्वान्)। वणिक् ही-वाणिज (बाणियां) इत्यादि।

सिद्धि-प्राज्ञः। प्रज्ञ+सु+अण्। प्राज्ञ्+अ। प्राज्ञ+सु। प्राज्ञः।

*यहां 'प्रज्ञ' शब्द से इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होता है। पूर्ववत् अंग को आदिवृद्धि और अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वाणिजः।***

तिकन्–

(३३) मृदस्तिकन्।३९।

प०वि०–मृदः ५।१ तिकन् १।१।

अन्वयः–मृदः स्वार्थे तिकन्।

अर्थः–मृत्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे तिकन् प्रत्ययो भवति।

उदा०–मृद् एव–मृत्तिका।

आर्यभाषाः *अर्थ–(मृदः) मृत् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (तिकन्) तिकन् प्रत्यय होता है।*

उदा०–मृत्=मिट्टी ही–मृत्तिका।

सिद्धि–मृत्तिका। मृत्+सु+तिकन्। मृत्+तिक। मृत्तिक+टाप्। मृत्तिका+सु। मृत्तिका+०। मृत्तिका।

यहां 'मृत्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तिकन्' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय है।

सः+स्नः–

(३४) सस्नौ प्रशंसायाम्।४०।

प०वि०–स-स्नौ १।२ प्रशंसायाम् ७।१।

स०–सश्च स्नश्च तौ सस्नौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–मृद इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–प्रशंसायां मृदः स्वार्थे सस्नौ।

अर्थः–प्रशंसार्थे वर्तमानाद् मृत्-शब्दात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे सस्नौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–प्रशस्ता मृत्–मृत्सा (सः)। मृत्स्ना (स्ना)।

आर्यभाषाः *अर्थ–(प्रशंसायाम्) प्रशंसा अर्थ में विद्यमान (मृदः) मृत् प्रातिपदिक से स्वार्थ में (स-स्नौ) स और स्न प्रत्यय होते हैं।*

उदा०–प्रशंसनीय मृत्=मिट्टी ही–मृत्सा (स)। मृत्स्ना (स्न)।

सिद्धि–(१) मृत्सा। मृत्+सु+स। मृत्+स। मृत्स+टाप्। मृत्सा+सु। मृत्सा+०। मृत्सा।

यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'मृत्' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'स' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में ***'अजाद्यतष्टाप्'*** *(४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।*

(२) मृत्स्ना। यहां पूर्वोक्त 'मृत्' शब्द से इस सूत्र से पूर्ववत् 'स्न' प्रत्यय है।

तिल्+तातिल्–

(३५) वृकज्येष्ठाभ्यां तिल्तातिलौ च च्छन्दसि।४१।

प०वि०–वृक-ज्येष्ठाभ्याम् ५।२ तिल्-तातिलौ १।२ च अव्ययपदम्, छन्दसि ७।१।

स०–वृकश्च ज्येष्ठश्च तौ वृकज्येष्ठौ, ताभ्याम्-वृकज्येष्ठाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। तिल् च तातिल् च तौ तिल्तातिलौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–प्रशंसायाम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–छन्दसि प्रशंसायां च वृकज्येष्ठाभ्यां स्वार्थे तिल्तातिलौ।

अर्थः–छन्दसि विषये प्रशंसार्थे च वर्तमानाभ्यां वृकज्येष्ठाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां स्वार्थे यथासंख्यं तिल्तातिलौ प्रत्ययौ भवतः।

उदा०–**(वृकः)** प्रशस्तो वृकः–वृकतिः (ऋ० ४।४१।४) (तिल्)। **(ज्येष्ठः)** प्रशस्तो ज्येष्ठः–ज्येष्ठतातिः (ऋ० ५।४४।१) (तातिल्)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (च) और (प्रशंसायाम्) प्रशंसा अर्थ में विद्यमान (वृकज्येष्ठाभ्याम्) वृक, ज्येष्ठ प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (तिल्तातिलौ) यथासंख्य तिल् और तातिल् प्रत्यय होते हैं।*

उदा०-(वृक) प्रशस्त वृक-वृकति (ऋ० ४।४१।४) (तिल्)। वृकति-वृक=भेडिया के समान शत्रुजनों का हिंसक। (ज्येष्ठ) प्रशस्त ज्येष्ठ ही-ज्येष्ठताति (ऋ० ५।४४।१) (तातिल्)। ज्येष्ठताति-प्रशस्त राजा।

सिद्धि-(१) वृकतिः। वृक+सु+तिल्। वृक+ति। वृकति+सु। वृकतिः।

यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'वृक' शब्द से छन्दविषय में इस सूत्र से स्वार्थ में 'तिल्' प्रत्यय है।

(२) ज्येष्ठतातिः। ज्येष्ठ+सु+तातिल्। ज्येष्ठ+ताति। ज्येष्ठताति+सु। ज्येष्ठतातिः।

यहां प्रशंसा अर्थ में विद्यमान 'ज्येष्ठ' शब्द से छन्दविषय में इस सूत्र से स्वार्थ में 'तातिल्' प्रत्यय है।

शस्–

(३६) बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्।४२।

प०वि०-बहु-अल्पार्थात् ५।१ शस् १।१ कारकात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-बहुश्च अल्पश्च तौ बह्वल्पौ, बह्वल्पावर्थौ यस्य तत्-बह्वल्पार्थम्, तस्मात्-बह्वल्पार्थात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अन्वयः-कारकाद् बह्वल्पार्थात् स्वार्थेऽन्यतरस्यां शस्।

अर्थः-कारकाभिधायिनो बह्वर्थाद् अल्पार्थाच्च प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन शस् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(बहु-अर्थात्)** बहूनि ददाति-बहुशो ददाति। बहुभिर्ददाति-बहुशो ददाति। बहुभ्यो ददाति-बहुशो ददाति। भूरिशो ददाति। **(अल्पार्थात्)** अल्पं ददाति-अल्पशो ददाति। अल्पेन ददाति-अल्पशो ददाति। अल्पाय ददाति-अल्पशो ददाति। स्तोकशो ददाति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कारकात्) कारकवाची (बह्वल्पार्थात्) बहु-अर्थक तथा अल्पार्थक प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (शस्) शस् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(बहु-अर्थक)** बहुतों को देता है-**बहुशः** देता है। बहुतों के कारण से देता है-बहुशः देता है। बहुतों के लिये देता है-बहुशः देता है। ऐसे ही बहु-अर्थक 'भूरि' शब्द से-भूरिशः देता है। **(अल्पार्थक)** अल्प (थोड़ा) पदार्थ को देता है-अल्पशः देता है। अल्प के कारण से देता है-अल्पशः देता है। अल्प के लिये देता है-अल्पशः देता है। ऐसे ही अल्पार्थक 'स्तोक' शब्द से स्तोकशः देता*

सिद्धि-बहुशः। बहु+शस्+शस्। बहु+शस्। बहुशस्+सु। बहुशस्+०। बहुशरु। बहुशर्। बहुशः।

यहां कारकवाची बह्वर्थक 'बहु' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'शस्' प्रत्यय है। 'स्वरादिनिपातनव्ययम्' (१।१।३७) से अव्यय-संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को बिसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-भूरिशः, स्तोकशः।

शस्–

(३७) संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ।४३।

प०वि०-संख्या-एकवचनात् ५ ।१ च अव्ययपदम्, वीप्सायाम् ७ ।१।

स०-संख्या च एकवचनं च एतयो: समाहार: संख्यैकवचनम्, तस्मात्-संख्यैकवचनात् (समाहारद्वन्द्व:)।

अनु०-शस्, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-वीप्सायां संख्यैकवचनात् स्वार्थेऽन्यतरस्यां शस्।

अर्थ:-वीप्सार्थे वर्तमानात् संख्यावाचिन एकवचनान्ताच्च प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन शस् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(संख्या)** द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति-द्विशो ददाति। त्रीन् त्रीन् मोदकान् ददाति-त्रिशो ददाति। **(एकवचनम्)** कार्षापणं कार्षापणं ददाति-कार्षापणशो ददाति। माषशो ददाति। पादशो ददाति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(वीप्सायाम्) व्याप्ति-अर्थ में विद्यमान (संख्यैकवचनात्) संख्यावाची और एकवचनान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (शस्) शस् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(संख्या)** दो-दो मोदक=लड्डू देता है-द्विश: देता है। तीन-तीन मोदक देता है-त्रिश: देता है। **(एकवचनम्)** कार्षापण-कार्षापण देता है-कार्षापणश: देता है। माष-माष देता है-माषश: देता है। पाद-पाद देता है-पादश: देता है।*

कार्षापण=३२ रत्ती चांदी का सिक्का। माष=२ रत्ती चांदी का सिक्का। पाद=८ रत्ती का चांदी का सिक्का।

सिद्धि-(१) द्विश:। द्वि+औट्+शस्। द्वि+शस्। दिशस्+सु। द्विशस्+० द्विशरु। द्विशर्। द्विश:।

यहां वीप्सा अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'द्वि' शब्द से इस सूत्र से शस् प्रत्यय है। शेष कार्य 'बहुश:' के समान है। ऐसे ही-त्रिश:।

(२) कार्षापणश:। यहां वीप्सा अर्थ में विद्यमान, एकवचनान्त 'कार्षापण' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'शस्' प्रत्यय है। ऐसे ही-माषश:, पादश:।

तसि:–

(३८) प्रतियोगे पञ्चम्यास्तसि: ।४४।

प०वि०-प्रतियोगे ७ ।१ पञ्चम्या: ५ ।१ तसि: १ ।१।

स०-प्रतिना योग: प्रतियोग:, तस्मिन्-प्रतियोगे (तृतीयातत्पुरुष:)।

अनु०-अन्यतरस्याम् इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-प्रतियोगे पञ्चम्याः स्वार्थेऽन्यतरस्यां तसिः।

अर्थः-प्रतियोगे वर्तमानात् पञ्चम्यन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-प्रद्युम्नो वासुदेवात् प्रति-वासुदेवतः प्रति। अभिमन्युरर्जुनात् प्रति-अर्जुनतः प्रति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(प्रतियोगे) कर्मप्रवचनीय संज्ञक प्रति शब्द के योग में विद्यमान (पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकलप से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

उदा०-प्रद्युम्न वासुदेव (कृष्ण) का प्रतिनिधि है-वासुदेवतः प्रति। अभिमन्यु अर्जुन का प्रतिनिधि है-अर्जुनतः प्रति।

*सिद्धि-**वासुदेवतः।** वासुदेव+ङसि+तसि। वासुदेव+तस्। वासुदेवतस्+सु। वासुदेव+०। वासुदेवतरु। वासुदेवतर्। वासुदेवतः।*

*यहां कर्मप्रवचनीय संज्ञक प्रति शब्द के योग में विद्यमान पञ्चम्यन्त 'वासुदेव' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है। '**स्वरादिनिपातमव्ययम्**' (१।१।३७) से अव्यय-संज्ञा होकर '**अव्ययादाप्सुपः**' (२।४।८२) से 'सु' का 'लुक्' होता है। शेष कार्य 'बहुशः' के समान है। ऐसे ही-**अर्जुनतः।***

*यहां '**प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः**' (१।४।९२) से 'प्रति' शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होकर '**प्रतिनिधिप्रतिदाने च यस्मात्**' (१।३।११) से पञ्चमी विभक्ति होती है।*

तसिः-

(३६) अपादाने चाहीयरुहोः।४५।

प०वि०-अपादाने ७।१ च अव्ययपदम्, अहीय-रुहोः ६।२।

स०-हीयश्च रुह् च तौ हीयरुहौ, न हीयरुहौ-अहीयरुहौ, तयोः-अहीयरुहोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वनञ्गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अन्यतरस्याम्, पञ्चम्याः, तसिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अहीयरुहोरपादाने च पञ्चम्याः स्वार्थेऽन्यतरस्यां तसिः।

अर्थः-हीयरुहसम्बन्धवर्जिताद् अपादाने कारके च वर्तमानात् पञ्चम्यन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-ग्रामाद् आगच्छति देवदत्तः-ग्रामात आगच्छति देवदत्तः। चौराद् बिभेति सोमदत्तः-चौरतो बिभेति सोमदत्तः। अध्ययनात् पराजयते यज्ञदत्तः-अध्ययनतः पराजयते यज्ञदत्तः। अहीयरुहोरिति किम् ? सार्थाद् हीयते देवदत्तः। पर्वताद् अवरोहति यज्ञदत्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अहीयरुहोः) हीय और रुह् धातु के सम्बन्ध से रहित (अपादाने) अपादान कारक में विद्यमान (पञ्चम्याः) पञ्चम्यन्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

उदा०-देवदत्त ग्राम से आता है-ग्रामतः आता है। सोमदत्त चौर से डरता है-चौरतः डरता है। यज्ञदत्त अध्ययन से पराजित होता है-अध्ययनतः पराजित होता है।

*सिद्धि-(१) **ग्रामतः।** ग्राम+ङसि+तसि। ग्राम+तस्। ग्रामतस्+सु। ग्रामतस्+०। ग्रामतरु। ग्रामतर्। ग्रामतः।*

*यहां अपादान कारक में विद्यमान 'ग्राम' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। यहां **'ध्रुवमपायेऽपादानम्'** (१।४।२४) से अपादान कारक है।*

*(२) **चौरतः।** यहां **'भीत्रार्थानां भयहेतुः'** (१।४।२५) से अपादान कारक है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **अध्ययनतः।** यहां **'पराजेरसोढः'** (१।४।२६) से अपादान कारक है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*यहां 'अहीयरुहोः' का कथन इसलिये किया गया है कि यहां 'तसि' प्रत्यय न हो-**सार्थाद् हीयते देवदत्तः।** देवदत्त अपने सार्थ (टोळी) से बिछुड़ता है। **पर्वताद् अवरोहति यज्ञदत्तः।** यज्ञदत्त पर्वत से उतरता है। यहां 'हीय' और 'रुह' धातु के सम्बन्ध में 'तसि' प्रत्यय न हो।*

तसिः–

(४०) अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वकर्तरि तृतीयायाः।४६।

प०वि०- अतिग्रह-अव्यथन-क्षेपेषु ७।१ अकर्तरि ७।१ तृतीयायाः ५।१।

स०-अतिग्रहश्च अव्यथनं च क्षेपश्च ते-अतिग्रहाव्यथनक्षेपाः, तेषु-अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। अतिक्रम्य ग्रहः=अतिग्रहः। अव्यथनम्=अचलनम्। क्षेपः=निन्दा। न कर्ता-अकर्ता, तस्मिन्-अकर्तरि (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-अन्यतरस्याम् तसिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु अकर्तरि कारके तृतीयायाः स्वार्थेऽन्यतरस्यां तसिः।

अर्थः-अतिग्रहाव्यथनक्षेपेष्वर्थेषु अकर्तरि कारके च वर्तमानात् तृतीयान्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अतिग्रहः)** वृत्तेनातिगृह्यते-वृत्ततोऽतिगृह्यते देवदत्तः। चरित्रेणातिगृह्यते-चरित्रतोऽतिगृह्यते देवदत्तः। वृत्तेन चरित्रेण च गृह्यते इत्यर्थः। **(अव्यथनम्)** वृत्तेन न व्यथते-वृत्ततो न व्यथते यज्ञदत्तः। चरित्रेण न व्यथते-चरित्रतो न व्यथते यज्ञदत्तः। वृत्तेन चरित्रेण च न संचलतीत्यर्थः। **(क्षेपः)** वृत्तेन क्षिप्तः-वृत्ततो क्षिप्तो ब्रह्मदत्तः। चरित्रेण क्षिप्तः-चरित्रेण क्षिप्तो ब्रह्मदत्तः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतिग्रहाव्यथनक्षेपेषु) अतिग्रह=अतिक्रमण, अव्यथन=अचलन, क्षेप=निन्दा अर्थ में और (अकर्तरि) कर्ता से भिन्न कारक में विद्यमान (तृतीयायाः) तृतीयान्त प्रातिपदिक से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(अतिग्रह)** देवदत्त वृत्त=व्यवहार (लेन-देन आदि) से अतिगृहीत अतिक्रमण पूर्वक स्वीकृत किया जाता है-वृत्ततः अतिगृहीत किया जाता है। देवदत्त चरित्र=आचार से अतिगृहीत किया जाता है-चरित्रतः अतिगृहीत किया जाता है। **(अव्यथन)** यज्ञदत्त वृत्त से संचलित नहीं होता है-वृत्ततः संचलित नहीं होता है। यज्ञदत्त चरित्र से संचलित नहीं होता है-चरित्रतः संचलित नहीं होता है। **(क्षेप)** ब्रह्मदत्त वृत्त से क्षिप्त=निन्दित है-वृत्ततः निन्दित है। ब्रह्मदत्त चरित्र से निन्दित है-चरित्रतः निन्दित है।*

सिद्धि-वृत्ततः। वृत्त+टा+तसि। वृत्त+तस्। वृत्ततस्+सु। वृत्ततस्+०। वृत्ततरु। वृत्ततर्। वृत्ततः।

यहां अतिग्रह, अव्यथन, क्षेप अर्थों में तथा अकर्ता कारक में विद्यमान तृतीयान्त 'वृत्त' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-चरित्रतः।

यहां 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (२।३।१८) से कर्ता कारक में नहीं अपितु करण करक में तृतीया विभक्ति है।

तसिः–

(४१) हीयमानपापयोगाच्च ।४७।

प०वि०-हीयमान-पापयोगात् ५ ।१ च अव्ययपदम्।

स०-हीयमानश्च पापश्च तौ हीयमानपापौ, ताभ्याम्- हीयमानपापाभ्याम्, हीयमानपापाभ्यां योगो यस्य तत्-हीयमानपापयोगम्, तस्मात्-हीयमानपायोगात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-अन्यतरस्याम्, तसिः, अकर्तरि, तृतीयाया इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अकर्तरि तृतीयाया हीयमानपापयोगाच्चान्यतरस्यां तसिः।

अर्थः-कर्तृभिन्ने कारके वर्तमानात् तृतीयान्ताद् हीयमानयोगवाचिनः पापयोगवाचिनश्च प्रातिपदिकादपि स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**हीयमानयोगः**) वृत्तेन हीयते-वृत्ततो हीयते देवदत्तः। चरित्रेण हीयते-चरित्रतो हीयते देवदत्तः। (**पापयोगः**) वृत्तेन पापः-वृत्ततो पापो यज्ञदत्तः। चरित्रेण पापः-चरित्रतो पापो यज्ञदत्तः।

आर्यभाषा अर्थ-(अकर्तरि) कर्ता से भिन्न कारक में विद्यमान (तृतीयायाः) तृतीयान्त (हीयमानपापयोगाच्च) हीयमान योगवाची और पापयोगवाची प्रातिपदिक से (च) भी स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है।

*उदा०-(**हीयमानयोग**) देवदत्त वृत्त=व्यवहार के कारण से हीन है-वृत्ततः हीन है। देवदत्त चरित्र=आचार के कारण से हीन है-चरित्रतः हीन है। (**पापयोग**) यज्ञदत्त वृत्त के कारण से पापी है-वृत्ततः पापी है। यज्ञदत्त चरित्र के कारण से पापी है-चरित्रतः पापी है।*

*सिद्धि-**वृत्ततः**। वृत्त+टा+तसि। वृत्त+तस्। वृत्ततस्+सु। वृत्ततस्+०। वृत्ततरु। वृत्ततर्। वृत्ततः।*

*यहां कर्ता से भिन्न कारक में विद्यमान, तृतीयान्त हीयमानयोगवाची तथा पापयोगवाची 'वृत्त' शब्द से इस सूत्र से 'तसि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**चरित्रतः**। यहां हेतौ' (२।३।२३) से कर्ता से भिन्न हेतु अर्थ में तृतीया विभक्ति है।*

तसिः–

(४२) षष्ठ्या व्याश्रये ।४८।

प०वि०-षष्ठ्याः ५ ।१ व्याश्रये ७ ।१।

अनु०-अन्यतरस्याम्, तसिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-व्याश्रये षष्ठ्या अन्यतरस्यां तसिः ।

अर्थः-व्याश्रये=नानापक्षसमाश्रयेऽर्थे वर्तमानात् षष्ठ्यन्तात् प्रातिपदिकात् स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति ।

उदा०-देवा अर्जुनस्याभवन्-देवा अर्जुनतोऽभवन् । अर्जुनस्य पक्षेऽभवन्नित्यर्थः । आदित्याः कर्णस्याभवन्-आदित्याः कर्णतोऽभवन् । कर्णस्य पक्षेऽभवन्नित्यर्थः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(व्याश्रये) नाना पक्षों के आश्रय अर्थ में विद्यमान (षष्ठ्याः) षष्ठ्यन्त प्रातिपदिकों से स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है ।*

उदा०-देवता अर्जुन के पक्ष में हुये-अर्जुनतः हुये। आदित्य कर्ण के पक्ष में हुये-कर्णतः हुये ।

सिद्धि-अर्जुनतः । अर्जुन+ङसि+तसि । अर्जुन+तस् । अर्जुनतस्+सु । अर्जुनतस्+० । अर्जुनतरु । अर्जुनतर् । अर्जुनतः ।

यहां व्याश्रय अर्थ में विद्यमान, षष्ठ्यन्त 'अर्जुन' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है । शेष कार्य पूर्ववत् है । ऐसे ही-कर्णतः ।

तसिः-

(४३) रोगाच्चापनयने ।४६।

प०वि०-रोगात् ५ ।१ च अव्ययपदम्, अपनयने ७ ।१ ।

अनु०-अन्यतरस्याम्, तसिः, षष्ठ्या इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-अपनयने षष्ठ्या रोगाच्चान्यतरस्यां तसिः ।

अर्थः-अपनयनेऽर्थे वर्तमानात् षष्ठ्यन्ताद् रोगवाचिनः प्रातिपदिकाच्च स्वार्थे विकल्पेन तसिः प्रत्ययो भवति ।

उदा०-हे वैद्य ! त्वं छर्दिकायाः कुरु-छर्दिकातः कुरु । कासस्य कुरु-कासतः कुरु । प्रवाहिकायाः कुरु-प्रवाहिकातः कुरु ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अपनयने) चिकित्सा अर्थ में विद्यमान (षष्ठ्याः) षष्ठ्यन्त (रोगात्) रोगवाची प्रातिपदिक से (च) भी स्वार्थ में (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (तसिः) तसि प्रत्यय होता है ।*

उदा०-हे वैद्य ! तू छर्दिका=वमन रोग की चिकित्सा कर-छर्दिकातः कर। कास=खांसी रोग की चिकित्सा कर-कासतः कर। प्रवाहिका-अतिसार रोग की चिकित्सा कर-प्रवाहिकातः कर।

सिद्धि-*छर्दिकातः। छर्दिका+ङस्+तसि। छर्दिका+तस्। छर्दिकातस्+सु। छर्दिकातस्+०। छर्दिकातरु। छर्दिकातर्। छर्दिकातः।*

यहां अपनयन=चिकित्सा अर्थ में विद्यमान, षष्ठ्यन्त, रोगवाची 'छर्दिका' शब्द से इस सूत्र से स्वार्थ में 'तसि' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-कासतः, प्रवाहिकातः।

अभूततद्भावार्थप्रत्ययप्रकरणम्

च्विः–

(१) {अभूततद्भावे} कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः ।५०।

प०वि०-{अभूततद्भावे ७।१} कृ-भू-अस्तियोगे ७।१ सम्पद्य-कर्तरि ७।१ च्विः १।१।

स०-न भूतम्-अभूतम्, तस्य भावस्तद्भावः, अभूतस्य तद्भावः-अभूततद्भावः, तस्मिन्-अभूततद्भावे (नञ्गर्भितषष्ठीतत्पुरुषः)। कृश्च भूश्च अस्तिश्च ते कृभ्वस्तयः, तैः-कृभ्वस्तिभिः, कृभ्वस्तिभिर्योगो यस्य तत्-कृभ्वस्तियोगम्, तस्मिन्-कृभ्वस्तियोगे (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)। सम्पद्यतेः कर्ता-सम्पद्यकर्ता, तस्मिन्-सम्पद्यकर्तरि।

अन्वयः-कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावे च्विः।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिर्योगे सम्पद्यकर्तरि च वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावेऽर्थे च्विः प्रत्ययो भवति। कारणस्य विकाररूपेणाऽभूतस्य तदात्मना भावः-अभूततद्भावः कथ्यते।

उदा०-अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते, तं करोति-शुक्ली करोति। मलिनं शुक्ली करोतीत्यर्थः। शुक्ली भवति। शुक्ली स्यात्। अघटो घटः सम्पद्यते तं करोति-घटी करोति। घटी भवति। घटी स्यात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति के योग में और (सम्पद्यकर्तरि) 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान प्रातिपदिक से (अभूततद्भावे) विकार रूप में अविद्यमान कारण का विकार रूप में विद्यमान होना अर्थ में (च्विः) च्वि प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो अशुक्ल=मलिन है, वह शुक्ल बनता है और जो उसे बनाता है-शुक्ली बनता है। मलिन को शुद्ध बनाता है। जो अशुक्ल है, वह शुक्ल होता है-शुक्ली होता है। जो अशुक्ल है वह शुक्ल होवे-शुक्ली होवे। जो अघट (मृत्तिका) घट बनता है और जो उसे बनाता है-घटी बनता है। जो अघट है, वह घट होता है-घटी होता है। जो अघट है, वह घट होवे, घटी होवे।

सिद्धि-शुक्ली करोति। शुक्ल+सु+च्वि। शुक्ल् ई+वि। शुक्ली+०। शुक्ली+सु। शुक्ली+०। शुक्ली।

यहां कृ, भू, अस्ति के योग में और 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान शुक्ल' शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में इस सूत्र से 'च्वि' प्रत्यय है। 'अस्य च्वौ' (७।४।३२) से अंग के अकार को ईकार आदेश और 'वेरपृक्तस्य' (६।१।६६) से 'वि' का लोप होता है। 'स्वरादिनिपातमव्ययम्' (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-शुक्ली भवति, इत्यादि।

विशेषः 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' इस मूल सूत्रपाठ में वा०-'च्विविधावभूततद्भावग्रहणम्' (महा० ५।४।५०) से सूत्रार्थ की स्वच्छता में 'अभूततद्भावे' पद का नियोग किया गया है।

च्विः (अन्त्यलोपः)–

(२) अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसां लोपश्च।५१।

प०वि०-अरुः-मनः-चक्षुः-चेतः-रहः-रजसाम् ६।३ लोपः १।१ च अव्ययपदम्।

स०-अरुश्च मनश्च चक्षुश्च चेतश्च रहश्च रजश्च तानि अरु०रजांसि, तेषाम्-अरु०रजसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-अभूततद्भावे, कृभ्वस्तियोगे, सम्पद्यकर्तरि, च्विरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजोभ्यश्च्विः, लोपश्च।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिर्योगे सम्पद्यकर्तरि च वर्तमानेभ्योऽरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजोभ्यः प्रातिपदिकेभ्योऽभूततद्भावेऽर्थे च्विः प्रत्ययो भवति, तेषामन्त्यवर्णस्य च लोपो भवति।

उदा०-(**अरुः**) अनरुररुः सम्पद्यते, तं करोति-अरू करोति। अरू भवति। अरू स्यात्। (**मनः**) अनुन्मना उन्मनाः सम्पद्यते, तं करोति-उन्मनी

करोति। उन्मनी भवति। उन्मनी स्यात्। (चक्षुः) अनुच्चक्षुरुच्चक्षुः सम्पद्यते, तं करोति-उच्चक्षू करोति। उच्चक्षू भवति। उच्चक्षू स्यात्। (चेतः) अविचेता विचेताः सम्पद्यते, तं करोति-विचेती करोति। विचेती भवति। विचेती स्यात्। (रहः) अविरहा विरहाः सम्पद्यते, तं करोति-विरही करोति। विरही भवति। विरही स्यात्। (रजः) अविरजा विरजाः सम्पद्यते, तं करोति-विरजी करोति। विरजी भवति। विरजी स्यात्।

आर्यभाषाः अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति के योग में और (सम्पद्यकर्तरि) 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान (अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहोरजसाम्) अरुष्, मनस्, चक्षुष्, चेतस्, रहस्, रजस् प्रातिपदिकों से (अभूततद्भावे) विकार रूप में अविद्यमान कारण का विकार रूप में विद्यमान होना अर्थ में (च्विः) च्वि प्रत्यय होता है (च) और उनके अन्त्य वर्ण का (लोप) लोप होता है।

उदा०-(अरुः) जो अनरुः=अमर्म, अरुः=मर्म बनता है और जो उसे बनाता है-अरू बनाता है। अरू होता है। अरू होवे। (मनः) जो अनुन्मना=स्वस्थ मनवाला उन्मना=अस्वस्थ मनवाला बनता है और जौर जो उसे बनाता है-उन्मनी बनाता है। उन्मनी होता है। उन्मनी होवे। (चक्षुः) जो अनुद्गत चक्षुष्मान् उद्गत चक्षुष्मान बनता है और जो उसे बनाता है-उच्चक्षू बनाता है। उच्चक्षू होता है। उच्चक्षू होवे। (चेतः) जो अविचेता=स्थिर चित्तवान् विचेता=अस्थिर चित्तवान् बनता है और जो उसे बनाता है-विचेती बनाता है। विचेती होता है। विचेती होवे। (रहः) जो अविरहा=अविरहवाला विरहवाला बनता है और जो उसे बनाता है-विरही बनाता है। (रजः) जो अविरजा=अविरागवाला विरागवाला बनता है और जो उसे बनाता है-विरजी बनाता है। विरजी होता है। विरजी होवे।

सिद्धि-(१) **अरू करोति।** अरुष्+च्वि। अरु०+वि। अरू+वि। अरू+०। अरू+सु। अरू+०। अरू।

यहां कृ, भू, अस्ति के योग में, सम्पद्यते क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान 'अरुष्' शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में इस सूत्र से 'च्वि' प्रत्यय और 'अरुष्' के अन्त्यवर्ण सकार का लोप होता है। 'च्वौ च' (७।४।२६) से अजन्त अंग को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**उच्चक्षू करोति।**

(२) **उन्मनी करोति।** यहां पूर्वोक्त 'उन्मनस्' शब्द से पूर्ववत् 'च्वि' प्रत्यय करने तथा अन्त्य वर्ण सकार का लोप हो जाने पर 'अस्य च्वौ' (७।४।३२) से अंग के अकार को ईकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**विचेती करोति, विरही करोति, विरजी करोति।**

साति-विकल्पः–

(३) विभाषा साति कात्स्न्यें।५२।

प०वि०-विभाषा १।१ साति १।१ (सु-लुक्) कात्स्न्यें ७।१।

अनु०-अभूततद्भावे, कृभ्वस्तियोगे, सम्पद्यकर्तरि इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावे विभाषा सातिः, कात्स्न्यें।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिर्योगे सम्पद्यकर्तरि च वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावेऽर्थे विकल्पेन सातिः प्रत्ययो भवति, कात्स्न्यें गम्यमाने। यदि प्रकृतिः कृत्स्नां विकारात्मतामापद्यते इत्यर्थः। पक्षे च च्विः प्रत्ययो भवति।

उदा०-अनग्निरग्निः सम्पद्यते, स भवति-अग्निसाद् भवति शस्त्रम् (सातिः)। अग्नी भवति शस्त्रम् (च्विः)। अनुदकमुदकं सम्पद्यते तद्भवति-उदकसाद् भवति लवणम् (सातिः)। उदकी भवति लवणम् (च्विः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति के योग में और (सम्पद्यकर्तरि) 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान प्रातिपदिक से (अभूततद्भावे) विकार रूप में अविद्यमान कारण का विकार रूप में विद्यमान होना अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (सातिः) साति प्रत्यय होता है (कात्स्न्यें) यदि वहां प्रकृति समस्त विकार स्वरूप को प्राप्त हो।*

उदा०-जो अग्नि नहीं है, वह अग्नि बनता है, और वह समस्त भाव से अग्नि होता है-अग्निसात् होता है (साति)। अग्नी होता है (च्वि)। जो उदक=जल नहीं है, वह जल बनता है और वह समस्त भाव से जल होता है-उदकसात् होता है। उदकी होता है।

*सिद्धि-(१) **अग्निसाद् भवति।** अग्नि+सु+साति। अग्नि+सात्। अग्निसात्+सु। अग्निसात्+०। अग्निसात्।*

*यहां कृ, भू, अस्ति के योग में तथा 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान 'अग्नि' शब्द से अभूततद्भाव अर्थ में तथा कात्स्न्यें अर्थ की प्रतीति में इस सूत्र से 'साति' प्रत्यय है। '**स्वरादिनिपातमव्ययम्**' (१।१।३७) से अव्यय संज्ञा होकर '**अव्ययादाप्सुपः**' (२४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-**उदकसात्।***

*(२) **अग्नी भवति।** यहां पूर्वोक्त 'अग्नि' शब्द से विकल्प पक्ष में 'च्वि' प्रत्यय करने पर '**च्वौ च**' (७।४।२६) से अजन्त अंग को दीर्घ होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) उदकी भवति। यहां 'उदक' शब्द से पूर्ववत् 'च्वि' प्रत्यय करने पर 'अस्य च्वौ' (६।४।३४) से अंग के अकार को ईकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

साति-विकल्पः–

(४) अभिविधौ सम्पदा च।५३।

प०वि०–अभिविधौ ७।१ सम्पदा ३।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–अभूततद्भावे, कृभ्वस्तियोगे, सम्पद्यकर्तरि, विभाषा, सातिरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे सम्पद्यकर्तरि प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावे विभाषा सातिः, अभिविधौ।

अर्थः–कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे सम्पद्यकर्तरि च वर्तमानात् प्रातिपदिकाद् अभूततद्भावेऽर्थे विकल्पेन सातिः प्रत्ययो भवति, अभिविधौ=अभिव्याप्तौ गम्यमानायाम्। पक्षे च कृभ्वस्तिभिर्योगे च्विः प्रत्ययो भवति, न च सम्पदा योगे।

उदा०–अनग्निरग्निः सम्पद्यते तं करोति–अग्निसात् करोति, अग्निसाद् भवति, अग्निसात् स्यात्, अग्निसात् सम्पद्यते (सातिः)। अनग्निरग्निः सम्पद्यते तं करोति–अग्नी करोति। अग्नी भवति। अग्नी स्यात् (च्विः)। अनुदकमुदकं सम्पद्यते तत् करोति–उदकसात् करोति, उदकसाद् भवति, उदकसात् स्यात्, उदकसात् सम्पद्यते (सातिः)। अनुदकमुदकं सम्पद्यते तत् करोति–उदकी करोति, उदकी भवति, उदकी स्यात् (च्विः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ–(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति (च) और (सम्पदा) सम्पद के योग में (सम्पद्यकर्तरि) 'सम्पद्यते' क्रिया के कर्ता रूप में विद्यमान प्रातिपदिक से (अभूततद्भावे) विकार रूप में अविद्यमान कारण का विकार रूप में विद्यमान होना अर्थ में (विभाषा) विकल्प से (सातिः) साति प्रत्यय होता है (अभिविधौ) यदि वहां अभिव्याप्ति अर्थ की प्रतीति हो और पक्ष में कृ, भू, अस्ति के योग में 'च्वि' प्रत्यय होता है 'सम्पद' के योग में नहीं।*

उदा०–जो अग्नि नहीं है वह अग्नि बनता है और जो उसे बनाता है-अग्निसात् बनाता है, अग्निसात् होता है, अग्निसात् होवे, अग्निसात् बनाता है (साति)। जो अग्नि नहीं है वह अग्नि बनता है और जो उसे बनाता है-अग्नी बनाता है, अग्नी होता है, अग्नी होवे

(च्वि)। जो उदक=जल नहीं है वह उदक बनता है और जो उसे बनाता है-उदकसात् बनाता है, उदकसात् होता है, उदकसात् होवे (साति)। जो उदक नहीं है वह उदक बनता है और जो उसे बनाता है-उदकी बनाता है, उदकी होता है, उदकी होवे (च्वि)।

सिद्धि- *अग्निसात् करोति और अग्नी करोति आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।*

विशेषः *अभिविधि=अभिव्याप्ति और कात्स्न्र्य=सम्पूर्णता अर्थ में यह भेद है कि जहां एकदेश रूप में भी सब प्रकृति विकारभाव को प्राप्त हो जाती है उसे अभिविधि कहते हैं। जैसे-इस सेना में उत्पात से सब शस्त्र अग्निसात् होगये, वर्षा में सब लवण उदकसात् होगया। यह अभिविधि वचन है। समस्त रूप से द्रव्य का विकारभाव को प्राप्त हो जाना कात्स्न्र्य कहाता है। **अग्निसाद् भवति शस्त्रम्।** यह कात्स्न्र्य वचन है।*

अधीनार्थप्रत्ययविधिः

सातिः–

(१) तदधीनवचने।५४।

प०वि०-तदधीन-वचने ७।१।

स०-तस्य (स्वामिनः) अधीनम्-तदधीनम्, तदधीनस्य वचनम्-तदधीनवचनम्, तस्मिन्-तदधीनवचने (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-कृभ्वस्तियोगे, सम्पदा च इति चानुवर्तते। अभूततद्भावे, सम्पद्यकर्तरि, इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे स्वामिविशेषवाचिनस्तदधीनवचने सातिः।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे स्वामिविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् तदधीनवचनेऽर्थे सातिः प्रत्ययो भवति।

उदा०-राजाधीनं करोति-राजसात् करोति, राजसाद् भवति, राजसात् स्यात्, राजसात् सम्पद्यते। आचार्याधीनं करोति-आचार्यसात् करोति, आचार्यसाद् भवति, आचार्यसात् स्यात्, आचार्यसात् सम्पद्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति (च) और (सम्पदा) सम्पद के योग में स्वामिविशेषवाची प्रातिपदिक से (तदधीनवचने) उस स्वामिविशेष के अधीन=आश्रित कथन अर्थ में (सातिः) साति प्रत्यय होता है।*

उदा०-राजा के अधीन करता है-राजसात् करता है, राजसात् होता है, राजसात् होवे, राजसात् बनता है। आचार्य के अधीन करता है-आचार्यसात् करता है, आचार्यसात् होता है, आचार्यसात् होवे, आचार्यसात् बनता है।

***सिद्धि-राजसात्।** राजन्+ङस्+साति। राजन्+सात्। राज०+सात्। राजसात्+सु। राजसात्+०। राजसात्।*

*यहां कृ, भू, अस्ति और सम्पद के योग में स्वामिविशेषवाची 'राजन्' शब्द से तदधीन के कथन अर्थ में इस सूत्र से 'साति' प्रत्यय है। 'साति' प्रत्यय के परे होने पर **'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने'** (१।४।१७) से 'राजन्' शब्द की पद-संज्ञा होकर **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।३७) से राजन् पद के नकार का लोप होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**आचार्यसात्।***

त्राः+सातिः-

(२) देये त्रा च।५५।

प०वि०-देये ७।१ त्रा १।१ (सु-लुक्) च अव्ययपदम्।

अनु०-कृभ्वस्तियोगे सातिः, सम्पदा च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे स्वामिविशेषवाचिनस्तदधीने देये वचने त्राः सातिश्च।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिः सम्पदा च योगे स्वामिविशेषवाचिनः प्रातिपदिकात् तदधीने देयवचनेऽर्थे त्राः सातिश्च प्रत्ययो भवति।

इदमाचार्येभ्यो देयमिति यत् प्रतिज्ञातम्, तद् यदा तेभ्यः प्रदानेन तदधीनं क्रियते तदा त्राः सातिश्च प्रत्ययो भवति।

उदा०-आचार्याधीनं देयं करोति-आचार्यत्रा करोति, आचार्यत्रा भवति, आचार्यत्रा स्यात्, आचार्यत्रा सम्पद्यते (त्राः)। आचार्यसात् करोति, आचार्यसाद् भवति, आचार्यसात् स्यात्, आचार्यसात् सम्पद्यते (सातिः)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति (च) और (सम्पदा) सम्पद के योग में स्वामिविशेषवाची प्रातिपदिक से (तदधीनवचने देये) उस स्वामिविशेष के अधीन देय द्रव्य के कथन अर्थ में (त्राः) त्रा (च) और (सातिः) साति प्रत्यय होते हैं।*

यह आचार्य जी को देना है इस प्रकार से जो प्रतिज्ञात शाल आदि द्रव्य है जब वह उन्हें समर्पित करके उनके अधीन किया जाता है तब यह त्रा और साति प्रत्यय होते हैं।

उदा०-शिष्य आचार्य जी को देय शाल आदि द्रव्य को उनके अधीन करता है-आचार्यत्रा करता है, आचार्यत्रा होता है, आचार्यत्रा होवे, आचार्यत्रा बनता है (त्रा)। आचार्यसात् करता है, आचार्यसात् होता है, आचार्यसात् होवे, आचार्यसात् बनता है।

सिद्धि-(१) आचार्यत्रा। आचार्य+अम्+त्रा। आचार्य+त्रा। आचार्यत्रा+सु। आचार्यत्रा+०। आचार्यत्रा।

यहां कृ, भू, अस्ति और सम्पद के योग में स्वामिविशेषवाची 'आचार्य' शब्द से तदधीन देय द्रव्य के कथन अर्थ में इस सूत्र से 'त्रा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) आचार्यसात् पद की सिद्धि पूर्ववत् है।

सामान्यार्थप्रत्ययविधिः

त्राः—

(१) देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्।५६।

प०वि०-देव-मनुष्य-पुरुष-मर्त्येभ्यः ५।३ द्वितीया-सप्तम्योः ६।२ बहुलम् १।१।

स०-देवश्च मनुष्यश्च पुरुषश्च पुरुश्च मर्त्यश्च ते-देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्याः, तेभ्यः-देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। द्वितीया च सप्तमी च ते द्वितीयासप्तम्यौ, तयोः-द्वितीयासप्तम्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-कृभ्वस्तियोगे इत्यत्र न सम्बध्यते। 'त्रा' इत्यनुवर्तते, सातिरिति च निवृत्तम्।

अन्वयः-द्वितीयासप्तम्यन्तेभ्यो देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो बहुलं त्राः।

अर्थः-द्वितीयान्तेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः सामान्यार्थे बहुलं त्राः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**देवः**) देवान् गच्छति-देवत्रा गच्छति (द्वितीया)। देवेषु वसति-देवत्रा वसति (सप्तमी)। (**मनुष्यः**) मनुष्यान् गच्छति-मनुष्यत्रा गच्छति। मनुष्येषु वसति-मनुष्यत्रा वसति। (**पुरुषः**) पुरुषान् गच्छति-पुरुषत्रा गच्छति। पुरुषेषु वसति-पुरुषत्रा वसति। (**पुरुः**) पुरून् गच्छति-पुरुत्रा गच्छति। पुरुषु वसति-पुरुत्रा वसति। (**मर्त्यः**) मर्त्यान् गच्छति-मर्त्यत्रा गच्छति। मर्त्येषु वसति-मर्त्यत्रा वसति। बहुलवचनादन्यत्रापि **त्राः प्रत्ययो भवति-बहुत्रा जीवतो मन इति।**

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्वितीयासप्तम्योः) द्वितीयान्त और सप्तम्यन्त (देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यः) देव, मनुष्य, पुरुष, पुरु, मर्त्य प्रातिपदिकों से सामान्य अर्थ में (बहुलम्) प्रायशः (त्राः) त्रा प्रत्यय होता है।*

*उदा०-(देव) देव=विद्वानों को प्राप्त करता है-देवत्रा प्राप्त करता है। देवों में रहता है-देवत्रा रहता है। (मनुष्य) मनुष्य=मननशील जनों को प्राप्त करता है-मनुष्यत्रा प्राप्त करता है। मनुष्यों में रहता है-मनुष्यत्रा रहता है। (पुरुष) पुरुषों को प्राप्त करता है-पुरुषत्रा प्राप्त करता है। पुरुषों में रहता है-पुरुषत्रा रहता है। (पुरु) पुरु=बहुत जनों को प्राप्त करता है-पुरुत्रा प्राप्त करता है। पुरु=बहुत जनों में रहता है-पुरुत्रा रहता है। (मर्त्य) मर्त्य=मरणधर्मा जनों को प्राप्त करता है-मर्त्यत्रा प्राप्त करता है। मर्त्य=मरणधर्मा जनों में रहता है-मर्त्यत्रा रहता है। बहुलवचन से अन्यत्र भी त्रा प्रत्यय होता है-**बहुत्रा जीवतो मनः।***

*सिद्धि-**देवत्रा।** देव+शस्/सुप्+त्रा। देव+त्रा। देवत्रा+सु। देवत्रा+०। देवत्रा।*

*यहां द्वितीयान्त और सप्तम्यन्त 'देव' शब्द से सामान्य अर्थ में इस सूत्र से 'त्रा' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**मनुष्यत्रा** आदि।*

डाच्-

(२) अव्यक्तानुकरणाद् द्व्यजवरार्धादनितौ डाच्।५७।

प०वि०-अव्यक्त-अनुकरणात् ५।१ द्व्यजवरअर्धात् ५।१ अनितौ ७।१ डाच् १।१।

स०-यस्मिन् ध्वनौ अकारादयो वर्णा विशेषरूपेण न व्यज्यन्ते सोऽव्यक्त इति कथ्यते। अव्यक्तस्याऽनुकरणम्-अव्यक्तानुकरणम्, तस्मात्-अव्यक्तानुकरणात् (षष्ठीतत्पुरुषः)। द्वावचौ यस्मिँस्तद् द्व्यच्, द्व्यच् अवरार्धं यस्य तत्-द्व्यजवरार्धम्, तस्मात्-द्व्यजवरार्धात् (बहुव्रीहिः)। न इतिः-अनितिः, तस्मिन्-अनितौ (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-कृभ्वस्तियोगे इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-कृभ्वस्तियोगे द्व्यजवरार्धाद् अव्यक्तानुकरणाड् डाच्, अनितौ।

अर्थः-कृभ्वस्तिभिर्योगे द्व्यच् अवरार्धं यस्य तस्माद् अव्यक्तानुकरणवाचिनः प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति, अनितौ परतः।

उदा०-पटत् पटत् करोति-पटपटा करोति, पटपटा भवति, पटपटा स्यात्। दमद् दमत् करोति-दमदमा करोति, दमदमा भवति, दमदमा स्यात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृभ्वस्तियोगे) कृ, भू, अस्ति के योग में (द्व्यजवरार्धात्) जिसके अवरवर्ती भाग में दो अच् हैं उस (अव्यक्तानुकरणात्) अव्यक्त ध्वनि के अनुकरणवाची शब्द से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है (अनितौ) यदि वहां इति शब्द परे न हो।*

उदा०-पटत् पटत् करता है-पटपटा करता है, पटपटा होता है, पटपटा होवे। दमत् दमत् करता है-दमदमा करता है, दमदमा होता है, दमदमा होवे।

सिद्धि-पटपटा करोति। *पटत्+डाच्। पटत्+पटत्+आ। पटत्+पट्+आ। पट+पट्+आ। पटपटा+सु। पटपटा+०। पटपटा।*

यहां कृ, भू, अस्ति के योग में, जिसके अवरवर्ती भाग में दो अच् हैं उस अव्यक्त ध्वनि के अनुकरणवाची 'पटत्' शब्द से इस सूत्र से डाच् प्रत्यय है। वा०-'डाचि बहुलं द्वे भवतः' (८।१।१२) से 'पटत्' शब्द को द्वित्व होता है। प्रत्यय के डित् होने से वा०-'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अत्) का लोप होता है। 'नित्यमाम्रेडिते डाचि' (६।१।१००) से पूर्ववर्ती तकार को पररूप आदेश होता है। ऐसे ही-दमदमा करोति।

कर्षणार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) कृञो द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् कृषौ।५८।

प०वि०-कृञः ६।१ द्वितीय-तृतीय-शम्ब-बीजात् ५।१ कृषौ ७।१।

स०-द्वितीयश्च तृतीयश्च शम्बश्च बीजं च एतेषां समाहारो द्वितीय-तृतीयसम्बबीजम्, तस्मात्-द्वितीयतृतीयशम्बबीजात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-पुनः कृञो ग्रहणं भू-अस्त्योर्निवृत्त्यर्थम्, डाच् इति चानुवतति।

अन्वयः-कृञ्योगे कृषौ द्वितीयतृतीयशम्बबीजाड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे कृषि-अर्थे वर्तमानेभ्यो द्वितीयतृतीयशम्बबीजेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(द्वितीयः) द्वितीयं कर्षणं करोति-द्वितीया करोति। (तृतीयः) तृतीयं कर्षणं करोति-तृतीया करोति। (शम्बः) शम्बात्मकं कर्षणं करोति-

शम्बा करोति। अनुलोमकृष्टं क्षेत्रं पुनः प्रतिलोमं कृषतीत्यर्थः। **(बीजम्)** बीजेन सह कर्षणं करोति-बीजा करोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (कृषौ) कृषि=हल चलाने अर्थ में विद्यमान (द्वितीयतृतीयशम्बबीजात्) द्वितीय, तृतीय, शम्ब, बीज प्रातिपदिकों से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(द्वितीय)** खेत में दूसरी बार हल चलाता है-द्वितीया करता है (दोसर करता है)। **(तृतीय)** खेत में तीसरी बार हल चलाता है-तृतीया करता है (तिसर करता है)। **(शम्ब)** अनुलोम हल चलाये हुये खेत में पुनः प्रतिलोम हल चलाता है-शम्बा करता है। **(बीज)** बीज के सहित हल चलाता है-बीजा करता है (बीजाई करता है)।*

सिद्धि-द्वितीया करोति। *द्वितीय+अम्+डाच्। द्वितीय्+आ। द्वितीया+सु। द्वितीया+०। द्वितीया।*

*यहां 'कृञ्' के योग में और कृषि=हल चलाने अर्थ में विद्यमान 'द्वितीय' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**तृतीया करोति,** आदि।*

डाच्-

(२) संख्यायाश्च गुणान्तायाः।५६।

प०वि०-संख्यायाः ५।१ च अव्ययपदम्, गुणान्तायाः ५।१।

स०-गुणशब्दोऽन्ते (समीपे) यस्याः सा-गुणान्ताः, तस्याः-गुणान्तायाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-डाच्, कृञः, कृषाविति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे कृषौ गुणान्तायाः संख्यायाश्च डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे कृषि-अर्थे वर्तमानाद् गुणान्तात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-क्षेत्रस्य द्विगुणं कर्षणं करोति-द्विगुणा करोति क्षेत्रम्। त्रिगुणा करोति क्षेत्रम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (कृषौ) हल चलाने अर्थ में विद्यमान (गुणान्तः) गुण शब्द जिसके अन्त में है उस (संख्यायाः) संख्यावाची प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-खेत में द्विगुण=दुगना हल चलाता है-द्विगुणा करता है। खेत में त्रिगुण=तिगुना हल चलाता है-त्रिगुणा करता है।

सिद्धि-द्विगुणा करोति। द्विगुण+अम्+डाच्। द्विगुण्+आ। द्विगुणा+सु। द्विगुणा+०। द्विगुणा।

यहां कृञ् के योग में और कृषि=हल चलाने अर्थ में, गुण शब्द जिसके अन्त में है उस संख्यावाची 'द्विगुण' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-त्रिगुणा करोति।

यापनार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) समयाच्च यापनायाम्।६०।

प०वि०-समयात् ५।१ च अव्ययपदम्, यापनायाम् ७।१।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे यापनायां समयाच्च डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे यापनार्थे च वर्तमानात् समय-शब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-समयं यापयति-समया करोति। कालक्षेपं करोतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (यापनायाम्) बिताने अर्थ में विद्यमान (समयात्) समय प्रातिपदिक से (च) भी (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-समय को बिताता है-समया करता है। आज मेरी विवशता है कल वा परसों मैं यह कार्य कर सकूंगा, इस प्रकार से काल-क्षेप करता है।

सिद्धि-समया करोति। *यहां कृञ् के योग और यापना अर्थ में विद्यमान 'समय' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अतिव्यथनार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) सपत्रनिष्पत्रादतिव्यथने।६१।

प०वि०-सपत्र-निष्पत्रात् ५।१ अतिव्यथने ७।१।

स०-सह पत्रेण वर्तते इति सपत्रः। निर्गतं पत्रं यस्मात्-निष्पत्रः। सपत्रश्च निष्पत्रश्च एतयोः समाहारः सपत्रनिष्पत्रम्, तस्मात्-सपत्रनिष्पत्रात्

(बहुव्रीहिगर्भितसमाहारद्वन्द्वः)। अतिशयितं व्यथनम्-अतिव्यथनम्, तस्मिन्-अतिव्यथने (प्रादितत्पुरुषः)।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगेऽतिव्यथने सपत्रनिष्पत्राड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगेऽतिव्यथने चार्थे वर्तमानाभ्यां सपत्रनिष्पत्राभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सपत्रः)** सपत्रं करोति-सपत्रा करोति मृगं व्याधः। सपत्रं शरं मृगस्य शरीरे प्रवेशयतीत्यर्थः। **(निष्पत्रः)** निष्पत्रं करोति-निष्पत्रा करोति मृगं व्याधः। मृगस्य शरीराच्छरमपरश्वार्थे निष्क्रामयतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (अतिव्यथने) अत्यन्त पीडा देने अर्थ में विद्यमान (सपत्रनिष्पत्रात्) सपत्र, निष्पत्र प्रातिपदिकों से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(सपत्र) शिकारी मृग को सपत्र करता है-सपत्रा करता है। शिकारी मृग के शरीर में पत्ते सहित बाण को प्रविष्ट करता है जिससे मृग को अत्यन्त पीडा होती है। (निष्पत्र) शिकारी मृग के शरीर को निष्पत्र करता है-निष्पत्रा करता है। शिकारी मृग के शरीर से पत्ते सहित बाण को दूसरी ओर निकालता है जिससे मृग को अत्यन्त पीडा होती है।

सिद्धि-सपत्रा करोति। *यहां कृञ् के योग में तथा अतिव्यथन अर्थ में 'सपत्र' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' पत्र है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**निष्पत्रा करोति।***

निष्कोषणार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) निष्कुलान्निष्कोषणे।६२।

प०वि०-निष्कुलात् ५।१ निष्कोषणे ७।१।

स०-निष्कोषणितमन्तरवयवानां कुलं यस्यात्-निष्कुलम्, तस्मात्-निष्कुलात् (बहुव्रीहिः)। निष्कोषणम्=निष्कर्षणम्, अन्तरवयवानां बहिर्निष्कासनमित्यर्थः।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे निष्कोषणे निष्कुलाड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे निष्कोषणे चार्थे वर्तमानाद् निष्कुलशब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-निष्कुलं करोति-निष्कुला करोति पशून्। पशूनामान्तरिकावयवानां बहिर्निष्कर्षणं करोतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (निष्कोषणे) बाहर निकालना अर्थ में विद्यमान (निष्कुलात्) निष्कुल प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-पशुओं को निष्कुल करता है-निष्कुला करता है। पशुओं के आन्तरिक अवयवों (आंत आदि) को बाहर निकालता है।

सिद्धि-निष्कुला करोति। *यहां कृञ् के योग में और निष्कोषण अर्थ में विद्यमान 'निष्कुल' शब्द से इस सूत्र से डाच् प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

आनुलोम्यार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) सुखप्रियादानुलोम्ये।६३।

प०वि०-सुख-प्रियात् ५।१ आनुलोम्ये।६३।

स०-सुखं च प्रियं च एतयोः समाहारः सुखप्रियम्, तस्मात्-सुखप्रियात् (समाहारद्वन्द्वः)। आनुलोम्यम्=अनुकूलता, आराध्यस्वाम्यादीनां चित्तानुवर्तनम्।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे आनुलोम्ये सुखप्रियाड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे आनुलोम्ये चार्थे वर्तमानाभ्यां सुखप्रियाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सुखम्)** सुखं करोति-सुखा करोति, स्वामिनश्चित्तमाराधयतीत्यर्थः। **(प्रियम्)** प्रियं करोति-प्रिया करोति। स्वामिनश्चित्तमनुवर्तयतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (आनुलोम्ये) अनुकूलता अर्थ में विद्यमान (सुखप्रियात्) सुख, प्रिय प्रातिपदिकों से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सुख करता है-सुखा करता है। स्वामी के चित्त की आराधना करता है। प्रिय करता है-प्रिया करता है। स्वामी के चित्त के अनुकूल बर्ताव करता है।

सिद्धि-सुखा करोति। *यहां कृञ् के योग में और आनुलोम्य अर्थ में विद्यमान 'सुख' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रिया करोति।***

प्रातिलोम्यार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) दुःखात् प्रातिलोम्ये।६४।

प०वि०-दुःखात् ५।१ प्रातिलोम्ये ७।१। प्रातिलोम्यम्=प्रतिकूलता, स्वाम्यादीनां चित्तपीडनम्।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे प्रातिलोम्ये च दुःखाड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे प्रातिलोम्ये चार्थे वर्तमानाद् दुःखशब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-दुःखं करोति-दुःखा करोति भृत्यः। स्वामिनश्चित्तं पीडयतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (प्रातिलोम्ये) प्रतिकूलता अर्थ में विद्यमान (दुःखात्) दुःख प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दुःख करता है-दुःखा करता है। भृत्य=नौकर प्रतिकूल आचरण से स्वामी के चित्त को पीड़ा देता है।

सिद्धि-दुःखा करोति। यहां 'कृञ्' के योग में और प्रातिलोम्य अर्थ में विद्यमान 'दुःख' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

पाकार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) शूलात् पाके।६५।

प०वि०-शुलात् ५।१ पाके ७।१।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगे पाके शूलाड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे पाके चार्थे वर्तमानाच्छूलशब्दात् प्रातिपदिकाड् **डाच्** प्रत्ययो भवति।

उदा०-शूले पचति-शूला करोति मांसम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (पाके) पकाना* ***अर्थ में*** *विद्यमान (शूलात्) शूल प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-मांस को शूल पर पकाता है-शूला करता है।

*सिद्धि-**शूला करोति**। यहां 'कृञ्' के योग में और पाक अर्थ में विद्यमान 'शूल' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अशपथार्थप्रत्ययविधिः

डाच्-

(१) सत्यादशपथे।६६।

प०वि०-सत्यात् ५।१ अशपथे ७।१।

स०-न शपथम्-अशपथम्, तस्मिन्-अशपथे (नञ्तत्पुरुषः)। शपथम्=व्रतमित्यर्थः।

अनु०-डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कृञ्योगेऽशपथे च सत्याड् डाच्।

अर्थः-कृञ्योगे अशपथे=शपथवर्जितेऽर्थे वर्तमानात् सत्यशब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-सत्यं करोति-सत्या करोति वणिक् भाण्डम्। मयैतत् क्रेतव्यमस्तीति तथ्यं करोति।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कृञः) कृञ् के योग में और (अशपथे) शपथ=व्रत अर्थ से भिन्न अर्थ में विद्यमान (सत्यात्) सत्य प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-वणिक्=व्यापारी भाण्ड=रत्न आदि द्रव्य को सत्य करता है-सत्या करता है। मुझे यह रत्न आदि द्रव्य खरीदना है, इसे तथ्य (पक्का) करता है।

*सिद्धि-**सत्या करोति**। यहां 'कृञ्' के योग में और शपथ-वर्जित अर्थ में विद्यमान 'सत्य' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

परिवापणार्थप्रत्ययविधिः

डाच्–

(१) मद्रात् परिवापणे।६७।

प०वि०–मद्रात् ५।१ परिवापणे ७।१।

अनु०–डाच्, कृञ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–कृञ्योगे परिवापणे च मद्राड् डाच्।

अर्थः–कृञ्योगे परिवापणे=मुण्डने चार्थे वर्तमानाद् मद्रशब्दात् प्रातिपदिकाड् डाच् प्रत्ययो भवति। मद्रशब्दो मङ्गलार्थे वर्तते।

उदा०–मद्रं करोति–मद्रा करोति। चौलदीक्षादौ माङ्गल्यं मुण्डनं करोतीत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ–(कृञः) कृञ् के योग में और (परिवापणे) मुण्डन अर्थ में विद्यमान (मद्रात्) मद्र प्रातिपदिक से (डाच्) डाच् प्रत्यय होता है। मद्र शब्द मङ्गलवाची है।*

उदा०–मद्र करता है–मद्रा करता है। चौल (मुण्डन-संस्कार) और संन्यास दीक्षा आदि में माङ्गलिक मुण्डन करता है।

सिद्धि–मद्रा करोति। *यहां 'कृञ्' के योग और परिवापण अर्थ में विद्यमान 'मद्र' शब्द से इस सूत्र से 'डाच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

समासान्तप्रत्ययादेशप्रकरणम्

अधिकारः–

(१) समासान्ताः।६८।

वि०–समासान्ताः १।३।

स०–समासस्यान्तः=अवयवः–समासान्तः, ते–समासान्ताः (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अर्थः–समासान्ता इत्यधिकारोऽयम्, आ पादपरिसमाप्तेः। इतोऽग्रे वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः समासान्ताः=समासस्यावयवा भवन्तीति वेदितव्यम्। अव्ययीभाव-द्विगु-द्वन्द्व-तत्पुरुष-बहुव्रीहिसंज्ञाः प्रयोजनम्।

उदा०-**(अव्ययीभावः)** राजनि अधि-अधिराजम्। राज्ञः समीपम्-उपराजम्। **(द्विगुः)** द्वयोः पुरोः समाहारः-द्विपुरी। तिसृणां पुरां समाहारः-त्रिपुरी। **(द्वन्द्वः)** कोशश्च निषच्च एतयोः समाहारः-कोशनिषदम्, कोशनिषदमस्या अस्तीति-कोशनिषदिनी। स्रक् च त्वक् च एतयोः समाहारः स्रक्त्वचम्, स्रक्त्वचमस्या अस्तीति स्रक्त्वचिनी। **(तत्पुरुषः)** विगता धूः-विधुरः। प्रगता धूः-प्रधुरः। **(बहुव्रीहिः)** उच्चैर्धूरस्य-उच्चैर्धुरः। नीचैर्धूरस्य-नीचैर्धुरः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समासान्ताः) 'समासान्ता' इसका इस पाद की समाप्ति तक अधिकार है। इससे आगे कहे जानेवाले प्रत्यय समासान्त-अर्थात् समास के अवयव होते हैं, ऐसा जानें। इसका अव्ययीभाव, द्विगु, द्वन्द्व, तत्पुरुष और बहुव्रीहि संज्ञा बने रहना प्रयोजन है।*

*उदा०-**(अव्ययीभाव)** राजा के विषय में-अधिराज। राजा के समीप-उपराज। **(द्विगु)** दो पुरियों का समाहार-द्विपुरी। तीन पुरियों का समाहार-त्रिपुरी। **(द्वन्द्व)** कोश=सन्दूक और निषत्=खाट का समाहार-कोशनिषद, प्रशंसनीय कोश निषद है इसके यह-कोशनिषदिनी नारी। स्रक्=माला और त्वक्=छाल का समाहार-स्रक्त्वच, प्रशंसनीय स्रक्त्वच है इसकी यह-स्रक्त्वचिनी नारी। **(तत्पुरुष)** विगत धूः (जूआ) विधुर। प्रगत=प्रकृष्ट धूः=जूआ-प्रधुर। **(बहुवीहि)** ऊंची है धूः=जूआ इसका यह-उच्चैर्धुर। नीची है धूः=जुआ इसका यह-नीचैर्धुर।*

*सिद्धि-(१) **अधिराजम्।** अधि+सु+राजन्+ङि। अधि+राजन्। अधिराजन्+टच्। अधिराज्०+अ। अधिराज+सु। अधिराज+अम्। अधिराजम्।*

*यहां अधि और राजन् सुबन्तों का **'अव्ययं विभक्तिसमीप०'** (२।१।६) से अव्ययीभाव समास है। **'अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः'** (५।४।१०७) की अनुवृत्ति में **'अनश्च'** (५।४।१०८) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। 'टच्' प्रत्यय के समासान्त=समास का अवयव होने से **'नाव्ययीभावदतोऽम्त्वपञ्चम्याः'** (२।४।८३) से 'सु' का लुक् नहीं होता है अपितु उसे 'अम्' आदेश हो जाता है। ऐसे ही-**उपराजम्।***

*(२) **द्विपुरी।** द्वि+औ+पुर्+औ। द्विपुर्+अ। द्विपुर+ङीप्। द्विपुरी+सु। द्विपुरी+०। द्विपुरी।*

*यहां द्वि और पुर् सुबन्तों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे'** (२।१।५१) से समानाधिकरण तत्पुरुष समास होता है और संख्यावाची शब्द पूर्वपद में होने से **'संख्यापूर्वो द्विगुः'** (२।१।५२) से द्विगु संज्ञा होती है। **'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे'** (५।४।७४) से*

समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। 'अ' प्रत्यय के समासान्त=समास का अवयव होने से **स्त्रीत्व**-विवक्षा में 'द्विगोः' (४।१।२१) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**त्रिपुरी।**

(३) **कोशनिषदिनी।** कोशनिषद्+टच्। कोशनिषद्+अ। कोशनिषद+इनि। **कोशनिषद्**+इन्। कोशनिषदिन्+ङीप्। कोशनिषदिनी+सु। कोशनिषदिनी+०। कोशनिषदिनी।

यहां द्वन्द्वसंज्ञक 'कोशनिषद्' शब्द से **'द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे'** (५।४।१०६) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। 'टच्' प्रत्यय के समासान्त=समास का अवयव होने से **'द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात् प्राणिस्थादिनिः'** (५।२।१२८) से 'इनि' प्रत्यय होता है। तत्पश्चात् स्त्रीत्व-विवक्षा में **'ऋन्नेभ्यो ङीप्'** (४।१।५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**स्रक्त्वचिनी।**

(४) **विधुरः।** वि+सु+धुर्+सु। विधुर्+अ। विधुर+सु। विधुरः।

यहां वि और धुर् शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास **है**। तत्पश्चात् 'विधुर्' शब्द से **'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे'** (५।४।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। 'अ' प्रत्यय के समासान्त=समास का अवयव होने से **'तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः'** (६।२।२) से पूर्वपद प्रकृति स्वर होता **है**। 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ४।१३) से 'वि' उपसर्ग का आद्युदात्त स्वर है-**विधु॑र॒ः।** **ऐसे** ही-**प्रधु॑र॒ः।**

(५) उच्चैर्धुरः। उच्चैस्+सु+धुर्+सु। उच्चैर्धुर्+अ। उच्चैधुर+सु। उच्चैर्धुरः।

यहां उच्चैस् और धुर् शब्द का बहुव्रीहि समास है। तत्पश्चात् 'उच्चैर्धुर' शब्द से पूर्ववत् समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। 'अ' प्रत्यय के समसान्त=समास का अवयव होने से यहां **'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'** (६।२।१) से 'उच्चैस्' शब्द का पूर्वपद का प्रकृति स्वर होता है। 'उच्चैस्' शब्द स्वरादिगण में अन्तोदात्त पठित है-उ॒च्चैर्धु॑र॒ः। ऐसे ही-नी॒चैर्धु॑र॒ः।

समासान्तप्रत्ययप्रतिषेधः–

(२) न पूजनात्।६६।

प०वि०-न अव्ययपदम्, पूजनात् ५।१।

अनु०-समासान्ता इत्यनुवतति।

अन्वयः-पूजनात् परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ता न।

अर्थः-पूजनवाचिनः परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ता प्रत्यया न भवन्ति।

उदा०-सुष्ठु राजा-सुराजा। अतिशयितो राजा-अतिराजा। सुष्ठु गौः-सुगौः। अतिशयिता गौः-अतिगौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(पूजनात्) पूजनवाची शब्द से परे प्रातिपदिक से (समासान्ताः) प्राप्त समासान्त प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।*

उदा०-सुष्ठु राजा-सुराजा। अच्छा राजा। अतिशयित राजा-अतिराजा। बढ़िया राजा। सुष्ठु गौ-सुगौ। अच्छी गाय। अतिशयित गौ-अतिगौ। बढ़िया गाय।

सिद्धि-(१) ***सुराजा।*** *सु+सु+राजन्+सु। सु+राजन्। सुराजन्+सु। सुराजान्+सु। सुराजान्+०। सुराजा०। सुराजा।*

यहां सु और राजन् सुबन्तों का ***'कुगतिप्रादयः'*** *(२।२।१८) से प्रादि तत्पुरुष समास है, तत्पश्चात्* ***'राजाहःसखिभ्यष्टच्'*** *(५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। पुनः* ***'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'*** *(६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ,* ***'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्'*** *(६।१।६७) से 'सु' का लोप और* ***'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'*** *(८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-***अतिराजा।***

(२) ***सुगौः।*** *सु+सु+गो+सु। सु+गो। सुगो+सु। सुगौ+स्। सुगौ+रु। सुगौ+र्। सुगौः।*

यहां सु और गो सुबन्तों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुषसमास है, तत्पश्चात् ***'गोरतद्धितलुकि'*** *(५।४।९२) से समासान्त 'टच्' प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। पुनः* ***'गोतो णित्'*** *(७।१।९०) से 'सु' प्रत्यय को णिद्वद्भाव होकर* ***'अचो ञ्णिति'*** *(७।२।११५) से अंग को वृद्धि होती है। पूर्ववत् 'सु' को रुत्व और रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-***अतिगौः।***

समासान्तप्रत्ययप्रतिषेधः-

(३) किमः क्षेपे।७०।

प०वि०-किमः ५।१ क्षेपे ७।१।

अनु०-समासान्ताः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-क्षेपे किमः परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ता न।

अर्थः-क्षेपेऽर्थे वर्तमानात् किमः परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ताः प्रत्यया न भवन्ति।

उदा०-कथंभूतो राजा-किंराजा यो न रक्षति प्रजाः। कथंभूतः सखा-किंसखा योऽभिद्रुह्यति। किंभूता गौः-किंगौर्या न दोग्धि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(क्षेपे) निन्दा अर्थ में विद्यमान (किमः) किम् शब्द से परे प्रातिपदिक से (समासान्ताः) प्राप्त समासान्त प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।*

उदा०-कैसा राजा-किंराजा जो प्रजा की रक्षा नहीं करता है। कैसा सखा (मित्र)-किंसखा जो द्रोह करता है। कैसी गौ-किंगौ जो दूध नहीं देती है।

सिद्धि-(१) **किंराजा।** *किम्+सु+राजन्+सु। किम्+राजन्। किंराजन्+सु। किंराजान्+सु। किंराजान्+०। किंराजा०। किंराजा।*

यहां किम् और राजन् सुबन्तों का 'किं क्षेपे' (२।१।६४) से कर्मधारय समास है। तत्पश्चात् 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' (५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- **किंसखा।**

(२) **किंगौः।** *यहां किम् और गो सुबन्तों का पूर्ववत् कर्मधारय समास होता है। तत्पश्चात् 'गोरतद्धितलुकि' (५।४।५२) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

समासान्तप्रत्ययप्रतिषेधः-

(४) नञस्तत्पुरुषात्।७१।

प०वि०-नञः ५।१ तत्पुरुषात् ५।१।

अनु०-समासान्ताः, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-तत्पुरुषाद् नञः परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ता न।

अर्थः-तत्पुरुषसंज्ञकाद् नञः परस्मात् प्रातिपदिकात् समासान्ताः प्रत्यया न भवन्ति।

उदा०-न राजा-अराजा। न सखा-असखा। न गौः-अगौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषात्) तत्पुरुषसंज्ञक (नञ्) नञ् से परे प्रातिपदिक से (समासान्ताः) प्राप्त समासान्त प्रत्यय (न) नहीं होते हैं।*

उदा०-राजा नहीं-अराजा। सखा नहीं-असखा। गौ नहीं-अगौ।

सिद्धि-(१) **अराजा।** *नञ्+सु+राजन्। न+राजन्। अ+राजन्। अराजन्+सु। अराजान्+सु। अराजान्+०। अराजा०। अराजा।*

यहां नञ् और राजन् सुबन्तों का 'नञ्' (२।२।६) से नञ्-तत्पुरुष समास है। तत्पश्चात् 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' (५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही- **असखा।**

(२) अगौः । यहां नञ् और गो शब्दों का पूर्ववत् नञ्तत्पुरुष समास है । तत्पश्चात् 'गोरतद्धितलुकि' (५ ।४ ।९२) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय प्राप्त होता है। इस सूत्र से उसका प्रतिषेध हो जाता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

समासान्तप्रत्ययविकल्पः–

(५) पथो विभाषा ।७२।

प०वि०-पथः ५ ।१ विभाषा १ ।१ ।

अनु०-समासान्ताः, न, नञः, तत्पुरुषाद् इति चानुवर्तते ।

अन्वयः-तत्पुरुषाद् नञः पथो विभाषा समासान्तो न ।

अर्थः-तत्पुरुषसंज्ञकाद् नञः परस्मात् पथिन्-शब्दात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तः प्रत्ययो भवति। पूर्वेण नित्यः प्रतिषेधः प्राप्तोऽनेन विकल्पो विधीयते।

उदा०-न पन्थाः-अपथम्। न पन्थाः-अपन्थाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक (नञः) नञ् से परे (पथः) पथिन् प्रातिपदिक से (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समासान्त प्रत्यय (न) नहीं होता है। पूर्व सूत्र से नित्य प्रतिषेध प्राप्त था, इससे विकल्प-विधान किया जाता है।*

उदा०-पन्था नहीं-अपथ। पन्था नहीं-अपन्था। खराब मार्ग।

सिद्धि-(१) अपथम्। नञ्+सु+पथिन्+सु। न+पथिन्। अपथिन्+अ। अपथ्+अ। अपथ+सु। अपथम्।

*यहां नञ् और पथिन् सुबन्तों का 'नञ्' (२ ।२ ।६) से नञ् तत्पुरुषसमास होता है, तत्पश्चात् **'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे'** (५ ।४ ।७४) से समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है। **'नस्तद्धिते'** (६ ।४ ।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप और **'अपथं नपुंसकम्'** (२ ।४ ।३०) से नपुंसक लिङ्गता होती है।*

*(२) अपथाः। यहां पूर्वोक्त 'पथिन्' शब्द से इस सूत्र से विकल्प विधान से यहां पूर्ववत् समासान्त 'अ' प्रत्यय नहीं होता है। **'पथिमथ्यृभुक्षामात्'** (७ ।१ ।८५) से 'पथिन्' के नकार को आकार आदेश, **'इतोऽत् सर्वनामस्थाने'** (७ ।१ ।८६) से 'पथिन्' के इकार को अकार आदेश और **'थो न्थः'** (७ ।१ ।८७) से 'पथिन्' के थकार को 'न्थ' आदेश होता है।*

विशेषः *'न वेति विभाषा' (१ ।१ ।४४) से निषेध और विकल्प की विभाषा संज्ञा की गई है। प्राप्त विभाषा में नकार से पूर्व प्राप्त विधि का प्रतिषेध होकर 'वा' से विकल्प किया जाता है। यहां 'न' पद की अनुवृत्ति का यही अभिप्राय है।*

डच्–

(६) बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्।७३।

प०वि०–बहुव्रीहौ ७।१ संख्येये ७।१ डच् १।१ अबहुगणात् ५।१।

स०–बहुश्च गणश्च एतयोः समाहारो बहुगणम्, न बहुगणम्-अबहुगणम्, तस्मात्-अबहुगणात् (समाहारद्वन्द्वगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–समासान्ता इत्यनुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ संख्येयेऽबहुगणात् संख्यावाचिनः समासान्तो डच्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे संख्येये चार्थे वर्तमानाद् बहुगणवर्जितात् संख्यावाचिनः प्रातिपदिकात् समासान्तो डच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–दशानां समीपम्-उपदशाः पुरुषाः। उपविंशाः पुरुषाः। उपत्रिंशा पुरुषाः। दशानामासन्नम्-आसन्नदशाः पुरुषाः। दशानामदूरम्-अदूरदशाः पुरुषाः। दशानामधिकम्-अधिकदशाः पुरुषाः। द्वौ च त्रयश्च-द्वित्राः पुरुषाः। पञ्च च षट् च-पञ्चषाः पुरुषाः। पञ्च च दश च-पञ्चदशाः पुरुषाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में और (संख्येये) गणनीय अर्थ में विद्यमान (अबहुगणात्) बहु और गण से भिन्न संख्यावाची प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (डच्) डच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दशों के समीप-उपदश पुरुष। विंशति=बीस के समीप-उपविंश पुरुष। त्रिंशत्=तीस के समीप-उपत्रिंश पुरुष। दशों के आसन्न=निकट-आसन्नदश पुरुष। दशों के अदूर=पास-अदूरदश पुरुष। दशों से अधिक-अधिकदश पुरुष। दो और तीन-द्वित्र पुरुष। पांच और छः-पञ्चष पुरुष। पांच और दश-पञ्चदश पुरुष।

सिद्धि-(१) उपदशाः। उप+सु+दशन्+आम्। उपदशन्+डच्। अपदश्+अ। उपदश+जस्। उपदशाः।

यहां बहुव्रीहि समास में और संख्येय अर्थ में विद्यमान संख्यावाची 'दशन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'डच्' प्रत्यय है। प्रत्यय के डित् होने से वा०- 'डित्यभस्यापि टेर्लोपः' (६।४।१४३) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है।

(२) उपविंशाः। यहां 'विंशति' शब्द के 'वि' भाग का 'ति विंशतेर्डिति' (६।४।१४२) से लोप होता है। शेष-कार्य पूर्ववत् है।

(३) उपत्रिंशाः आदि पदों की सिद्धि पूर्ववत् है।

अः-

(७) ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ।७४।

प०वि०-ऋक्-पुर्-अप्-धुर्-पथाम् ६।३ अ १।१। (सुलुक्) अनक्षे ७।१।

स०-ऋक् च पूश्च आपश्च धूश्च पन्थाश्च ते-ऋक्पूरब्धूःपन्थानः, तेषाम्-ऋक्पूरब्धूःपथाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। न अक्षः-अनक्षः, तस्मिन्-अनक्षे (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ता इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-ऋक्पूरब्धूःपथिभ्यः समासान्तोऽकारः, अनक्षे।

अर्थः-ऋक्पूरब्धूःपथान्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समासान्तोऽकारः प्रत्ययो भवति, अक्षेऽर्थे तु न भवति। अनक्षे इति धुरो विशेषणम्, ऋगादीनां तु न सम्भवति।

उदा०-(ऋक्) न विद्यते ऋगस्य-अनृचो माणवकः। बह्व्य ऋचोऽस्य-बह्वृचश्चरणः। ऋचोऽर्धम्-अर्धर्चः। (पुर्) ललाटस्य पूः-ललाटपुरम्। नान्द्याः पूः-नान्दीपुरम्। (अप्) द्विर्गता आपोऽस्मिन्-द्वीपम्। अन्तर्गता आपोऽस्मिन्-अन्तरीपम्। सङ्गता आपोऽस्मिन्-समीपम्। (धूः) राज्ञो धूः-राजधुरा। महती धूरस्य-महाधुरः। (पथिन्) स्थलस्य पन्थाः-स्थलपथः। जलस्य पन्थाः-जलपथः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ऋक्पूरब्धूःपथाम्) ऋक्, पुर्, अप्, धुर्, पथिन् शब्द जिनके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (अः) अकार प्रत्यय होता है (अनक्षे) अक्ष=चक्रसम्बन्धी अवयव अर्थ में तो नहीं होता है। जिस काष्ठविशेष पर रथ का चक्र घूमता है उसे 'अक्ष' कहते हैं। इसका सम्बन्ध केवल 'धुर्' शब्द के साथ है, ऋक् आदि शब्दों के साथ नहीं।*

उदा०-(ऋक्) जिसके पास ऋक्=ऋग्वेद नहीं है वह-अनृच माणवक। जिसके पास बहुत ऋक्=ऋचायें हैं वह-बह्वृच चरणविशेष (वैदिक विद्यापीठ)। ऋक्=ऋचा का आधा भाग-अर्धर्च। (पुर्) ललाट की पूः=नगरी-ललाटपुर। नान्दी की पूः=नगरी-नान्दीपुर। (अप्) जिसके दो ओर अप्=जल हो वह-द्वीप। जिसके अन्दर अप्=जल हो वह-अन्तरीप। जिसमें अप्=जल संगत हो वह-समीप। (धूः) राजा की धूः=कार्यभार-राजधुरा। महती

धूः=कार्यभार है जिसका वह-महाधुर। (पथिन्) स्थल का पन्था=मार्ग-स्थलपथ। जल का पन्था-जलपथ।

सिद्धि-(१) अनृचः। न+ऋक्+सु। अ+ऋच्। अ+नुट्+ऋच्। अनृच्+अ। अनृच+सु। अनृचः।

यहां ऋजन्त 'अनृच्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। ऐसे ही-बह्वृचः।

(२) अर्धर्चः। अर्ध+सु+ऋच्+ङस्। अर्ध+ऋच्। अर्धर्च्+अ। अर्धर्च+सु। अर्धर्चः।

यहां ऋजन्त 'अर्धर्च' शब्द से इस से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। **'अर्धं नपुंसकम्'** (२।२।२) से एकदेशी तत्पुरुष समास और **'अर्धर्चाः पुंसि च'** (२।४।३१) से पुंलिङ्गता होती है।

(३) ललाटपुरम्। ललाट+ङस्+पुर्+सु। ललाटपुर्+अ। ललाटपुर+सु। ललाटपुरम्।

यहां पुरन्त 'ललाटपुर्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। यहां **'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य'** इस परिभाषा से **'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः'** (२।४।२६) से प्राप्त परवत्-लिङ्गता नहीं होती है। ऐसे ही-**नान्दीपुरम्।**

(४) **द्वीपम्।** द्वि+सु+अप्+जस्। द्वि+अप्। द्वि+ईप्। द्वीप्+अ। द्वीप्+सु। द्वीपम्।

यहां अबन्त 'द्वीप्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। **'द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्'** (६।३।९७) से 'अप्' के अकार को ईकार आदेश होता है। ऐसे ही-**अन्तरीपम्, समीपम्।**

(५) **राजधुरा।** राजन्+ङस्+धुर्+सु। राजन्+धुर्। राजधुर्+अ। राजधुर+टाप्। राजधुरा+सु। राजधुरा+०। राजधुरा।

यहां धुरन्त 'राजधुर्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। स्त्रीत्व-विवक्षा में **'अजाद्यतष्टाप्'** (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है।

(६) **महाधुरः।** यहां **'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः'** (६।३।४६) से 'महत्' शब्द को आत्त्व और **'स्त्रियाः पुंवत्०'** (६।३।३४) से पुंवद्भाव होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(७) **स्थलपथः।** स्थल+ङस्+पथिन्+सु। स्थलपथिन्+अ। स्थलपथ्+अ। स्थलपथ+सु। स्थलपथः।

यहां पथिन्नन्त 'स्थलपथिन्' शब्द से समासान्त 'अ' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (इन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**जलपथः।**

अच्–

(८) अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः ।७५।

प०वि०–अच् १ ।१ प्रति–अनु–अवपूर्वात् ५ ।१ सामलोम्नः ५ ।१ ।

स०–प्रतिश्च अनुश्च अवश्च एतेषां समाहारः प्रत्यन्ववम्, प्रत्यन्ववं पूर्वं यस्य तत्–प्रत्यन्ववपूर्वम्, तस्मात्–प्रत्यन्ववपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वगर्भित–बहुव्रीहिः) । साम च लोम च एतयोः समाहारः सामलोम, तस्मात्–सामलोम्नः (समाहारद्वन्द्वः) ।

अनु०–समासान्ता इत्यनुवर्तते ।

अन्वयः–प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः समासान्तोऽच् ।

अर्थः–प्रति–अनु–अवपूर्वात् समासान्तात् लोमान्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति ।

उदा०–(साम) प्रतिगतं साम–प्रतिसामम् । अनुगतं साम–अनुसामम् । अवगतं साम–अवसामम् । **(लोम)** प्रतिगतं लोम–प्रतिलोमम् । अनुगतं लोम–अनुलोमम् । अवगतं लोम–अवलोमम् ।

आर्यभाषाः *अर्थ–(प्रत्यन्ववपूर्वात्) प्रति, अनु, अव जिसके पूर्व में उस (सामलोम्नः) सामान्त और लोमान्त प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है ।*

उदा०–(साम) प्रतिगत साम–प्रतिसाम । साम के प्रतिकूल । अनुगत साम–अनुसाम । साम के अनुसार । अवगत साम–अवसाम । निकृष्ट साम । (लोम) प्रतिगत लोम–प्रतिलोम । लोम के प्रतिकूल । अनुगत लोम–अनुलोम । लोम के अनुसार । अवगत लोम–अवलोम निकृष्ट लोम ।

सिद्धि–प्रतिसामम् । प्रति+सु+सामन्+सु । प्रति+सामन् । प्रतिसामन्+अच् । प्रतिसाम्+अ । प्रतिसाम+सु । प्रतिसामम् ।

*यहां प्रतिपूर्वक 'सामन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है । **'नस्तद्धिते'** (६ ।४ ।१४४) से अंग के टि–भाग का लोप होता है । यहां **'कुगतिप्रादयः'** (२ ।२ ।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है । ऐसे ही–अनुसामम् आदि ।*

अच्–

(९) अक्ष्णोऽदर्शनात् ।७६।

प०वि०–अक्ष्णः ५ ।१ अदर्शनात् ५ ।१ ।

स०-न दर्शनम्-अदर्शनम्, तस्मात्-अदर्शनात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अदर्शनाद् अक्ष्णः समासान्तोऽच्।

अर्थः-दर्शनार्थवर्जिताद् अक्षि-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-लवणमक्षि इव-लवणाक्षम्। पुष्करमक्षि इव-पुष्कराक्षम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अदर्शनात्) दर्शन अर्थ से भिन्न (अक्ष्णः) अक्षि शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-जो लवण अक्षि=आंख के समान है वह-लवणाक्ष। आंख के आकार का लवणपिण्ड। जो पुष्कर=कमल अक्षि=आंख के समान है वह-पुष्कराक्ष। आंख की आकृति का पुष्कर।

सिद्धि-लवणाक्षम्। लवण+सु+अक्षि+सु। लवण+अक्षि। लवणाक्षि+अच्। लवणाक्ष्+अ। लवणाक्ष+सु। लवणाक्षम्।

यहां दर्शन अर्थ से भिन्न अक्षि शब्द जिसके अन्त में है उस 'लवणाक्षि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। यहां 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' (२।१।५६) से कर्मधारय समास है। ऐसे ही-पुष्कराक्षम्।

अच् (निपातनम्)-

(१०) अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवदारगवोर्वष्ठीवपदष्ठीवनक्तंदिवरात्रिंदिवाहर्दिवसरजसनिःश्रेयसपुरुषायुषद्व्यायुषत्र्यायुषर्ग्यजुषजातोक्षमहोक्षवृद्धोक्षोपशुनगोष्ठश्वाः।७७।

प०वि०- अचतुर-विचतुर-सुचतुर-स्त्रीपुंस-धेन्वनडुह-ऋक्साम-वाङ्मनस-अक्षिभ्रुव-दारगव-ऊर्वष्ठीव-पदष्ठीव-नक्तन्दिव-रात्रिंदिव-अहर्दिव-सरजस-निःश्रेयस-पुरुषायुष-द्व्यायुष-त्र्यायुष-ऋग्यजुष-जातोक्ष-महोक्ष-वृद्धोक्ष-उपशुन-गोष्ठश्वाः १।३।

स०-अचतुरश्च विचतुरश्च सुचतुरश्च स्त्रीपुंसौ च धेन्वनडुहौ च ऋक्सामे च वाङ्मनसे च अक्षिभ्रुवं च दारगवं च ऊर्वष्ठीवं च नक्तन्दिवं

च रात्रिंदिवं च अहर्दिवं च सरजसं च निःश्रेयसं च पुरुषायुषं च द्व्यायुषं च त्र्यायुषं च ऋग्यजुषं च जातोक्षश्च महोक्षश्च वृद्धोक्षश्च उपशुनं च गोष्ठश्वश्च ते-अचतुर०गोष्ठश्वाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अचतुर०गोष्ठश्वाः समासान्तोऽच्।

अर्थः-अचतुरादयः शब्दाः समासान्त-अच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। अत्र समासव्यवस्था**ऽपि** निपातनादेव वेदितव्या। उदाहरणम्-

अचतुरः	अविद्यमानानि चत्वारि कार्षापणानि यस्य सः-अचतुरः।	जिसके पास चार कार्षापण (रुपया) भी नहीं है वह-अचतुर।
विचतुरः	विगतानि चत्वारि कार्षापणनि यस्य सः-विचतुरः।	जिसके चार कार्षापण भी खर्च हो चुके हैं वह-विचतुर।
सुचतुरः	शोभनानि चत्वारि कार्षापणानि यस्य सः-सुचतुरः।	जिसके पास चार कार्षापण बड़े सोहणे हैं वह-सुचतुर।
स्त्रीपुंसौ	स्त्री च पुमाँश्च तौ-स्त्रीपुंसौ	स्त्री और पुमान्-स्त्रीपुंस।
धेन्वनडुहौ	धेनुश्च अनड्वांश्च तौ-धेन्वनडुहौ।	धेनु=दुधारू गाय और अनड्वान्=बैल-धेन्वनडुह।
ऋक्सामे	ऋक् च साम च ते-ऋक्सामे	ऋक् और साम मन्त्र-ऋक्साम।
वाङ्मनसे	वाक् च मनश्च ते-वाङ्मनसे	वाक्=वाणी और मन=चित्त वाङ्मनस।
अक्षिभ्रुवम्	अक्षि च भ्रुवौ च-अक्षिभ्रुवम्	अक्षि=आंख और भ्रू=सेली-अक्षिभ्रुव।
दारगवम्	दाराश्च गावश्च-दारगवम्	दारा=स्त्री और गौ=गाय-दारगव।
ऊर्वष्ठीवम्	ऊरू च अष्ठीवन्तौ च-ऊर्वष्ठीवम्।	ऊरू=जंघा और अष्ठीवान्=घुटना=ऊर्वष्ठीव।
पदष्ठीवम्	पादौ च अष्ठीवन्तौ च-पदष्ठीवम्।	पाद=पांव और अष्ठवान्=घुटना=पदष्ठीव।
नक्तन्दिवम्	नक्तं च दिवं च-नक्तन्दिवम्	नक्त=रात्रि दिव=दिन-नक्तन्दिव।
रात्रिंदिवम्	रात्रिश्च दिवं च-रात्रिंदिवम्	रात्रि और दिन।
अहर्दिवम्	अहनि च दिवा च-अहर्दिवम्	अहः=दिन में और दिवा=दिन में-अहर्दिव। प्रत्येक दिन।

सरजसम्	रजसां साकल्यम्-सरजसम्,	रजः=धूल को न छोड़कर-सरजस।
	सरजमसभ्यवहरति-	सरजस=धूल सहित खाता-पीता है।
निश्श्रेयसम्	निश्चिन्तं श्रेयः-निःश्रेयसम्	निश्चित श्रेयः=सुख निश्श्रेयस (मोक्ष)।
पुरुषायुषम्	पुरुषस्यायुः=पुरुषायुषम्	पुरुष की आयु=पुरुषायुष-सौ वर्ष।
द्व्यायुषम्	द्वयोरायुषोः समाहारो द्व्यायुषम्	दो आयुओं का समाहार-द्व्यायुष-दो सौ वर्ष।
त्र्यायुषम्	त्रयाणामायुषां समाहारः-त्र्यायुषम्	तीन आयुओं का समाहार-त्र्यायुष-तीन सौ वर्ष।
ऋग्यजुषम्	ऋक् च यजुश्च-ऋग्यजुषम्	ऋक् और यजुष् के मन्त्र-ऋग्यजुष।
जातोक्षः	जातश्चासावुक्षा च-जातोक्षः	जात=उत्पन्न उक्षा=बैल-जातोक्ष।
महोक्षः	महाँश्चासावुक्षा च-महोक्षः	महान्=बड़ा उक्षा=बैल-महोक्ष।
वृद्धोक्षः	वृद्धश्चासाचुक्षा च-वृद्धोक्षः	वृद्ध=बूढ़ा उक्षा=बैल-वृद्धोक्ष।
उपशुनम्	शुनः समीपम्-उपशुनम्	श्वा=कुत्ते के समीप-उपशुन।
गोष्ठश्वः	गोष्ठे श्वा-गोष्ठश्वः	गोष्ठ=गोशाला में रहनेवाला श्वा=कुत्ता-गोष्ठश्व।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अचतुर०गोष्ठश्वाः) चतुर आदि शब्द (समासान्तः) समास के अवयव (अच्) अच्-प्रत्ययान्त निपातित है।*

उदा०-उदाहरण और इनका भाषार्थ संस्कृत-भाग में देख लेवें।

सिद्धि-(१) अचतुरः। नञ्+सु+चतुर्+जस्। न+चतुर्। अचतुर्+अच्। अचतुर+सु। अचतुरः।

यहां बहुव्रीहिः समास में विद्यमान 'अचतुर्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-विचतुरः, सुचतुरः।

*(२) **स्त्रीपुंसौ**। यहां द्वन्द्व समास में विद्यमान 'स्त्रीपुंस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**धेन्वनडुहौ, ऋक्सामे, वाङ्मनसे, अक्षिभ्रुवम्, दारगवम्।***

(३) ऊर्वष्ठीवम्। यहां द्वन्द्व समास में विद्यमान 'ऊर्वष्ठीवत्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय और अंग के टि-भाग (अत्) का लोप निपातित है।

(४) पदष्ठीवम्। यहां द्वन्द्व समास में विद्यमान 'पादाष्ठीवत्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय और 'पाद' को 'पद्' आदेश निपातित है।

(५) **नक्तन्दिवम्।** यहां सप्तमी-अर्थ तथा द्वन्द्व समास में विद्यमान 'नक्तन्दिवा' शब्द से इस सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय और समास भी निपातित है।

(६) **रात्रिन्दिवम्।** यहां सप्तमी अर्थ और द्वन्द्व समास में विद्यमान 'रात्रिदिवा' शब्द से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय और पूर्व पद का मकारान्त भाव निपातित है।

(७) **अहर्दिवम्।** अहः और दिवा शब्द पर्यायवाची हैं यहां वीप्सा (व्याप्ति) अर्थ में द्वन्द्व समास और समासान्त अच् प्रत्यय निपातित है। 'च' के अर्थ में द्वन्द्व समास होता है, अतः यहां वीप्सा अर्थ में निपातित किया गया है।

(८) **सरजसम्।** सह+सु+रजस्+टा। सह+रजस्। स+रजस्। सरजस्+अच्। सरजस+सु। सरजसम्।

यहां अव्ययीभाव समास में विद्यमान 'सरजस्' शब्द से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय निपातित है। यहां **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से अव्ययीभाव और **'अव्ययीभावे चाकाले'** (६।३।८१) से 'सह' को 'स' आदेश होता है।

(९) **निश्श्रेयसम्।** निस्+सु+श्रेयस्+सु। निश्श्रेयस्+अच्। निश्श्रेयस+सु। निश्श्रेयसम्।

यहां प्रादितत्पुरुष समास में विद्यमान 'निश्श्रेयस्' शब्द से इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय निपातित है।

(१०) **जातोक्षः।** यहां कर्मधारय समास में विद्यमान 'जातोक्षन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**महोक्षः, वृद्धोक्षः।**

(११) **उपशुनम्।** उप+सु+श्वन्+ङस्। उप+श्वन्। अपश्वन्+अच्। उपश्वन्+अ। उपश्उअन्+अ। उपशुन्+अ। उपशुन+सु। उपशुनः।

यहां अव्ययीभाव समास में विद्यमान 'उपश्वन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से प्राप्त अंग के टि-भाग का लोप निपातन से नहीं होता है। **'श्वयुवमघोनामतद्धिते'** (६।४।१३३) से अप्राप्त सम्प्रसारण निपातन से किया जाता है। **'सम्प्रसारणाच्च'** (६।१।१०६) से अकार को पूर्वरूप आदेश होता है।

(१२) **गोष्ठश्वः।** यहां सप्तमी-समास में विद्यमान 'गोष्ठश्वन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है।

अच्-

(११) ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ।७८।

प०वि०-ब्रह्म-हस्तिभ्याम् ५।२ वर्चसः ५।१।

स०-ब्रह्म च हस्ती च तौ ब्रह्महस्तिनौ, ताभ्याम्-ब्रह्महस्तिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः समासान्तोऽच्।

अर्थः-ब्रह्महस्तिभ्यां परस्माद् वर्चःशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(ब्रह्म)** ब्रह्मणो वर्चः-ब्रह्मवर्चसम्। **(हस्ती)** हस्तिनो वर्चः-हस्तिवर्चसम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ब्रह्महस्तिभ्याम्) ब्रह्म और हस्ती शब्दों से परे (वर्चसः) वर्चस् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(ब्रह्म)** ब्रह्म का वर्च-ब्रह्मवर्चस। ब्रह्मतेज। **(हस्ती)** हस्ती=हाथी का वर्च-हस्तिवर्चस। हाथी का बल।*

*सिद्धि-**ब्रह्मवर्चसम्।** ब्रह्म+ङस्+वर्चस्+सु। ब्रह्म+वर्चस्। ब्रह्मवर्चस्+अच्। ब्रह्मवर्चस्+सु। ब्रह्मवर्चसम्।*

*यहां षष्ठी-समास में विद्यमान 'ब्रह्मवर्चस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**हस्तिवर्चसम्।***

अच्-

(१२) अवसमन्धेभ्यस्तमसः।७९।

प०वि०-अव-सम्-अन्धेभ्यः ५।३ तमसः ५।१।

स०-अवश्च सम् च अन्धश्च ते-अवसमन्धाः, तेभ्यः-अवसमन्धेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अवसमन्धेभ्यस्तमसः समासान्तोऽच्।

अर्थः-अवसमन्धेभ्यः परस्मात् तमःशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अवः)** अवहीनं तमः-अवतमसम्। **(सम्)** सन्ततं तमः-सन्तमसम्। **(अन्धः)** अन्धं च तत् तमः-अन्धतमसम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अवसमन्धेभ्यः) अव, सम्, अन्ध शब्दों से परे **(तमसः) तमस्** शब्द जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव **(अच्)** अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अव) अवहीन तम-अवतमस। घटा हुआ अन्धकार। (सम्) सन्तत तम-सन्तमस। फैला हुआ अन्धकार। (अन्ध) अन्ध तम-अन्धतमस। अन्धा करनेवाला अन्धकार। घोर अन्धेरा।

***सिद्धि-अवतमसम्।** अव+सु+तमस्+सु। अव+तमस्। अवतमस्+अच्। अवतमस+सु। अवतमसम्।*

*यहां प्रादिसमास में विद्यमान 'अवतमस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त **'अच्'** प्रत्यय है। ऐसे ही-**सन्तमसम्, अन्धतमसम्।***

अच्-

(१३) श्वसो वसीयःश्रेयसः।८०।

प०वि०-श्वसः ५।१ वसीयःश्रेयसः ५।१।

स०-वसीयश्च श्रेयश्च एतयोः समाहारो वसीयःश्रेयः, तस्मात्-वसीयःश्रेयसः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-श्वसो वसीयःश्रेयसः समासान्तोऽच्।

अर्थः-श्वसःशब्दात् पराभ्यां वसीयःश्रेयःशब्दान्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(वसीयः) श्वश्च तद् वसीयः-श्वोवसीयसं ते भूयात्। **(श्रेयः)** श्वश्च तच्छ्रेयः-श्वःश्रेयसं ते भूयात्। श्वः शब्दोऽत्र उत्तरपदस्याशीर्विषयां प्रशंसां समाचष्टे।

आर्यभाषाः *अर्थ-(श्वसः) श्वः शब्द से परे (वसीयःश्रेयसः) वसीयस् और श्रेयस् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(वसीयः) श्वःवसीयः-श्वोवसीयस तेरा हो। तेरा उत्तम वास हो। श्वःश्रेयः-श्वःश्रेयस तेरा हो। तेरा उत्तम सुख हो। 'श्वः' शब्द यद्यपि कालवाची है, किन्तु यहां शब्द शक्ति के स्वभाव से उत्तरपद के अर्थ की आशीर्वाद विषयक प्रशंसा अर्थ में ग्रहण किया जाता है।

*सिद्धि-**श्वोवसीयसम्।** श्वस्+सु+वसीयस्+सु। श्वस्+वसीयस्। श्वोवसीयस्+अच्। श्वोवसीयस+सु। श्वोवसीयसम्।*

*यहां कर्मधारय तत्पुरुष समास में विद्यमान 'श्वोवसीयस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-श्व:**श्रेयसम्।** यहां '**मयूरव्यंसकादयश्च**' (२।१।७२) से कर्मधारय समास है।*

अच्-

(१४) अन्ववतप्ताद्रहसः।८१।

प०वि०-अनु-अव-तप्तात् ५।१ रहसः ५।१।

स०-अनुश्च अवश्च तप्तं च एतेषां समाहारः-अन्ववतप्तम्, तस्मात्-अन्ववतप्तात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अन्ववतप्ताद् रहसः समासान्तोऽच्।

अर्थः-अन्ववतप्तेभ्यः परस्माद् रहःशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(अनुः) अनुगतं रहः-**अनुरहसम्।** **(अव)** अवहीनं रहः-अवरहसम्। **(तप्तम्)** तप्तं रहः-तप्तरहसम्।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(अन्ववतप्तात्) अनु, अव, तप्त शब्दों से परे (रहसः) रहस् शब्द जिसके अन्त में उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अनु) अनुगतं रहः-अनुरहस। रहस्य के अनुसार। (अव) अवहीन रहः-अवरहस। घटिया रहस्य। (तप्त) तप्त रहः-तप्तरहस। तपा हुआ रहस्य। अत्यन्त कठोर रहस्य।

*सिद्धि-(१) **अनुरहसम्।** अनु+सु+रहस्+सु। अनु+रहस। अनुरहस्+अच्। अनुरहस+सु। अनुरहसम्।*

*यहां प्रादि-समास में विद्यमानं 'अनुरहस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**अवरहसम्।***

*(२) **तप्तरहसम्।** यहां '**विशेषणं विशेष्येण बहुलम्**' (२।१।५७) से कर्मधारय समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

अच्–

(१५) प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्।८२।

प०वि०–प्रतेः ५।१ उरसः ५।१ सप्तमीस्थात् ५।१।

स०–सप्तम्यां तिष्ठति–सप्तमीस्थः, तस्मात्–सप्तमीस्थात् (उपपदतत्पुरुषः)।

अनु०–समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–प्रतेः सप्तमीस्थाद् उरसः समासान्तोऽच्।

अर्थः–प्रतिशब्दात् परस्मात् सप्तमीस्थाद् उरः-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–उरसि वर्तते–प्रत्युरसम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(प्रतेः) प्रति शब्द से परे (सप्तमीस्थात्) सप्तमी-अर्थ में विद्यमान (उरसः) उरः शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०–जो उरः=हृदय में विद्यमान है वह–प्रत्युरस।

सिद्धि–प्रत्युरसम्। प्रति+उरस्+सु। प्रति+उरस्। प्रत्युरस्+अच्। प्रत्युरस+सु। प्रत्युरसम्।

यहां प्रति शब्द से परे सप्तमी-अर्थ में विद्यमान उरःशब्दान्त 'प्रत्युरस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। यहां ***'अव्ययं विभक्ति०'*** *(२।१।६) से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव समास है।*

अच् (निपातनम्)–

(१६) अनुगवमायामे।८३।

प०वि०–अनुगवम् १।१ आयामे ७।१।

अनु०–समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–आयामेऽनुगवं समासान्तोऽच्।

अर्थः–आयामेऽर्थे 'अनुगवम्' इत्यत्र समासान्तोऽच् प्रत्ययो निपात्यते।

उदा०–गोरनु–अनुगवं यानम्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(आयामे) विस्तार अर्थ में (अनुगवम्) अनुगव शब्द में (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय निपातित है।*

उदा०-गौः=बैल के अनु=आयाम (लम्बाई) का-अनुगव यान (रथ)। बैलों के नाप को ध्यान में रखकर बनाया गया पूरा लम्बा रथ।

सिद्धि-अनुगवम्। *अनु+सु+गो+ङस्। अनु+गो। अनुगो+अच्। अनुगव+सु। अनुगवम्।*

यहां आयाम अर्थ में विद्यमान 'अनुगो' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय निपातित है। यहां 'यस्य चायामः' (२।१।१६) से अव्ययीभाव समास होता है।

अच्–

(१७) द्विस्तावा त्रिस्तावा वेदिः।८४।

प०वि०-द्विस्तावा १।१ त्रिस्तावा १।१ वेदिः १।१।

अनु०-समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विस्तावा त्रिस्तावा समासान्तोऽच्, वेदिः।

अर्थः-द्विस्तावा, त्रिस्तावा इत्यत्र समासान्तोऽच् प्रत्ययो निपात्यते, वेदिश्चेत् सा भवति।

उदा०-द्विस्तावती-द्विस्तावा वेदिः। त्रिस्तावती-त्रिस्तावा वेदिः।

यावती प्रकृतौ वेदिर्विहिता ततो द्विगुणा त्रिगुणा वा कस्याञ्चिद् विकृतौ वेदिर्विधीयते तत्रेदं निपातनं वेदितव्यम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्विस्तावा, त्रिस्तावा) द्विस्तावा, त्रिस्तावा यहां (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय निपातित है (विदिः) यदि वह वेदि हो।*

उदा०-द्विगुणा वेदि-द्विस्तावा। त्रिगुणा वेदि-त्रिस्तावा।

मूलयज्ञ में जितनी बड़ी वेदि का विधान किया गया है यदि किसी अश्वमेध आदि विकृति याग में उससे दुगुणी वा तिगुणी बड़ी वेदि बनाई जाये उसे द्विस्तावा वा त्रिस्तावा वेदि कहते हैं।

सिद्धि-द्विस्तावा। *द्विस्+सु+तावत्+सु। द्विस्तावत्+अच्। द्विस्ताव+अ। द्विस्ताव+टाप्। द्विस्तावा+सु। द्विस्तावा।*

*यहां वेदि अर्थ अभिधेय में 'द्विस्तावत्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त अच् प्रत्यय है, निपातन से अंग के टि-भाग (अत्) का लोप और समास निपातित है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**त्रिस्तावा।***

अच्–

(१८) उपसर्गादध्वनः।८५।

प०वि०–उपसर्गात् ५।१ अध्वनः ५।१।

अनु०–समासान्ताः, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–उपसर्गाद् अध्वनः समासान्तोऽच्।

अर्थः–उपसर्गात् परस्माद् अध्वन्-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–प्रगतोऽध्वानम्-प्राध्वो रथः। प्राध्वं शकटम्। निष्क्रान्तमध्वनः-निरध्वं शकटम्। अत्यध्वं शकटम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उपसर्गात्) उपसर्ग से परे (अध्वनः) अध्वन् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अध्वा=मार्ग में चलनेवाला रथ-प्राध्व रथ। प्राध्व शकट (छकड़ा)। मार्ग से निकला हुआ शकट-निरध्व शकट। मार्ग को पार किया हुआ शकट-अत्यध्व शकट।

सिद्धि-प्राध्वम्। प्र+सु+अध्वन्+अम्। प्र+अध्वन्। प्राध्वन्+अच्। प्राध्व्+अ। प्राध्व+सु। प्राध्वम्।

यहां प्रादि-समास में विद्यमान 'प्राध्वन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग का लोप होता है। यहां 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादि तत्पुरुष समास है। ऐसे ही-निरध्वम्, अत्यध्वम्।

(क) तत्पुरुषसमासः

अच्–

(१) तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः।८६।

प०वि०–तत्पुरुषस्य ६।१ अङ्गुलेः ६।१ संख्या-अव्ययादेः ६।१ (पञ्चम्यर्थे)।

स०–संख्या च अव्ययं च एतयोः समाहारः संख्याव्ययम्, संख्याव्ययमादिर्यस्य स संख्याव्ययादिः, तस्य-संख्याव्ययादेः (समाहारद्वन्द्व-गर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ता:, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वय:-संख्याव्ययादेरङ्गुलेस्तत्पुरुषात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच्।

अर्थ:-संख्यादेरव्ययादेश्चाङ्गुल्यन्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(संख्यादि:) द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य-द्व्यङ्गुलम्। त्र्यङ्गुलम्। **(अव्ययादि:)** निर्गतमङ्गुलिभ्य:-निरङ्गुलम्। अत्यङ्गुलम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(संख्याव्ययादे:) संख्या और अव्यय जिसके आदि में हैं तथा (अङ्गुले:) अङ्गुलि शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषस्य) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्त:) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(संख्यादि) दो अङ्गुलियां प्रमाण (माप) है इसका यह-द्व्यङ्गुल। तीन अङ्गुलियां प्रमाण है इसका यह-त्र्यङ्गुल। (अव्यय) अङ्गुलियों से निकला हुआ-निरङ्गुल, अङ्गुलि रहित। अङ्गुलियों को अतिक्रमण किया हुआ-अत्यङ्गुल।

सिद्धि-द्व्यङ्गुलम्। द्वि+औ+अङ्लि+औ। द्वि+अङ्गुलि+मात्रच्। द्व्यङ्लि+०। द्व्यङ्लि+अच्। द्व्यङ्ल्+अ। द्व्यङ्गुल+सु। द्व्यङ्गुलम्।

यहां संख्यादि, अङ्गुलि-शब्दान्त, तत्पुरुष-संज्ञक 'द्व्यङ्गुलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। प्रमाण अर्थ में 'प्रमाणे द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच:' (५।२।३७) से प्राप्त मात्रच् प्रत्यय का वा-'प्रमाणे लो द्विगोर्नित्यम्' (५।२।३७) से नित्य लोप होता है। यहां 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५१) से तद्धितार्थ में द्विगु-तत्पुरुष समास है। ऐसे ही-त्र्यङ्गुलम्।

(२) निरङ्गुलम्। निर्+सु+अङ्गुलि+भ्यस्। निर्+अङ्गुलि। निरङ्गुलि+अच्। निरङ्गुल्+अ। निरङ्गुल+सु। निरङ्गुलम्।

यहां अव्ययादि, अङ्गुलि-शब्दान्त तत्पुरुष-संज्ञक 'निरङ्गुलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। यहां 'कुगतिप्रादय:' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-अत्यङ्गुलम्।

अच्-

(२) अह:सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रे:।८७।

प०वि०-अह:-सर्व-एकदेश-संख्यात-पुण्यात् ५।१ च अव्ययपदम्, रात्रे: ५।१।

स०-अहश्च सर्वं च एकदेशश्च संख्यातं च पुण्यं च एतेषां समाहारः-अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्यम्, तस्मात्-अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्यात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, अच्, तत्पुरुषस्य, संख्याव्ययादेरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्यात् संख्याव्ययदेश्च रात्रेस्तत्पुरुषात् समासान्तोऽच्।

अर्थः-अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्येभ्यः संख्यादेरव्ययादेश्च परस्मात् रात्रिशब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अहः)** अहश्च रात्रिश्च-अहोरात्रः। **(सर्वम्)** सर्वा चेयं रात्रिः-सर्वरात्रः। **(एकदेशः)** पूर्वं रात्रेः-पूर्वरात्रः। अपररात्रः। **(संख्यातम्)** संख्याता चासौ रात्रिः-संख्यातरात्रः। **(पुण्यम्)** पुण्या चासौ रात्रिः-पुण्यरात्रः। **(संख्यादिः)** द्वयो रात्र्योः समाहारः-द्विरात्रः। त्रिरात्रः। **(अव्ययादिः)** अतिक्रान्तो रात्रिम्-अतिरात्रः। निष्क्रान्तो रात्र्याः-नीरात्रः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्यात्) अहः, सर्व, एकदेश, संख्यात, पुण्य शब्दों से (च) और (संख्याव्ययादेः) संख्यादि और अव्ययादि (रात्रेः) रात्रि शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से परे (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अहः) अहः=दिन और रात्रि-अहोरात्र। (सर्व) सर्व=सारी रात्रि-सर्वरात्र। (एकदेश) रात्रि का पूर्व भाग-पूर्वरात्र। रात्रि का अपरभाग (पश्चिमभाग)- अपररात्र। (संख्यात) संख्यात=गिनी हुई रात्रि-संख्यातरात्र। (पुण्य) पुण्य=शुभ रात्रि-पुण्यरात्र। (संख्यादि) दो रात्रियों का समाहार-द्विरात्र। तीन रात्रियों का समाहार-त्रिरात्र। (अव्ययादि) रात्रि का अतिक्रमण किया हुआ-अतिरात्र। रात्रि से निकला हुआ-नीरात्र।

सिद्धि-(१) अहोरात्रः। अहन्+सु+रात्रि+सु। अहन्+रात्रि। अहरुरात्रि। अहर्+रात्रि। अहउ+रात्रि। अहोरांत्रि+अच्। अहोरात्र्+अ। अहोरात्र+सु। अहोरात्रः।

यहां अहन् शब्द से उत्तर रात्रि शब्द का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से द्वन्द्वसमास है। यहां तत्पुरुष सम्भव नहीं है अतः 'तत्पुरुष' विशेषण इससे अन्यत्र सम्बद्ध होता है। 'अहोरात्रि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। वा०-'अह्नो रुविधौ रूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्यानम्' (८।२।६८) से नकार को रुत्व और 'हशि च' (६।१।११४)

*से रेफ को उत्व होता है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। **'रात्राह्नाहाः पुंसि'** (२।४।२९) से पुंलिङ्गता होती है।*

*(२) **सर्वरात्र।** यहां सर्व और रात्रि शब्दों का **'पूर्वकालैकसर्व०'** (२।१।४९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **पूर्वरात्रः।** यहां पूर्व और रात्रि शब्दों का **'पूर्वपरावराधर०'** (२।१।१) से एकदेशितत्पुरुष समास होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **संख्यातरात्रः।** यहां संख्यात और रात्रि शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-पुण्यरात्रः।*

*(५) **द्विरात्रः।** यहां द्वि और रात्रि शब्दों का **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है, शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-त्रिरात्रः।*

*(६) **अतिरात्रः।** यहां अति और रात्रि शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है।*

*(७) **नीरात्रः।** यहां निर् और रात्रि शब्दों का पूर्ववत् प्रादितत्पुरुष समास है। 'रो रि' (८।३।१४) से 'निर्' के रेफ का लोप होकर **'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः'** (६।३।१११) से दीर्घत्व होता है।*

अह्न-आदेशः–

(३) अह्नोऽह्न एतेभ्यः।८८।

प०वि०-अह्नः ६।१ अह्नः १।१ एतेभ्यः ५।३।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, संख्याव्ययादेः, सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-एतेभ्यः=संख्याव्ययादेः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्येभ्यस्तत्पुरुषस्याह्नः समासान्तोऽह्नः।

अर्थः-एतेभ्यः=संख्याव्ययादेः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्येभ्यश्च परस्य तत्पुरुषसंज्ञकस्य अहन्-शब्दस्य स्थाने समासान्तोऽह्न आदेशो भवति।

उदा०-(संख्यादिः) द्वयोरह्नो भवः-द्व्यह्नः। त्र्यह्नः। (अव्ययादिः) अहरतिक्रान्तः-अत्यह्नः। अह्नो निष्क्रान्तः-निरह्नः। (सर्वम्) सर्व च

तदहः-सर्वाह्नः । (एकदेशः) पूर्वम् अह्नः-पूर्वाह्णः । अपराह्णः । (संख्यातम्) संख्यातं च तदहः-संख्याताह्नः (पुण्यम्) पुण्यशब्दात् 'उत्तमैकाभ्यां च' (५।४।९०) इति प्रतिषेधं वक्ष्यति । तत्र उत्तमशब्दः पुण्यवचनः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(एतेभ्यः) इन संख्यादि और अव्ययादि तथा (सर्वैकदेश-संख्यातपुण्यात्) सर्व, एकदेश, संख्यात, पुण्य शब्दों से परे (तत्पुरुषस्य) तत्पुरुष संज्ञक (अह्नः) अहन् शब्द के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अह्नः) अह्न आदेश होता है।*

उदा०-(संख्यादि) दो अहन्=दिनों में होनेवाला-द्व्यह्न। तीन अहन्=दिनों में होनेवाला-त्र्यह्न। (अव्ययादि) अहन्=दिनों को अतिक्रान्त किया हुआ-अत्यह्न। अहन्=दिन में निकला हुआ-निरह्न। (सर्व) सर्व=सारा अहन्=दिन-सर्वाह्ण। (एकदेश) अहन्=दिन का पूर्वभाग-पूर्वाह्ण। अहन्=दिन का अपर (पश्चिम) भाग-अपराह्ण। (संख्यात) संख्यात=गिना हुआ अहन्=दिन-संख्यातह्न। (पुण्य) पुण्य शब्द से 'उत्तमैकाभ्यां च' (५।५।९०) से अह्न-आदेश का प्रतिषेध किया जायेगा। वहां 'उत्तम' शब्द पुण्यवाची है।

सिद्धि-(१) द्व्यह्नः। द्वि+ओस्+अहन्+ओस्+अण्। द्वि+अहन्+द्वि+अह्न। द्व्यह्न+सु। द्व्यह्नः।

यहां द्वि और अहन् शब्दों का 'तद्धितार्थोत्तरसमाहारे च' (२।१।५१) से तद्धितार्थ विषय में द्विगुतत्पुरुष समास है, 'तत्र भवः' (४।३।५३) से तद्धित अण् प्रत्यय और 'द्विगोर्लुगनपत्ये' (४।१।८८) से उसका लुक् होता है। इस सूत्र से 'अहन्' के स्थान में समासान्त 'अह्न' आदेश होता है। ऐसे ही-त्र्यह्नः।

(२) अत्यह्नः आदि की सिद्धि पूर्ववत् है, केवल अहन् के स्थान में अह्न-आदेश विशेष है।

अह्नादेश-प्रतिषेधः—

(४) न संख्यादेः समाहारे।८९।

प०वि०-न अव्ययपदम्, संख्यादेः ६।१ समाहारे ७।१।

स०-संख्या आदिर्यस्य स संख्यादिः, तस्य-संख्यादेः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, अह्नः, अह्न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-समाहारे संख्यादेस्तत्पुरुषस्याह्नोऽह्नो न।

अर्थः-समाहारेऽर्थे वर्तमानस्य संख्यादेस्तत्पुरुषसंज्ञकस्य अहन्-शब्दस्य स्थाने समासान्तोऽह्न आदेशो न भवति।

उदा०-द्वयोरह्नोः समाहारः-द्व्यहः। त्र्यहः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समाहारे) समाहार अर्थ में विद्यमान (संख्यादेः) संख्या जिसके आदि में है उस (तत्पुरुषस्य) तत्पुरुषसंज्ञक (अह्नः) अहन् शब्द के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अह्न) अह्न आदेश (न) नहीं होता है।*

उदा०-दो अहन्=दिनों का समाहार-द्व्यह। तीन अहन्=दिनों का समाहार-त्र्यह।

सिद्धि-द्व्यहः। द्वि+ओस्+अहन्+ओस्। द्वि+अहन्। द्व्यहन्+टच्। द्व्यह्+अ। द्व्यह+सु। द्व्यहः।

*यहां संख्यादि, तत्पुरुषसंज्ञक अहन्-शब्दान्त 'द्व्यहन्' शब्द से इस सूत्र से अहन् के स्थान में अह्न आदेश का प्रतिषेध है। '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। '**राजाहःसखिभ्यष्टच्**' (५।४।९१) से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। '**अह्नष्टखोरेव**' (६।४।१४५) से 'अहन्' के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-त्र्यहः।*

अह्नादेश-प्रतिषेधः–

(५) उत्तमैकाभ्यां च।६०।

प०वि०-उत्तम-एकाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्।

स०-उत्तमं च एकं च ते-उत्तमैके, ताभ्याम्-उत्तमैकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, अह्नः, अह्नः, न इति चानुवतति।

अन्वयः-उत्तमैकाभ्यां तत्पुरुषस्याह्नः समासान्तोऽह्नो न।

अर्थः-उत्तमैकाभ्यां परस्य तत्पुरुषसंज्ञकस्य अहन्-शब्दस्य स्थाने समासान्तोऽह्न आदेशो न भवति। अन्त्यवचन उत्तमशब्दोऽत्र पुण्यशब्दमाचष्टे, पुण्यग्रहणं तु वैचित्र्यार्थ पाणिनिना नैव कृतम्।

उदा०-**(उत्तमम्)** उत्तमम्=पुण्यं चेदमहः-पुण्याहः। **(एकम्)** एकं च तदहः-एकाहः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उत्तमैकाभ्याम्) उत्तम और एक शब्दों से परे (तत्पुरुषस्य) तत्पुरुष-संज्ञक (अह्नः) अहन् शब्द के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अह्नः) अह्न आदेश (न) नहीं होता है।*

*उत्तम शब्द अन्त्यवाची है किन्तु यहां पुण्य शब्द का वाचक है, पाणिनिमुनि ने यहां **विचित्र-रचना में 'पुण्य' शब्द का उल्लेख नहीं किया।***

उदा०-(उत्तम) उत्तम=पुण्य अहन्=दिन-पुण्याह। (एक) एक अहन्=दिन-एकाह।

सिद्धि-(१) ***पुण्याहः।*** *यहां पुण्य और अहन् शब्दों का* ***'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'*** *(२।१।५७) से कर्मधारय-तत्पुरुष समास है। इस सूत्र से 'अहन्' के स्थान में अह्न आदि का प्रतिषेध है। पूर्ववत् समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है।*

(२) ***एकाहः।*** *यहां एक और अहन् शब्दों का* ***'पूर्वकालैकसर्व०'*** *(२।१।४९) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

टच्-

(६) राजाहःसखिभ्यष्टच्।६१।

प०वि०-राज-अहः-सखिभ्यः ५।३ टच् १।१।

स०-राजा च अहश्च सखा च ते-राजाहःसखायः, तेभ्यः-राजाहःसखिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-राजाहःसख्यान्तात् तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-राजाहःसख्यन्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(राजा) महाँश्चासौ राजा-महाराजः। मद्राणां राजा-मद्रराजः। (अहः) परमं च तदहः-परमाहः। उत्तमं च तदहः-उत्तमाहः। (सखा) राज्ञः सखा-राजसखः। आचार्यस्य सखा-आचार्यसखः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(राजाहःसखिभ्यः) राजन्, अहन्, सखि शब्द जिसके अन्त में हैं उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुषसंज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(राजा) महान् राजा-महाराज। मद्र देश का राजा-मद्रराज। (अहन्) परम अहन्=दिन-परमाह (बड़ा दिन)। उत्तम अहन्=उत्तमाह (शुभ दिन)। (सखा) राजा का सखा=मित्र-राजसख। आचार्य का सखा-आचार्यसख।

सिद्धि-(१) ***महाराजः।*** *महत्+सु+राजन्+सु। महत्+राजन्। महा+राजन्। महाराजन्+टच्। महाराज्+अ। महाराज+सु। महाराजः।*

यहां 'महाराजन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। यहां महत् और राजन् शब्दों में* ***'सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः'*** *(२।१।६१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है।*

(२) **मद्रराजः।** यहां मद्र और राजन् शब्दों में 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) **परमाहः।** परम+सु+अहन्+सु। परम+अहन्। परमाहन्+टच्। परमाह्+अ। परमाह+सु। परमाहः।

यहां परम और अहन् शब्दों में पूर्ववत् कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'अह्नष्टखोरेव' (६।४।१५४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-उत्तमाहः।

(४) **राजसखः।** यहां राजन् और सखि शब्दों में 'षष्ठी' (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'राजसखि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय करने पर 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-आचार्यसखः।

टच्-

(७) गोरतद्धितलुकि।६२।

प०वि०-गोः ५।१ अतद्धितलुकि ७।१।

स०-तद्धितस्य लुक्-तद्धितलुक्, न तद्धितलुक्-अतद्धितलुक्, तस्मिन्-अतद्धितलुकि (षष्ठीगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अतद्धितलुकि गोस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-अतद्धितलुकि=तद्धितलुग्विषयवर्जिताद् गोशब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-परमश्चासौ गौः-परमगवः। उत्तमगवः। पञ्चानां गवां समाहारः-पञ्चगवम्। दशगवम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतद्धितलुकि) तद्धित-लुक् विषय से भिन्न (गोः) गो शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुषसंज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-परम=बड़ा गौः=बैल-परमगव। उत्तम गौः=बैल-उत्तमगव। पांच गौओं का समाहार-पञ्चगव। दश गौओं का समाहार-दशगव।

सिद्धि-(१) **परमगवः।** *परम+सु+गो+सु। परम+गो। परमगो+टच्। परमगव+सु। परमगवः।*

यहां परम और गो शब्दों में 'सन्महत्परम०' (२।१।६१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'परमगो' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। 'एचोऽयवायावः' (६।१।७८) से अव्-आदेश होता है। ऐसे ही-उत्तमगवः।

(२) पञ्चगवम्। पञ्चम्+आम्+गो+आम्। पञ्चन्+गो। पञ्चगो+टच्। पञ्चगव+सु। पञ्चगवम्।

यहां पञ्चन् और गो शब्दों में ***'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'*** *(२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगुतत्पुरुष समास है। 'परमगो' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। पूर्ववत् 'अव्' आदेश होता है। ऐसे ही-दशगवम्।*

टच्–

(८) अग्राख्यायामुरसः।६३।

प०वि०–अग्राख्यायाम् ७।१ उरसः ५।१।

स०–अग्रस्याऽऽख्या-अग्राख्या, तस्याम्-अग्राख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)। अग्रम्=प्रधानम्।

अनु०–समासान्ता, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अग्राख्यायामुरसस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः–अग्राख्यायाम्=अग्रार्थे वर्तमानाद् उरश्शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अश्वानामुरः-अश्वोरसम्। हस्त्युरसम्। रथोरसम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अग्राख्यायाम्) प्रधान अर्थ में विद्यमान (उरसः) उरस् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-अश्व=घोड़ों में उरस्=प्रधान-अश्वोरस। हस्ती=हाथियों में उरस्=प्रधान-हस्त्युरस। रथों में उरस्=प्रधान-रथोरस।

सिद्धि-अश्वोरसम्। *अश्व+आम्+उरस्+सु। अश्व+उरस्। अश्वोरस्+टच्। अश्वोरस+सु। अश्वोरसम्।*

यहां अश्व और उरस् शब्दों में ***'षष्ठी'*** *(२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। 'अश्वोरस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-हस्त्युरसम्, रथोरसम्।*

जैसे शरीर के अवयवों का उरस्=हृदय प्रधान होता है वैसे अन्य कोई प्रधान भी 'उरस्' कहाता है।

टच्–

(६) अनोऽश्मायस्सरसां जातिसंज्ञयोः।६४।

प०वि०–अनः-अश्म-अयस्-सरसाम् ६।३ (पञ्चम्यर्थे) जाति-संज्ञयोः ७।२।

स०–अनश्च अश्मा च अयश्च सरश्च ते-अनोऽश्मायस्सरसः, तेषाम्-अनोऽश्मायस्सरसाम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। जातिश्च संज्ञा च ते ज्ञातिसंज्ञे, तयोः-ज्ञातिसंज्ञयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ताः, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–जातिसंज्ञयोरनोऽश्मायस्सरोभ्यस्तत्पुरुषेभ्यः समासान्तष्टच्।

अर्थः–जातौ संज्ञायां च विषये वर्तमानेभ्योऽनोऽश्मायस्सरोऽन्तेभ्यस्तत्पुरुषसंज्ञकेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(अनः)** उपगतमनः-उपानसम् (जातिः)। महच्च तदनः-महानसम् (संज्ञा)। **(अश्मा)** अमृतश्चासावश्मा-अमृताश्मः (जातिः)। पिण्डश्चासावश्मा-पिण्डाश्मः (संज्ञा)। **(अयः)** कालश्च तदयः-कालायसम् (जातिः)। लोहितं च तदयः-लोहितायसम् (संज्ञा)। **(सरः)** मण्डूकानां सरः-मण्डूकसरसम् (जातिः)। जलस्य सरः-जलसरसम् (संज्ञा)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जातिसंज्ञयोः) जाति और संज्ञा विषय में विद्यमान (अनोश्मायस्सरसाम्) अनस्, अश्मन्, अयस्, सरस् शब्द जिसके अन्त में हैं उन (तत्पुरुषेभ्यः) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–उपगत अनः-उपानस=प्राणी (जाति)। महत् अनः-महानस (रसोई) (संज्ञा)। **(अश्मा)** अमृत अश्मा-अमृताश्म पत्थर जातिविशेष। पिण्ड अश्मा-पिण्डाश्म। गोलाकार पत्थर संज्ञाविशेष। **(अयस्)** काल-अयः-कालायस। लोहा जाति। लोहित अयः-लोहितायस। ताम्बा (संज्ञा)। मण्डूकों का सरः-मण्डूकसरस। तालाब (जातिविशेष)। जल का सरः-जलसरस। जल से भरा तालाब (संज्ञा)।*

सिद्धि-(१) उपानसम्। उप+सु+अनस्+सु। उप+अनस्। उपानस्+टच्। उपानस+सु। उपानसम्।

यहां 'कुगति' प्र और अनस् शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष ***समास है। 'उपानस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है।***

(२) महानसम्। यहां महत् और अनस् शब्दों का **'सन्महत्परमोत्तम०'** (२।१।६१) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। **'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः'** (६।३।४६) से आत्त्व होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(३) अमृताश्म। यहां अमृत और अश्मन् शब्दों का **'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'** (२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। 'अमृताश्मन्' शब्द से इस सूत्र से 'टच्' प्रत्यय करने पर **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-**पिण्डाश्म, कालायसम्, लोहितायसम्।**

(४) मण्डूकसरसम्। यहां मण्डूक और 'सरस्' शब्दों का **'षष्ठी'** (२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**जलसरसम्।**

टच्–

(१०) ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णः।६५।

प०वि०-ग्राम-कौटाभ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्, तक्ष्णः ५।१।

स०-कुट्यां भवः-कौटः। ग्रामश्च कौटश्च तौ ग्रामकौटौ, ताभ्याम्-ग्रामकौटाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-ग्रामकौटाभ्यां च तक्ष्णस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-ग्रामकौटाभ्यां परस्मात् तक्षन्-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**ग्रामः**) ग्रामस्य तक्षा-ग्रामतक्षः। बहूनां साधारण इत्यर्थः। (**कौटः**) कौटस्य तक्षा-कौटतक्षः। स्वतन्त्रः कर्मजीवी, न कस्यचित् प्रतिबद्ध इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(ग्रामकौटाभ्याम्) ग्राम और कौट शब्दों से परे (तक्ष्णः) तक्षन् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(ग्राम)** ग्राम का तक्षा=बढ़ई-ग्रामतक्ष। बहुत जनों का सधारण बढ़ई। **(कौट)** कौट=अपनी कुटी में रहनेवाला-तक्षा-बढ़ई-कौटतक्ष। स्वतन्त्र बढ़ई।*

विशेषः *अपनी कुटी या घर की दुकान पर काम करनेवाला कौटतक्ष और भृति या मजदूरी पर गांव में जाकर काम करनेवाला ग्रामतक्ष कहलाता था। अपने ठीहे पर काम करनेवाले को लोग कुछ अधिक सम्मानित समझते हैं (पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ० २२४)।*

टच्–

(११) अतेः शुनः ।६६।

प०वि०–अतेः ५ ।१ शुनः ५ ।१ ।

अनु०–समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अतेः शुनस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः–अतेः परस्मात् श्वन्-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–अतिक्रान्तः श्वानम्-अतिश्वो वराहः । जववानित्यर्थः । अतिश्वः सेवकः । सुष्ठु स्वामिभक्त इत्यर्थः ।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अतेः) अति शब्द से परे (शुनः) श्वन् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव* ***(टच्)*** *टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-श्वा=कुत्ते को अतिक्रान्त करनेवाला-अतिश्व वराह (सूअर)। कुत्ते से अधिक तेज दौड़नेवाला सूअर। श्वा=कुत्ते को अतिक्रान्त करनेवाला-अतिश्व सेवक। कुत्ते से भी बढ़कर सेवक (स्वामी का भक्त)।

सिद्धि-अतिश्वः। अति+सु+श्वन्+अम्। अति+श्वन्। अतिश्वन्+टच्। अतिश्व्+अ। अतिश्व+सु। अतिश्वः।

यहां अति और श्वन् शब्दों का 'कुगतिप्रादयः' (२।२।१८) से प्रादितत्पुरुष समास है। 'अतिश्वन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है।

टच्–

(१२) उपमानादप्राणिषु ।६७।

प०वि०–उपमानात् ५ ।१ अप्राणिषु ७ ।३ ।

स०–न प्राणिनः-अप्राणिनः, तेषु-अप्राणिषु (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच्, शुन इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अप्राणिषु उपमानात् शुनस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः–अप्राणिषु=प्राणिवर्जिताद् उपमानवाचिनः श्वन्-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-आकर्षः श्वा इव-आकर्षश्वः। फलकः श्वा इव-फलकश्वः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अप्राणिषु) प्राणी अर्थ से भिन्न (उपमानात्) उपमानवाची (शुनः) श्वन् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुषसंज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-आकर्ष=चौपड़ की बिसात जो श्वा=कुत्ते के आकार की है वह-आकर्षश्व। फलक=शतरंज का फट्टा जो श्वा=कुत्ते के आकार का है वह-फलकश्व।

सिद्धि-आकर्षश्वः। *यहां आकर्ष और अप्राणी तथा उपमानवाची श्वन् शब्दों का **'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे'** (२।१।५६) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**फलकश्वः।***

टच्-

(१३) उत्तरमृगपूर्वाच्च सक्थ्नः।९८।

प०वि०-उत्तर-मृग-पूर्वात् ५।१ च अव्ययपदम्, सक्थ्नः ५।१।

स०-उत्तरं च मृगश्च पूर्वं च एतेषां समाहारः-उत्तरमृगपूर्वम्, तस्मात्-उत्तरमृगपूर्वात् (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच्, उपमानाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-उत्तरमृगपूर्वाद् उपमानाच्च सक्थ्नस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-उत्तर-मृग-पूर्वाद् उपमानवाचिनश्च परस्मात् सक्थि-अन्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(उत्तरम्) उत्तरं सक्थ्नः-उत्तरसक्थम्। **(मृगः)** मृगस्य सक्थि-मृगसक्थम्। **(पूर्वम्)** पूर्वं सक्थ्नः-पूर्वसक्थम्। **(उपमानात्)** फलकमिव सक्थि-फलकसक्थम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(उत्तरमृगपूर्वात्) उत्तर, मृग, पूर्व (च) और (उपमानात्) उपमानवाची शब्द से परे (सक्थ्नः) सक्थि शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(उत्तर)** सक्थि=जंघा का उत्तरभाग-उत्तरसक्थ। **(मृग)** मृग की सक्थि-मृगसक्थ। **(पूर्व)** सक्थि का पूर्वभाग-पूर्वसक्थ। **(उपमान)** फलक=फट्टे की आकृति की सक्थि-फलकसक्थ।*

सिद्धि-(१) ***उत्तरसक्थम्।*** *उत्तर+सु+सक्थि+ङस्। उत्तर+सक्थि+टच्। उत्तरसक्थ्+अ। उत्तरसक्थ+सु। उत्तरसक्थम्।*

यहां उत्तर और सक्थि शब्दों का ***'पूर्वापराधरोत्तर०'*** *(२।२।१) से एकदेशी तत्पुरुष समास है। इस 'उत्तरसक्थि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है।* ***'यस्येति च'*** *(६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-****पूर्वसक्थम्।***

(२) ***मृगसक्थम्।*** *यहां मृग और सक्थि शब्दों का* ***'षष्ठी'*** *(२।२।८) से षष्ठीतत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(३) ***फलकसक्थम्।*** *यहां उपमानवाची फलक और सक्थि शब्दों का* ***'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्'*** *(२।१।५७) से कर्मधारय तत्पुरुष समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

टच्–

(१४) नावो द्विगोः।६६।

प०वि०-नावः ५।१ द्विगोः ५।१।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-नावो द्विगोस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-नौशब्दान्ताद् द्विगुसंज्ञकात् तत्पुरुषात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(समाहारे)** द्वयोर्नाव्योः समाहारः-द्विनावम्, त्रिनावम्। **(उत्तरपदे)** द्वे नावौ धनं यस्य-द्विनावधनः। पञ्च नावः प्रिया यस्य-पञ्चनावप्रियः। **(तद्धितार्थे)** द्वाभ्यां नौभ्यामागतम्-द्विनावरूप्यम्, द्विनावमयम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(नावः) नौ शब्द जिसके अन्त में है उस (द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

द्विगुतत्पुरुष ***'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'*** *(२।१।५१) से समाहार, उत्तरपद और तद्धितार्थ विषय में होता है।*

उदा०-(समाहार) दो नौकाओं का समाहार-द्विनाव। तीन नौकाओं का समाहार-त्रिनाव। (उत्तरपद) दो नौकायें धन हैं जिसका वह-द्विनावधन। पांच नौकायें धन हैं जिसका वह-पञ्चनावधन। (तद्धितार्थ) दो नौकाओं से आया हुआ-द्विनावरूप्य, द्विनावमय द्रव्य।

*सिद्धि-(१) **द्विनावम्**। द्वि+ओस्+नौ+ओस्। द्वि+नौ। द्विनौ+टच्। द्विनाव्+अ। द्विनाव+सु। द्विनावम्।*

*यहां नौ-अन्त, द्विगुतत्पुरुष-संज्ञक 'द्विनौ' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। **'एचोऽयवायावः'** (६।१।७७) से औ को आव् आदेश होता है।*

*(२) **द्विनावधनः**। द्वि+औ+नौ+औ+धन। द्वि+नौ+धन। द्विनौ+टच्+धन। द्विनौ+अ+धन। द्विनावधन+सु। द्विनावधनः।*

*यहां द्वि, नौ, धन इन शब्दों का त्रिपद बहुव्रीहि समास करने पर **'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च'** (२।१।५१) से 'द्विनौ' शब्द की **'संख्यापूर्वो द्विगुः'** (२।१।५२) से द्विगुतत्पुरुष संज्ञा होती है। तत्पश्चात् उस 'द्विनौ' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-**पञ्चनावप्रियः**।*

*(३) **द्विनावरूप्यम्**। द्वि+भ्याम्+नौ+भ्याम्+रूप्य। द्वि+नौ+रूप्य। द्विनौ+टच्+रूप्य। द्विनौ+अ+रूप्य। द्विनावरूप्य+सु। द्विनावरूप्यः।*

*यहां पूर्ववत् 'द्विनौ' शब्द की द्विगुतत्पुरुष संज्ञा होकर **हेतुमनुष्येभ्योऽन्यतरस्यां रूप्यः'** (४।३।८१) से 'आगत' तद्धितार्थ में 'रूप्य' प्रत्यय होता है।*

*(४) **द्विनावमयम्**। यहां 'मयट् च' (४।३।८२) से 'आगत' तद्धितार्थ में 'मयट्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

टच्–

(१५) अर्धाच्च।१००।

प०वि०-अर्धात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनुवृत्तिः-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, नाव इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अर्धाच्च नावस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-अर्धशब्दाच्च परस्माद् नौशब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-अर्धं नावः-अर्धनावम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अर्धात्) अर्ध शब्द से परे (च) भी (नावः) नौ शब्द जिसके अन्त में उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-नौका का अर्धभाग-अर्धनाव।

*सिद्धि-**अर्धनावम्**। अर्ध+सु+नौ+ङस्। अर्धनौ+टच्। अर्धनाव्+अ। अर्धनाव+सु। अर्धनावम्।*

यहां 'अर्ध' और 'नौ' शब्दों का 'अर्धं नपुंसकम्' (२।२।२) से एकदेशी तत्पुरुष समास है। 'अर्धनौ' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। 'एचोऽयवायावः' (६।१।७७) से 'औ' को 'आव्' आदेश होता है। यहां 'परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः' (२।४।२६) से स्त्रीलिङ्गता प्राप्त है किन्तु 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य' (महाभाष्यम्) से नपुंसक-लिङ्गता होती है।

टच्–

(१६) खार्याः प्राचाम्।१०१।

प०वि०-खार्याः ५।१ प्राचाम् ६।३।

अनु०-समासान्ताः, तत्पुरुषस्य, द्विगोः, अर्धाच्च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-द्विगोरर्धाच्च खार्यास्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्, प्राचाम्।

अर्थः-द्विगुसंज्ञकाद् अर्धशब्दाच्च परस्मात् खार्यन्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति, प्राचामाचार्याणां मतेन।

उदा०-**(द्विगुः)** द्वयोः खार्योः समाहारः-द्विखारम्। द्विखारि। त्रिखारम्। त्रिखारि। **(अर्धात्)** अर्धं खार्याः-अर्धखारम्। अर्धखारी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्विगोः) द्विगु-संज्ञक (च) और (अर्धात्) अर्ध शब्द से परे (खार्याः) खारी शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(द्विगु) दो खारियों का समाहार-द्विखार। द्विखारि। तीन खारियों का समाहार-त्रिखार। त्रिखारि। (अर्ध) खारी का अर्धभाग-अर्धखार। अर्धखारी।। खारी=१६ द्रोण=१६० सेर (४ मण)।

*सिद्धि-(१) **द्विखारम्।** द्वि+ओस्+खारी+ओस्। द्वि+खारी। द्विखारि+टच्। द्विखार्+अ। द्विखार+सु। द्विखारम्।*

*यहां द्वि और खारी शब्दों का '**तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च**' (२।१।५१) से समाहार अर्थ में द्विगु-तत्पुरुष समास है। द्विगु-संज्ञक 'द्विखारि' शब्द से प्राक्देशीय आचार्यों के मत में इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। '**यस्येति च**' (४।४।१४८) से अंग के इकार का लोप है। ऐसे ही-**त्रिखारम्।***

*(२) **द्विखारि।** यहां पाणिनिमुनि के मत में समासान्त 'टच्' प्रत्यय नहीं है। द्विगु-संज्ञक तत्पुरुष में '**स नपुंसकम्**' (२।४।१७) से नपुंसकलिङ्गता और '**ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य**' (१।२।४७) से ह्रस्व होता है। ऐसे-**त्रिखारि।***

(३) अर्धखारम्। यहां अर्ध और खारी शब्दों का 'अर्धं नपुंसकम्' (२।२।२) से एकदेशी तत्पुरुष समास है। 'अर्धखारी' शब्द से प्राग्देशीय आचार्यों के मत में समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) अर्धखारी। यहां अर्ध और खारी शब्दों का पूर्ववत् एकदेशी तत्पुरुष समास है। पाणिनिमुनि के मत में समासान्त 'अच्' प्रत्यय नहीं है।

टच्–

(१७) द्वित्रिभ्यामञ्जलेः।१०२।

प०वि०–द्वित्रिभ्याम् ५।२ अञ्जलेः ५।१।

स०–द्विश्च त्रिश्च तौ–द्वित्री, ताभ्याम्–द्वित्रिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ताः, टच्, तत्पुरुषस्य, द्विगोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः–द्वित्रिभ्यामञ्जलेर्द्विगोस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः–द्वित्रिभ्यां परस्माद् अञ्जलिशब्दान्ताद् द्विगु-तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–(द्विः) द्वयोरञ्जल्योः समाहारः–द्व्यञ्जलम्। (त्रिः) त्रयाणामञ्जलीनां समाहारः–त्र्यञ्जलम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(द्वित्रिभ्याम्) द्वि और त्रि शब्दों से परे (अञ्जलेः) अञ्जलि शब्द जिसके अन्त में है उस (द्विगोः) द्विगु (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(द्वि) दो अञ्जलियों का समाहार-द्व्यञ्जल। (त्रि) तीन अञ्जलियों का समाहार-त्र्यञ्जल। अञ्जलि=१६ कर्ष (तोला)।

सिद्धि-द्व्यञ्जलम्। द्वि+ओस्+अञ्जलि+ओस्। द्वि+अञ्जलि। द्व्यञ्जलि+टच्। द्व्यञ्जल्+अ। द्व्यञ्जल+सु। द्व्यञ्जलम्।

यहां द्वि और अञ्जलि शब्दों का 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' (२।१।५१) से द्विगुतत्पुरुष समास है। 'द्व्यञ्जलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-त्र्यञ्जलम्।

टच्–

(१८) अनसन्तान्नपुंसकाच्छन्दसि।१०३।

प०वि०–अन्-असन्तात् ५।१ नपुंसकात् ५।१ छन्दसि ७।१।

स०-अन् च अस् च तौ-अनसौ, अनसावन्ते यस्य सः-अनसन्तः, तस्मात्-अनसन्तात् (इतरेतरयोगद्वन्द्वगर्भितबहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, टच्, तत्पुरुषस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि नपुंसकाद् अनसन्तात् तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-छन्दसि विषये नपुंसकलिङ्गाद् अन्नन्ताद् असन्ताच्च तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अन्नन्तम्)** हस्तिनश्चर्म-हस्तिचर्म। हस्तिचर्मे जुहोति। ऋषभस्य चर्म-ऋषभचर्म। ऋषभचर्मेऽभिषिच्यते (का०सं० ३७।२)। **(असन्तम्)** देवानां छन्दः-देवच्छन्दसम्। देवच्छन्दसानि (मै०सं० ३।२।९)। मनुष्याणां छन्दः-मनुष्यच्छन्दसम्। मनुष्यच्छन्दसम् (तै०सं० ५।४।८।६)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (नपुंसकात्) नपुंसकलिङ्ग (अनसन्तात्) अन् और अस् जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अन्नन्त) हस्ती=हाथी का चर्म-हस्तिचर्म। हस्तिचर्मे जुहोति। ऋषभ=बैल का चर्म-ऋषभचर्म। ***ऋषभचर्मेऽभिषिच्यते*** *(का०सं० ३७।२)।* ***(असन्त)*** *देवों का छन्द-देवच्छन्दस।* ***देवच्छन्दसानि*** *(मै०सं० ३।२।९)। मनुष्यों का छन्द-मनुष्यच्छन्दस।* ***मनुष्यच्छन्दस*** *(तै०सं० ५।४।८।६)।*

सिद्धि-(१) ***हस्तिचर्म।*** *हस्तिन्+ङस्+चर्मन्+सु। हस्ति+चर्मन्। हस्तिचर्मन्+टच्। हस्तिचर्म्+अ। हस्तिचर्म+सु। हस्तिचर्मम्।*

यहां हस्तिन् और अन्नन्त चर्मन् शब्दों का ***'षष्ठी'*** *(२।२।८) से षष्ठी-तत्पुरुष समास है। 'हस्तिचर्मन्' इस नपुंसकलिङ्ग शब्द से छन्दविषय में इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय होता है।* ***'नस्तद्धिते'*** *(६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-***ऋषभचर्मम्।***

(२) ***देवच्छन्दसम्।*** *यहां देव और असन्त छन्दस् शब्दों का पूर्ववत् षष्ठीतत्पुरुष समास है। देवच्छन्दस्' इस नपुंसकलिङ्ग शब्द से पूर्ववत् 'टच्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-***मनुष्यच्छन्दसम्।***

टच्–

(१६) ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्।१०४।

प०वि०–ब्रह्मण: ५।१ जानपदाख्यायाम् ७।१।

स०–जनपदेषु भव:-जानपद:। जानपदस्याऽऽख्या-जानपदाख्या, तस्याम्-जानपदाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुष:)।

अनु०–समासान्ता:, टच्, तत्पुरुषस्य इति चानुवर्तते।

अन्वय:–जानपदाख्यायां ब्रह्मणस्तत्पुरुषात् समासान्तष्टच्।

अर्थ:–जानपदाख्यायां वर्तमानाद् ब्रह्मन्-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–सुराष्ट्रेषु ब्रह्मा-सुराष्ट्रब्रह्म:। अवन्तिषु ब्रह्मा-अवन्तिब्रह्म:। ब्रह्मा=ब्राह्मण:।

आर्यभाषाः *अर्थ-(जानपदाख्यायाम्) जनपद में रहनेवाला अर्थ में विद्यमान (ब्रह्मण:) ब्रह्मन् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (समासान्त:) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-सुराष्ट्र जनपद में रहनेवाला-ब्रह्मा=ब्राह्मण-सुराष्ट्रब्रह्म। अवन्ति जनपद में रहनेवाला ब्रह्मा-अवन्तिब्रह्म।

सिद्धि-सुराष्ट्रब्रह्म:। सुराष्ट्र+सुप्+ब्रह्मन्+सु। सुराष्ट्र+ब्रह्मन्। सुराष्ट्रब्रह्मन्+टच्। सुराष्ट्रब्रह्म्+अ। सुराष्ट्रब्रह्म+सु। सुराष्ट्रब्रह्म:।

*यहां सुराष्ट्र और जानपदवाची ब्रह्मन् शब्दों का **'सप्तमी शौण्डै:'** (२।१।४०) से सप्तमीतत्पुरुष समास है। 'सुराष्ट्रब्रह्मन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-अवन्तिब्रह्म:।*

विशेषः *(१) सौराष्ट्र-इसका नामान्तर आनर्त है। आधुनिक काठियावाड़ प्रायद्वीप ही प्राचीनकालीन सौराष्ट्र या आनर्त देश है (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८९)।*

(२) अवन्ति-नर्मदा नदी के उत्तर का प्रदेश। इसकी राजधानी का प्राचीन और आधुनिक नाम उज्जैन या अवन्तीपुरी है (शब्दार्थकौस्तुभ पृ० १३८१)।

टच्-विकल्प:–

(२०) कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्।१०५।

प०वि०–कु-महद्भ्याम् ५।२ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-कुश्च महाँश्च तौ कुमहान्तौ, ताभ्याम्-कुमहद्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, टच्, तत्पुरुषस्य, ब्रह्मण इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कुमहद्भ्यां ब्रह्मणस्तत्पुरुषाद् अन्यतरस्यां समासान्तष्टच्।

अर्थः-कुमहद्भ्यां परस्माद् ब्रह्मन्-शब्दान्तात् तत्पुरुषसंज्ञकात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(कुः)** कुत्सितो ब्रह्मा-कुब्रह्मः, कुब्रह्मा। **(महान्)** महाँश्चासौ ब्रह्मा-महाब्रह्मः, महाब्रह्मा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कुमहद्भ्याम्) कु और महत् से परे (ब्रह्मणः) ब्रह्मन् शब्द जिसके अन्त में है उस (तत्पुरुषात्) तत्पुरुष-संज्ञक प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(कु) कुत्सित=निन्दित ब्रह्मा-कुब्रह्म, कुब्रह्मा। (महत्) महान् ब्रह्मा-महाब्रह्म, महाब्रह्मा।

सिद्धि-(१) कुब्रह्मः। कु+सु+ब्रह्मन्+सु। कु+ब्रह्मन्। कुब्रह्मन्+टच्। कुब्रह्म्+अ। कुब्रह्म+सु। कुब्रह्मः।

*यहां कु और ब्रह्मन् शब्दों का **'कुगतिप्रादयः'** (२।२।१८) से तत्पुरुष समास है। 'कुब्रह्मन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है।*

*(२) **कुब्रह्मा।** यहां कु और ब्रह्मन् शब्दों का पूर्ववत् तत्पुरुष समास है। विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ और **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है।*

*(३) **महाब्रह्मः।** यहां महत् और ब्रह्मन् शब्दों का **'सन्महत्परम०'** (२।१।६१) से कर्मधारयतत्पुरुष समास है। **'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः'** (६।३।४६) से महत् के तकार को आकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **महाब्रह्मा।** यहां 'महाब्रह्मन्' शब्द से विकल्प पक्ष में समासान्त 'टच्' प्रत्यय नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

(ख) समाहारद्वन्द्वसमासः

टच्–

(१) द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे।१०६।

प०वि०-द्वन्द्वात् ५।१ चु-द-ष-हान्तात् ५।१ समाहारे ७।१।

स०-चुश्च दश्च षश्च हश्च एतेषां समाहारः-चुदषहम्, चुदषहम् अन्ते यस्य तत्-चुदषहान्तम्, तस्मात्-चुदषहान्तात् (समाहारद्वन्द्वगर्भित-बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः टच् इति चानुवर्तते। 'तत्पुरुषस्य' इति च निवृत्तम्।

अन्वयः-समाहारे द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समासान्तष्टच्।

अर्थः-समाहारे वर्तमानाद् द्वन्द्वसंज्ञकाच्चवर्गान्ताद् दकारान्तात् षकारान्ताद् हकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(चवर्गान्तम्)** वाक् च त्वक् च एतयोः समाहारः-वाक्त्वचम्। स्रक् च त्वक् च एतयोः समाहारः-स्रक्त्वचम्। श्रीश्च स्रक् च एतयोः समाहारः-श्रीस्रजम्। इद् च ऊर्क् च एतयोः समाहारः-इड्डूर्जम्। वाक् च ऊर्क् च एतयोः समाहारः-वागूर्जम्। **(दकारान्तम्)** समिच्च दृषच्च एतयोः समाहारः-समिद्दृषदम्। सम्पच्च विपच्च एतयोः समाहारः-सम्पद्विपदम्। **(षकारान्तम्)** वाक् च विप्रुट् च एतयोः समाहारः-वाग्विप्रुषम्। **(हकारान्तम्)** छत्रं च उपानच्च एतयोः समाहारः-छत्रोपानहम्। धेनुश्च गोधुक् च एतयोः समाहारः-धेनुगोदुहम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(समाहारे) संयोग अर्थ में विद्यमान (द्वन्द्वात्) द्वन्द्वसंज्ञक (चुदषहान्तात्) चु=चवर्गान्ति, दकारान्त, षकारान्त और हकारान्त प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(चवर्गान्त) वाक्=जिह्वा और त्वक्=त्वचा का समाहार=संयोग वाक्त्वच। श्री=लक्ष्मी और स्रक्=माला का समाहार-श्रीस्रज। इट्=इच्छा और ऊर्क्=बल का समाहार-इड्डूर्ज। वाक्=वाणी और ऊर्क्=बल का समाहार-वागूर्ज। (दकारान्त) सम्पत्=सुख और विपत्=दुःख का समाहार-सम्पद्विपद। (षकारान्त) वाक्=जिह्वा और विप्रुट्=जल बिन्दु का समाहार-वाग्विप्रुष। (हकारान्त) छत्र और उपानत्=जूते का समाहार-छत्रोपानह। धेनु=दुधारू गाय और गोधुक्=गौ के दोग्धा का समाहार-धेनुगोदुह।

सिद्धि-(१) वाक्त्वचम्। वाक्+सु+त्वच्+सु। वाक्+त्वच्। वाक्त्वच्+टच्। वाक्त्वच्+अ। वाक्त्वच+सु। वाक्त्वचम्।

*यहां वाक् और त्वच् शब्दों का 'चार्थे द्वन्द्वः' (२।२।२९) से समाहार द्वन्द्व समास है। चकारान्त 'वाक्त्वच्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**श्रीस्रजम्, इडूर्जम्, वागूर्जम्।***

*(२) **समिद्दृषदम्।** यहां समित् और दकारान्त दृषद् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(३) **वाग्विप्रुषम्।** यहां वाक् और षकारान्त विप्रुष् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

*(४) **छत्रोपानहम्।** यहां छत्र और हकारान्त उपानह् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है।*

*(५) **धेनुगोदुहम्।** यहां धेनु और हकारान्त गोदुह् शब्दों का पूर्ववत् समाहार द्वन्द्वसमास है।*

(ग) अव्ययीभावसमासः

टच्-

(१) अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः।१०७।

प०वि०-अव्ययीभावे ७।१ शरत्प्रभृतिभ्यः ५।३।

स०-शरत् प्रभृतिर्येषां ते शरत्प्रभृतयः, तेभ्यः-शरत्प्रभृतिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, टच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः समासान्तष्टच्।

अर्थः-अव्ययीभावे समासे वर्तमानेभ्यः शरत्प्रभृतिभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-शरदः समीपम्-उपशरदम्। विपाशः समीपम्-उपविपाशम्। शरदं प्रति-प्रतिशरदम्। विपाशं प्रति-प्रतिविपाशम्, इत्यादिकम्।

शरत्। विपाश। अनस्। मनस्। उपानह्। दिव्। हिमवत्। अनडुह्। दिश्। चतुर्। यद्। तद्। जराया जरश् च। सदृश्। प्रतिपरसमनुभ्योऽक्ष्णः। पथिन्। प्रत्यक्षम्। परोक्षम्। समक्षम्। अन्वक्षम्। प्रतिपथम्। सम्पथम्। अनुपथम्। इति शरत्प्रभृतयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (शरत्प्रभृतिभ्यः) शरत्-आदि प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-शरद् ऋतु के समीप-उपशरद। विपाश्=व्यास नदी के पास-उपविपाश। शरद् ऋतु को लक्ष्य करके-प्रतिशरद। विपाश् नदी को लक्ष्य करके-प्रतिविपाश इत्यादि।

सिद्धि-(१) उपशरदम्। *उप+सु+शरद्+ङस्। उप+शरद्। उपशरद्+टच्। उपशरद्+अ। उपशरद्+सु। उपशरदम्।*

*यहां उप और शरद् शब्दों का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से समीप अर्थ में अव्ययीभाव समास है। उपशरद् शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**उपविपाशम्।***

*(२) **प्रतिशरदम्।** यहां प्रति शरद् शब्दों का **'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये'** (२।१।१४) से अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रतिविपाशम्।***

टच्–

(२) अनश्च।१०८।

प०वि०-अनः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययीभावेऽनश्च समासान्तष्टच्।

अर्थः-अव्ययीभावे समासे वर्तमानाद् अन्नन्तात् प्रातिपदिकाच्च समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-राज्ञः समीपम्-उपराजम्। राजानं प्रति-प्रतिराजम्। आत्मनि अधि-अध्यात्मम्। आत्मानं प्रति-प्रत्यात्मम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (अनः) अन् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (च) भी (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-राजा के समीप-उपराज। राजा को लक्ष्य करके-प्रतिराज। आत्मा के विषय में-अध्यात्म। आत्मा को लक्ष्य करके-प्रत्यात्म।

सिद्धि-(१) उपराजम्। *उप+सु+राजन्+ङस्। उप+राजन्। उपराजन्+टच्। उपराज्+अ। उपराज+सु। उपराजम्।*

*यहां उप और राजन् शब्दों का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से समीप-अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'उपराजन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। **'नस्तद्धिते'** (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग का लोप होता है।*

(२) **प्रतिराजम्।** यहां प्रति और राजन् शब्दों का 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' (२।१।१४) से अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-**प्रत्यात्मम्।**

(३) **अध्यात्मम्।** यहां अधि और आत्मन् शब्दों का 'अव्ययं विभक्ति०' (२।१।६) से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

टच्–

(३) नपुंसकादन्यतरस्याम्।१०६।

प०वि०-नपुंसकात् ५।१ अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे, अन इति चानुवर्तते।

अन्वयः-अव्ययीभावे नपुंसकाद् अनोऽन्यतरस्यां समासान्तष्टच्।

अर्थः-अव्ययीभावे समासे वर्तमानाद् नपुंसकलिङ्गाद् अन्नन्तात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-चर्मणः समीपम्-उपचर्मम्, उपचर्म। चर्म प्रति-प्रतिचर्मम्, प्रतिचर्म।

आर्यभाषाः अर्थ-(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (नपुंसकात्) नपुंसकलिङ्ग (अनः) अन् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।

उदा०-चर्म=चमड़े के पास-उपचर्म, उपचर्मन्। चर्म को लक्ष्य करके-प्रतिचर्म, प्रतिचर्मन्।

सिद्धि-(१) **उपचर्मम्।** यहां उप और नपुंसकलिङ्ग चर्मन् शब्दों का 'अव्ययं विभक्ति०' (२।१।६) से समीप अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'उपचर्मन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय **है**। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(२) **उपचर्म।** यहां उप और नपुंसकलिङ्ग चर्मन् शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास है तथा विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से 'चर्मन्' के नकार का लोप होता है।

(३) **प्रतिचर्मम्।** यहां प्रति और नपुंसकलिङ्ग चर्मन् शब्दों का 'लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये' (२।१।१४) से अव्ययीभाव समास है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

(४) **प्रतिचर्म।** यहां प्रति और नपुंसकलिङ्ग 'चर्मन्' शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव **समास है। तथा विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। शेष कार्य पूर्ववत् है।**

टच्–

(४) नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः।११०।

प०वि०–नदी–पौर्णमासी–आग्रहायणीभ्यः ५।३।

स०–नदी च पौर्णमासी च आग्रहायणी च ता नदीपौर्णमास्याग्रहायणयः, ताभ्यः–नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे, अन्यतरस्याम् इति चानुवतति।

अन्वयः–अव्ययीभावे नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्योऽन्यतरस्यां समासान्तष्टच्।

अर्थः–अव्ययीभावे समासे वर्तमानेभ्यो नदीपौर्णमास्याग्रहायण्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यो विकल्पेन समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–**(नदी)** नद्याः समीपम्–उपनदम्, उपनदि। **(पौर्णमासी)** पौर्णमास्याः समीपम्–उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि। **(आग्रहायणी)** आग्रहायण्याः समीपम्–उपाग्रहायणम्, उपाग्रहायणि।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः) नदी, पौर्णमासी, आग्रहायणी जिनके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०–**(नदी)** नदी के समीप=निकट–उपनद, उपनदि। **(पौर्णमासी)** पौर्णमासी के समीप–उपपौर्णमास, उपपौर्णमासि। **(आग्रहायणी)** आग्रहायणी=मार्गशीर्ष की पौर्णमासी के समीप–उपाग्रहायण, उपाग्रहायणि।*

*सिद्धि–(१) **उपनदम्।** उप+सु+नदी+ङस्। उप+नदी। उपनदि+टच्। उपनद्+अ। उपनद+सु। उपनदम्।*

*यहां उप और नदी शब्दों का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से समीप–अर्थ में अव्ययीभाव समास है। **'अव्ययीभावश्च'** (२।४।१८) से अव्ययीभाव समास का नपुंसकलिङ्ग होता है अतः **'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य'** (१।२।४७) से नदी के ईकार को ह्रस्व होता है। 'उपनदि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही–**उपपौर्णमासम्, उपाग्रहायणम्।***

*(२) **उपनदि।** यहां उप और नदी शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास और पूर्ववत् ह्रस्वत्व है और विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही–**उपपौर्णमासि, उपाग्रहायणि।***

टच्–

(५) झयः।१११।

वि०–झयः ५।१।

अनु०–समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे, अन्यतरस्याम् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अव्ययीभावे झयोऽन्यतरस्यां समासान्तष्टच्।

अर्थः–अव्ययीभावे समासे वर्तमानाद् झयन्तात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति।

उदा०–समिधः समीपम्–उपसमिधम्, उपसमित्। दृषदः समीपम्–उपदृषदम्, उपदृषत्।

आर्यभाषाः *अर्थ–(अव्ययीभावे) अव्ययीभाव समास में विद्यमान (झयः) झय् वर्ण जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है।*

उदा०–समित्=समिधा के समीप–उपसमिध, उपसमित्। दृषद्=पत्थर के समीप–उपदृषद, उपदृषत्।

सिद्धि–(१) उपसमिधम्। उप+सु+समिध्+ङस्। उप+समिध्। उपसमिध्+टच्। उपसमिध्+अ। उपसमिध+सु। उपसमिधम्।

यहां उप और समिध् शब्दों का 'अव्ययं विभक्ति०' (२।१।६) से समीप-अर्थ में अव्ययीभाव समास है। झय्-वर्णान्त 'उपसमिध्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'टच्' प्रत्यय है। ऐसे ही–उपदृषदम्।

(२) उपसमित्। यहां उप और समिध् शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास तथा विकल्प पक्ष में 'टच्' प्रत्यय नहीं है। 'झलां जशोऽन्ते' (८।२।३९) से उपसमिध् के धकार को दकार और 'वाऽवसाने' (८।४।५६) से दकार का चर् तकार होता है। ऐसे ही–उपदृषत्।

टच्–

(६) गिरेश्च सेनकस्य।११२।

प०वि०–गिरेः ५।१ अव्ययपदम्, सेनकस्य ६।१।

अनु०–समासान्ताः, टच्, अव्ययीभावे इति चानुवर्तते।

अन्वयः–अव्ययीभावे गिरेश्च समासान्तष्टच्, सेनकस्य।

अर्थः-अव्ययीभावे समासे वर्तमानाद् गिरिशब्दान्तात् प्रातिपदिकाच्च समासान्तष्टच् प्रत्ययो भवति, सेनकस्याचार्यस्य मतेन।

उदा०-गिरेरन्तः-अन्तर्गिरम्, अन्तर्गिरि। गिरेः समीपम्-उपगिरम्, उपगिरि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(अव्ययभावे) अव्ययभाव समास में विद्यमान (गिरेः) गिरि शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (च) भी (समासान्तः) समास का अवयव (टच्) टच् प्रत्यय होता है (सेनकस्य) सेनक आचार्य के मत में।*

उदा०-गिरि=पर्वत के अन्दर-अन्तर्गिर, अन्तगिरि। गिरि के समीप-उपगिर, उपगिरि।

*सिद्धि-(१) **अन्तर्गिरम्।** यहां अन्तर् और गिरि शब्दों का **'अव्ययं विभक्ति०'** (२।१।६) से सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में अव्ययीभाव समास है। 'अन्तर्' शब्द सप्तमी-अर्थ का वाचक है। 'अन्तर्गिरि' शब्द से इस सूत्र से सेनक आचार्य के मत में 'टच्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-**उपगिरम्।***

*(२) **अन्तर्गिरि।** यहां अन्तर् और गिरि शब्दों का पूर्ववत् अव्ययीभाव समास है तथा पाणिनिमुनि के मत में टच् प्रत्यय नहीं है। 'अव्ययीभावश्च' (१।१।४१) से अव्यय संज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-उपगिरि।*

विशेषः *यहां 'अन्यतरस्याम्' पद की अनुवृत्ति में सेनक आचार्य के मत का उल्लेख विकल्प के नहीं अपितु पूजा के लिये है।*

(घ) बहुव्रीहिसमासः

षच्-

(१) बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्।११३।

प०वि०-बहुव्रीहौ ७।१ सक्थि-अक्ष्णोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) स्वाङ्गात् ५।१ षच् १।१।

स०-सक्थि च अक्षि च ते सक्थ्यक्षिणी, तयोः-सक्थ्यक्ष्णोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ता इत्यनुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ स्वाङ्गाभ्यां सक्थ्यक्षिभ्यां समासान्तः षच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे वर्तमानाभ्यां स्वाङ्गवाचिभ्यां सक्थि-अक्ष्यन्ताभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां समासान्तः षच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(सक्थि)** दीर्घे सक्थि यस्य सः-दीर्घसक्थः। **(अक्षि)** कल्याणे अक्षिणी यस्य सः-कल्याणाक्षः। लोहिताक्षः। विशालाक्षः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में विद्यमान (स्वाङ्गात्) स्वाङ्गवाची (सक्थ्यक्ष्णोः) सक्थि और अक्षि शब्द जिनके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (षच्) षच् प्रत्यय होता है।*

*उदा०-**(सक्थि)** दीर्घ है सक्थि=जंघा जिसकी वह-दीर्घसक्थ। **(अक्षि)** कल्याणकारी हैं अक्षि=आंखें जिसकी वह-कल्याणाक्ष। लोहित=लाल हैं अक्षि जिसकी वह-लोहिताक्ष। विशाल हैं अक्षि जिसकी वह-विशालाक्ष।*

सिद्धि-दीर्घसक्थम्। *दीर्घ+सु+सक्थि+सु। दीर्घ+सक्थि। दीर्घसक्थि+षच्। दीर्घसक्थ्+अ। दीर्घसक्थ+सु। दीर्घसक्थः।*

*यहां दीर्घ और सक्थि शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। 'दीर्घसक्थि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'षच्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही 'अक्षि' शब्द से-**कल्याणाक्षः, लोहिताक्षः, विशालाक्षः।***

विशेषः *(१) 'टच्' प्रत्यय की अनुवृत्ति में षच् प्रत्यय का विधान स्वर-भेद के लिये किया गया है। 'टच्' प्रत्यय के टित् होने से स्त्रीत्व-विवक्षा में **'टिड्ढाणञ्०'** (४।१।१५) से ङीप् प्रत्यय होता है। ङीप् प्रत्यय के पित् होने से **'अनुदात्तौ सुप्पितौ'** (३।१।४) से अनुदात्त स्वर होता है। षच् प्रत्यय के षित् होने से **'षिद्गौरादिभ्यश्च'** (४।१।४१) से स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होता है। 'ङीष्' प्रत्यय का **'आद्युदात्तश्च'** (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है।*

*(२) **'बहुव्रीहौ'** पद की अनुवृत्ति इस पाद की समाप्ति पर्यन्त है।*

षच्-

(२) अङ्गुलेर्दारुणि।११४।

प०वि०-अङ्गुलेः ५।१ दारुणि ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, षच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ समासे दारुणि चार्थे वर्तमानाद् अङ्गुलिशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तः षच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-द्वे अङ्गुली यस्य तत्-द्व्यङ्गुलं दारु। त्र्यङ्गुलं दारु। पञ्चाङ्गुलं दारु। अङ्गुलिसदृशावयवं धान्यादीनां विक्षेपणकाष्ठमुच्यते। जेळी इति हारयाणभाषायाम्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास और (दारु) लकड़ी-विशेष अर्थ में विद्यमान (अङ्गुलेः) अङ्गुलि शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (षच्) षच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-दो हैं अङ्गुलियां जिसकी वह-द्व्यङ्गुल दारु। तीन हैं अङ्गुलियां जिसकी वह-त्र्यङ्गुल दारु। पांच हैं अङ्गुलियां जिसकी वह-पञ्चाङ्गुल दारु। अङ्गुलियों के सदृश अवयववाला धान्य आदि के फैंकने के लिये जो दारुमय साधन होता है उसे 'द्व्यङ्गुलं दारु' आदि कहते हैं। इसे हरयाणा की लोकभाषा में दो संग जेळी आदि कहा जाता है।

सिद्धि-द्व्यङ्गुलम्। द्वि+औ+अङ्गुलि+औ। द्वि+अङ्गुलि। द्व्यङ्गुलि+षच्। द्व्यङ्गुल्+अ। द्व्यङ्गुल+सु। द्व्यङ्गुलम्।

*यहां द्वि और अङ्गुलि शब्दों का **'अनेकमन्यपदार्थे'** (२।२।२४) से बहुव्रीहि समास है। दारुविशेष अर्थ में विद्यमान 'द्व्यङ्गुलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'षच्' प्रत्यय है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-त्र्यङ्गुलम्, पञ्चाङ्गुलम्।*

षः-

(३) द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः।११५।

प०वि०-द्वित्रिभ्याम् ५।२ ष १।१ (सु-लुक्) मूर्ध्नः ५।१।

स०-द्विश्च त्रिश्च तौ द्वित्री, ताभ्याम्-द्वित्रिभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ द्वित्रिभ्यां मूर्ध्नः समासान्तः षः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे द्वित्रिभ्यां परस्माद् मूर्धन्-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तः षः प्रत्ययो भवति।

उदा०-(द्विः) द्वौ मूर्धानौ यस्य सः-द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में विद्यमान (द्वित्रिभ्याम्) द्वि और त्रि शब्दों से परे (मूर्ध्नः) मूर्धन् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (षः) ष प्रत्यय होता है।*

उदा०-दो हैं मूर्धा=शिर जिसके वह-द्विमूर्ध। दो सिरा। तीन हैं मूर्धा जिसके वह-त्रिमूर्ध। तीन सिरा।

सिद्धि-द्विमूर्धः। द्वि+औ+मूर्धन्+औ। द्वि+मूर्धन्। द्विमूर्धन्+ष। द्विमूर्ध्+अ। द्विमूर्ध+सु। द्विमूर्धः।

यहां द्वि और मूर्धन् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। द्विमूर्धन् शब्द से इस सूत्र से समासान्त ष प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-त्रिमूर्धः। 'षच्' प्रत्यय में 'चितः' (६।१।१६३) से अन्तोदात्त स्वर होता है और 'ष' प्रत्यय में 'आद्युदात्तश्च' (३।१।३) से आद्युदात्त स्वर होता है। अतः स्वरभेद के लिये 'ष' प्रत्यय का विधान किया गया है।

अप्–

(४) अप् पूरणीप्रमाण्योः।११६।

प०वि०-अप् १।१ पूरणी-प्रमाण्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-पूरणी च प्रमाणी च ते पूरणीप्रमाण्यौ, तयोः-पूरणीप्रमाण्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ पूरणीप्रमाणीभ्यां समासान्तोऽप्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे पूरण्यन्तात् प्रमाण्यन्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्तोऽप् प्रत्ययो भवति। अत्र पूरणीशब्देन पूरणप्रत्ययान्ताः स्त्रीलिङ्गाः शब्दा गृह्यन्ते।

उदा०-**(पूरणी)** कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः-कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। कल्याणीदशमा रात्रयः। **(प्रमाणी)** स्त्री प्रमाणी येषां ते-स्त्रीप्रमाणाः कुटुम्बिनः। भार्याप्रधाना इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (पूरणीप्रमाण्योः) पूरणी और प्रमाणी जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अप्) अप् प्रत्यय होता है। यहां 'पूरणी' शब्द से पूरण-प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-(पूरणी) जिन रात्रियों में पञ्चमी रात्रि कल्याणी=मङ्गलमयी है वे-कल्याणी पञ्चम रात्रियां। जिन रात्रियों में दशमी रात्रि कल्याणी है वे-कल्याणी दशम रात्रियां। (प्रमाणी) जिन कुटुम्बी=गृहस्थों में स्त्री प्रमाणी है वे-स्त्री प्रमाण कुटुम्बी। भार्याप्रधान गृहस्थ।

सिद्धि-(१) कल्याणीपञ्चमाः। कल्याणी+सु+पञ्चमी+सु। कल्याणी+पञ्चमी। कल्याणपञ्चमी+अप्। कल्याणीपञ्चम्+अ। कल्याणीपञ्चम+जस्। कल्याणीपञ्चमाः।

यहां कल्याणी और पञ्चमी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। पूरणी-अन्त 'कल्याणी-पञ्चमी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अप्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-कल्याणीदशमाः।

(२) स्त्रीप्रमाणाः। यहां स्त्री और प्रमाणी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। प्रमाणी-अन्त 'स्त्रीप्रमाणी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अप्' प्रत्यय है। शेष कार्य पूर्ववत् है।

अप्–

(५) अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः।११७।

प०वि०-अन्तर्-बहिर्भ्याम् ५।२ च अव्ययपदम्, लोम्नः ५।१।

स०-अन्तर् च बहिर् च तौ-अन्तर्बहिरौ, ताभ्याम्-अन्तर्बहिर्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अप् इति चानुवतति।

अन्वयः-बहुव्रीहावन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः समासान्तोऽप्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासेऽन्तर्बहिर्भ्यां परस्माच्च लोमशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(अन्तः)** अन्तर्लोमानि यस्य सः-अन्तर्लोमः प्रावारः। **(बहिः)** बहिर्लोमानि यस्य सः-बहिर्लोमः पटः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अन्तर्बहिर्भ्याम्) अन्तर् और बहिर् शब्दों से परे (च) भी (लोम्नः) लोमन् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अप्) अप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(अन्तः) अन्तः=अन्दर हैं लोम=रोम जिसके वह अन्तर्लोम प्रावार (चादर)। (बहिः) बहिः=बाहर हैं लोम जिसके वह-बहिर्लोम पट (कपड़ा)।

सिद्धि-अन्तर्लोमः। अन्तर्+सु+लोमन्+जस्। अन्तर्लोमन्+अप्। अन्तर्लोम्+अ। अन्तलोम+सु। अन्तर्लोमः।

यहां अन्तर् और लोमन् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'अन्तर्लोमन्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अप्' प्रत्यय है। 'नस्तद्धिते' (६।४।१४४) से अंग के टि-भाग (अन्) का लोप होता है। ऐसे ही-बहिर्लोमः।

अच्–

(६) अज्नासिकायाः संज्ञायां नसं चास्थूलात्।११८।

प०वि०–अच् १।१ नासिकायाः ५।१ संज्ञायाम् ७।१ नसम् १।१ च अव्ययपदम्, अस्थूलात् ५।१।

स०–न स्थूलम्-अस्थूलम्, तस्मात्-अस्थूलात् (नञ्तत्पुरुषः)।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहावस्थूलाद् नासिकायाः समासान्तोऽच्, नसं च, संज्ञायाम्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे स्थूलशब्दवर्जितात् परस्माद् नासिका-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति, नासिकायाः स्थाने च नसमादेशो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०–द्रुरिव नासिका यस्य सः-द्रुणसः। वाध्रीणसः। गोनसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अस्थूलात्) स्थूल से अन्य शब्द से परे (नासिकायाः) नासिका शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है (च) और नासिका के स्थान में (नसम्) नस आदेश होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-द्रु=वृक्ष की शाखा के समान लम्बी नासिका-नाक है जिसकी वह-द्रुणस। वाध्री-चमड़े के तसमे के समान है नासिका जिसकी वह-वाध्रीणस (गेंडा)। गौ=बैल के समान है नासिका जिसकी वह-गोनस (सर्पविशेष)।

सिद्धि-द्रुणसः। द्रु+सु+नासिका+सु। द्रु+नासिका+अच्। द्रु+नस्+अ। द्रुणस+सु। द्रुणसः।

*यहां द्रु और नासिका शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'द्रुनासिका' शब्द से संज्ञाविषय में समासान्त 'अच्' प्रत्यय और नासिका के स्थान में 'नस' आदेश है। **'पूर्वपदात् संज्ञायामगः'** (८।४।३) से णत्व और **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वाध्रीणसः, गोनसः।***

अच्–

(७) उपसर्गाच्च।११९।

प०वि०–उपसर्गात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अच्, नासिकायाः, नसम्, च इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहावुपसर्गाद् नासिकायाः समासान्तोऽच्, नसं च।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उपसर्गात् परस्माच्च नासिकाशब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति, नासिकायाः स्थाने च नसमादेशो भवति। असंज्ञार्थमिदं वचनम्।

उदा०-उन्नता नासिका यस्य सः-उन्नसः। प्रगता नासिका यस्यः-प्रणसः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उपसर्गात्) उपसर्ग से (च) भी परे (नासिकायाः) नासिका शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अप्) अप् प्रत्यय होता है (च) और नासिका के स्थान में (नसम्) नस आदेश होता है।*

उदा०-उन्नत है नासिका जिसकी वह-उन्नस। प्रगत=प्रकृष्ट-उत्तम है नासिका जिसकी वह-प्रणस।

सिद्धि-उन्नसः। उत्+नासिका+सु। उत्+नासिका+अच्। उत्+नस्+अ। उन्नस+सु। उन्नसः।

*यहां उत् उपसर्ग और नासिका शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'उन्नासिका' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय और नासिका के स्थान में नस आदेश है। **'यस्येति च'** (६।४।१४८) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-प्रणसः। यहां वा०-'उपसर्गाद् बहुलम्' (८।४।२८) से णत्व होता है।*

अच् (निपातनम्)-

(८) सुप्रातसुश्वसुदिवशारिकुक्षचतुरश्रैणीपदाजपदप्रोष्ठपदाः।१२०।

प०वि०-सुप्रात-सुश्व-सुदिव-शारिकुक्ष-चतुरश्र-एणीपद-अजपद-प्रोष्ठपदाः१।३।

स०-सुप्रातश्च सुश्वश्च सुदिवश्च शारिकुक्षश्च चतुरश्रश्च एणीपदश्च अजपदश्च प्रोष्ठपदश्च ते सुप्रात०प्रोष्ठपदाः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ सुप्रात०प्रोष्ठपदाः समासान्तोऽच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे सुप्रातादयः शब्दाः समासान्त-अच्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते।

उदा०-(**सुप्रातः**) शोभनं प्रातर्यस्य सः-सुप्रातः। (**सुश्वः**) शोभनं श्वो यस्य सः-सुश्वः। (**सुदिवः**) शोभनं दिवा यस्य सः-सुदिवः। (**शारिकुक्षः**) शारेरिव कुक्षिर्यस्य सः-शारिकुक्षः। (**चतुरस्रः**) चतस्रोऽश्रयो यस्य सः-चतुरश्रः। (**एणीपदः**) एण्या इव पादौ यस्य सः-एणीपदः। (**अजपदः**) अजस्य इव पादौ यस्य :-अजपदः। (**प्रोष्ठपदः**) प्रोष्ठस्य इव पादौ यस्य सः-प्रोष्ठपदः। प्रोष्ठः=गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सुप्रात०प्रोष्ठपदाः) सुप्रात, सुश्व, सुदिव, शारिकुक्ष, चतुरश्र, एणीपद, अजपद, प्रोष्ठपद शब्द (समासान्तः) समास के अवयव (अच्) अच् प्रत्ययान्त निपातित हैं।*

उदा०-(सुप्रातः) अच्छा है प्रातःकालीन सन्ध्यादि कर्म जिसका वह-सुप्रात। (सुश्वः) अच्छा श्वः=आगामी कल जिसका वह-सुश्व। (सुदिवः) अच्छा है दिवा=दिन जिसका वह-सुदिव। (शारिकुक्षः) शारि=शतरंज के मोहरे के समान है कुक्षि=पेट जिसका वह-शारिकुक्ष। (चतुरश्रः) चार हैं अश्रि=कोण जिसकी वह-चतुरश्र चौकोण। (एणीपदः) एणी=काली हरिणी के समान हैं पाद=पांव जिसके वह-एणीपद। (अजपदः) अज=बकरे के समान हैं पाद जिसके वह-अजपद। (प्रोष्ठपदः) प्रोष्ठ=गौ के समान हैं पाद जिसके वह-प्रोष्ठपद।

सिद्धि-(१) सुप्रातः। सु+सु+प्रातर्+सु। सु+प्रातर्+अच्। सुप्रात्+अ। सुप्रात+सु। सुप्रातः।

यहां सु और प्रातर् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इस सूत्र से 'सुप्रातर्' शब्द से समासान्त 'अच्' प्रत्यय निपातित है। निपातन से अंग के टि-भाग (अर्) का लोप होता है। ऐसे ही-सुश्वः, सुदिवः, शारिकुक्षः।

(२) एणीपदः। यहां 'एणीपाद' शब्द से पूर्ववत् समासान्त 'अच्' प्रत्यय और 'पाद' को पद् आदेश निपातित है। ऐसे ही-अजपदः, प्रोष्ठपदः।

अच्-विकल्पः-

(६) नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम्।१२१।

प०वि०-नञ्-दुर्-सुभ्यः ५।१ हलि-सक्थ्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) अन्यतरस्याम् अव्ययपदम्।

स०-नञ् च दुर् च सुश्च ते नञ्दुःसवः, तेभ्यः-नञ्दुःसुभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थिभ्याम् अन्यतरस्यां समासान्तोऽच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे नञ्दुःसुभ्यः परस्माद् हल्यन्तात् सक्थ्यन्ताच्च प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तोऽच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(हलिः)** अविद्यमाना हलिर्यस्य सः-अहलः, अहलिः। दुष्ठु हलिर्यस्य सः-दुर्हलः, दुर्हलिः। सुष्ठु हलिर्यस्य सः-सुहलः, सुहलिः। **(सक्थिः) अविद्यमानः** सक्थिर्यस्य सः-असक्थः, असक्थिः। दुष्ठु सक्थिर्यस्य सः-दुःसक्थः, दुःसक्थिः। सुष्ठु सक्थिर्यस्य सः-सुसक्थः, सुसक्थिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नञ्दुःसुभ्यः) नञ्, दुर्, सु से परे (हलिसक्थ्योः) हलि और सक्थि शब्द जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (अन्यतरस्याम्) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (अच्) अच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(हलिः) अविद्यमान है हलि=बड़ा हळ जिसका वह-अहल, अहलि। दुर्=खराब है हलि=बड़ा हळ जिसका वह-दुर्हल, दुर्हलि। सु=अच्छा है हलि=बड़ा हळ जिसका वह-सुहल, सुहलि। (सक्थि) अविद्यमान है सक्थि=जंघा जिसकी वह-असक्थ, असक्थि। दुर्=खराब है सक्थि=जंघा जिसकी वह-दुःसक्थ, दुःखक्थि। सु=अच्छी है सक्थि=जंघा जिसकी वह-सुसक्थ, सुसक्थि।

सिद्धि-(१) अहलः। नञ्+सु+हलि+सु। अ+हलि+अच्। अहल्+अ। अहल+सु। अहलः।

यहां नञ् और हलि शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'अहलि' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अच्' प्रत्यय है। 'यस्येति च' (६।४।१४८) से अंग के इकार का लोप होता है। ऐसे ही-दुर्हलः, सुहलः। असक्थः, दुःसक्थः, सुसक्थः।

(२) अहलिः। यहां 'अहलि' शब्द से इस सूत्र से विकल्प पक्ष में समसान्त 'अच्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-दुर्हलिः, सुहलिः। असक्थिः, दुःसक्थिः, सुसक्थिः।

असिच्-

(१०) नित्यमसिच् प्रजामेधयोः।१२२।

प०वि०-नित्यम् १।१ असिच् १।१ प्रजा-मेधयोः ६।२ (पञ्चम्यर्थे)।

स०-प्रजा च मेधा च ते प्रजामेधे, तयोः-प्रजामेधयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ नञ्दुःसुभ्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ नञ्दुःसुभ्यो प्रजामेधाभ्यां नित्यं समासान्तोऽसिच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे नञ्दुःसुभ्यः परस्मात् प्रजान्ताद् मेधान्ताच्च प्रातिपदिकाद् नित्यं समासान्तोऽसिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-**(प्रजा)** अविद्यमाना प्रजा यस्य सः-अप्रजाः। दुष्ठु प्रजा यस्य सः-दुष्प्रजाः। सुष्ठु प्रजा यस्य सः-सुप्रजाः। **(मेधा)** अविद्यमाना मेधा यस्य सः-अमेधाः। दुष्ठु मेधा यस्य सः-दुर्मेधाः। सुष्ठु मेधा यस्य सः-सुमेधाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नञ्दुःसुभ्यः) नञ्, दुर्, सु शब्दों से परे (प्रजामेधयोः) प्रजा और मेधा शब्द जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (नित्यम्) सदा (समासान्तः) समास का अवयव (असिच्) असिच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(प्रजा) अविद्यमान है प्रजा जिसकी वह-अप्रजा। दुर्=खराब है प्रजा जिसकी वह-दुष्प्रजा। सु=अच्छी है प्रजा जिसकी वह-सुप्रजा। (मेधा) अविद्यमान है मेधा=तीव्रबुद्धि जिसकी वह-अमेधा। दुर्=खराब है मेधा जिसकी वह-दुर्मेधा। सु=अच्छी है मेधा जिसकी वह-सुमेधा।

सिद्धि-अप्रजाः। नञ्+सु+प्रजा+सु। अ+प्रजा+असिच्। अप्रज्+अस्। अप्रजस्+सु। अप्रजास्+सु। अप्रजास्+०। अप्रजारु। अप्रजार्। अप्रजाः।

यहां नञ् और प्रजा शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'अप्रजा' शब्द से इस सूत्र से नित्य समासान्त 'असिच्' प्रत्यय है। 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' (६।४।१४) से अंग की उपधा को दीर्घ होता है। 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लुक्, 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से सकार को रुत्व और 'खरवसानयोर्विसर्जनीयः' (८।३।१५) से रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है। ऐसे ही-दुष्प्रजाः, सुप्रजाः। अमेधाः, दुर्मेधाः, सुमेधाः।

असिच् (निपातनम्)-

(११) बहुप्रजाश्छन्दसि।१२३।

प०वि०-बहुप्रजाः १।१ छन्दसि ७।१।

स०-बह्वी प्रजा यस्य सः-बहुप्रजाः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, असिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि बहुव्रीहौ बहुप्रजाः समासान्तोऽसिच्।

अर्थः-छन्दसि विषये बहुव्रीहौ समासे बहुप्रजा इत्यत्र समासान्तोऽसिच् प्रत्ययो निपात्यते।

उदा०-बह्वी प्रजा यस्य सः-बहुप्रजाः। बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश (ऋ० १।१६४।३२)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (बहुप्रजाः) बहुप्रजा इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (असिच्) असिच् प्रत्यय निपातित है।*

उदा०-बहुत ही प्रजा=सन्तान जिसकी वह-बहुप्रजा। बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश (ऋ० १।१६४।३२)। बहुत सन्तानवाला पुरुष दुःख में दाखिल होता है।

सिद्धि-बहुप्रजाः शब्द की सिद्धि 'अप्रजाः' शब्द के समान है।

अनिच्-

(१२) धर्मादनिच् केवलात्।१२४।

प०वि०-धर्मात् ५।१ अनिच् १।१ केवलात् ५।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ केवलाद् धर्मात् समासान्तोऽनिच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे केवल-पदात् परस्माद् धर्म-शब्दान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तोऽनिच् प्रत्ययो भवति।

उदा०-कल्याणं धर्मो यस्य सः-कल्याणधर्मा। वेदधर्मा। सत्यधर्मा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (केवलात्) केवल=एक पद से परे (धर्मात्) धर्म शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (अनिच्) अनिच् प्रत्यय होता है।*

उदा०-कल्याण=भलाई करना जिसका धर्म है वह-कल्याणधर्मा। वेद के अनुसार आचरण करना जिसका धर्म है वह-वेदधर्मा। सत्यभाषण करना जिसका धर्म है वह-सत्यधर्मा।

सिद्धि-कल्याणधर्मा। कल्याण+सु+धर्म+सु। कल्याण+धर्म+अनिच्। कल्याणधर्म्+अन्। कल्याणधर्मन्+सु। कल्याणधर्मान्+सु। कल्याणधर्मान्+०। कल्याणधर्मा।

*यहां कल्याण और धर्म शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'कल्याणधर्म' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'अनिच्' प्रत्यय है। **'सर्वनामस्थाने चाऽसम्बुद्धौ'** (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य'** (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**वेदधर्मा, सत्यधर्मा।***

*यहां 'केवलात्' पद का अभिप्राय यह है कि केवल एक पद से परे धर्मान्त प्रातिपदिक से यह अनिच् प्रत्यय होता है, अनेक पदों से उत्तर धर्मान्त शब्द से नहीं। जैसे-**परमः स्वो धर्मो यस्य सः-परमस्वधर्मः।***

अनिच् (निपातनम्)-

(१३) जम्भा सुहरिततृणसोमेभ्यः।१२५।

प०वि०-जम्भा १।१ सु-हरित-तृण-सोमेभ्यः ५।३।

स०-सुश्च हरितं च तृणं च सोमश्च ते सुहरिततृणसोमाः, तेभ्यः-सुहरिततृणसोमेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अनिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ सुहरिततृणसोमेभ्यो जम्भा समासान्तोऽनिच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे सुहरिततृणसोमेभ्यः परं 'जम्भा' इति पदं समासान्त-अनिच्प्रत्ययान्तं निपात्यते। जम्भशब्दोऽभ्यवहार्यवाची दन्त-विशेषवाची च वर्तते।

उदा०-(सुः) शोभनो जम्भो यस्य सः-सुजम्भा देवदत्तः। शोभनाभ्यवहार्यः शोभनादन्तो वा इत्यर्थः। **(हरितम्)** हरितं जम्भो यस्य सः-हरितजम्भः। **(तृणम्)** तृणं जम्भो यस्य सः-तृणजम्भः। **(सोमः)** सोमो जम्भो यस्य सः-सोमजम्भः। दन्तार्थे तु एवं विग्रहः क्रियते-तृणमिव जम्भो यस्य सः-तृणजम्भः। सोम इव जम्भो यस्य सः-सोमजम्भः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सुहरिततृणसोमेभ्यः) सु, हरित, तृण, सोम शब्दों से परे (जम्भा) 'जम्भा' इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (अनिच्) अनिच् प्रत्यय निपातित है। 'जम्भ' शब्द अभ्यवहार्य=खान-पान और दन्तविशेष (जाड़) का वाचक है।*

उदा०-(सु) सु=अच्छा है जम्भ=खान-पान जिसका वह-सुजम्भा देवदत्त। (हरित) हरित=हरी सब्जी आदि है जम्भ=ख़ाना जिसका वह-हरितजम्भा देवदत्त।

(तृण) तृण=घास है जम्भ=खाना जिसका वह-तृणजम्भा पशु। (सोम) सोम ओषधि है जम्भ=खान-पान जिसका वह-सोमजम्भा ऋषि।

जब 'जम्भ' शब्द का दन्तविशेष (जाड़) अर्थ होता है तब ऐसे विग्रह किया जाता है-तृण के समान जम्भ=जाड़ है जिसका वह-तृणजम्भा। सोम ओषधि के समान जम्भ है जिसका वह-सोमजम्भा।

*सिद्धि-**सुजम्भा**। सु+सु+जम्भ+सु। सु+जम्भ+अनिच्। सु+जम्भ्+अन्। सुजम्भन्+सु। सुजम्भान्+०। सुजम्भा।*

*यहां सु और जम्भ शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'सुजम्भ' शब्द से इस सूत्र से 'अनिच्' प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य 'कल्याणधर्मा' (५।४।१२४) के समान है। ऐसे ही-**हरितजम्भा, तृणजम्भा, सोमजम्भा**।*

अनिच् (निपातनम्)-

(१४) दक्षिणेर्मा लुब्धयोगे।१२६।

प०वि०-दक्षिणेर्मा १।१ लुब्ध-योगे ७।१।

स०-लुब्धः=व्याधः। लुब्धस्य योगः-लुब्धयोगः, तस्मिन्-लुब्धयोगे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अनिच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ दक्षिणेर्मा समासान्तोऽनिच्, लुब्धयोगे।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे 'दक्षिणेर्मा' इत्यत्र समासान्तोऽनिच् प्रत्ययो निपात्यते, लुब्धयोगे गम्यमाने।

उदा०-दक्षिणमीर्म यस्य सः-दक्षिणेर्मा मृगः। ईर्मम्=व्रणम्। यस्य दक्षिणमङ्गं व्याधेन व्रणितं स मृगो 'दक्षिणेर्मा' इति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (दक्षिणेर्मा) 'दक्षिणेर्मा' इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (अनिच्) अनिच् प्रत्यय निपातित है (लुब्धयोग) यदि वहां लुब्ध=शिकारी के योग अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-दक्षिण अङ्ग ईर्म=घायल है जिसका वह=दक्षिणेर्मा मृग। जिसका दक्षिण अंग शिकारी ने घायल कर दिया है वह मृग 'दक्षिणेर्मा' कहलाता है।

*सिद्धि-**दक्षिणेर्मा**। दक्षिण+सु+ईर्म+सु। दक्षिण+ईर्म+अनिच्। दक्षिणेर्म्+अन्। दक्षिणेर्मन्+सु। दक्षिणेर्मान्+सु। दक्षिणेर्मान्+०। दक्षिणेर्मा।*

यहां दक्षिण और ईर्म शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'दक्षिणेर्म' शब्द से इस सूत्र से लुब्धयोग अर्थ में समासान्त अनिच् प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य 'कल्याणधर्मा' (५।४।१२४) के समान है।

इच्–

(१५) इच् कर्मव्यतिहारे।१२७।

प०वि०-इच् १।१ कर्मव्यतिहारे ७।१।

स०-कर्म=क्रिया। व्यतिहारः=विनिमयः। कर्मणो व्यतिहारः-कर्मव्यतिहारः, तस्मिन्-कर्मव्यतिहारे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-कर्मव्यतिहारे बहुव्रीहौ प्रातिपदिकात् समासान्त इच्।

अर्थः-कर्मव्यतिहारेऽर्थे बहुव्रीहौ समासे च वर्तमानात् प्रातिपदिकात् समासान्त इच् प्रत्ययो भवति। अत्र **'तत्र तेनेदमिति सरूपे'** (२।२।२७) इत्यनेन सूत्रेण विहितो बहुव्रीहिसमासो गृह्यते।

उदा०-केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्-केशाकेशि। कचाकचि। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्-दण्डादण्डि। मुसलामुसलि।

आर्यभाषाः *अर्थ-(कर्मव्यतिहारे) क्रिया के विनिमय=बदलना अर्थ में और (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में विद्यमान प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (इच्) इच् प्रत्यय होता है। यहां* **'तत्र तेनेदमिति सरूपे'** *(२।२।२७) इस सूत्र से विहित बहुव्रीहि समास का ग्रहण किया जाता है।*

उदा०-एक दूसरे के केशों में हाथ डालकर जो युद्ध प्रवृत्त हुआ वह-केशाकेशि। कचा-कचाकचि। कच=केश। एक दूसरे पर दण्डों से प्रहार करके जो युद्ध प्रवृत्त हुआ वह-दण्डादण्डि। एक-दूसरे पर मुसलों से प्रहार करके जो युद्ध प्रवृत्त हुआ वह-मुसलामुसलि।

सिद्धि-केशाकेशि। *केश+सुप्+केश+सुप्। केश+केश+इच्। केशा+केश्+इ। केशाकेशि+सु। केशाकेशि+०। केशाकेशि।*

यहां सप्तम्यन्त दो सरूप केश पदों का **'तत्र तेनेदमिति सरूपे'** *(२।२।२७) से बहुव्रीहि समास है। यहां कर्मव्यतिहार अर्थ में विद्यमान 'केशकेश' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'इच्' प्रत्यय है।* **'अन्येषामपि दृश्यते'** *(६।३।१३७) से पूर्वपद को दीर्घ होता है।* **'इच् कर्मव्यतिहारे'** *का* **'तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च'** *(२।१।१७) में पाठ होने से इच्-*

प्रत्ययान्त शब्द की अव्ययीभाव संज्ञा होती है और उसकी 'अव्ययीभावश्च' (१।१।४१) से अव्ययसंज्ञा होकर 'अव्ययादाप्सुपः' (२।४।८२) से 'सु' का लुक् होता है। ऐसे ही-कचाकचि, दण्डादण्डि, मुसलामुसलि।

इच्–

(१६) द्विदण्ड्यादिभ्यश्च।१२८।

प०वि०-द्विदण्डि-आदिभ्यः ४।३ च अव्ययपदम्।

स०-द्विदण्डि आदिर्येषां ते द्विदण्ड्यादयः, तेभ्यः-द्विदण्ड्यादिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, इच् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ द्विदण्ड्यादिभ्यश्च समासान्त इच्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे द्विदण्ड्यादिभ्यः=द्विदण्ड्यादिशब्दसिद्ध्यर्थं च समासान्त इच् प्रत्ययो निपात्यते।

उदा०-द्वौ दण्डौ यस्मिन् प्रहरणे तत्-द्विदण्डि प्रहरति। द्विमुसलि प्रहरति, इत्यादिकम्।

द्विदण्डि। द्विमुसलि। उभाञ्जलि। उभयाञ्जलि। उभाकर्णि। उभयाकर्णि। उभादन्ति। उभयादन्ति। उभाहस्ति। उभयाहस्ति। उभापाणि। उभयापाणि। उभाबाहु। उभयाबाहु। एकपदि। प्रोह्यपदि। आढ्यपदि। सपदि। निकुच्यकर्णि। संहतपुच्छि। उभाबाहु। उभयाबाहु इति निपातनाद् इच्प्रत्ययलोपः। प्रत्ययलक्षणेनाव्ययीभावसंज्ञा। इति द्विदण्ड्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (द्विदड्यादिभ्यः) द्विदण्डि आदि शब्दों के सिद्धि के लिये (च) भी (समासान्तः) समास का अवयव (इच्) इच् प्रत्यय निपातित है।*

उदा०-जिस प्रहार में दो दण्ड हैं वह-द्विदण्डि। जिस प्रहार में दो मुसल हैं वह-द्विमुसलि, इत्यादि।

सिद्धि-द्विदण्डि। द्वि+औ+दण्ड+औ। द्वि+दण्ड+इच्। द्विदण्ड्+इ। द्विदण्डि+सु। द्विदण्डि+०। द्विदण्डि।

यहां द्वि और दण्ड शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'द्विदण्ड' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'इच्' प्रत्यय निपातित है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-द्विमुसलि।

ज्ञु-आदेशः-

(१७) प्रसम्भ्यां जानुनोर्ज्ञुः।१२६।

प०वि०-प्रसम्भ्याम् ५।२ जानुनोः ६।२ ज्ञुः १।१।

स०-प्रश्च सम् च तौ प्रसमौ, ताभ्याम्-प्रसम्भ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ प्रसम्भ्यां जानुनोः समासान्तो ज्ञुः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे प्रसम्भ्यां परस्य जानु-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य स्थाने समासान्तो ज्ञुरादेशो भवति।

उदा०-(प्रः) प्रकृष्टे जानुनी यस्य सः-प्रज्ञुः। **(सम्)** समीचीने जानुनी यस्य सः-संज्ञुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (प्रसम्भ्याम्) प्र और सम् शब्दों से परे (जानुनोः) जानु प्रातिपदिक से स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (ज्ञुः) ज्ञु आदेश होता है।*

उदा०-(प्र) प्रकृष्ट=उत्तम हैं जानु=घुटने जिसके वह-प्रज्ञु। (सम्) समीचीन=अच्छे हैं जानु जिसके वह-संज्ञु।

सिद्धि-प्रज्ञुः। प्र+औ+जानु+औ। प्र+जानु। प्र+ज्ञु। प्रज्ञु+सु। प्रज्ञुः।

यहां प्र और जानु शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'प्रजानु' शब्द के 'जानु' के स्थान में इस सूत्र से समासान्त 'ज्ञु' आदेश है।

विशेषः *'जानुनोः' पद में षष्ठी-द्विवचन का निर्देश सन्देह की निवृत्ति के लिये किया है कि 'जानु' के स्थान में 'ज्ञु' आदेश होता है। 'जानुनः' पाठ पञ्चमी और षष्ठी-विभक्ति का सन्देह हो सकता है और 'ज्ञु' आदेश नहीं यह प्रत्यय है, यह भी सन्देह हो सकता है।*

ज्ञु-आदेशविकल्पः-

(१८) ऊर्ध्वाद् विभाषा।१३०।

प०वि०-ऊर्ध्वात् ५।१ विभाषा १।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, जानुनोरिति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ ऊर्ध्वाज्जानुनोर्विभाषा समासान्तो ज्ञुः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे ऊर्ध्व-शब्दात् परस्य जानु-शब्दस्य स्थाने विकल्पेन समासान्तो ज्ञुरादेशो भवति।

उदा०-ऊर्ध्वे जानुनी यस्य सः-ऊर्ध्वज्ञुः। ऊर्ध्वजानुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुवीहौ) बहुव्रीहि समास में (ऊर्ध्वात्) ऊर्ध्व शब्द से परे (जानुनोः) जानु शब्द के स्थान में (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (ज्ञुः) ज्ञु आदेश होता है।*

उदा०-ऊर्ध्व=ऊंचे हैं जानु=घुटने जिसके वह-ऊर्ध्वज्ञु, ऊर्ध्वजानु।

*सिद्धि-(१) **ऊर्ध्वज्ञुः।** यहां ऊर्ध्व और जानु शब्द का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'ऊर्ध्वजानु' शब्द के जानु शब्द के स्थान में इस सूत्र से 'ज्ञु' आदेश है।*

*(२) **ऊर्ध्वजानुः।** यहां विकल्प पक्ष में 'ऊर्ध्वजानु' शब्द के जानु शब्द के स्थान में 'ज्ञु' आदेश नहीं है।*

अनङ्-आदेशः-

(१६) ऊधसोऽनङ्।१३१।

प०वि०-ऊधसः ६।१ अनङ् १।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ ऊधसः समासान्तोऽनङ्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे ऊधःशब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य स्थाने समासान्तोऽनङ् आदेशो भवति।

उदा०-कुण्डमिव ऊधो यस्याः सा-कुण्डोध्नी गौः। घटोध्नी गौः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (ऊधसः) ऊधस् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अनङ्) अनङ् आदेश होता है।*

उदा०-कुण्ड के समान ऊधः=बांक है जिसका वह-कुण्डोध्नी गौ। घट=घड़े के समान ऊधः है जिसका वह-घटोध्नी गौ।

*सिद्धि-**कुण्डोध्नी।** कुण्ड+सु+ऊधस्+सु। कुण्ड+ऊधस्। कुण्डोध अनङ्। कुण्डोधन्+ङीप्। कुण्डोध्न्+ई। कुण्डोध्नी+सु। कुण्डोधी+०। कुण्डोध्नी।*

यहां कुण्ड और ऊधस् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'कुण्डोधस्' के सकार के स्थान में इस सूत्र से अनङ् आदेश होता। आदेश के ङित् होने से वह 'ङीच्च' (१।१।५३) से अन्त्य अल् के स्थान में किया जाता है। 'अतो गुणे' (६।१।९७) से

पररूप एकादेश होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'बहुव्रीहेरूधसो ङीष्' (४।१।२५) से ङीष् प्रत्यय और 'अल्लोपोऽनः' (६।४।१३४) से अंग के अकार का लोप होता है। ऐसे ही-घटोध्नी।

अनङ्-आदेशः–

(२०) धनुषश्च।१३२।

प०वि०-धनुषः ६।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अनङ् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ धनुषश्च समासान्तोऽनङ्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे धनुःशब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य स्थाने समासान्तोऽनङ् आदेशो भवति।

उदा०-शाङ्‌र्गं धनुर्यस्य सः-शाङ्‌र्गधन्वा। गाण्डीवधन्वा। पुष्पधन्वा। अधिज्यधन्वा।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (धनुषः) धनुष् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक के स्थान में (समासान्तः) समास का अवयव (अनङ्) अनङ् आदेश होता है।*

उदा०-शाङ्‌र्ग=सींग का बना हुआ है धनुष् जिसका वह-शाङ्‌र्गधन्वा विष्णु। गाण्डीव=ग्रन्थिविशेषवाला धनुष् है जिसका वह-गाण्डीवधन्वा अर्जुन। पुष्प का है धनुष् जिसका वह-पुष्पधन्वा कामदेव। अधिज्य=ज्या (डोरी) जिसकी चढ़ी हुई है ऐसा धनुष् है वह-अधिज्यधन्वा।

*सिद्धि-**शाङ्‌र्गधन्वा**। शाङ्‌र्ग+सु+धनुष्+सु। शाङ्‌र्ग+धनुष्। शाङ्‌गधनु अनङ्। शाङ्‌र्गधन्वन्+सु। शाङ्‌र्गधन्वान्+सु। शाङ्‌र्गधन्वान्+०। शाङ्‌र्गधन्वा।*

*यहां शाङ्‌र्ग और धनुष् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। शाङ्‌र्गधनुष् शब्द को इस सूत्र से पूर्ववत् अनङ् आदेश होता है। 'इको यणचि' (६।१।७६) से यण्-आदेश, 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' (६।४।८) से नकारान्त अंग की उपधा को दीर्घ, 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' (६।१।६७) से 'सु' का लोप और 'नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। ऐसे ही-**गाण्डीवधन्वा, पुष्पधन्वा, अधिज्यधन्वा**।*

अनङ्-आदेशविकल्पः–

(२१) वा संज्ञायाम्।१३३।

प०वि०-वा अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, अनङ्, धनुष इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ धनुषो वा समासान्तोऽनङ्, संज्ञायाम्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे धनुःशब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य स्थाने विकल्पेन समासान्तोऽनङ् आदेशो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-शतं धनुर्यस्य सः-शतधन्वा, शतधनुः। दृढं धनुर्यस्य सः-दृढधन्वा, दृढधनुः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (धनुष्) धनुष् शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक के स्थान में (वा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (अनङ्) अनङ् आदेश होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-शत=सौ हैं धनुष् जिसके वह-शतधन्वा, शतधनु। दृढ़ है धनुष् जिसका वह-दृढधन्वा, दृढधनु।

सिद्धि-(१) **शतधन्वा।** *यहां शत और धनुष् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। शतधनुष् शब्द को इस सूत्र से संज्ञा विषय में अनङ् आदेश है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-***दृढधन्वा।**

(२) **शतधनुः।** *यहां 'शतधनुष्' शब्द को इस सूत्र से विकल्प पक्ष में अनङ् आदेश नहीं है। ऐसे ही-***दृढधनुः।**

निङ्-आदेशः-

(२२) जायाया निङ्।१३४।

प०वि०-जायायाः ६।१ निङ् १।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ जायायाः समासान्तो निङ्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे जाया-शब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो निङ् आदेशो भवति।

उदा०-युवतिर्जाया यस्य सः-युवजानिः। वृद्धजानिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (जायायाः) जाया शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (निङ्) निङ् आदेश होता है।*

उदा०-युवति है जाया=पत्नी जिसकी वह-युवजानि। वृद्धा है जाया जिसकी वह-वृद्धजानि।

सिद्धि-युवजानि। युवति+सु+जाया+सु। युवति+जाया। युवति जाय् निङ्। युवन्+जा०नि। युवजानि+सु। युवजानिः।

यहां युवति और जाया शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'युवति जाया' शब्द को इस सूत्र से समासान्त निङ् आदेश होता है। 'लोपो व्योर्वलि' (६।१।६५) से 'जाय्' के यकार का लोप और 'स्त्रियाः पुंवत्०' (६।३।३४) से युवति शब्द को पुंवद्भाव (युवन्) होता है। ऐसे ही-वृद्धजानिः।

इकारादेशः-

(२३) गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः ।१३५।

प०वि०-गन्धस्य ६।१ इत् १।१ उत्-पूति-सु-सुरभिभ्यः ५।३।

स०-उच्च पूतिश्च सुश्च सुरभिश्च ते-उत्पूतिसुसुरभयः, तेभ्यः-उत्पूतिसुसुरभिभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ उत्पूतिसुसुरभिभ्यो गन्धस्य समासान्त इत्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उत्पूतिसुसुरभिभ्यः परस्य गन्धशब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्त इकारादेशो भवति।

उदा०-(उत्) उद्गतो गन्धो यस्य सः-उद्गन्धिः। (पूतिः) पूतिर्गन्धो यस्य सः-पूतिगन्धिः। (सुः) सुष्ठु गन्धो यस्य सः-सुगन्धिः। (सुरभिः) सुरभिर्गन्धो यस्य सः-सुरभिगन्धिः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उत्पूतिसुसुरभिभ्यः) उत्, पूति, सु, सुरभि शब्दों से परे (गन्धस्य) गन्ध शब्द को (समासान्तः) समास का अवयव (इत्) इकार आदेश होता है।*

उदा०-(उत्) उद्गत=उड़ गया है गन्ध गुण जिसका वह-उद्गन्धि। (पूति) पूति=निन्दित है गन्ध गुण जिसका वह-पूतिगन्धि। (सु) सु=पूजित है गन्ध गुण जिसका वह सुगन्धि। (सुरभि) सुरभि=प्रिय है गन्ध गुण जिसका वह-सुरभिगन्धि।

सिद्धि-उद्गन्धिः। उत्+सु+गन्ध+सु। उत्+गन्ध। उद्गन्ध् इ। उद्गन्धि+सु। उद्गन्धिः।

यहां 'उद्गन्ध' के गन्ध शब्द को इस सूत्र से समासान्त इकार आदेश है। ऐसे ही-पूतिगन्धिः, सुगन्धिः, सुरभिगन्धिः।

इकारादेशः-

(२४) अल्पाख्यायाम्।१३६।

वि०-अल्पाख्यायाम् ७।१।

स०-अल्पस्य आख्या-अल्पाख्या, तस्याम्-अल्पाख्यायाम् (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, गन्धस्य, इद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहावल्पाख्यायां गन्धस्य समासान्त इत्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासेऽल्पाख्यायां वर्तमानस्य गन्ध-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्त इकारादेशो भवति।

उदा०-सूपोऽल्पो यस्मिँस्तत्-सूपगन्धि भोजनम्। घृतगन्धि भोजनम्। क्षीरगन्धि भोजनम्। गन्धः=अल्पमित्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अल्पाख्यायाम्) अल्प-अर्थ में विद्यमान (गन्धस्य) गन्ध शब्द को (समासान्तः) समास का अवयव (इत्) इकार आदेश होता है।*

उदा०-अल्प=थोड़ी है सूप=दाल जिसमें वह-सूपगन्धि भोजन। अल्प है घृत जिसमें वह-घृतगन्धि भोजन। अल्प है क्षीर=दूर जिसमें वह-क्षीरगन्धि भोजन।

सिद्धि-सूपगन्धि। यहां सूप और गन्ध शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'सूपगन्ध' के गन्ध शब्द को इस सूत्र से समासान्त इकार आदेश है। ऐसे ही-घृतगन्धि, क्षीरगन्धि।

इकारादेशः-

(२५) उपमानाच्च।१३७।

प०वि०-उपमानात् ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, गन्धस्य, इद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहावुपमानाच्च गन्धस्य समासान्त इत्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उपमानवाचिनः शब्दाच्च परस्य गन्ध-शब्दस्य समासान्त इकारादेशो भवति।

उदा०-पद्मस्येव गन्धो यस्य सः-पद्मगन्धिः। उत्पलगन्धिः। करीषगन्धिः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उपमानात्) उपमानवाची शब्द से (च) भी परे (गन्ध) गन्ध प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (इत्) इकार आदेश होता है।*

उदा०-पद्म=कमल के समान गन्ध गुण है जिसका वह-पद्मगन्धि। उत्पल= नीलकमल के समान गन्ध गुण है जिसका वह-उत्पलगन्धि। करीष=शुष्क गोमय के समान गन्ध गुण है जिसका वह-करीषगन्धि।

सिद्धि-पद्मगन्धिः। यहां उपमानवाची और गन्ध शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'पद्मगन्ध' के गन्ध शब्दों को इस सूत्र से समासान्त इकार आदेश है। ऐसे ही-उत्पलगन्धिः, करीषगन्धिः।

लोपादेशः-

(२६) पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः।१३८।

प०वि०-पादस्य ६।१ लोपः १।१ अहस्त्यादिभ्यः ५।३।

स०-हस्ती आदिर्येषां ते हस्त्यादयः, न हस्त्यादयः-अहस्त्यादयः, तेभ्यः-अहस्त्यादिभ्यः (बहुवीहिगर्भितनञ्तत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, उपमानाद् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहावहस्त्यादिकाद् उपमानात् पादस्य समानान्तो लोपः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे हस्त्यादिवर्जिताद् उपमानवाचिनः शब्दात् परस्य पाद-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०-व्याघ्रस्येव पादौ यस्य सः-व्याघ्रपात्, सिंहपात्।

हस्तिन्। कटोल। गण्डोल। गण्डोलक। महिला। दासी। गणिका। कुसूल। इति हस्त्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अहस्त्यादिभ्यः) हस्ती आदि शब्दों से भिन्न (उपमानात्) उपमानवाची शब्द से परे (पादस्य) पाद प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप आदेश होता है।*

उदा०-व्याघ्र=बाघ के समान हैं पाद=पांव जिसके वह-व्याघ्रपात्। सिंह=शेर के समान हैं पाद जिसके वह-सिंहपात्।

सिद्धि-व्याघ्रपात्। यहां उपमानवाची व्याघ्र और पाद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'व्याघ्रपाद' के पाद शब्द के अन्त्य अकार को इस सूत्र से लोपादेश होता है। ऐसे ही-सिंहपात्।

लोपादेशः–

(२७) कुम्भपदीषु च।१३६।

प०वि०-कुम्भपदीषु ७।३ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः बहुव्रीहौ, पादस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ कुम्भपदीषु च पादस्य समासान्तो लोपः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे कुम्भपदीप्रभृतिषु च वर्तमानस्य पादशब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०-कुम्भस्येव पादौ यस्याः सा-कुम्भपदी। शतं पादा यस्याः सा-शतपदी, इत्यादिकम्।

कुम्भपदी। शतपदी अष्टापदी। जालपदी। एकपदी। मालापदी। मुनिपदी। गोधापदी। गोपदी। कलशीपदी। घृतपदी। दासीपदी। निष्पदी। आर्द्रपदी। कुणपदी। कृष्णपदी। द्रोणपदी। द्रुपदी। शकृत्पदी। सूपपदी। पञ्चपदी। अर्वपदी। स्तनपदी। इति कुम्भपद्यादयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (कुम्भपदीषु) कुम्भपदी आदि शब्दों में (च) भी विद्यमान (पादस्य) पाद प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप आदेश होता है।*

उदा०-कुम्भ=कलश के समान हैं पाद=पांव जिसके वह-कुम्भपदी। शत=सौ हैं पाद जिसके वह-शतपदी, इत्यादि।

सिद्धि-कुम्भपदी। कुम्भ+सु+पाद+सु। कुम्भ+पाद। कुम्भ+पाद्+ङीप्। कुम्भ+पत्+ई। कुम्भपदी+सु। कुम्भपदी।

यहां कुम्भ और पाद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। कुम्भपाद के पाद शब्द को इस सूत्र से समासान्त लोपादेश है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'पादोऽन्यतरस्याम्' (४।१।८) से ङीप् प्रत्यय और 'पादः पत्' (६।४।१३०) से पाद को पत् आदेश होता है।

कुम्भपदी आदि शब्दों का समुदाय रूप में पाठ का प्रयोजन यह है कि स्त्रीलिङ्ग में और ङीप् प्रत्यय विषय में ही 'कुम्भपदी' आदि शब्दों में पाद के अन्त्य अकार का लोप होता है; अन्यत्र नहीं।

लोपादेशः–

(२८) संख्यासुपूर्वस्य।१४०।

प०वि०-संख्या-सुपूर्वस्य ६।१।

स०-संख्या च सुश्च तौ संख्यासू, संख्यासू पूर्वौ यस्य स संख्यासुपूर्वः, तस्य-संख्यासुपूर्वस्य (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, पादस्य, लोप इति चानुवर्तते।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे संख्यापूर्वस्य सुपूर्वस्य च पाद-शब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०-**(संख्या)** द्वौ पादौ यस्य सः-द्विपात्। त्रिपात्। **(सुः)** शोभनौ पादौ यस्य सः-सुपात्।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (संख्यासुपूर्वस्य) संख्यावाची और सु शब्द जिसके पूर्व में हैं उस (पादस्य) पाद-अन्तवाले प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप आदेश होता है।*

*उदा०-**(संख्या)** दो हैं पाद=पांव जिसके वह-द्विपात्। तीन हैं पाद जिसके वह-त्रिपात्। **(सु)** सु=सुन्दर हैं पाद जिसके वह-सुपात्।*

*सिद्धि-**द्विपात्**। यहां द्वि और पाद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'द्विपाद' के पाद शब्द को इस सूत्र से समासान्त लोपादेश है और वह 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) से पाद शब्द के अन्त्य अकार को होता है। ऐसे ही-**त्रिपात्, सुपात्**।*

दतृ-आदेशः-

(२६) वयसि दन्तस्य दतृ।१४१।

प०वि०-वयसि ७।१ दन्तस्य ६।१ दतृ १।१ (सु-लुक्)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, संख्यासुपूर्वस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ संख्यासुपूर्वस्य दन्तस्य समासान्तो दतृ, वयसि।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे संख्यापूर्वस्य सुपूर्वस्य च दन्त-शब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो दतृ-आदेशो भवति, वयसि गम्यमाने।

उदा०-**(संख्या)** द्वौ दन्तौ यस्य सः-द्विदन्। त्रिदन्। चतुर्दन्। **(सुः)** शोभना दन्ता यस्य समस्ता जाताः सः-सुदन् कुमारः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (संख्यासुपूर्वस्य) संख्यावाची और सु शब्द जिसके पूर्व में हैं उस (दन्तस्य) दन्त-अन्तवाले प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है।*

उदा०-(संख्या) दो हैं दन्त जिसके वह-द्विदन्। तीन हैं दन्त जिसके वह-त्रिदन्। चार है दन्त जिसके वह-चतुर्दन्। (सु) सु=सुन्दर निकले हैं समस्त दन्त जिसके वह-सुदन् कुमार।

***सिद्धि-द्विदन्।** द्वि+औ+दन्त+औ। द्वि+दन्त। द्वि+दतृ। द्विदतृ+सु। द्विदत्+सु। द्विद्नुम्त्+सु। द्विदन्त्+सु। द्विदन्त्+०। द्विदन्।*

*यहां संख्यावाची द्वि और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'द्विदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से समासान्त दतृ आदेश है। दतृ के उगित् (ऋ-इत्) होने से **'उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः'** (७।१।७०) से नुम् आगम होता है। **'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०'** (६।१।६७) से 'सु' का लोप और **'संयोगान्तस्य लोपः'** (८।२।२३) से संयोगान्त तकार का लोप होता है। ऐसे ही-**त्रिदन्, चतुर्दन्, सुदन्।***

दतृ-आदेशः-

(३०) छन्दसि च।१४२।

प०वि०-छन्दसि ७।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, दन्तस्य, दतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि च बहुव्रीहौ दन्तस्य समासान्तो दतृ।

अर्थः-छन्दसि विषये च बहुव्रीहौ समासे दन्त-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो दतृ-आदेशो भवति।

उदा०-पत्रदतमालभेत। उभयादत आलभेत (ऋ० १०।९०।१०)। **तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः** (यजु० ३१।८)।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में (च) भी (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (दन्तस्य) दन्त प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है।*

*उदा०-**पत्रदतमालभेत। उभयादत आलभेत** (ऋ० १०।९०।१०)। **तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः** (यजु० ३१।८)। अश्व और जो उभयादत्=दोनों ओर दन्तवाले पशु हैं वे उस परमपुरुष से उत्पन्न हुये हैं।*

सिद्धि-पत्रदत्।** यहां पत्र और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। पत्रदन्त के दन्त शब्द को इस सूत्र से छन्दविषय में दतृ आदेश है। ऐसे ही-**उभयादत्।

दतृ-आदेशः–

(३१) स्त्रियां संज्ञायाम्।१४३।

प०वि०-स्त्रियाम् ७।१ संज्ञायाम् ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, दन्तस्य, दतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ स्त्रियां दन्तस्य समासान्तो दतृ, संज्ञायाम्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे स्त्रियां च विषये दन्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो दतृ-आदेशो भवति, संज्ञायां गम्यमानायाम्।

उदा०-अय इव दन्ता यस्याः सा-अयोदती। फालदती।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग विषय में (दन्तस्य) दन्त प्रातिपदिक को (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है (संज्ञायाम्) यदि वहां संज्ञा अर्थ की प्रतीति हो।*

उदा०-अयः=सुवर्ण के समान सुन्दर हैं दन्त जिसके वह-अयोदती। फाल=हळ की फाळी के समान लम्बे हैं दन्त जिसके वह-फालदती।

सिद्धि-अयोदती। अयस्+सु+दन्त+जस्। अयस्+दन्त। अयरु+दन्त। अयर्+दन्त। अय उ+दन्त। अयोदन्त। अयोदतृ। अयोदत्+ङीप्। अयोदत्+ई। अयोदती+सु। अयोदती।

यहां अयस् दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'अयस्' के सकार का 'ससजुषो रुः' (८।२।६६) से रुत्व, 'हशि च' (६।१।११२) से रेफ को उत्व और 'आद्गुणः' (६।१।८६) से गुणरूप एकादेश होता है। अयोदन्त के दन्त शब्द को इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में तथा संज्ञा विषय में दतृ आदेश होता है। दतृ के उगित् (ऋ-इत्) होने से 'उगितश्च' (४।१।६) से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है। ऐसे ही-फालदती।

दतृ-आदेशविकल्पः–

(३२) विभाषा श्यावारोकाभ्याम्।१४४।

प०वि०-विभाषा १।१ श्याव-अरोकाभ्याम् ५।२।

स०-श्यावश्च अरोकश्च तौ श्यावारोकौ, ताभ्याम्-श्यावारोकाभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, दन्तस्य, दतृ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ श्यावारोकाभ्यां दन्तस्य विभाषा समासान्तो दतृ।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे श्यावरोकाभ्यां शब्दाभ्यां परस्य दन्त-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य विकल्पेन समासान्तो दतृ-आदेशो भवति।

उदा०-(श्यावः) श्यावा दन्ता यस्य सः-श्यावदन्, श्यावदन्तः। (अरोकः) अरोका दन्ता यस्य सः-अरोकदन्, अरोकदन्तः।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (श्यावारोकाभ्याम्) श्याव और अरोक शब्दों से परे (दन्तस्य) दन्त प्रातिपदिक को (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है।*

उदा०-(श्याव) श्याव=काले हैं दन्त जिसके वह-श्यावदन्, श्यावदन्त। (अरोक) अरोक=दीप्ति से रहित हैं दन्त जिसके वह-अरोकदन्, अरोकदन्त।

*सिद्धि-(१) **श्यावदन्।** यहां श्याव और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'श्यावदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से समासान्त दतृ आदेश है। शेष कार्य 'द्विदन्' (५।४।१४१) के समान है। ऐसे ही-**अरोकदन्।***

*(२) **श्यावदन्तः।** यहां श्याव और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। विकल्प पक्ष में 'श्यावदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से समासान्त दतृ आदेश नहीं है।*

दतृ-आदेशविकल्पः-

(३३) अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च।१४५।

प०वि०-अग्रान्त-शुद्ध-शुभ्र-वृष-वराहेभ्यः ५।३ च अव्ययपदम्।

स०-अग्रमन्ते यस्य सः-अग्रान्तः, अग्रान्तश्च शुद्धश्च शुभ्रश्च वृषश्च वराहश्च ते अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहाः, तेभ्यः-अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, दन्तस्य, दतृ, विभाषा इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यो दन्तस्य विभाषा समासान्तो दतृ।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासेऽग्रान्तात् शुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्च शब्देभ्यः परस्य दन्त-शब्दस्य प्रातिपदिकस्य विकल्पेन दतृ-आदेशो भवति।

उदा०-(अग्रान्तम्) कुड्मलस्याग्रम्-कुड्मलाग्रम्, कुड्मलाग्रमिव दन्ता यस्य सः-कुड्मलाग्रदन्, कुड्मलाग्रदन्तः। (शुद्धः) शुद्धा दन्ता यस्य

सः-शुद्धदन्, शुद्धदन्तः । **(शुभ्रः)** शुभ्रा दन्ता यस्य सः-शुभ्रदन्, शुभ्रदन्तः । **(विषः)** वृष इव दन्ता यस्य सः-वृषदन्, वृषदन्तः । **(वराहः)** वराह इव दन्ता यस्य सः-वराहदन्, वराहदन्तः ।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यः) अग्र शब्द जिसके अन्त में है उस तथा शुद्ध, शुभ्र, वृष, वराह शब्दों से परे (दन्तस्य) दन्त प्रातिपदिक को (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (दतृ) दतृ आदेश होता है।*

उदा०-(अग्रान्त) कुड्मल=खिली हुई फूल की कली के अग्र=अगले भाग के समान हैं दन्त जिसके वह-कुड्मलाग्रदन्, कुड्मलाग्रदन्त। (शुद्ध) शुद्ध हैं दन्त जिसके वह-शुद्धदन्, शुद्धदन्त। (शुभ्र) शुभ=सफेद हैं दन्त जिसके वह-शुभ्रदन्, शुभ्रदन्त। (वृष) वृष=बैल/चूहा के समान हैं दन्त जिसके वह-वृषदन्, वृषदन्त। (वराह) वराह=सुअर के समान हैं दन्त जिसके वह-वराहदन्, वराहदन्त।

*सिद्धि-(१) **कुड्मलाग्रदन्।** यहां अग्र शब्द जिसके अन्त में है उस कुड्मालाग्र और दन्त शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'कुड्मलाग्रदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से दतृ आदेश है। शेष कार्य 'द्विदन्' (५।४।१४१) के समान है। ऐसे ही-शुद्धदन् आदि।*

*(२) **कुड्मलाग्रदन्तः।** यहां 'कुड्मलाग्रदन्त' के दन्त शब्द को इस सूत्र से विकल्प में 'दतृ' आदेश नहीं है। ऐसे ही-शुद्धदन्तः आदि।*

लोपादेशः-

(३४) ककुदस्यावस्थायां लोपः ।१४६।

प०वि०-ककुदस्य ६।१ अवस्थायाम् ७।१ लोपः ।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ ककुदस्य समासान्तो लोपोऽवस्थायाम्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे ककुद-शब्दान्तस्य प्रातिपदिकस्य समासान्तो लोपादेशो भवति, अवस्थायां गम्यमानायाम्।

उदा०-असंजातं ककुदं यस्य सः-असंजातककुत्। बाल इत्यर्थः। पूर्ण ककदं यस्य सः-पूर्णककुत्। मध्यमवया इत्यर्थः। उन्नतं ककुदं यस्य सः-उन्नतककुत्। वृद्धवया इत्यर्थः। स्थूलं ककुदं यस्य सः-स्थूलककुत्।

बलवानित्यर्थः। यष्टिरिव ककुदं यस्य सः-यष्टिककुत्। नातिस्थूलो नातिकृश इत्यर्थः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (ककुदस्य) ककुद शब्द जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक को (लोपः) लोप आदेश होता है (अवस्थायाम्) यदि वहां अवस्था=आयु आदि वस्तु-धर्मों की प्रतीति हो।*

उदा०-जिसके ककुद (बैल की थूही) असंजात=उत्पन्न नहीं हुआ है वह-असंजातककुत् बछड़ा। पूर्ण=पूरा है ककुद जिसका वह-पूर्णककुत्। मध्यम अवस्था का बैल। उन्नत है ककुद जिसका वह-उन्नतककुत्। वृद्ध अवस्था का बैल। स्थूल=मोटा है ककुद जिसका वह-स्थूलककुत्। बलवान् बैल। यष्टि=लाठी के समान दृढ है ककुद जिसका वह -यष्टिककुत्। न अधिक स्थूल और न अधिक कृश=पतला बैल।

*सिद्धि-**असंजातककुत्।** यहां असंजात और ककुद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'असंजातककुद' शब्द को इस सूत्र से लोपादेश है और वह **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५२) से 'ककुद' के अन्त्य अकार का लोप होता है। ऐसे ही-**पूर्णककुत्** आदि।*

लोपादेशः (निपातनम्)–

(३५) त्रिककुत् पर्वते।१४७।

प०वि०-त्रिककुत् १।१ पर्वते ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ त्रिककुत् समासान्तो लोपः, पर्वते।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे 'त्रिकुकुत्' इत्यत्र समासान्तो लोपादेशो निपात्यते, पर्वतेऽभिधेये।

उदा०-त्रीणि ककुदानि यस्य सः-त्रिककुत् पर्वतः। ककुदाकारं पर्वतस्य शृङ्गं ककुदमिति कथ्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (त्रिककुत्) त्रिककुत् इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप आदेश निपातित है (पर्वते) यदि वहां पर्वत अर्थ अभिधेय हो।*

उदा०-तीन है ककुद जिसके वह-त्रिककुत् पर्वत। ककुद (बैल की थूही) के आकृतिवाले पर्वत के शिखर ककुद कहलाते हैं।

*सिद्धि-**त्रिककुत्।** यहां त्रि और ककुद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। त्रिककुद के ककुद शब्द को इस सूत्र से लोपादेश निपातित है और वह **'अलोऽन्त्यस्य'** (१।१।५२) से ककुद के अन्त्य अकार का लोप होता है।*

विशेषः *सुलेमान के समानान्तर श्रीनगर की पर्वत-शृंखला है जो झोब (वैदिक नाम-यह्वती) नदी के पूर्व है एवं दोनों के पीछे टोबा और काकड़ की शृंखलायें हैं। पर्वतों की यह तिहरी दीवार ठीक ही 'त्रिककुत्' कहलाती थी (पं० जयचन्द्र विद्यालंकार-कृत भारतभूमि पृ० १२९)।*

लोपादेशः–

(३६) उद्विभ्यां काकुदस्य।१४८।

प०वि०–उद्विभ्याम् ५।२ काकुदस्य ६।१।

स०–उच्च विश्च तौ–उद्वी, ताभ्याम्–उद्विभ्याम् (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, लोप इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहावुद्विभ्यां काकुदस्य समासान्तो लोपः।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे उद्विभ्यां परस्य काकुदशब्दस्य समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०–**(उत्)** उद्गतं काकुदं यस्य सः–उत्काकुत्। **(वि)** विगतं काकुदं यस्य सः–विकाकुत्। काकुदम्=तालु।

आर्यभाषाः *अर्थ–(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उद्विभ्याम्) उत् और वि शब्दों से परे (काकुदस्य) काकुद शब्द को (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोपादेश होता है।*

उदा०–(उत्) उत्=उठा हुआ है काकुद=तालु जिसका वह–उत्काकुत्। (वि) वि=दबा हुआ काकुद=तालु जिसका वह–विकाकुत्।

सिद्धि–उत्काकुत्। यहां उत् और काकुद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'उत्काकुद' के 'काकुद' शब्द को इस सूत्र से समासान्त लोपादेश निपातित है और वह 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) से 'काकुद' शब्द के अन्त्य अकार का लोप होता है। 'वाऽवसाने' (८।४।५६) से 'द्' को चर् 'त्' होता है। समासान्त की बाधा से 'आदेः परस्य' (१।१।५४) से प्राप्त 'काकुद' के आदि ककार को लोपादेश नहीं होता है।

लोपादेश-विकल्पः–

(३७) पूर्णाद् विभाषा।१४६।

प०वि०–पूर्णात् ५।१ विभाषा १।१।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, लोपः, काकुदस्य इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ पूर्णात् काकुदस्य विभाषा समासान्तो लोपः।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे पूर्णशब्दात् परस्य काकुदशब्दस्य विकल्पेन समासान्तो लोपादेशो भवति।

उदा०-पूर्णं काकुदं यस्य सः-पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुदः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहि समास में (पूर्णात्) पूर्ण शब्द से परे (काकदस्य) काकुद शब्द को (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (लोपः) लोप-आदेश होता है।*

उदा०-पूर्ण=पूरा है काकात्=तालु जिसका वह-पूर्णकाकुत्, पूर्णकाकुद।

*सिद्धि-(१) **पूर्णकाकुत्।** यहां पूर्ण और काकुद शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'पूर्णकाकुद' के 'काकुद' शब्द को इस सूत्र से समासान्त लोपादेश है और वह 'अलोऽन्त्यस्य' (१।१।५२) से काकुद के अन्त्य अकार का लोप होता है।*

*(२) **पूर्णकाकुदः।** यहां 'पूर्णकाकुद' के 'काकुद' शब्द को इस सूत्र से विकल्प पक्ष में लोपादेश नहीं है।*

निपातनम्—

(३८) सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः।१५०।

प०वि०-सुहृद्-दुर्हृदौ १।२ मित्र-अमित्रयोः ७।२।

स०-सुहृच्च दुर्हृच्च तौ-सुहृद्दुर्हृदौ (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। मित्रं च अमित्रं च ते-मित्रामित्रे, तयोः-मित्रामित्रयोः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ सुहृद्दुर्हृदौ मित्रामित्रयोः समासान्तौ।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे सुहृद्दुर्हृदौ शब्दौ यथासंख्यं मित्रामित्रयोरर्थयोः समासान्तौ निपात्यते।

सु-शब्दात् परस्य हृदयशब्दस्य समासान्तो हृदादेशः, दुर्-शब्दाच्च परस्य हृदयशब्दस्य समासान्तो हृदादेशो निपात्यते।

उदा०-**(सुहृत्)** शोभनं हृदयं यस्य सः-सुहृद् मित्रम्। **(दुर्हृत्)** दुष्टं हृदयं यस्य सः-दुर्हृद् अमित्रम् (शत्रुः)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (सुहृद्दुर्हृदौ) सुहृद् और दुर्हृद् शब्द (मित्रामित्रयोः) यथासंख्य मित्र और अमित्र अर्थ में (समासान्तौ) समास के अवयव रूप में निपातित हैं।*

यहां सु-शब्द से परे हृदय शब्द को समासान्त हृद् आदेश और दुर् शब्द से परे हृदय शब्द को समासान्त हृद् आदेश निपातित है।

उदा०-सु=अच्छा है हृदय जिसका वह-सुहृद् मित्र। दुर्=खराब है हृदय जिसका वह-दुर्हृद् अमित्र (शत्रु)।

सिद्धि-सुहृद्। यहां सु और हृदय शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'सुहृदय' के हृदय शब्द को इस सूत्र से मित्र अर्थ में समानान्त हृद्-आदेश निपातित है। ऐसे ही-दुर्हृद्।

कप्–

(३६) उरःप्रभृतिभ्यः कप्।१५१।

प०वि०-उरःप्रभृतिभ्यः ५।३ कप् १।१।

स०-उरःप्रभृतिर्येषां ते-उरःप्रभृतयः, तेभ्यः- उरःप्रभृतिभ्यः (बहुव्रीहिः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ उरःप्रभृतिभ्यः समासान्तः कप्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे उरःप्रभृत्यन्तेभ्यः प्रातिपदिकेभ्यः समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-व्यूढमुरो यस्य सः-व्यूढोरस्कः। प्रियं सर्पिर्यस्य सः-प्रियसर्पिष्कः। अवमुक्ते उपानहौ येन सः-अवमुक्तोपानत्कः, इत्यादिकम्।

उरस्। सर्पिस्। उपानह्। पुमान्। अनड्वान्। नौः। पयः। लक्ष्मीः। दधि। मधु। शालिः। अर्थान्नञः। अनर्थकः। इत्युरःप्रभृतयः।।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (उरःप्रभृतिभ्यः) उरस् आदि शब्द जिसके अन्त में हैं उन प्रातिपदिकों से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-व्यूढ=फैला हुआ (चोड़ा) है उरस् (छाती) जिसका वह-व्यूढोरस्क। प्रिय है सर्पिस् (घृत) जिसका वह-प्रियसर्पिष्क। अवमुक्त=छोड़ दिया है उपानत्=जूता जिसने वह-अवमुक्तोपानत्क इत्यादि।

सिद्धि-(१) व्यूढोरस्कः। व्यूढ+सु+उरस्+सु। व्यूढ+उरस्+कप्। व्यूढोरस्+क। व्यूढोरस्क+सु। व्यूढोरस्कः।

यहां व्यूढ और उरस् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'व्यूढोरस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'कप्' प्रत्यय है।

(२) प्रियसर्पिष्कः। यहां 'इणः षः' (८।३।३९) से 'सर्पिः' के विसर्जनीय को षकार आदेश होता है।

*(३) अवमुक्तोपानत्कः। यहां 'उपानह्' शब्द के हकार को **'नहो धः'** (८।२।३४) से धकार, **'झलां जशोऽन्ते'** (८।२।३९) से धकार को जश् दकार और **'खरि च'** (८।४।५५) से दकार को चर् तकार आदेश होता है। शेष कार्य पूर्ववत् है।*

***विशेषः** उरःप्रभृति में पुमान्, अनड्वान्, पयः, नौः, लक्ष्मीः ये शब्द विभक्त्यन्त पठित हैं, प्रातिपदिक नहीं। इसका यह प्रयोजन है कि इनका एक वचनान्त में ही ग्रहण किया जाता है, द्विवचनान्त और बहुवचनान्त में नहीं। अतः इनसे **'शेषाद् विभाषा'** (५।४।१५४) से विकल्प से समासान्त कप् प्रत्यय होता है जैसे-**द्विपुंस्कः, द्विपुमान्। बहुपुमान्, बहुपुंस्कः** इत्यादि।*

कप्–

(४०) इनः स्त्रियाम्।१५२।

प०वि०–इनः ५।१ स्त्रियाम् ७।१।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ स्त्रियाम् इनः समासान्तः कप्।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे स्त्रियां च विषये इन्नन्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति।

उदा०–बहवो दण्डिनो यस्यां सा-बहुदण्डिका शाला। बहुच्छत्रिका शाला। बहुस्वामिका नगरी। बहुवाग्मिका सभा।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में तथा (स्त्रियाम्) स्त्रीलिङ्ग विषय में (इनः) इन् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-बहु=बहुत हैं दण्डी जन जिसमें वह-बहुदण्डिका शाला। बहु=बहुत हैं छत्री=छत्रधारी जन जिसमें वह-बहुच्छत्रिका शाला। बहु=बहुत हैं स्वामी जिसमें वह-बहुस्वामिका नगरी। बहुत हैं वाग्मी=श्रेष्ठ वक्ता जिसमें वह-बहुवाग्मिका सभा।

सिद्धि-बहुदण्डिका। बहु+जस्+दण्डिन्+जस्। बहु+दण्डिन्+कप्। बहुदण्डि+क। बहुदण्डिक+टाप्। बहुदण्डिका+सु। बहुदण्डिका।

*यहां बहु और दण्डिन् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। इन्नन्त 'बहुदण्डिन्' शब्द से इस सूत्र से स्त्रीलिङ्ग विषय में समासान्त 'कप्' प्रत्यय है। '**स्वादिष्वसर्वनामस्थाने**' (४।१।१७) से बहुदण्डिन् की पद संज्ञा होकर '**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**' (८।२।७) से नकार का लोप होता है। स्त्रीत्व-विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' (४।१।४) से 'टाप्' प्रत्यय होता है। ऐसे ही-बहुच्छत्रिका, बहुस्वामिका, बहुवाग्मिका।*

कप्–

(४१) नद्यृतश्च।१५३।

प०वि०-नदी-ऋतः ५।१ च अव्ययपदम्।

स०-नदी च ऋच्च एतयोः समाहारो नद्यृत्, तस्मात्-नद्यृतः (समाहारद्वन्द्वः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ नद्यृतश्च समासान्तः कप्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे नद्यन्ताद् ऋकारान्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-(**नदीसंज्ञकम्**) बहवः कुमार्यो यस्मिन् सः-बहुकुमारीको देशः। बहुब्रह्मबन्धूको देशः। (**ऋकारान्तम्**) बहवः कर्तारो यस्मिन् सः-बहुकर्तृको देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नद्यृतः) नदीसंज्ञक और ऋकारान्त प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-(नदीसंज्ञक) बहु=बहुत हैं कुमारियां जिसमें वह-बहुकुमारीक देश। बहु=बहुत हैं कर्ता (कर्तृ) स्वतन्त्र जिसमें वह-बहुकर्तृक देश।

सिद्धि-बहुकुमारीकः। बहु+जस्+कुमारी+जस्। बहुकुमारी+कप्। बहुकुमारीक+सु। बहुकुमारीकः।

*यहां बहु और कुमारी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। कुमारी शब्द की '**यूस्त्र्याख्यौ नदी**' (१।४।३) से नदी संज्ञा है। 'बहुकुमारी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय है। 'कप्' प्रत्यय परे होने पर '**केऽणः**' (७।४।१३) से प्राप्त ह्रस्वत्व का '**न कपि**' (७।४।१४) से प्रतिषेध होता है। ऐसे ही-ब्रह्मबन्धूकः, बहुकर्तृकः।*

कप्-विकल्पः–

(४२) शेषाद् विभाषा।१५४।

प०वि०-शेषात् ५।१ विभाषा १।१। उक्तादन्यः शेषः-तस्मात्-शेषात्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ शेषात् प्रातिपदिकाद् विभाषा समासान्तः कप्।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे शेषात् प्रातिपदिकाद् विकल्पेन समासान्तः कप् प्रत्ययो भवति।

उदा०-बह्व्यः खट्वा यस्मिन् सः-बहुखट्वाकः, बहुखट्वकः, बहुखट्वो देशः। बह्व्यो माला यस्मिन् देशे सः-बहुमालाकः, बहुमालकः, बहुमालो देशः। बह्व्यो वीणा यस्मिन् देशे सः-बहुवीणाकः, बहुवीणकः, बहुवीणो देशः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (शेषात्) शेष=इस प्रकरण में प्रोक्त से अन्य प्रातिपदिक से (विभाषा) विकल्प से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय होता है।*

उदा०-बहु=बहुत हैं खट्वा=खाट जिसमें वह-बहुखट्वाक, बहुखट्वक, बहुखट्व देश। बहु=बहुत हैं मालायें जिसमें वह-बहुमालाक, बहुमालक, बहुमाल देश। बहु=बहुत हैं वीणायें जिसमें वह-बहुवीणाक, बहुवीणक, अबहुवीण देश (स्थान)।

सिद्धि-(१) बहुखट्वाकः। बह्वी+जस्+खट्वा+जस्। बह्वी+खट्वा+कप्। बहुखट्वा+क। बहुखट्वाक+सु। बहुखट्वाकः।

*यहां बह्वी और खट्वा शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'बहुखट्वा' शेष प्रातिपदिक से इस सूत्र से समासान्त 'कप्' प्रत्यय है। ऐसे ही-**बहुमालाकः, बहुवीणाकः।***

(२) बहुखट्वकः। यहां 'आपोऽन्यतरस्याम्' (७।४।१५) से अंग को विकल्प पक्ष में ह्रस्व है। शेष कार्य पूर्ववत् है। ऐसे ही-बहुमालकः। बहुवीणकः।

(३) बहुखट्वः। यहां 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' (१।२।४८) से उपसर्जन-संज्ञक 'खट्वा' शब्द को ह्रस्व होता है। यहां विकल्प पक्ष में प्राप्त 'कप्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-बहुमालः, बहुवीणः।

कप्-प्रतिषेधः–

(४३) न संज्ञायाम्।१५५।

प०वि०–न अव्ययपदम्, संज्ञायाम् ७।१।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप् इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ संज्ञायां प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् न।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे संज्ञायां च विषये वर्तमानात् प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०–विश्वे देवा यस्य सः-विश्वदेवः। विश्वानि यशांसि यस्य सः-विश्वयशाः।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में तथा (संज्ञायाम्) संज्ञा विषय में विद्यमान प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-विश्व=सब हैं देव=विद्वान् जिसके वह-विश्वदेव (ईश्वर)। विश्व=सब हैं यश जिसके वह-विश्वयशा (इन्द्र)।

*सिद्धि-**विश्वदेवः**। यहां विश्व और देव शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। यहां संज्ञाविषय में इस सूत्र से 'कप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। ऐसे ही-**विश्वयशाः**।*

कप्-प्रतिषेधः–

(४४) ईयसश्च।१५६।

प०वि०–ईयसः ५।१ च अव्ययपदम्।

अनु०–समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः–बहुव्रीहौ ईयसश्च समासान्तः कप् न।

अर्थः–बहुव्रीहौ समासे ईयसन्तात् प्रातिपदिकाच्च समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०–बहवः श्रेयांसो यस्मिन् सः-बहुश्रेयान् ग्रामः। बहुश्रेयसी नगरी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (ईयसः) ईयस् जिसके अन्त में है उस प्रातिपदिक से (च) भी (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-बहु=बहुत है श्रेयान्=प्रशस्य जन जिसमें वह-बहुश्रेयान् ग्राम। बहुश्रेयसी नगरी।

*सिद्धि-(१) **बहुश्रेयान्।** यहां बहु और श्रेयस् शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। प्रशस्य शब्द से **'द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ'** (५।३।५७) से ईयसुन् प्रत्यय और **'प्रशस्यस्य श्रः'** (५।३।६०) से 'प्रशस्य' को 'श्र' आदेश होता है। ईयसन्त 'बहुश्रेयस्' शब्द से इस सूत्र से समासान्त कप् प्रत्यय का प्रतिषेध है। **'शेषाद् विभाषा'** (५।४।१५४) से कप् प्रत्यय प्राप्त था।*

*(२) **बहुश्रेयसी।** यहां **'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य'** (१।२।४८) से प्राप्त ह्रस्वत्व का वा०- **'ईयसो बहुव्रीहेः प्रतिषेधो वक्तव्यः'** (१।२।४८) से ह्रस्वत्व का प्रतिषेध होता है।*

कप्-प्रतिषेधः-

(४५) वन्दिते भ्रातुः।१५७।

प०वि०-वन्दिते ७।१ भ्रातुः ५।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ वन्दिते च भ्रातुः समासान्तः कप् न।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे वन्दिते चार्थे वर्तमानाद् भ्रातृ-शब्दात् प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति। वन्दितः=स्तुतः, पूजित इत्यर्थः।

उदा०-शोभनो भ्राता यस्य सः-सुभ्राता।

***आर्यभाषाः** अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में तथा (वन्दिते) पूजित अर्थ में विद्यमान (भ्रातुः) भ्रातृ शब्द से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-सु=पूजित है भ्राता जिसका वह-सुभ्राता।

सिद्धि-सुभ्राता। यहां सु और भ्राता शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'सुभ्रातृ' शब्द से इस सूत्र से वन्दित=पूजित अर्थ में समासान्त 'कप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है।

कप्-प्रतिषेधः-

(४६) ऋतश्छन्दसि।१५८।

प०वि०-ऋतः ५।१ छन्दसि ७।१।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-छन्दसि बहुव्रीहौ ऋतः समासान्तः कप् न।

अर्थः-छन्दसि विषये बहुव्रीहौ समासे ऋकारान्तात् प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-हता माता यस्य सः- हतमाता (शौ०सं० २।३२।४)। हतपिता। हतस्वसा (शौ०सं० २।३२।४)। सुहोता (ऋ० ७।६७।३)।

आर्यभाषाः *अर्थ-(छन्दसि) वेदविषय में तथा (बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (ऋतः) ऋकारान्त प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-हता=मर गई है माता जिसकी वह-हतमाता (शौ०सं० २।३२।४)। हत=मर गया है पिता जिसका वह-हतपिता। हता=मर गई है स्वसा=बहिन जिसकी वह-हतस्वसा (शौ०सं० २।३२।४)। सु=पूजित है होता=ऋत्विक् जिसका वह-सुहोता (ऋ० ७।६७।३)।

सिद्धि-हतमाता। यहां हता और माता शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। ऋकारान्त 'हतमातृ' शब्द से इस सूत्र से छन्द विषय में समासान्त 'कप्' प्रत्यय नहीं है। ऐसे ही-हतपिता, हतस्वसा, सुहोता।

कप्-प्रतिषेधः-

(४७) नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे।१५६।

प०वि०-नाडी-तन्त्र्योः ६।२ (पञ्चम्यर्थे) स्वाङ्गे ७।१।

स०-नाडी च तन्त्री च ते नाडीतन्त्र्यौ, तयोः-नाडीतन्त्र्योः (इतरेतरयोगद्वन्द्वः)। स्वस्य अङ्गम्-स्वाङ्गम्, तस्मिन्-स्वाङ्गे (षष्ठीतत्पुरुषः)।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप्, न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ स्वाङ्गे नाडीतन्त्रीभ्यां समासान्तः कप् न।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे स्वाङ्गेऽर्थे वर्तमानाद् नाड्यन्तात् तन्त्र्यन्ताच्च प्रातिपदिकात् समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

उदा०-(नाडी) बह्व्यो नाड्यो यस्य सः-बहुनाडिः कायः। (तन्त्री) बह्व्यस्तन्त्र्यो यस्य सः-बहुतन्त्रीग्रीवा। तन्त्री=धमनी।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (नाडीतन्त्र्योः) नाडी और* ***तन्त्री*** *शब्द जिसके अन्त में हैं उस प्रातिपदिक से (समासान्तः) समास का अवयव (कप्)* ***कप्*** *प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-(नाडी) बह्वी=बहुत हैं नाडियां जिसमें वह-बहुनाडि काय (शरीर)। बह्वी=बहुत हैं तन्त्रियां=धमनियां जिसमें वह-बहुतन्त्री ग्रीवा (गर्दन)।

*सिद्धि-(१) बहुनाडिः। यहां बहु और नाडी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। स्वाङ्गवाची 'बहुनाडी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'कप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'नद्यृतश्च' (५।४।१५३) से कप् प्राप्त था। '**गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य**' (१।२।४८) से नाडी शब्द को ह्रस्व होता है।*

*(२) बहुतन्त्रीः। यहां 'बहुतन्त्री' शब्द में '**गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य**' (१।२।४८) से प्राप्त ह्रस्वत्व का वा०-'**कृतः स्त्रियाः प्रतिषेधो वक्तव्यः**' (१।२।४८) से प्रतिषेध होता है।*

कप्-प्रतिषेधः–

(४८) निष्प्रवाणिश्च।१६०।

प०वि०-निष्प्रवाणिः १।१ च अव्ययपदम्।

अनु०-समासान्ताः, बहुव्रीहौ, कप् न इति चानुवर्तते।

अन्वयः-बहुव्रीहौ निष्प्रवाणिश्च समासान्तः कप् न।

अर्थः-बहुव्रीहौ समासे 'निष्प्रवाणिः' इत्यत्र च समासान्तः कप् प्रत्ययो न भवति।

प्रोयते यस्यां सा-प्रवाणी। प्रवयन्ति यया सा वा-प्रवाणी। **'करणाधिकरणयोश्च'** (३।३।११७) इत्यनेन करणे कारके ल्युट् प्रत्ययः। तन्तुवायस्य शलाका प्रवाणीति कथ्यते।

उदा०-निर्गता प्रवाणी यस्य सः-निष्प्रवाणिः पटः। निष्प्रवाणी कम्बलः। अपनीतशलाकः समाप्तवानः प्रत्यग्रो नवकः पटः 'प्रवाणिः' इत्युच्यते।

आर्यभाषाः *अर्थ-(बहुव्रीहौ) बहुव्रीहि समास में (निष्प्रवाणिः) 'निष्प्रवाणि' इस पद में (समासान्तः) समास का अवयव (कप्) कप् प्रत्यय (न) नहीं होता है।*

उदा०-निर्=निकल गई है प्रवाणी=तन्तुवाय की नाळ जिसकी वह-निष्प्रवाणि पट (वस्त्र)। निष्प्रवाणि कम्बल। जिसकी बुनाई समाप्त हो चुकी है वह नया-ताजा कपड़ा आदि 'निष्प्रवाणि' कहाता है।

*सिद्धि-**निष्प्रवाणिः।** निस्+सु+प्रवाणी+सु। निस्+प्रवाणी। निष्प्रवाणि+सु। निष्प्रवाणिः।*

यहां निस् और प्रवाणी शब्दों का पूर्ववत् बहुव्रीहि समास है। 'निष्प्रवाणी' शब्द से इस सूत्र से समासान्त 'कप्' प्रत्यय का प्रतिषेध है। 'नद्यृतश्च' (५।४।१५३) से 'कप्' प्रत्यय प्राप्त था। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' (१।२।४८) से 'प्रवाणी' शब्द को ह्रस्व होता है।

इति समासान्तप्रत्ययादेशप्रकरणम्।

प्रत्ययाधिकारो ङ्याप्प्रातिपदिकाधिकारस्तद्धितार्थधिकारश्च समाप्तः।

इति श्रीयुतपरिव्राजकाचार्याणाम् ओमानन्दसरस्वतीस्वामिनां महाविदुषां पण्डितविश्वप्रियशास्त्रिणां च शिष्येण पण्डितसुदर्शनदेवाचार्येण विरचिते पाणिनीयाष्टाध्यायीप्रवचने पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।

समाप्ताचायं पञ्चमोऽध्यायः।।

।। इति चतुर्थो भागः।।

पाणिनीय-अष्टाध्यायी-प्रवचनम्

चतुर्थभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(अ)	
४५१	अग्राख्यायामुरसः	५।४।९३
४९५	अग्रान्तशुद्धशुभ्र०	५।४।१४५
४७०	अङ्गुलेर्दारुणि	५।४।११४
३५८	अङ्गुल्यादिभ्यष्ठक्	५।३।१०६
४३४	अचतुरविचतुरसुचतु०	५।४।७७
४३३	अच्प्रत्यन्ववपूर्वाद्०	५।४।७५
३१६	अजादी गुणवचनादेव	५।३।५८
७	अजाविभ्यां थ्यन्	५।१।८
३३७	अजिनान्तस्योत्तरप०	५।३।८२
३३०	अज्ञाते	५।३।७३
२८७	अञ्चेर्लुक्	५।३।३०
४७४	अञ्नासिकायाः०	५।४।११६
२२५	अण् च	५।२।१०३
३८३	अणिनुणः	५।४।१५
२३७	अत इनिठनौ	५।२।११५
४०४	अतिग्रहाव्यथन०	५।४।४६
३९१	अतिथेर्ञ्यः	५।४।२६
३१२	अतिशायने तमबिष्ठनौ	५।३।५५
४५४	अतेः शुनः	५।४।९६
१४६	अद्यश्वीनावष्टब्धे	५।२।१३
१९८	अधिकम्	५।२।७३
३०३	अधिकरणविचाले च	५।३।४३
२७३	अधुना	५।३।१७
२५	अध्यर्धपूर्वाद्विगोर्लुग०	५।१।२८
१८७	अध्यायानुवाकयोर्लुक्	५।२।६०
१४८	अध्वनो यत्खौ	५।२।१६
३७३	अनत्यन्तगतौ क्तात्	५।४।४
२७६	अनद्यतने र्हिलन्यतरस्याम्	५।३।२१
३८९	अनन्तावसथेतिह०	५।४।२३
४६५	अनश्च	५।४।१०८
४५९	अनसन्तान्नपुंसका०	५।४।१०३
३३२	अनुकम्पायाम्	५।३।७६
१९९	अनुकाभिकाभीकः०	५।२।७४
४४१	अनुगवमायामे	५।४।८३
३८२	अनुगादिनष्ठक्	५।४।१३
१४८	अनुग्वलंगामी	५।२।१५
१४१	अनुपदसर्वान्नायानयं०	५।२।९
२१२	अनुपद्यन्वेष्टा	५।२।९
१०७	अनुप्रवचनादिभ्यश्छः	५।१।११०
४५२	अनोश्मायस्सरसां०	५।४।९४
४७३	अन्तर्बहिर्भ्यां च लोम्नः	५।४।११७
३२०	अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ	५।३।६३
४४०	अन्ववतप्ताद्रहसः	५।४।८१
४०३	अपादाने चाहीयरुहोः	५।४।४५
४७२	अप्पूरणीप्रमाण्योः	५।४।११६
३६८	अभिजिद्विदभृच्छाला०	५।३।११८
४१२	अभिविधौ सम्पदा च	५।४।५३
१४९	अभ्यमित्राच्छ च	५।२।१७
३८१	अमु च च्छन्दसि	५।४।१२
२००	अयःशूलदण्डाजिनाभ्यां०	५।२।७६
४०९	अरुर्मनश्चक्षुश्चेतोरहो०	५।४।५१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४५७	अर्धाच्च	५।४।१००
२४८	अर्श आदिभ्योऽच्	५।२।१२७
४८९	अल्पाख्यायाम्	५।४।१२६
३४०	अल्पे	५।३।८५
३४८	अवक्षेपणे कन्	५।३।९५
८१	अवयसि ठंश्च	५।१।८३
४३८	अवसमन्धेभ्यस्तमसः	५।४।७९
१६०	अवात्कुटारच्च	५।२।३०
१४४	अवारपारात्यन्ता०	५।२।११
३९२	अवेः कः	५।४।२८
४१६	अव्यक्तानुकरणाद्०	५।४।५७
३२७	अव्ययसर्वनाम्नाम०	५।३।७१
४६४	अव्ययीभावे शरत्०	५।४।१०७
१५१	अश्वस्यैकाहगमः	५।२।१९
१९५	अंशं हारी	५।२।६७
३७५	अषडक्षाशितङ्ग्वलङ्कर्मा०	५।४।७
१८	असमासे निष्कादिभ्यः	५।१।२०
३००	अस्ताति च	५।३।४०
२४३	अस्मायामेधास्त्रजो०	५।२।१२१
४४४	अहस्सर्वैकदेशसंख्यात०	५।४।८७
२६०	अहंशुभयोर्युस्	५।२।१४०
४४६	अह्नोऽह्न एतेभ्यः	५।४।८८

(आ)

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१९१	आकर्षादिभ्यः कन्	५।२।६४
११०	आकालिकडाद्यन्तवचने	५।१।११४
१४७	आगवीनः	५।२।११४
११५	आ च त्वात्	५।१।११९
५१	आढकाचितपात्रात्०	५।१।५३
७	आत्मन्विश्वजनभोगो०	५।१।९
१४१	आप्रपदं प्राप्नोति	५।२।८
३६३	आयुधजीविसङ्घाञ्०	५।३।११४
१७	आर्हादगोपुच्छसंख्या०	५।१।१९
२४७	आलजाटचौ बहु०	५।२।१२५
२९६	आहि च दूरे	५।३।३७

(इ)

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१२६	इगन्ताच्च लघुपूर्वात्	५।१।१३०
४८२	इच् कर्मव्यतिहारे	५।४।१२७
२७०	इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते	५।३।१४
२६२	इदम इश्	५।३।३
२८०	इदमस्थमुः	५।३।२४
२७२	इदमो र्हिल्	५।३।१६
२६८	इदमो हः	५।३।११
५०१	इनः स्त्रियाम्	५।४।१५२
१६२	इनच्पिटच्चिकचि च	५।२।३३
२१४	इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्र०	५।२।९३
३४९	इवे प्रतिकृतौ	५।३।९६
२१०	इष्टादिभ्यश्च	५।२।८८
५०४	ईयसश्च	५।४।१५६
३२४	ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्य०	५।३।६७

(उ)

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
१	उगवादिभ्यो यत्	५।१।२
२०४	उत्क उन्मनाः	५।२।८०
४४८	उत्तमैकाभ्यां च	५।४।९०
७५	उत्तरपथेनाहृतं च	५।१।७६
४५५	उत्तरमृगपूर्वाच्च०	५।४।९८
२९७	उत्तराच्च	५।३।३८
२९२	उत्तराधरदक्षिणादातिः	५।३।३४
१९३	उदराट्ठगाद्यूने	५।२।६७
४९८	उद्विभ्यां काकुदस्य	५।४।१४८
४८९	उपमानाच्च	५।४।१३७
४५४	उपमानादप्राणिषु	५।४।९७
२८८	उपर्युपरिष्टात्	५।३।३१

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४७४	उपसर्गाच्च	५।४।११९
११३	उपसर्गाच्छन्दसि०	५।१।११८
४४३	उपसर्गादध्वन:	५।४।८५
१६३	उपाधिभ्यां त्यकन्ना०	५।२।३४
१७३	उभादुदात्तो नित्यम्	५।२।४४
५००	उर:प्रभृतिभ्य: कप्	५।४।१५१
४८५	ऊधसोऽनङ्	५।४।१३१
२४५	ऊर्णाया युस्	५।२।१२३
४८४	ऊर्ध्वाद्विभाषा	५।४।१३०
२२९	ऊषसुषिमुष्कमधो र:	५।२।१०७
	(ऋ)	
४३१	ऋकपूरब्धू:पथामानक्षे	५।४।७४
५०५	ऋतश्छन्दसि	५।४।१५८
१०२	ऋतोरण्	५।१।१०५
१२	ऋषभोपानहोर्ञ्य:	५।१।१४
	(ए)	
२४१	एकगोपूर्वाट्ठञ्नित्यम्	५।२।११८
३५९	एकशालायाष्ठज०	५।३।१०९
३८६	एकस्य सकृच्च	५।४।१९
३४७	एकाच्च प्राचाम्	५।३।९४
३१०	एकादाकिनिच्चासहाये	५।३।५२
३०३	एकाद्धो ध्यमुञ०	५।३।४४
२६४	एतदोऽच्	५।३।५
२६३	एतेतौ रथो:	५।३।४
३०५	एधाच्च	५।३।४६
२९३	एनबन्यतरस्यामदूरे०	५।३।३५
	(ऐ)	
१०९	ऐकागारिकट् चौरे	५।१।११२
	(ओ)	
३९७	ओषधेरजातौ	५।४।३७

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
	(क)	
२५८	कंशंभ्यां बभयुस्ति०	५।२।१३८
२३	कंसाट्टिठन्	५।१।२५
४९६	ककुदस्यावस्थायां०	५।४।१४६
६८	कडङ्करदक्षिणाच्छ च	५।१।६८
१२२	कपिज्ञात्योर्ढक्	५।१।१२६
२	कम्बलाच्च संज्ञायाम्	५।१।३
३५९	कर्कलोहितादीकक्	५।३।११०
१०१	कर्मण उकञ्	५।१।१०२
१६४	कर्मणि घटोऽठच्	५।२।३५
९९	कर्मविषाद्यत्	५।१।९९
३२९	कस्य च द:	५।३।७२
२३२	काण्डाण्डादीरन्नीरचौ	५।२।१११
२०५	कालप्रयोजनाद्रोगे	५।२।८१
३९५	कालाच्च	५।४।३३
७६	कालात्	५।१।७७
१०४	कालाद्यत्	५।१।१०६
३४४	कासूगोणीभ्यां ष्ठरच्	५।३।९०
३४५	किंयत्तदो निर्धारणे०	५।३।९२
२६१	किंसर्वनामबहुभ्यो०	५।३।२
४२७	किम: क्षेपे	५।४।७०
१७०	किम: संख्यापरिमाणे०	५।२।४१
२८०	किमश्च	५।३।२५
१६९	किमिदंभ्यां वो घ:	५।२।४०
३७९	किमेत्तिङव्ययघादा०	५।४।११
२६९	किमोऽत्	५।३।१२
३४२	कुटीशमीशुण्डाभ्यो र:	५।३।८८
३४३	कुत्वा डुपच्	५।३।८९
३३१	कुत्सिते	५।३।७४
४६१	कुमहद्भ्यामन्यतरस्याम्	५।४।१०५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४९१	कुम्भपदीषु च	५।४।१३९
५३	कुलिजाल्लुकखौ च	५।१।५५
२०७	कुल्माषादञ्	५।२।८३
३५५	कुशाग्राच्छः	५।३।१०५
४१७	कृञो द्वितीयतृतीय०	५।४।५८
४०८	कृभ्वस्तियोगे संपद्य०	५।४।५०
२३१	केशाद्वोऽन्यतरस्याम्	५०।२।१०९
२१४	क्षेत्रियच्परक्षेत्रे०	५।२।९२
	(ख)	
६	खलयवमाषतिलवृष०	५।४।४९
३१	खार्या ईकन्	५।१।३३
४५८	खार्या प्राचाम्	५।४।१०१
	(ग)	
४८८	गन्धस्येदुत्पूति०	५।४।१३५
२३२	गाण्ड्यजगात्संज्ञायाम्	५।२।११०
४६८	गिरेश्च सेनकस्य (गि)	५।४।११२
११९	गुणवचनब्राह्मणा०	५।१।१२४
१२९	गोत्रचरणाच्छ्लाघा०	५।१।१३३
३८	गोद्व्यचोऽसंख्या०	५।१।११९
४५०	गोरतद्धितलुकि	५।४।९२
१८९	गोषदादिभ्यो वुन्	५।२।६२
१५०	गोष्ठात् खञ्भूतपूर्वे	५।२।१८
४५३	ग्रामकौटाभ्यां च	५।४।९५
	(घ)	
३३५	घनिलचौ च	५।३।७९
	(च)	
१३	चर्मणोऽञ्	५।१।१५
८७	चित्तवति नित्यम्	५।१।८८
	(छ)	
११	छदिरुपधिबलेर्ढञ्	५।१।१३
१०३	छन्दसि घस्	५।१।१०५
६७	छन्दसि च	५।१।६६
४९३	छन्दसि च	५।४।१४२
६५	छेदादिभ्यो नित्यम्	५।१।६३
	(ज)	
४८०	जम्भा सुहरित०	५।४।१२५
३३७	जातिनाम्नः कन्	५।३।८१
३७८	जात्यन्ताच्छ बन्धुनि	५।४।९
४८७	जायाया निङ्	५।४।१३४
३५१	जीविकार्थे चापण्ये	५।३।९९
३१८	ण्य च	५।३।६१
२३५	ज्योत्स्नातमिस्रा०	५।२।११४
	(झ)	
४६८	झयः	५।४।१११
	(ञ)	
३६९	ञ्यादयस्तद्राजाः	५।३।११९
	(ठ)	
३३८	ठाजादावूर्ध्वं०	५।३।८३
	(ण)	
३८२	णचः स्त्रियामञ्	५।४।१४
	(त)	
४४३	तत्पुरुषस्यांगुलेः०	५।४।८६
३८८	तत्प्रकृतवचने मयट्	५।४।२१
१९०	तत्र कुशलः पथः	५।२।६३
९४	तत्र च दीयते कार्य०	५।१।९५
११२	तत्र तस्येव	५।१।११५
४१	तत्र विदित इति च	५।१।४३
१४०	तत्सवदिः पथ्यङ्गकर्म०	५।२।७
६४	तदर्हति	५।१।६३
११२	तदर्हम्	५।१।११६
१७४	तदस्मिन्नधिकमिति०	५।२।४५
२०६	तदस्मिन्नन्नं प्रायेण०	५।२।८२

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४४	तदस्मिन्वृद्ध्यायला०	५।१।४७
१४	तदस्य तदस्मिन्	५।१।१६
५६	तदस्य परिमाणम्	५।१।५७
९२	तदस्य ब्रह्मचर्यम्	५।१।९३
१६५	तदस्य संजातं०	५।२।३६
२१६	तदस्यास्त्यस्मिन्निति०	५।२।९४
२७४	तदो दा च	५।३।१९
४७	तद्धरतिवहत्यावहति०	५।१।५०
३९७	तद्युक्तात्कर्मणोऽण्	५।४।३६
१९५	तन्त्रादचिरापहृते	५।२।७०
२२४	तपःसहस्राभ्यां विनीनी	५।२।१०२
७७	तमधीष्टो भृतो भूतो०	५।१।७९
२७५	तयोर्दार्हिलौ च०	५।३।२०
२६६	तसेश्च	५।३।८
९९	तस्मै प्रभवति	५।१।१००
४	तस्मै हितम्	५।१।५
९३	तस्य च दक्षिणा०	५।१।९४
३७	तस्य निमित्तं संयोगो०	५।१।३८
१५५	तस्य पाकमूले०	५।२।२४
१७७	तस्य पूरणे डट्	५।२।३८
११४	तस्य भावस्त्वतलौ	५।१।११९
४३	तस्य वापः	५।१।४५
४०	तस्येश्वरः	५।१।४२
२०१	तावतिथं ग्रहणमिति०	५।२।७७
३१३	तिङश्च	५।३।५६
२४०	तुन्दादिभ्य इलच्च	५।२।११७
२५९	तुन्दिवलिवटेर्भः	५।२।१३९
३६	तेन क्रीतम्	५।१।३७
१११	तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः	५।१।११५
७७	तेन निर्वृतम्	५।१।७८
९१	तेन परिजय्यलभ्य०	५।१।९२
९६	तेन यथा कथा च०	५।२।९७
१५७	तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपौ	५।२।२६
६३	त्रिंशच्चत्वारिंशतो०	५।१।६२
९७	त्रिककुत्पर्वते	५।४।१४७
१८२	त्रेः संप्रसारणं च	५।२।५५
	(थ)	
१७९	थट् च छन्दसि	५।२।५०
२८१	था हेतौ च छन्दसि	५।३।३६
	(द)	
२९५	दक्षिणादाच्	५।३।३६
४८१	दक्षिणेर्मा लब्धयोगे	५।४।२८
३८३	दक्षिणोत्तराभ्यां तस् च	५।३।२८
३७२	दण्डव्यवसर्गयोश्च	२।४।२
६६	दण्डादिभ्यो यः	५।१।६५
२२८	दन्त उन्नत उरच्	५।२।१०६
२३४	दन्तशिखात्संज्ञायाम्	५।२।११३
२७४	दार्नीं च	५।३।१८
३६५	दामन्यादित्रिगर्त०	५।३।११६
२८२	दिक्छब्देभ्यः सप्तमी०	५।३।२७
४२२	दुःखात् प्रातिलोम्ये	५।४।६४
४१४	देये त्रा च	५।४।५५
३९०	देवतान्तात्तादर्थ्ये यत्	५।४।२४
३५३	देवपथादिभ्यश्च	५।३।१००
४१५	देवमनुष्यपुरुषपुरुम०	५।४।५६
३९२	देवात्तल्	५।४।२७
२२७	देशे लुबिलचौ च	५।२।१०५
२३०	द्युद्रुभ्यां मः	५।२।१०८
३५५	द्रव्यं च भव्ये	५।३।१०४
१२८	द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च	५।१।१३२
४६३	द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात्०	५।४।१०६
२४९	द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्०	५।२।१२८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
५२	द्विगोः ष्ठंश्च	५।१।५४
७९	द्विगोर्यप्	५।१।८१
८२	द्विगोर्वा	५।१।८५
३८५	द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्	५।४।१८
२९	द्वित्रिपूर्वान्निष्कात्	५।१।३०
४७१	द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः	५।४।११५
१७२	द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा	५।२।४३
४५९	द्वित्रिभ्यामञ्जलेः	५।४।१०२
३०४	द्वित्र्योश्च धमुञ्	५।३।४५
४८३	द्विदण्ड्यादिभ्यश्च	५।४।१२८
३१४	द्विवचनविभज्योपपदे०	५।३।५७
४४२	द्विस्तावा त्रिस्तावा०	५।४।८४
१८२	द्वेस्तीयः	५।२।५४
	(ध)	
१९२	धनहिरण्यात्कामे	५।२।६५
४८६	धनुषश्च	५।४।१३२
२५३	धर्मशीलवर्णान्ताच्च	५।२।१३२
४७९	धर्मादनिच्केवलात्	५।४।१२४
१३४	धान्यानां भवने क्षेत्रे०	५।२।१
	(न)	
४२८	नञस्तत्पुरुषात्	५।४।७१
४७६	नञ्दुःसुभ्यो हलि०	५।४।१२१
१६०	नते नासिकायाः	५।२।३१
४६७	नदीपौर्णमास्याग्र०	५।४।११०
५०२	नद्यृतश्च	५।४।१५३
११६	न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषाद०	५।१।१२१
४६६	नपुंसकादन्यतरस्याम्	५।४।१०९
४२६	न पूजनात्	५।४।६९
४४७	न संख्यादेः समाहारे	५।४।८९
५०४	न संज्ञायाम्	५।४।१५५
३७४	न सामिवचने	५।४।५
५०६	नाडीतन्त्र्योः स्वाङ्गे	५।४।१५९
१७८	नान्तादसंख्यादेर्मट्	५।२।४९
४५६	नावो द्विगोः	५।४।९९
१८४	नित्यं शतादिमास०	५।२।५७
४७७	नित्यमसिच्प्रजा०	५।४।१२२
४२०	निष्कुलान्निष्कोषणे	५।४।६३
५०७	निष्प्रवाणिश्च	५।४।१६०
३३३	नीतौ च तद्युक्तात्	५।३।७७
१६१	नेर्बिडज्बिरीसचौ	५।२।३२
	(प)	
१५६	पक्षात्तिः	५।२।२५
५८	पंक्तिविंशतित्रिंशच्च०	५।१।५९
६१	पञ्चद्दशतौ वर्गे वा	५।१।६०
२६५	पञ्चम्यास्तसिल्	५।३।७
१२२	पत्यन्तपुरोहितादिभ्यो०	५।१।१२८
७४	पथः ष्कन्	५।१।७४
४२९	पथो विभाषा	५।४।७२
७५	पन्थो ण नित्यम्	५।१।७५
३२	पणपादमाष०	५।१।३४
१५	परिखाया ढञ्	५।१।१७
१४३	परोवरपरम्परपुत्रपौत्र०	५।२।१०
२६७	पश्वादियौधेयादिभ्यो०	५।३।११७
२९१	पश्चात्	५।३।३२
४३	पात्रात् ष्ठन्	५।१।४६
६७	पात्राद् घँश्च	५।१।६७
३७१	पादशतस्य संख्यादे०	५।४।१
४९०	पादस्य लोपो०	५।४।१३८
३९०	पादार्घाभ्यां च	५।४।२५
७१	पारायणतुरायणाच्चा०	५।१।७१
१९९	पार्श्वेनान्विच्छति	५।२।७५

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३९	पुत्राच्छ च	५ ।१ ।४०
१६७	पुरुषहस्तिभ्यामण् च	५ ।२ ।३८
२५५	पुष्करादिभ्यो देशे	५ ।२ ।१३५
३६१	पूगाञ्ञ्योऽग्रामणी०	५ ।३ ।११२
३०७	पूरणाद्भागे तीयादन्	५ ।३ ।४८
४५	पूरणार्धाट्ठन्	५ ।१ ।४८
४९८	पूरणाद्विभाषा	५ ।४ ।१४९
२०९	पूर्वादिनिः	५ ।२ ।८६
२९८	पूर्वाधरावराणामसि०	५ ।३ ।३९
११७	पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा	५ ।१ ।१२१
३२६	प्रकारवचने जातीयर्	५ ।३ ।६९
२७९	प्रकारवचने थाल्	५ ।३ ।२३
१०४	प्रकृष्टे ठञ्	५ ।१ ।१०७
३९८	प्रज्ञादिभ्यश्च	५ ।४ ।३२
२२३	प्रज्ञाश्रद्धार्चाभ्यो णः	५ ।२ ।१०१
४०३	प्रतियोगे पञ्चम्या०	५ ।४ ।४४
४४१	प्रतेरुरसः सप्तमीस्थात्	५ ।४ ।८२
३६०	प्रत्नपूर्वविश्वेमात्०	५ ।३ ।१११
१६६	प्रमाणे द्वयसज्दघ्नज्०	५ ।२ ।३७
१०५	प्रयोजनम्	५ ।१ ।१०८
३२३	प्रशंसायां रूपप्	५ ।३ ।६६
३१७	प्रशस्यस्य श्रः	५ ।३ ।६०
४८४	प्रसंभ्यां जानुनो ज्ञुः	५ ।४ ।१२९
१	प्राक्क्रीताच्छः	५ ।१ ।१
३२७	प्रागिवात्कः	५ ।३ ।७०
३०७	प्रागेकादशभ्यो०	५ ।३ ।४९
२६०	प्राग्दिशो विभक्तिः	५ ।३ ।१
१६	प्राग्वतेष्ठञ्	५ ।१ ।१८
३३५	प्राचामुपादे०	५ ।३ ।८०
१२४	प्राणभृज्जातिवयोवचन०	५ ।१ ।१२८
२१८	प्राणिस्थादातो लज०	५ ।२ ।९६
	(फ)	
२२१	फेनादिलच्च	५ ।२ ।९९
	(ब)	
२५६	बलादिभ्यो मतुबन्यतरस्याम्	५ ।२ ।१२६
१८०	बहुपूगणसंघस्य०	५ ।२ ।५२
४७८	बहुप्रजाश्छन्दसि	५ ।४ ।१२३
२४४	बहुलं छन्दसि	५ ।२ ।१२२
४६९	बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः०	५ ।४ ।११३
४३०	बहुव्रीहौ संख्येये०	५ ।४ ।७३
३३४	बह्वचो मनुष्यनाम्न०	५ ।४ ।७८
४०१	बह्वल्पार्थाच्छस्कारकाद०	५ ।४ ।४२
३०	बिस्ताच्च	५ ।१ ।३१
३७५	बृहत्या आच्छादने	५ ।४ ।६
१३३	ब्रह्मणस्त्वः	५ ।१ ।१३५
४६१	ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम्	५ ।४ ।१०४
४३७	ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः	५ ।४ ।७८
१९६	ब्राह्मणकोष्णिके संज्ञायाम्	५ ।२ ।७१
	(भ)	
३११	भूतपूर्वे चरट्	
	(म)	
१८६	मतौ छः सूक्तसाम्नोः	५ ।२ ।५९
४२४	मद्रात् परिवापणे	५ ।४ ।६७
१०	माणवचरकाभ्यां खञ्	५ ।१ ।११
३०९	मानपश्वङ्गयोः०	५ ।३ ।५१
७८	मासाद्वयसि०	५ ।१ ।८०
३९९	मृदस्तिकन्	५ ।४ ।३९
	(य)	
७०	यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ	५ ।१ ।७०
१६८	यत्तदेतेभ्यः परिमाणे०	५ ।२ ।३९
१३९	यथामुखसंमुखस्य०	५ ।२ ।६
१३५	यवयवकषष्टिकाद्यत्	५ ।२ ।३

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
३०६	याप्ये पाशप्	५।३।४७
३९२	यावादिभ्यः कन्	५।४।२९
३२१	युवाल्पयोः कन०	५।३।६४
१००	योगाद्यच्च	५।१।१०१
७३	योजनं गच्छति	५।१।७३
१२७	योपधाद्गुरूपोत्तमाद्०	५।१।१३१
	(र)	
३९४	रक्ते	५।४।३२
२३३	रजःकृष्यासुति०	५।२।११२
२१७	रसादिभ्यश्च	५।२।९५
४४९	राजाहःसखिभ्यष्टच्	५।४।९१
८४	रात्र्यहःसंवत्सराच्च	५।१।८६
२४२	रूपादाहतप्रशंसयोर्यप्	५।२।१२०
४०७	रोगाच्चापनयने	५।४।४९
	(ल)	
३५०	लुम्मनुष्ये	५।३।९८
४२	लोकसर्वलोकाट्ठञ्	५।१।४४
२२२	लोमादिपामादि०	५।२।१००
३९३	लोहितान्मणौ	५।४।३०
	(व)	
२१	वतोरिड् वा	५।१।२३
१८१	वतोरिथुक्	५।२।५३
८९	वत्सरान्ताच्छश्छन्दसि	५।१।९०
२२०	वत्सांसाभ्यां कामबले	५।२।९८
३४४	वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्य०	५।३।९१
५०५	वन्दिते भ्रातुः	५।४।१५७
४९२	वयसि दन्तस्य दतृ	५।४।१४१
२५१	वयसि पूरणात्	५।२।१३०
११८	वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ्च	५।१।१२२
२५४	वर्णाद् ब्रह्मचारिणि	५।२।१३४
३९३	वर्णे चानित्ये	५।२।३१
८५	वर्षाल्लुक् च	५।१।८७
३५३	वस्तेर्ढञ्	५।३।१०१
४८	वस्नद्रव्याभ्यां ठन्कनौ	५।१।५१
२४६	वाचो व्याहृतार्थायाम्	५।४।३५
२५०	वातातीसाराभ्यां०	५।२।१२९
३४६	वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने०	५।३।९३
४८६	वा संज्ञायाम्	५।४।१३३
२६९	वा ह च च्छन्दसि	५।३।१३
३१	विंशतिकात् खः	५।१।३२
२२	विंशतित्रिंशद्भ्यां०	५।१।२४
१८३	विंशत्यादिभ्यस्तमड०	५।२।५६
१५८	विनञ्भ्यां नानाञौ०	५।२।२७
३९५	विनयादिभ्यष्ठक्	५।४।३४
३२२	विन्मतोर्लुक्	५।३।६५
३६	विभाषा कार्षापण०	५।१।२९
३७७	विभाषाञ्चेरदिक्०	५।४।८
१३६	विभाषा तिलमाषोमा०	५।२।४
२८५	विभाषा परावराभ्याम्	५।३।२९
३८७	विभाषा बहोर्धा०	५।४।२०
३०१	विभाषाऽवरस्य	५।३।४१
४९४	विभाषा श्यावारोकाभ्याम्	५।४।१४४
४११	विभाषा साति०	५।४।५२
३२५	विभाषा सुपो बहुच्०	५।३।६८
३	विभाषा हविरपूपादि०	५।१।४
१८८	विमुक्तादिभ्योऽण्	५।२।६१
१०६	विशाखाषाढा०	५।१।१०९
३८४	विसारिणो मत्स्ये	५।४।१६
४००	वृकज्येष्ठाभ्यां०	५।४।४१
३६५	वृकाट्टेण्यण्	५।३।११५
३१९	वृद्धस्य च	५।३।६२
१५८	वेः शालच्छङ्कटचौ	५।२।२८

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
९५	व्युष्टादिभ्योऽण्	५।१।९७
१५३	व्रातेन जीवति	५।२।२१
३६२	व्रातच्फञोरस्त्रियाम्	५।३।११३
१३५	व्रीहिशाल्योर्ढक्	५।२।२
२३८	व्रीह्यादिभ्यश्च	५।२।११६
	(श)	
२४	शतमानविंशतिक०	५।१।२७
२४२	शतसहस्रान्ताच्च०	५।२।११९
१९	शताच्च ठन्यतावशते	५।१।२१
१७५	शदन्तविंशतेश्च	५।२।४६
५	शरीरावयवाद्यत्	५।१।६
३५७	शर्करादिभ्योऽण्	५।३।१०७
३५४	शाखादिभ्यो यः	५।३।१०३
३३	शाणाद्वा	५।१।३५
१५२	शालीनकौपीने०	५।२।२०
३५३	शिलाया ढः	५।३।१०२
१९७	शीतोष्णाभ्यां कारिणि	५।२।७२
६५	शीर्षच्छेदाद्यच्च	५।१।६४
२३	शूर्पादञन्यतरस्याम्	५।१।२६
४२२	शूलात्पाके	५।४।६५
२०३	शृङ्खलमस्य बन्धनं०	५।२।७९
३३९	शेवलसुपरिविशाल०	५।३।८४
५०३	शेषाद्विभाषा	५।४।१५४
२०८	श्राद्धमनेन भुक्तमिनि०	५।२।८५
२०७	श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते	५।२।८४
४३९	श्वसो वसीयःश्रेयसः	५।४।८०
	(ष)	
१८०	षट्कतिकतिपयचतुरां०	५।२।५१
८०	षण्मासाण्ण्यच्च	५।१।८२
८८	षष्टिकाः षष्टिरात्रेण०	५।१।८९
१८५	षष्ठ्यादेश्चासंख्यादेः	५।२।५८
३०८	षष्ठाष्टमाभ्यां च	५।३।५०
३१२	षष्ठ्या रूप्य च	५।३।५४
४०६	षष्ठ्या व्याश्रये	५।४।४८
	(स)	
२०३	स एषां ग्रामणीः	५।२।७८
१२१	सख्युर्यः	५।१।१२५
२०	संख्याया अतिशद०	५।१।२२
१७१	संख्याया अवयवे तयप्	५।२।४२
३८४	संख्यायाः क्रियाभ्या०	५।४।१७
५७	संख्यायाः संज्ञासंघसूत्र०	५।१।५८
१७६	संख्याया गुणस्य०	५।२।४७
३०२	संख्याया विधार्थे धा	५।३।४२
४१८	संख्यायाश्च गुणान्तायाः	५।४।५९
४९१	संख्यासुपूर्वस्य	५।४।१४०
४०२	संख्यैकवचनाच्च०	५।४।४३
३४२	संज्ञायां कन्	५।३।७५
३३१	संज्ञायां कन्	५।३।८७
३४९	संज्ञायां च	५।३।९७
२५७	संज्ञायां मन्माभ्याम्	५।२।१३७
४२३	सत्यादशपथे	५।४।६६
२७७	सद्यःपरुत्परार्यैषमः०	५।३।२२
४१९	सपत्रनिष्पत्रादति०	५।४।६१
२१०	सपूर्वाच्च	५।२।८७
६२	सप्तनोऽञ्छन्दसि	५।१।६१
२६७	सप्तम्यास्त्रल्	५।३।१०
१०२	समयस्तदस्य प्राप्तम्	५।१।१०३
४१९	समयाच्च यापनायाम्	५।४।६०
१४५	समांसमां विजायते	५।२।१२
१०८	समापनात्सपूर्वपदात्	५।१।११२
८१	समायाः खः	५।१।८४
३५६	समासाच्च०	५।३।१०६

पृष्ठाङ्काः	सूत्रम्	सूत्रसंख्या
४२४	समासान्ताः	५।४।६८
३८८	समूहवच्च बहुषु	५।४।२२
९०	संपरिपूर्वात्ख च	५।१।९२
९८	संपादिनि	५।१।९८
१५९	संप्रोदश्च कटच्	५।२।२९
५०	संभवत्यवहरति पचति	५।१।५२
१३७	सर्वचर्मणः कृतः०	५।२।५
६	सर्वपुरुषाभ्यां णढञौ	५।१।१०
३९	सर्वभूमिपृथिवीभ्याम०	५।१।४१
२६४	सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि	५।३।६
२७१	सर्वैकान्यकिंयत्तदः०	५।३।१५
७२	संशयमापन्नः	५।१।७२
३९९	सस्नौ प्रशंसायाम्	५।४।४०
१९४	सस्येन परिजातः	५।२।६८
२१३	साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्	५।२।९१
१५४	साप्तपदीनं सख्यम्	५।२।२२
२२६	सिकताशर्कराभ्यां च	५।२।१०४
२१९	सिध्मादिभ्यश्च	५।२।९७
४२१	सुखप्रियादानुलोम्ये	५।४।६३
२५२	सुखादिभ्यश्च	५।२।१३१
४७५	सुप्रातसुश्वसुदिवशा०	५।४।१२०
४९९	सुहृद्दुर्हृदौ मित्रा०	५।४।१५०
५५	सोऽस्यांशवस्नभृतयः	५।१।५६
१२०	स्तेनाद्यन्नलोपश्च	५।१।१२५
४९४	स्त्रियां संज्ञायाम्	५।४।१४३
३७८	स्थानान्ताद्विभाषा०	५।४।१०
६९	स्थालीबिलात्	५।१।६९
३७३	स्थूलादिभ्यः प्रकार०	५।४।३
१९२	स्वांगेभ्यः प्रसिते	५।२।६६
२४८	स्वामिन्नैश्वर्ये	५।२।१२६
	(ह)	
२५४	हस्ताज्जातौ	५।२।१३३
१२५	हायनान्तयुवादि०	५।१।१२९
४०६	हीयमानपापयोगाच्च	५।४।४७
१५५	हैयङ्गवीनं संज्ञायाम्	५।२।२३
१३१	होत्राभ्यश्छः	५।१।१३४
४१	ह्रस्वे	५।३।८६

इति चतुर्थभागस्य सूत्रवर्णानुक्रमणिका।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय पुस्तकालय

संक्षेप-विवरणम्

13919

१. ऋ० - ऋग्वेदः
२. का० सं० - काठकसंहिता
३. तै० सं० - तैत्तिरीयसंहिता
४. मा० सं० - माध्यन्दिनसंहिता
५. यजु० - यजुर्वेदः
६. शौ० सं० - शौनकसंहिता
७. साम० - सामवेदः

Compiled
1999-2000

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Acces on		11/1
Class	RE	5.2.2000
	RE	11
Tag etc		11
Filing		5.2.2000
E.A.R		
Any other	RE	5.2.2000
Checked		5-2-2000

Recommended By

STOCK VERIFY 2020 G.K.V. Library